www.vitragvani.com

ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत प्रवचन

(भाग-2)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'बहिनश्री के वचनामृत' पर प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 31 से 60, वचनामृत 91 से 167)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

वीर निर्वाण 2540 विक्रम संवत् 2070 ईस्वी सन् 2014

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्तरत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थंकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी-धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन धर्म के गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थंकर पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु-परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया था, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दुःखी जीवों का उद्धार किया है - शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है - ऐसे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति, परमोपकारी, परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म-सुधारसमय मंगल पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ट सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ

सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वे शुद्धात्मरूप द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की वह प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये थे।

जैनधर्म की गीता अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत' और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी थी। इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है - ऐसी तीव्र धगश, खटक बचपन से ही थी। सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा प्राप्त करने की विधि, मुनिदशा का वर्णन, आदि वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं। उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं। उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह द्वितीय भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अद्‌भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात

www.vitragvani.com

बहानेवाला तीर्थंकर का द्रव्य और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृतसागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

'बहिनश्री के वचनामृत' ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दश: लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री निलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ .... करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए .... के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसके अलावा सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में 'बहिनश्री के वचनामृत' के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, ऐसी भावना है।

निवेदक
ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
एवं
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

www.vitragvani.com

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
३१	०८-०७-१९७८	९१-९२	१
३२	०९-०७-१९७८	९३-९४	१७
३३	१०-०७-१९७८	९५-९७	३२
३४	११-०७-१९७८	९८-१००	४८
३५	१३-०७-१९७८	१०१-१०३	६५
३६	१३-०७-१९७८	१०४-१०५	८०
३७	१४-०७-१९७८	१०५-१०६	९४
३८	१५-०७-१९७८	१०७-१०९	११०
३९	१६-०७-१९७८	१०९-१११	१२६
४०	१७-०७-१९७८	११२-११३	१४२
४१	१८-०७-१९७८	११४-११६	१५८
४२	१९-०७-१९७८	११७-११९	१७५
४३	२०-०७-१९७८	१२०-१२१	१९२
४४	२१-०७-१९७८	१२१-१२३	२०४
४५	२२-०७-१९७८	१२४-१२६	२२०
४६	२३-०७-१९७८	१२६-१२७	२३८
४७	२४-०७-१९७८	१२८-१२९	२५५

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
४८	२६-०७-१९७८	१३०-१३२	२७१
४९	२७-०७-१९७८	१३३-१३६	२८८
५०	२८-०७-१९७८	१३७-१३९	३०५
५१	२९-०७-१९७८	१४०-१४१	३२१
५२	३०-०७-१९७८	१४२-१४५	३३७
५३	३१-०७-१९७८	१४६-१४८	३५३
५४	०१-०८-१९७८	१४९-१५१	३६८
५५	०२-०८-१९७८	१५२-१५५	३८४
५६	०३-०८-१९७८	१५६-१५९	३९९
५७	०४-०८-१९७८	१६०-१६१	४२०
५८	०६-०८-१९७८	१६२-१६३	४३७
५९	०९-०८-१९७८	१६३-१६५	४५४
६०	१०-०८-१९७८	१६६-१६७	४७०

www.vitragvani.com

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-२

अषाढ़ शुक्ल-३, शनिवार, दिनाङ्क ०८-०७-१९७८
वचनामृत- ९१-९२ प्रवचन-३१

अहा! आत्मा अलौकिक चैतन्यचन्द्र है, जिसका अवलोकन करने से मुनियों को वैराग्य उछल पड़ता है। मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्र को निहारते हुए अघाते ही नहीं, थकते ही नहीं॥ ९१ ॥

आहा...हा...! क्या कहते हैं? देखो! **अहो! आत्मा अलौकिक चैतन्यचन्द्र है,....** है? ९१। क्या कहते हैं? यह आत्मा जो अन्दर है, वह तो अलौकिक चैतन्यचन्द्र है। चैतन्यचन्द्र अर्थात् शीतल आनन्द और शान्तरस से भरा पड़ा प्रभु अन्दर है। है? अहो...! आश्चर्यकारी आत्मा अलौकिक, लोक से रहित, चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से भी रहित, चैतन्यचन्द्र है। आहाहा...! देह से तो भिन्न (है), अन्दर में दया, दान का राग आता है, उससे भी भिन्न (है) और आत्मा जो वस्तु है, उसमें जो अनन्त अनन्त ज्ञान, आनन्द

www.vitragvani.com

आदि गुण हैं, वे गुणभेद भी व्यवहार है। आहाहा... ! जिसको आत्मा की प्रतीत करनी हो, आत्मा का वास्तविक तल लेना हो तो उसे पुण्य और दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम का तो लक्ष्य छोड़ना परन्तु अन्तर वस्तु में अनन्त गुण हैं, उस गुण-गुणी भेद का भी लक्ष्य छोड़ना। आहाहा.... ! ऐसी बात है।

चैतन्यचन्द्र। **जिसका अवलोकन करने से....** आहाहा... ! भगवान आत्मा चैतन्य अस्ति-मौजूदगी (रखनेवाली) वस्तु-चीज है, वह अलौकिक चीज है। लौकिक के साथ मिलान होता नहीं। ऐसे अवलोकन करने से। देखनेवाला अपनी देखने की शक्ति-सत्ता में पर को देखता है, परन्तु देखनेवाला अपने को देखता नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई ! जिसकी सत्ता में, जिसकी अस्ति में यह जानने में आता है कि यह शरीर है, यह राग है, ये है... आहाहा... ! जिसके अस्तित्व में, जिसकी मौजूदगी में यह जानने में आता है, वह जाननेवाला जानने में आया... जाननेवाला जब जानने में आया, तब अवलोकन होता है। आहाहा... ! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! समझ में आया ?

अवलोकन पर का करता है तो वह तो परलक्ष्यी अवलोकन (है), उसमें आत्मा आया नहीं। आहाहा.... ! चाहे तो वकालत का ज्ञान हो या डाक्टरी का ज्ञान हो, सब परलक्ष्यी अज्ञान है।

मुमुक्षु : डॉक्टर ठीक करता है।

उत्तर : कौन ठीक करे ? अरे ! भगवान ! आहाहा... ! चैतन्यचन्द्र आनन्द का कन्द तो अन्दर ठीक ही है। अरे... ! उसकी कहाँ खबर है ? अनन्त काल से खबर नहीं। प्रभु अन्दर चैतन्यस्वरूप, उसका अवलोकन करना, भेद का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर (उसका अवलोकन करना)। आहाहा... ! जिसकी सत्ता में वर्तमान ज्ञान की दशा में, यह है, यह है... ऐसा जानने में आता है, उसकी पर्याय-उसकी दशा अपने अवलोकन में जाये। आहाहा... ! सूक्ष्म बात है। उसकी दशा में-पर्याय में। पर्याय (अर्थात्) वर्तमान हालत, ज्ञान का विकास का वर्तमान अंश है न ? उसमें जानने में आता है कि यह है, यह है, यह है... उस पर्याय को (जिसका) पर की ओर झुकाव है, वह मिथ्याभाव है, वह दुःखरूप दशा है। आहाहा.... ! उसे अपने अवलोकन में ले जाना।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चैतन्यतत्त्व है, चैतन्यचन्द्र है, ज्ञायकभाव परिपूर्ण पड़ा है, उसका अवलोकन करने से। आहाहा... ! जगत से अलग चीज है, भाई ! डॉक्टर ! आहा... ! आहाहा... !

जिसका अवलोकन करने से मुनियों को वैराग्य उछल पड़ता है। आहाहा.... ! नीचे के गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि जीव हैं, वे अपने शुद्ध चैतन्य को जानते हैं, मानते हैं, वेदन करते हैं। राग का और भेद का लक्ष्य छोड़कर वे भी अपने आत्मा का अभेद का अवलोकन, प्रतीत करते हैं, परन्तु उसमें आनन्द थोड़ा है, आनन्द अल्प आता है और मुनियों को... आ...हा...हा... ! जहाँ समस्त रागादि छूट गये हैं, परचीज का तो कोई सम्बन्ध है ही नहीं। मुनि अर्थात् अन्तर में आनन्द का अनुभव करनेवाले अपने अवलोकन में... आहाहा... ! मुनियों को तो वैराग्य उछल पड़ता है। पर से उदासीनता, अपने अस्तित्व के अवलम्बन में पर से उदासीन वैराग्य उछल पड़ता है। ऐसी व्याख्या ! ऐसा धर्म का उपदेश !! सेवा करनी, दया पालनी, ये करना, ये करना — ऐसा अज्ञानी (माने)। पर की सेवा कौन करे ? डॉक्टर को तो बाहर में डॉक्टरी करनी हो, इसलिए बड़े अस्पताल में महीना-दो महीना ओनररी जाये, क्योंकि फिर अपना दवाखाना चले। आहाहा... ! वह भी मिथ्या भ्रम है।

यहाँ तो परमात्मा अन्दर चिदानन्दस्वरूप, वस्तु है न ? अस्ति है न ? मौजूदगी चीज है न ? आहाहा... ! शरीरप्रमाण भले हो, परन्तु वह चीज है न ? तत्त्व है। इस तत्त्व के सामर्थ्य में इतना तत्त्व भरा है... आहाहा... ! कि उसका अवलोकन करने से पर की ओर का वैराग्य उछल जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! पर की ओर का वैराग्य उछल जाता है। है न ? **उछल पड़ता है।** आहाहा... ! उसे वैराग्य कहते हैं। स्त्री-कुटुम्ब छोड़े और जंगल में रहा, इसलिए वैरागी है — ऐसा नहीं। आहाहा... !

वैरागी तो उसे कहते हैं कि अपने निज पदार्थ के अवलोकन में पर से उदास हो जाये, उसका नाम वैराग्य है। व्याख्या (ऐसी है)। समझ में आया ? आहाहा... ! मेरी चीज में कोई परचीज तो है नहीं, परन्तु पर चीज के लक्ष्य से जो रागादि उत्पन्न होते हैं, वह भी मेरी चीज में तो है नहीं; और मेरी चीज में तो भेद भी नहीं है, कि यह गुणी आत्मा और गुण का धरनेवाला मैं, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है। आहाहा... ! ऐसा भगवान आत्मा चन्द्र-

www.vitragvani.com

चैतन्यचन्द्र है। आहा... ! बाहर में चन्द्रोदय होता है, वह तो शीतल, शीतल सफेद, श्वेत-सफेद होता है न ? क्या कहते हैं ? प्रकाश, सफेद प्रकाश और शीतल प्रकाश। भगवान आत्मा में शुद्ध प्रकाश और आनन्द और चैतन्य का प्रकाश अन्दर भरा है। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! अनन्त काल हुआ।

आत्मा है तो अनादि है, वह कोई नया उत्पन्न नहीं होता। नया उत्पन्न हो ऐसी चीज नहीं है। है, अस्ति है, सत् है, वह है। भूतकाल में था, वर्तमान है, भविष्य में रहेगा। है उसका नाश कहाँ होगा ? वह चीज जो त्रिकाल है, वह नहीं किन्तु वर्तमान में... आहाहा... ! त्रिकाली है — ऐसा लक्ष्य भी नहीं। आहाहा... ! चैतन्यस्वरूप अपना पूर्ण अस्तित्व अर्थात् हयाती-सत्ता रखता है, ऐसी चीज के अवलोकन से, उस ओर के झुकाव से पर की ओर का वैराग्य उछल पड़ता है। पर की ओर का वैराग्य प्रगट होता है। आहाहा... !

अपना अवलोकन करे, उसे पर की ओर का वैराग्य उत्पन्न होता है। अपने अवलोकन की खबर नहीं और वैरागी हो गया, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दिये, संन्यासी हो गया, वह तो धर्म का संन्यासी है — धर्म का त्यागी (है), पर का त्यागी नहीं।

मुमुक्षु : पर का त्यागी तो अनादि का है।

उत्तर : अनादि से है तो अनादि रहता है। अपना स्वरूप अन्दर से राग से भी भिन्न, भेद से भी भिन्न (है) तो परपदार्थ अनन्त है, उससे भी (भिन्न है)। अनन्त का अभाव है। ऐसी एकरूप चीज (स्वयं है)। सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! यह तो अपूर्व बातें हैं।

ऐसी चीज का अन्तर में अवलोकन करने से पर की ओर के राग से रहित वैराग्य उछल पड़ता है। आहाहा... ! उसका नाम ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति कहने में आता है। धर्मी को ऐसी दो शक्ति होती हैं। अपना पूर्ण स्वरूप का ज्ञान और पर की ओर के राग से रहितपना। राग में रक्तपना है, उस राग से विरक्तपना। (अज्ञानी जीव) आत्मा से विरक्त है और राग में अनादि से रक्त है। (ज्ञानी) आत्मा में रक्त है और राग से विरक्त है। आहाहा... ! ऐसी बात है, बापू ! जन्म-मरण रहित चैतन्यचन्द्र की दृष्टि अनन्त काल में की नहीं। बाहर में त्याग किया। मैं हो गया, मैं त्यागी हो गया। आहाहा... !

मुमुक्षु : .... ?

उत्तर : कौन करे बाहर का त्याग ? राग का त्याग हो तो बाहर का त्याग तो है ही। त्याग करना पड़ता नहीं। पर का तो अपने में अभाव है ही, त्याग करना क्या ? अभाव है, उसका त्याग करना ? आहाहा.... !

मुमुक्षु : .... ?

उत्तर : वह तो राग, अन्दर दया, दान, व्रतादि का विकल्प उठता है, वह राग पर के आश्रय से उत्पन्न होता है। है अपने में, परन्तु उससे भी भिन्न होकर पूर्णानन्द वस्तु अस्ति तत्त्व, चैतन्यचन्द्र, शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शान्त अविकारी अकषायस्वभाव, जिसमें राग की अल्पता, मन्दराग का तो बिल्कुल अभाव (है), ऐसी चीज अन्दर है। आहाहा... ! उसके अवलोकन से वैराग्य उछल पड़ता है।

मुनि.... मुनि की विशेष बात ली है न ? **मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्र को निहारते हुए....** आहा...हा... ! समकिती गृहस्थ हो, धर्मी हो, परन्तु वे बारबार अन्तर में नहीं जा सकते। समझ में आया ? और मुनि हैं... आहा... ! वे तो बार-बार अन्दर आनन्दकन्द में जाते हैं। आनन्द जिसने धारण किया है, आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द जिसका धर्म है, धर्म अर्थात् जिसकी शक्ति-गुण है, ऐसे धर्म जो घुस गये। आहा...हा... ! (वे) **शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्र को...** (निहारते हैं)। यह तो अन्तिम में अन्तिम बात है। आहाहा.... ! भगवान शीतल शान्तरस स्वरूप है। पुण्य-पाप की विकृत अवस्था होती है, वह तो पर्याय-अवस्था-दशा में होती है; वस्तु में नहीं। आहा...हा... !

ऐसे भगवान आत्मा शीतल चन्द्र को निहारते हुए, बार-बार अन्तर में जाते हैं और उपयोग अन्दर में जम जाता है तो **अघाते ही नहीं,....** अघाते नहीं। गुजराती भाषा में 'धराते नहीं' (ऐसा कहते हैं)। पूर्ण पेट भरे बिना अघाते नहीं, ऐसा कहते हैं न ? आहा...हा... ! **अघाते ही नहीं,....** आहा...हा... ! परन्तु चैतन्यवस्तु क्या है — उसकी लोगों को खबर नहीं। बाहर का जानना-देखना, राग करे वह आत्मा, पर की दया पाले वह आत्मा, धूल में भी नहीं है, सुन न ! कौन पर की दया पाले ? पर की दया का भाव होता है, वह भी राग है, वह भी स्वरूप की हिंसा है। आहा...हा... !

स्वरूप जैसा है, पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन (है), उसके अवलोकन से सन्तों अघाते

www.vitragvani.com

नहीं। उसमें शान्ति इतनी आती है कि उसमें उसको पूर्ण शान्ति लेनी है तो थोड़ी शान्ति से अघाते नहीं। आहा...हा... ! अन्तर आनन्द आनन्द... आहा...हा... ! अरे... ! लेकिन यह बात कैसे बैठे ? भगवानस्वरूप अन्दर वस्तु है न ? वस्तु है, वह दु:खरूप नहीं हो सकती; वस्तु है वह विकृत नहीं हो सकती; वस्तु है वह अपूर्ण नहीं हो सकती; वस्तु है, उसे पर के आश्रय से ठिकाना नहीं हो सकता। आहाहा... !

एक सेकेण्ड के असंख्य वे भाग में अपना स्वरूप नित्यानन्द प्रभु, उग्ररूप से जिनकी दृष्टि और स्थिरता हुई है ऐसे मुनि, अन्तर का आनन्द लेने में अघाते नहीं। आहा...हा... ! बार-बार अतीन्द्रिय आनन्द लेने को अन्दर घुस जाते हैं। आहाहा... ! है ? **चैतन्यचन्द्र को निहारते हुए अघाते ही नहीं, थकते ही नहीं।** आहा...हा... ! जिसे अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का राग से पृथक् होकर अनुभव हुआ, उसका अनुभव करने में थकते नहीं। आहाहा... ! बार-बार अन्दर उपयोग जाता है। मुनि को छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता है, ऐसी शास्त्र भाषा है। छठवें से सातवें में एकदम अन्दर जाते हैं। आहा... ! पूर्णानन्द का अनुभव करने को जाते हैं,उसमें थकान नहीं, अघाते नहीं। आहा...हा... ! ऐसा आत्मा ! भूख लगे तो पेड़े खाये, मौसम्बी (का पानी) पिये।

मुमुक्षु : क्या करना ये समझ में नहीं आता।

उत्तर : यह करना। कभी किया ही नहीं। अज्ञान करके चार गति में भटकता है। आहाहा... ! यहाँ तो कहते हैं कि शास्त्र का ज्ञान किया, वह भी अज्ञान है। आत्मा का ज्ञान किया, वह ज्ञान है। आहाहा... ! सूक्ष्म बात (है), भाई ! आगम का ज्ञान होता है, शास्त्र में आता है। (परन्तु) स्वलक्ष्यी हो तो वास्तविक ज्ञान कहने में आता है। समझ में आया ? आगम अभ्यास। 'प्रवचनसार' में आता है न ? आगम... आता है न ? क्या भाषा है ? आगम चेष्टा, वह बड़ी ज्येष्ठ अवस्था है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह आगम चेष्टा कब (कहा जाये) ? अपने आत्मा के लक्ष्य से जो आगम का ज्ञान करते हैं, वह ज्येष्ठ (है), वह ज्येष्ठ है। आहा... ! मात्र शास्त्र का ज्ञान करना और बाहर का ज्ञान करना, वह तो नीचपने-हल्केपने की दशा है। आहाहा... !

एक डॉक्टर आते हैं न ? 'मुम्बई' के डॉक्टर थे न ? यहाँ आये थे। पहले 'मुम्बई'

www.vitragvani.com

गये थे न ? तब गाड़ी में नहीं बैठते थे। उनके घर चलकर गये थे। उसे बतलाने के लिये (गये थे)। डॉक्टर थे न ? नाम भूल गये। भंसाली, भंसाली डाक्टर था, बड़े डॉक्टर थे। एक बार गाड़ी लेकर यहाँ आये थे। यहाँ एक बार आये थे, भंसाली बड़े डॉक्टर थे। आँख बतलाने के लिये गये थे। बहुत अभ्यास किया था, बहुत पढ़ा था। संसार का अज्ञान (अभ्यास)। बड़े डॉक्टर थे। वहाँ गये थे, तब बहुत ध्यान रखा था। अरे...रे... ! बापू! तू कौन है ? कैसा है ? — उसका अवलोकन किये बिना तेरा सब अज्ञान और पाखण्ड है। आहा...हा... ! यहाँ गाड़ी लेकर आये थे। बड़ी गाड़ी लेकर यात्रा करने को गये थे न ? 'पालीताना'। आहा...हा... ! यात्रा में भी क्या है ? वह तो परवस्तु है। उसमें तो शुभराग हुआ। वह कोई निज अवलोकन से शान्ति होगी, ऐसा नहीं। आहा...हा... ! पर के अवलोकन में तो ज्ञान रूक जाता है, राग उत्पन्न होता है। एक डॉक्टर कहते थे न ? राग से भिन्न, राग से भिन्न। यहाँ तो राग से भिन्न बताते हैं, पहले ऐसा कहते थे न ? परन्तु अभी राग को जानना कठिन है। अन्दर विकल्प उत्पन्न हो कि मैं आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अभेद अखण्ड हूँ — ऐसा विकल्प उठता है, वह भी राग है। आहाहा... ! सूक्ष्म बात (है), भाई!

भगवान अस्ति तत्त्व है, वह तो वीतरागस्वरूप है। राग तो कृत्रिम, दशा में राग उत्पन्न होता है। जिसे कल्याण करना हो, (उसे) राग का लक्ष्य छोड़कर, रागरहित चैतन्य प्रभु है, उसे निहारना और अवलोकन करना और बारम्बार उसके आनन्द का स्वाद लेना। मुनि बारम्बार वहाँ उपयोग लगाते हैं। आहा...हा... ! नग्नपना हुआ और स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दिया, इसलिए मुनि हो गये, वह मुनि है ही नहीं। आहा...हा... !

मुनि तो अन्दर में से अखण्ड आनन्द का, अभेद का अनुभव करने में बारम्बार उपयोग लगाते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। नहीं तो मुनि तो एक... क्या कहते हैं ? ....होती है। जाति। 'शिहोर' में मुनि की एक जाति है। यहाँ 'शिहोर' है न ? कपोल, कपोल मुनि है। बहुत है, यहाँ आते थे। 'मुनि हाईस्कूल' है, मालूम है। शिहोर में (अन्दर) घुसते ही मुनि की दुकान है। मुनि उसका गोत्र है। जैसे आप का 'गांगुली' गोत्र है न ? नाम। वैसे पूरी जाति का 'मुनि' नाम है।

राग से भिन्न है। वह तो अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का वीतरागी कन्द है। आहाहा... !

www.vitragvani.com

चैतन्य चमत्कार! आहा... ! कभी अन्तर में उसका प्रेम किया नहीं। पर का प्रेम छोड़ा नहीं, स्व का प्रेम किया नहीं। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। वैसे जिसे शुभराग दया, दान का विकल्प है, उसका प्रेम है... प्रेमचन्दजी! ये आप के प्रेम ऊपर आया। जिसे शुभराग पर प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। और 'परमात्मप्रकाश' में तो वहाँ तक कहा 'योगीन्द्रदेव' मुनि सन्त दिगम्बर (कहते हैं), जिसे शुभराग का प्रेम है, उसे आत्मा हेय है। पूरे आत्मा का अनादर करता है। शुभराग का प्रेम करता है, वह पूरे आत्मा का अनादर करता है, हेय मानता है। आहा...हा... ! जिसे दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का भाव आया, वह शुभराग है, उस शुभराग का जिसे रस-प्रेम है, उसने सारा आत्मा रागरहित है, उसे हेय (किया), छोड़ दिया, अनादर किया। आहा... ! आहाहा... ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आत्मा का ज्ञान एकसाथ होता है, या धीरे-धीरे.... ?

उत्तर : समझ में आया तो धीरे-धीरे समझकर अन्दर में जाना, वह चीज है। वह चीज है, बाकी सब व्यर्थ है।

मुमुक्षु : पहले शुभराग करे बाद में होगा।

उत्तर : बिल्कुल नहीं। शुभराग करना तो राग का प्रेम होना, वह तो अज्ञान है। आहा....हा... !

मुमुक्षु : लोकसेवा तो करनी न ?

उत्तर : कौन लोकसेवा करते हैं ? डॉक्टर सेवा करते हैं ? पैसे के लिये करते हैं। धूल... धूल।

मुमुक्षु : नाम के लिये करता है।

उत्तर : नाम के लिये। ऐसा है, भगवान! आहाहा... !

भग प्रभु, भग अर्थात् आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द का वान भगवान आत्मा तो है अन्दर। आहाहा... ! भाई! तुझे मालूम नहीं। सम्प्रदाय में भी बात तो यही चले— क्रिया करो, व्रत करो। आहा...हा... ! पारसी में ऐसा आता है न (कि) हमेशा अग्नि रखनी ? है न ? हमें मालूम है। भाई! एक पारसी के गुरु थे न ? 'राजकोट'। घर पर पगला

www.vitragvani.com

(चरण) करवाये थे। गुरु थे। अब तो गुजर गये होंगे न ? रतिभाई ! व्याख्यान चलता था। वहाँ पारसी का था न ? मैंने उस दिन (पूछा था), अग्नि को हमेशा रखना उसका अर्थ क्या ? अग्नि हमेशा रखे उसका अर्थ — यह चैतन्य जो आनन्दकन्द है, उसे हमेशा दृष्टि में रखना, उसका नाम अग्नि को रखना है। बाहर में अग्नि तो धूल है। आहा...हा... ! हम जिस मकान में व्याख्यान करते थे। अगियारी... अगियारी। रहने का मकान था, वहाँ रहते थे। बेचारे आते थे (एक बार कहा), महाराज ! मेरे घर पधारिये। फिर गये थे। लेकिन यह बात समझने में कठिन पड़े। अग्नि रखे। भाई ! पारसी लोग हमेशा अग्नि (रखे), बुझने न दे। (उसे) कहा, उसका अर्थ ऐसा नहीं है। अग्नि तो परमाणु है। रजकण, धूल (है)। यह अग्नि-चैतन्य अग्नि जो अन्दर आनन्दकन्द प्रभु है, वह जागृत ज्योति हमेशा रखनी, उसका नाम अग्नि-चैतन्य की अग्नि रखना ऐसा कहने में आता है। आहाहा... ! अरे... ! दुनिया कहाँ-कहाँ फँस गयी है। धर्म के नाम पर बाहर में फँस गयी। आहाहा... !

मुमुक्षु : हिन्दुस्तान की वास्तविक विद्या तो आत्मज्ञान है !

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दुस्तान की वास्तविक विद्या तो आत्मज्ञान है। हिन्दुस्तान की वास्तविक विद्या आत्मज्ञान है। दूसरे कोई देश में यह है नहीं। आत्मज्ञान चीज ही दूसरी हो गयी। बाहर में यह करना, वह करना, सेवा करनी... आहाहा... ! देश सेवा, रोगी की सेवा, दवाखाना बनवाना, पाँच-पचीस लाख खर्च करना।

हम 'मद्रास' गये थे न ? 'मद्रास' में बड़ा दवाखाना था। खून लेना था। हम 'मद्रास' गये थे न ? एक बड़ा दवाखाना-अस्पताल है। उसमें एक ब्राह्मण है। क्या नाम है ? नानालालभाई, उसने वहाँ छह लाख रुपये दिये। उन्हें मालूम पड़ा कि महाराज पन्द्रह दिन में खून की जाँच करवाने को देते हैं। पन्द्रह दिन में एक बार लेते हैं, कितने प्रतिशत है देखने को। पन्द्रह दिन में देखते हैं। ...वहाँ हम गये थे तो वे नानालालभाई साथ में आये थे। छह लख रुपये उन्होंने अस्पताल में दिये थे। देखो तो शान्त, शान्त, ठण्डा मनुष्य। कुछ दिखे नहीं। छह लाख रुपये (दिये)। उसका पुत्र बहुत कमाता है तो छह लाख वहाँ अस्पताल में दिये। हमारा खून पन्द्रह दिन में जाँच करते हैं। हम गये थे तो बेचारे साथ में आये थे। बाद में हमारे साथ आये थे, हम जहाँ ठहरे थे वहाँ आये थे। बहुत नरम है।

www.vitragvani.com

नानालाल बड़े गृहस्थ हैं, देखो तो साधारण लगे। छह लाख रुपये अस्पताल में दिये थे। 'मद्रास'।

हम अभी 'मद्रास' गये थे। वहाँ है न? क्या कहते हैं? गवर्नर, गवर्नर है। उनका भाई यहाँ 'भावनगर' में डॉक्टर है। 'भावनगर' में है न? भाई पटवारी, उनके भाई गवर्नर हैं, 'मद्रास' में गवर्नर हैं। हमारे पास आये थे। (आकर कहा), महाराज! हमारे गवर्नर हॉल में पधारिये, हमें स्वागत करना है। आये थे, व्याख्यान में आये थे। जब हम प्लेन से उतरे, तब हमारी गाड़ी के पास आये थे। महाराज! हम व्याख्यान में आयेंगे, हमारे गवर्नर हॉल में आप को आना पड़ेगा। राज हॉल, राजभवन बड़ा हॉल है। हम गये थे। बहुत आग्रह था, बहुत आग्रह था। नरम आदमी है। है गवर्नर, अपनी भाषा में राज्यपाल (कहते हैं,) सरकारी भाषा में गवर्नर (कहते हैं), गुजराती भाषा में राजपाल कहने में आता है। बहुत नरम हैं। १३०० हिरन रखे हैं। हिरन समझते? मृग। बड़ा वन है। १३०० हिरन-मृग, खरगोश, लोमड़ी। वहाँ रखते हैं। राजभवन में हम गये थे। कहा, ये बाहर की चीज हैं। दया पाले, इसलिए धर्म हो गया, धूल में भी नहीं। पर का लक्ष्य है, वह तो सब राग है। आहा... ! बड़ी पदवी, लोग मान दे। आ...हा...हा... ! क्या नाम कहा? उनका नाम 'प्रभुदास' है। आदमी नरम है। कहा, बाहर की धूल में कुछ नहीं है। तेरे १३०० हिरन वन में पालते हो। वन में कोई शिकार करने नहीं आये। जहाँ राजभवन है, वहाँ आसपास कोई शिकार करने नहीं आये परन्तु वह तो बाहर की चीज है। आहाहा... ! तेरा लक्ष्य पर (पदार्थ) पर जाता है तो शुभराग है, परन्तु वह बन्ध का कारण है, जहर है। उससे भिन्न अन्दर भगवान चैतन्यप्रभु है।

वस्तु है या नहीं? कि वर्तमान दशा में राग आया और दशा जानने में आती है, क्या उतना ही है? राग और राग को वर्तमान ज्ञान जानता है। पर्याय-वर्तमान प्रगट दशा है न? बस! इतना ही आत्मा है? आत्मा तो ध्रुव त्रिकाली अन्दर है। आहा...हा... ! त्रिकाल रहनेवाला है। अवस्था है, वह तो बदलती हलचल है। ज्ञान की अवस्था जो कम-ज्यादा होती है, भूल जाते हैं, ख्याल होता है, वह तो उसकी दशा है-हालत है परन्तु मूल चीज है, उसमें तो हालत है नहीं। मूल चीज तो त्रिकाल ध्रुव आनन्दकन्द है। आहाहा... ! कहो,

www.vitragvani.com

डॉक्टर! ये भी 'खण्डवा' के डॉक्टर हैं। आहाहा... ! यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि तेरा डॉक्टर तू है। आहा... !

क्या कहा? **चैतन्यचन्द्र को निहारते हुए अघाते ही नहीं,....** आहाहा... ! और **थकते ही नहीं।** ९१ (बोल पूरा) हुआ।

रोगमूर्ति शरीर के रोग पौद्गलिक हैं, आत्मा से सर्वथा भिन्न हैं। संसाररूपी रोग आत्मा की पर्याय में हैं; 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्यभावना, यही मनन, यही मंथन, ऐसी ही स्थिर परिणति करने से संसार रोग का नाश होता है॥ ९२॥

९२। **रोगमूर्ति....** अब डॉक्टर आ आया। **रोगमूर्ति शरीर....** यह शरीर तो रोग की मूर्ति है, वेदना की मूर्ति है। शास्त्र में तो ऐसा चला है, यह एक रोम है न? रोम। यहाँ तक को एक रोम कहने में आता है। एक रोम समझे? २४ रोम का गज। इस शरीर के एक रोम में ९६ रोग हैं। क्या कहा?

'श्रीमद् राजचन्द्र' तो कहते हैं कि यह शरीर वेदना की मूर्ति है। 'श्रीमद् राजचन्द्र' हुए हैं, जिनको पूर्व का जातिस्मरण था, पूर्व भव का ज्ञान था। छोटी उम्र में ३३ वर्ष में देह छूट गया। बहुत क्षयोपशम था, बहुत। 'मुम्बई' में जवाहरात का लाखों का धन्धा करते थे, परन्तु अन्दर भिन्न (पड़ गये थे), अन्दर भिन्न-निर्लेप रहते थे। राग की क्रिया मेरी नहीं, मैं तो ज्ञान-आनन्द हूँ। वे एकबार ऐसा कहते थे, शरीर तो वेदना की मूर्ति है। भगवान आनन्द की मूर्ति है तो यह (शरीर) वेदना-रोग की मूर्ति है। एक रोम में ९६ रोग!

'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, एक रोम में ९६ रोग हैं तो पूरे शरीर में कितने होंगे? उसका जवाब पूछते हैं। 'मोक्षप्राभृत' में है। एक बार गिना था। अपने तो याद नहीं रहता। पाँच करोड़, डॉक्टर! इस शरीर में पाँच करोड़ रोग हैं। 'अष्ट पाहुड़' में है, उसमें है। यहाँ तो हजारों, लाखों शास्त्र देखे हैं। डॉक्टर तो कुछ रोग को जाने। अभी कोई कहता

www.vitragvani.com

था न ? किसी का आया था न ? अभी कोई कहता था कि क्या रोग है, मालूम नहीं पड़ता। कल आया था।

हुकमचन्दजी पण्डित हैं 'जयपुर' के बड़े विद्वान हैं, ४१ साल की उम्र है। लेकिन ऐसा कोई रोग हो गया। लोगों को शंका हो गयी कि हृदय में रोग है ? 'जयपुर' के बड़े डॉक्टर ने बहुत जाँच की। हृदयरोग नहीं है लेकिन क्या रोग है, इसकी हमें खबर नहीं पड़ती। बहुत होशियार हैं। ४१ वर्ष की उम्र है। ४० + १। दिमाग इतना है कि पन्द्रह हजार लड़कों को पढ़ाते हैं, पास करते हैं और बहुत शांत हैं। विकास बहुत है। दूसरे पण्डित तो हैं लेकिन ये पण्डित कोई दूसरे प्रकार के हैं। फिर भी उसका घमण्ड नहीं-अभिमान नहीं। बहुत शान्त हैं। यहाँ बहुत आते हैं, अभी आयेंगे। यहाँ पर शिक्षण-शिविर चलेगा। श्रावण सुद १२ से। एक-डेढ़ महीना है। २० दिन का शिक्षण-शिविर है। वे आयेंगे, लड़के आयेंगे। उसका दर्द है, उसे डॉक्टर ने बहुत जाँच की। हृदय की जाँच करते हैं उसे क्या कहते हैं ? (कार्डियोग्राम)। बहुत डॉक्टर ने देखा लेकिन कुछ मालूम नहीं पड़ा। रोग है, लेकिन हमें कुछ पता नहीं चलता। आहाहा.... ! 'जयपुर' के बड़े डॉक्टर अनुमान करके करे। आहाहा.... !

यहाँ तो कहते हैं, **रोगमूर्ति शरीर के....** आहाहा... ! **रोग पौद्‌गलिक हैं,....** रोग तो पुद्‌गल का है, इस शरीर का है। आत्मा में वह रोग है नहीं। बराबर है ? यह रोग आत्मा में नहीं, पुद्‌गल में-जड़ में है। आहाहा... ! **आत्मा से सर्वथा भिन्न है।** शरीर में रोग पौद्‌गलिक है। आहाहा... ! हार्ट, बुखार, केन्सर... आहा...हा... ! सब पुद्‌गल जड़ का रोग है। शरीर का रोग पुद्‌गल का रोग है। प्रभु ! तेरे आत्मा से तो सर्वथा भिन्न है, प्रभु ! आहाहा... ! वह रोग शरीर का है, पुद्‌गल का है। प्रभु ! तुम पुद्‌गल नहीं, तुम तो अन्दर चैतन्य हो न ! जानन स्वभाव का पिण्ड हो न ! तेरे पुद्‌गल के रोग से तुम सर्वथा भिन्न हो। आहाहा... ! कथंचित् भिन्न है ऐसा नहीं; सर्वथा भिन्न (है)। वह तो जड़ है, तेरी चीज तो अरूपी भगवान (है)। यह तो रूपी है, रंग, रस, स्पर्श दिखते हैं। आत्मा में तो रंग, स्पर्श है नहीं। रंग, गंध, रस, स्पर्श है ही नहीं। वह तो अरूपी है। आहा...हा... ! बराबर है ? नेमचन्दभाई ! आहा...हा... !

www.vitragvani.com

अरूपी भगवान में शरीर के जितने रोग हैं, वह अन्तर में-आत्मा में है ही नहीं। आहा...हा...! तब कौन-सा रोग आत्मा में है? 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं' आत्मा अखण्डानन्द है, उसकी प्रतीत नहीं, श्रद्धा नहीं और राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, मेरी प्रशंसा बहुत होती है, मैं सब से आगे बढ़ गया, ऐसी मान्यता भ्रम-रोग है, भ्रान्ति का रोग है। आहा...हा...! शरीर का रोग उसमें है नहीं। 'आत्मभ्रान्ति' सम रोग नहीं 'श्रीमद् राजचन्द्र' (को) बहुत भव का जातिस्मरण था बहुत भव का। वे कहते हैं,

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान,
गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार-ध्यान।

आत्मा आनन्द (स्वरूप है, उसका) विचार और ध्यान, उसका औषध है। यहाँ तो दुनिया से अलग चीज है। दुनिया में सब की खबर है। सब धर्म, सब शास्त्र देखे हैं। अब तो ८९ वर्ष हुए। डॉक्टर आये थे। 'घाटकोपर' ८९ जन्म जयन्ति (थी)। जन्म के ८९, हों! माता के पेट में आये, वह सवा नव महीने यहाँ के हैं। यहाँ का आयुष्य है न? तो तो ८९ पूरे हो गये। अषाढ़ वद में ८९ पूरे हो जायेंगे। माता के पेट में सवा नव महीने (रहे), वह आयुष्य यहाँ का है न? यहाँ तो जन्म से गिनते हैं। शास्त्रकार तो उससे गिनते हैं। जिस समय माता के पेट में शरीर हुआ, शरीर पहले समय हुआ। वीर्य और ऋतु के बिन्दु में जीव आता है। इतना शरीर होता है। बाद में क्रम से सात दिन, चौदह दिन में बढ़ता है। बाकी पहले तो माता के ऋतु का बिन्दु और पिता का वीर्य, उस बिन्दु में पहले जीव आता है। उसमें शरीर छोटा हो जाता है। बाद में बढ़कर जड़ की पाँच इन्द्रियाँ खिल जाती हैं। आहा...हा...!

जितने रोग पुद्गल के शरीर में है, उस रोग की गन्ध आत्मा में है नहीं। आहाहा...! मैं रोगी हूँ, यह बात है ही नहीं। राजेन्द्रभाई नहीं आये है न? नहीं आये। कमजोरी है। राजेन्द्र डॉक्टर है न? कमजोरी बहुत है। उन्हें कहा था कि 'गांगुली' (डॉक्टर) आये हैं। उनका पुत्र आया था, कहता था, मिलने आयेंगे। राजेन्द्र है न, 'घाटकोपर' के लुहाना है। होमियोपेथी (डॉक्टर) हैं। अभी आये हैं। महीने-डेढ महीने से... थे। शरीर निर्बल हो गया है। उनका पुत्र आया था। 'गांगुली' आये हैं तो मिलने आयेंगे, ऐसा कहता था। अभी यहाँ

www.vitragvani.com

से हम लोग चार बजे जायेंगे ना ? तब आयेंगे तो। व्याख्यान के बाद चार बजे 'बहिन' के पास बैठना है ना ? आ...हा... ! वे भी बीमार है, शरीर निर्बल है। आहा...हा... ! डॉक्टर का भी देह छूट जाता है।

यहाँ के डॉक्टर का मालूम है न ? हेमन्तकुमार, हेमन्तकुमार। डॉक्टर था। किसी का ऑपरेशन करते थे। 'मुझे कुछ होता है' (ऐसा कहकर) कुर्सी पर बैठे (और) देह छूट गया। देह की स्थिति जो होनेवाली है, अरे... ! प्रभु ! उसे कौन रोके ? आ...हा... ! डॉक्टर, हों ! हेमन्तकुमार बड़े डॉक्टर। यहाँ आये थे, दो-तीन बार आये थे। व्याख्यान में आये थे। एक बार दाँत के लिये बुलाया था। आये थे। एक क्षण में देह छूट गया। कुर्सी पर बैठे और देह छूट गया। रोग तो देह का है और देह छूट जाता है। आत्मा में रोग नहीं और आत्मा छूटता नहीं, देह छूट जाता है। आत्मा अपने से छूट जाता है ? आहा...हा... ! अपनी चीज तो नित्य है, वह तो हमेशा रहनेवाली अपनी चीज है। शरीर छूट जाता है। शरीर का संयोग (छूटता है)। शरीर के संयोग का जन्म कहते हैं, शरीर के वियोग को मरण करते हैं। भगवान आत्मा का जन्म होता है और मरण होता है — ऐसा तीन काल में है नहीं। आहा...हा... ! वह तो चैतन्यतत्त्व ज्ञानप्रकाश अन्दर सूर्य (है)। आहा...हा... !

(शरीर के रोग) **आत्म से सर्वथा भिन्न हैं। संसाररूपी रोग आत्मा की पर्याय में हैं;....** देखो ! क्या कहते हैं ? **संसाररूपी रोग....** (अर्थात्) ये राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, मैं पर का कर सकता हूँ, पर को मदद कर सकता हूँ, पर से मेरे में कुछ सुखी होने की चीज मिलती है — ऐसी जो भ्रान्ति, वह रोग, आत्मा की पर्याय में है, दशा में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव है परन्तु दशा जो हलचल करती है, विचार करते हैं, विचार बदलते हैं न ? विचार बदलते हैं, उसमें रोग है। आहा...हा... ! फुरसत कहाँ है ? आ..हा... ! निवृत्ति लेकर....

ऐसा मनुष्यपना मिला उसमें भी आत्मा क्या चीज है, उसकी पहचान नहीं की और उसकी कीमत नहीं की (तो) मनुष्यपना मिला, वह नहीं मिलने के बराबर है। आहा...हा... ! मनुष्य — 'न्यायते इति मनुष्य'। ऐसा शब्द शास्त्र में है। अपने को ज्ञायक जाने, उसे मनुष्य कहते हैं। बाकी तो अपने के नहीं जाने, वे सब तो पशु तुल्य है। आता है न ? मृगा चरंति।

www.vitragvani.com

'मनुष्यरूपेण मृगा चरंति।' आहा...हा...! भले ही अरबोंपति हो और बड़ा कुटुम्ब २००-५०० आदमी हो, परन्तु वह मृग जैसा है। मृग की नाभि में कस्तूरी, उस कस्तूरी की कीमत मृग को है नहीं। वैसे भगवान आत्मा देह से और राग से भिन्न अन्दर आनन्द है। जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी है, ऐसे अन्दर आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान आत्मा का है, उसकी उसे खबर नहीं। आया न?

संसाररूपी रोग आत्मा की पर्याय में हैं;.... (अर्थात्) भ्रान्ति। **मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ।** आहा...हा...! पर्याय अर्थात् अवस्था में भ्रान्ति हो, रोग हो, मैं राग हूँ — ऐसा रोग; परन्तु वस्तु में कुछ है नहीं। वस्तु ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द प्रभु, नित्यानन्द अविनाशी सहज स्वरूप, सहजात्म स्वरूप, स्वभाविक स्वरूप ज्ञायकमूर्ति मैं हूँ। मेरी चीज में तो, पर्याय में रोग है, वह मेरी चीज में है नहीं। शरीर का रोग तो मेरे में नहीं, परन्तु मेरी पर्याय में भ्रान्ति है — राग वह सुख है, पुण्य सुख है, राग मेरी चीज है — ऐसी भ्रान्ति है, वह पर्याय-दशा में रोग है, त्रिकाली चीज में नहीं। आहा...! पर्याय में है तो बदलती पर्याय में नाश हो जाता है; वस्तु में हो तो कभी नाश नहीं हो। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! आहा...!

ऐसी चैतन्यभावना.... 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्यभावना,.... चैतन्यभावना। जानन स्वभाव की एकाग्रता। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध। शुद्धस्वरूप का शुद्ध उपयोग। आहा...हा...! शुभ और अशुभराग तो अशुद्ध उपयोग है, वह तो पर्याय में है-अवस्था में है। मैं तो वस्तु शुद्ध ज्ञायक चैतन्यमूर्ति हूँ। आहा...हा..! वह तो चैतन्यभावना (है)। ऐसी चैतन्य ज्ञायक की भावना-एकाग्रता (होना), उसका नाम निरोगता और धर्म है। आहा...हा...! दया, दान के राग की क्रिया तो धर्म से विरुद्ध है। आहाहा...! ऐसा है, भाई! फिर तो लोग बातें करे न? 'सोनगढ़' एकान्त कहता है, एकान्त है... बात तो सत्य है, बापू! भाई! तुझे मालूम नहीं। प्रभु! तुम अन्दर कितने सामर्थ्यवाले तत्त्व हो, तुझमें कितनी ईश्वरता और प्रभुता है और तुझ में कितना आनन्द और ज्ञान भरा है प्रभु! तुझे मालूम नहीं; इसलिए तू यहाँ की बात को एकान्त कहता है। कहे... कहे। 'जामें जितनी बुद्धि है, इतनो दिये बताय, और कहाँ से लाय, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये।' आहाहा...! दुनिया पागल कहे, ऐसी चीज लगती है। पागल, ज्ञानी को पागल कहे, ज्ञानी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दुनिया को पागल मानते है। आहा...हा...! अरे...! भगवान! चैतन्यस्वरूप तुम हो ना! राग और पुण्य और राग का फल सामग्री को अपनी मानता है, वह पागल है। आहाहा....!

ऐसी चैतन्यभावना, यही मनन,.... उसका ही मनन करना। मैं ज्ञायक चैतन्य त्रिकाल की अन्तर एकाग्रता, उसका मनन, **यही मंथन,....** वही मंथन। अन्तर में एकाग्रता की मंथन दशा। आहा...हा...! **ऐसी ही स्थिर परिणति करने से....** ऐसी अन्तर में एकाग्रतारूपी स्थिर दशा करने से **संसाररोग का नाश होता है**। आहा...हा...! भ्रान्ति (रूपी) रोग का नाश अन्तर स्वरूप के आश्रय से होता है। तब शरीर के रोग का नाश भी उसके कारण से होता है। शरीर ही मिलता नहीं, फिर रोग कहाँ? आहा....!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता** — प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ शुक्ल-४, रविवार, दिनाङ्क ०८-०७-१९७८
वचनामृत- ९३-९४ प्रवचन-३२

ज्ञानी को दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है, भेदज्ञान की धारा सतत बहती है॥ ९३॥

'वचनामृत' का ९३ बोल है। क्या कहते हैं? तरानवें। **ज्ञानी की दृष्टि....** सूक्ष्म बात है, भाई! यह आत्मा जो है न, आत्मा? वह परवस्तु से तो भिन्न है परन्तु अपनी चीज में तीन प्रकार है। (१) द्रव्यरूप (अर्थात्) वस्तु; (२) गुणरूप (अर्थात्) उसकी शक्ति; (३) पर्यायरूप (अर्थात्) अवस्था। समझ में आता है? अभ्यास नहीं है। भाई! यह बात तो ऐसी है। द्रव्य-गुण और पर्याय तीन होकर आत्मा है। परवस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीर, कर्म, परवस्तु अपने से भिन्न है, वह बदलती है और टिकती है उसके कारण से।

यह आत्मा जो है, एक भिन्न आत्मा (लो) तो आत्मा में तीन प्रकार (हैं)। हमेशा रहनेवाली चीज को द्रव्य कहते हैं, वस्तु कहते हैं, सामान्य कहते हैं; और उसमें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण हैं, उनको विशेष कहते हैं। द्रव्य जो सामान्य एकरूप है, उसमें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि गुण हैं, वह विशेषण-गुण (हैं); और उसकी वर्तमान अवस्था-हालत है, उस हालत को पर्याय कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य की दृष्टि तो छोड़, क्योंकि उसमें आत्मा है नहीं। आत्मा है, वह अपनी द्रव्य-वस्तु में, अपने गुण में और अपनी पर्याय में (है) परन्तु तीनों में से दृष्टि, पर्याय पर लगेगी, तब तक अपनी चीज जो त्रिकाल है वह ध्यान में, अनुभव में,

www.vitragvani.com

आश्रय करने में नहीं आती है। आहा...हा... ! जो वस्तु-त्रिकाल ध्रुव वस्तु है, उसमें भले गुण हो, उसकी भी दृष्टि छोड़कर। उसकी पर्याय हो, अवस्था-बदलती दशा हो परन्तु उसमें सम्पूर्ण चीज आती नहीं। आहाहा... ! इसलिए सम्पूर्ण चीज जो त्रिकाल है, (उस पर दृष्टि दे)।

ज्ञानी की दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है,.... आ...हा... ! धर्मी को धर्म की दृष्टि में, धर्मी अर्थात् आत्मा उसकी धर्मदृष्टि में धर्मी जो त्रिकाल सामान्य ध्रुव एकरूप है, वह उसकी दृष्टि में रहता है। आहा...हा.. ! अपने द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है उसकी खबर नहीं। वस्तु क्या है और वस्तु में शक्तियाँ क्या है, शक्ति-कायम रहनेवाली चीज और वर्तमान में बदलती दशा क्या है, पलटती अवस्था क्या है—इन तीनों की खबर नहीं। आहा...हा... !

यहाँ तो धर्मी-धर्म करनेवाले को, उसे धर्म होता है कि जिसकी दृष्टि में ज्ञानी के ज्ञान में अपनी त्रिकाल की द्रव्यदृष्टि होती है। आहा...हा... ! त्रिकाली द्रव्य में जिसकी दृष्टि स्थिर रहती है। आहा...हा... ! कहो, समझ में आता है या नहीं ? ज्ञानी को अर्थात् धर्मी को, जिसे धर्म हुआ है — ऐसे धर्मी को, **दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है,....** आहा...हा... ! उसमें गुण है, उस विशेष का भी लक्ष्य छोड़कर, एकरूप त्रिकाली द्रव्य जो सामान्य है, भेदरहित, विशेषरहित, पर्यायरहित — ऐसी दृष्टि धर्मी की द्रव्यासामान्य पर ही (रहती है)। एकान्त नहीं ? पण्डितजी (हो जाता) ? 'ही' (कहने से) तो एकान्त हो जाता है। दृष्टि में दो आना चाहिये। सामान्य भी दृष्टि में आना चाहिये और विशेष भी दृष्टि में आना चाहिये, तो अनेकान्त दृष्टि (है), ऐसा है नहीं। आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्त अनन्त काल, अनन्त अनन्त काल गया परन्तु मूल चीज क्या है और मूल चीज में शक्तियाँ कैसी, कितनी है और उसकी दशा में क्या हालत होती है (- उसकी खबर नहीं)।

ये हालत हो, विशेष भी हो परन्तु धर्मी की दृष्टि माल पर है। त्रिकाली द्रव्य में जो माल भरा है, उस पर दृष्टि है। आहा...हा... ! यह क्या ? द्रव्यसामान्य। धर्मी की दृष्टि द्रव्यसामान्य (पर है, ऐसा कहा तो) द्रव्यसामान्य अर्थात् क्या ? वस्तु जो है, वह एकरूप त्रिकाल है। जिसमें गुणभेद और पर्यायभेद भी नहीं। ऐसी द्रव्यसामान्य जो एक वस्तु

www.vitragvani.com

त्रिकाल आत्मा (है), उस पर दृष्टि धर्मी की है। है? **द्रव्यसामान्य पर ही....** धर्मी की दृष्टि ध्रुव पर ही। दृष्टि पर्याय है। ऐसी बातें (हैं)। सेवा करनी, दवाई दे, उसके पैसे नहीं लेना, सेवा करना, उसमें कुछ धर्म है या नहीं? शुभराग है।

यहाँ तो कहते हैं कि राग भी अपनी दृष्टि का विषय नहीं और राग को जानने की वर्तमान ज्ञान की पर्याय है, वह भी सम्यग्दृष्टि का-धर्मी का वह विषय नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? अन्तर चीज जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, द्रव्यभाव, सामान्यभाव, एकरूप भाव... आहा...हा...! ऐसे धर्मी की दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है। आहा...हा..! उसका अर्थ कि द्रव्यसामान्य पर दृष्टि है तो कभी विशेष पर भी दृष्टि हो जाये या पर्याय पर भी दृष्टि (हो जाये), ऐसा है नहीं। आहा...हा...! धर्म की ऐसी बातें। बापू! अपूर्व बातें हैं न, प्रभु! पूर्व में अनन्त काल में किया नहीं। अनन्त काल में त्यागी भी अनन्त बार हुआ, साधु-त्यागी साधु (हुआ) किन्तु चीज क्या है, (उसे) अन्तर दृष्टि में लेने का प्रयास ही किया नहीं। आहा...हा...!

वस्तु... वस्तु अर्थात् पदार्थ। तो वस्तु क्यों कहा? कि जिसमें अनन्त गुण की बस्ती बसी है, रही है। बादशाह भगवान आत्मा, उसकी अन्दर शक्ति-बस्ती में अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनन्त (गुण हैं)। फिर भी धर्मी की दृष्टि द्रव्यसामान्यरूप जो एकरूप है, उस पर स्थिर रहती है। उस पर दृष्टि है और उसरूप स्थिर रहती है, क्योंकि द्रव्यसामान्य एकरूप है तो दृष्टि वहाँ रखने से दृष्टि भी स्थिर रहती है। स्थिर चीज जो त्रिकाल है... ऐसा कैसा उपदेश? स्थिर चीज जो ध्रुव है, नित्यानन्द प्रभु ध्रुव सामान्य है, उस पर दृष्टि होने से दृष्टि हमेशा सामान्य पर स्थिर रहती है। समझ में आया? आहा...हा...! आपके दवाखाने में सुनने मिले नहीं, धर्म में सुनने जाये तो अभी ऐसी बात है नहीं। वर्तमान में तो सब विपरीतता है। कुछ भान नहीं। आहा...हा...! इसके लिये अभ्यास चाहिये, भाई! अनन्त काल का अनभ्यास (है)। ओहो...हो...! शास्त्रज्ञान का भी अभ्यास किया। परन्तु ज्ञान में जो कहने की चीज है, त्रिकाली वस्तु जो सामान्य है, जिसमें अनन्त शक्ति का एकरूप है (उसका लक्ष्य किया नहीं)। आ...हा...!

एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं और गुणभेद भी जिसमें नहीं। शक्तिवान द्रव्य

www.vitragvani.com

और शक्तिवान की शक्ति — ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहा...हा... ! ऐसी सूक्ष्म बात है। प्रभु ! क्या हो ? भाई ! अरे... ! जन्म-मरण करते हुए अनन्त काल हुआ, भाई ! उसे अन्तर क्या चीज है — वह पहले तो ख्याल में आना मुश्किल है। पश्चात् ख्याल में आने के बाद भी दृष्टि को सामान्य में अन्दर लगाना। आहा...हा... ! शशीभाई ! भगवान आत्मा है, सब देह में प्रभु विराजते हैं। भगवानस्वरूप ही अन्दर है। जिसमें कभी, अल्पता, विपरीतता बिल्कुल नहीं, ऐसी चीज अन्दर अखण्डानन्द प्रभु है। 'पूर्णम् इदम्।' पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण। जिसे द्रव्य कहें, जिसे सामान्य कहें, जिसे ध्रुव कहें, जिसे एकरूप वस्तु कहें... आहा...हा... ! ऐसी चीज पर धर्मी की दृष्टि... वस्तु स्थिर है, एकरूप है, सामान्य है तो उसकी दृष्टि भी वहाँ स्थिर हो जायेगी। आहा...हा... ! पर्याय बदलती है, गुणभेद है तो उसमें दृष्टि करने से दृष्टि स्थिर नहीं रह सकती। आहा...हा... !

प्रथम धर्म की शुरुआत की दृष्टि, पहले नम्बर की (दृष्टि)। दूसरा और तीसरा नम्बर बाद में। आहा... ! धर्म (अर्थात्) सम्यग्दर्शन, धर्म (अर्थात्) सम्यग्ज्ञान, धर्म (अर्थात्) स्वरूप के आचरणरूप चारित्र। ऐसा धर्म करनेवाले जीव को, धर्मी जो त्रिकाली चीज है, उसमें उसकी दृष्टि स्थिर रहती है। आहा...हा... ! कभी ध्यान में ध्रुव से—द्रव्य से कभी दृष्टि हटती नहीं और द्रव्य से हट जाये तो सम्यग्दर्शन रहता नहीं। भाषा तो सादी है किन्तु अभ्यास में आये नहीं, डॉक्टर के अभ्यास में आये नहीं। डॉक्टर ! यह अभ्यास आता है ? तुम्हारे डॉक्टर (के अभ्यास में) कहाँ कुछ आता है ? वकालत में आता नहीं। रामजीभाई बड़े वकील थे। ३५ साल पहले पाँच घण्टे कोर्ट में जाकर २०० रुपये लेते थे। धूल ! वह ज्ञान, सब कुज्ञान था। ऐसा तो स्वयं कहते हैं। बापू ! जो हथियार अपना गला काटे, वह हथियार किस काम का ? वह ज्ञान-पर का ज्ञान अपने को नुकसान करनेवाला है। आहा...हा... ! अपना ज्ञान क्या ? एकरूप द्रव्यसामान्य ध्रुव पड़ा है। अरे... ! भाई ! यह कोई बात है ? आहा...हा... ! समझ में आता है ? भाई प्रेमचन्दजी ! यह समझना पड़ेगा, हाँ ! बाहर में-धूल में कुछ नहीं है। लोग मनवा लेंगे कि तुम व्रत करो, तप करो। उसमें मर जाओगे। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु... ! यह 'बहिन' की वाणी है। प्रभु कहते हैं, वही वाणी

www.vitragvani.com

उनकी है। आहा... ! वह चित्रभानु एक श्वेताम्बर साधु थे न ? बहुत सुधरा हुआ साधु था, इसलिए फिर 'अमेरिका' चला गया, वहाँ शादी की है। चित्रभानु 'अमेरिका' में (वह साधु) है। बड़ी सभा करता है। वह यहाँ 'पालीताना' आये थे। उनके हाथ में यह पुस्तक आया। 'पालीताना' के फोटोग्राफर आये थे ना ? उनको एक पुस्तक दिया था। उनके पुत्र के पास यह पुस्तक देखा। ओ...हो... ! ऐसे पढ़ा-लिखा है। सब क्रियाकाण्ड में भ्रष्ट है, साधु नाम धारण करके 'अमेरिका' में शादी की है। लेकिन जब यह पुस्तक देखा तो ऐसा खुश हुआ... ओ...हो... ! 'पालीताना' के फोटोग्राफर को पुस्तक दिया था। उनके सब पुत्र भी (वहीं करते हैं)। उनको यह पुस्तक दिया था तो (साधु ने) पुस्तक देखा तो... ओ...हो...हो... ! यह (पुस्तक) मुझे दे दो, मैं 'अमेरिका' ले जाऊँगा। भले स्त्री का दोष हुआ किन्तु वस्तु क्या है, उसे समझ में उसे कुछ महिमा तो आनी चाहिए न ! आहा...हा... ! कठिन बात है।

'माघनंदी' नाम के एक सच्चे मुनि थे। 'माघनंदी' न ? बहुत आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी, आनन्द में रमनेवाले। यहाँ तो अभी सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। द्रव्यसामान्य पर ज्ञानी की दृष्टि होती है। वस्तु स्थिर है तो दृष्टि भी वहाँ स्थिर रह जाती है। इसके उपरान्त मुनिपना अलग चीज है। मुनिपना तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द.... इसमें आयेगा — **प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिंग है**। ९५ में आयेगा। क्या कहते हैं ? मुनि तो बापू ! वर्तमान में तो 'हिन्दुस्तान' में है नहीं। मुनि का तो लक्षण क्या है ? प्रभु ! यहाँ तो ९५ में आया है। प्रचुर स्वसंवेदन। अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द की बहुत रमणता। अतीन्द्रिय आनन्द जो स्वभाव में है, उसकी शक्ति में से व्यक्तता-प्रगटता (होना)। 'समयसार' की पाँचवीं गाथा का यह शब्द है। प्रचुर स्वसंवेदन।

आत्मा का आनन्द, धर्मी को प्रथम भूमिका में भी द्रव्य सामान्य पर दृष्टि करने से शक्ति में से अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक वेदन आता है। तब से तो वह धर्मी-धर्म की शुरुआत करनेवाला कहने में आता है। बाद में मुनि को तो प्रचुर स्वसंवेदन है। ओ...हो...हो... ! अन्दर आत्मा का-स्व का सं आनन्द का वेदन (आता है)। प्रचुर-बहुत अतीन्द्रिय आननद का वेदन (होना), मुनिपना है। समझ में आया ?

www.vitragvani.com

यहाँ तो अभी कहते हैं, बापू! मुनिपना तो कोई अलौकिक चीज है। किन्तु उसके पहले जो सम्यग्दर्शन (होता है), जो मुनिपना का-चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन है। इस कारण बिना चारित्र होता नहीं। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन अर्थात् दृष्टि, सत्य दृष्टि। सत्यदृष्टिवन्त की सत्य दृष्टि कहाँ है उसमें? जो त्रिकाली सत्य वस्तु है, त्रिकाली सत्य, (उस पर है)। आहा...हा...! त्रिकाली प्रभु सच्चिदानन्द, त्रिकाली सत् है... है.. है... जिसमें विशेष-भेद भी नहीं। एकरूप त्रिकाल सामान्य द्रव्यस्वभाव (है), उस पर धर्मी की दृष्टि स्थिर रहती है। आहा...हा...! दृष्टि कभी वहाँ से हटती नहीं। आ...हा...! शब्द थोड़े हैं परन्तु भाव बहुत हैं। आ...हा...!

धर्मी की दृष्टि,... ज्ञानी अर्थात् धर्मी, **द्रव्यसामान्य पर ही....** (अर्थात्) त्रिकाली ज्ञायकभाव पर ही दृष्टि **स्थिर रहती है,....** आहा...हा...! और **भेदज्ञान की धारा सतत बहती है**। आहा...हा...! धर्मी जीव को, राग से मेरी चीज पूर्णानन्द भिन्न है — ऐसे भेदज्ञान की धारा सतत रहती है। भेद करना पड़ता नहीं। आहा...हा...! चैतन्य ज्ञायक आनन्द प्रभु और राग का एक कण — चाहे तो महाव्रत का हो, चाहे तो ब्रह्मचर्य पालने का, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह भी एक विकल्प, राग है। मुझे शादी नहीं करनी, मुझे बाल ब्रह्मचारी रहना है, वह भी एक विकल्प, राग है। आहा...हा...! राग से भी अन्दर भेदज्ञान हुआ है। मैं त्रिकली शुद्ध वीतरागस्वरूप हूँ — ऐसा राग से भेदज्ञान हुआ, ऐसी भेदज्ञानधारा, भेदज्ञान की धारा सतत रहती है। धर्मी को भेदज्ञान की धारा निरन्तर रहती है। सतत् अर्थात् निरन्तर रहती है। आहा...हा...!

प्रथम जिसने पर्याय की दृष्टि छोड़कर,... राग की दृष्टि तो स्थूल है, उसे तो छोड़ी परन्तु वर्तमान पर्याय-अवस्था से दृष्टि छोड़कर त्रिकाली द्रव्यसामान्य में दृष्टि लगाई (तो वह) स्थिर रहती है। आहा...हा...! और भेदज्ञान की धारा सतत बहती है। डेढ़ पंक्ति में तो बहुत भरा है। कहो, डॉक्टर! यह पढ़ा है या नहीं? आप को तो दिया है। पढ़ा होगा। शुरुआत करना है। आहा...!

मुमुक्षु - एक बार पढ़े तो कुछ समझ में आये नहीं।

उत्तर - बहन का नाम क्या है रमेशचन्द के घर है वे? उषाबेन! उनको तो बहुत

www.vitragvani.com

रस / प्रेम है। रमेश नाम है न भाई! बड़ा नहीं वह ? सर्वोदयी कान्तिभाई, उन कान्तिभाई का भतीजा है, उनकी बहिन (पत्नी) है न, उन्हें बहुत प्रेम है। सभी बहिनों को प्रेम है। इन्हें तो बहुत है। बापू! ये क्या चीज है, उसका अभ्यास भी नहीं। क्या चीज ? कैसे प्रगट होती है ? और कैसी चीज है, और कैसी चीज ऊपर कैसे दृष्टि करनी ? दृष्टि क्या है ? और कैसी चीज है ? उसका ज्ञान ही नहीं तो सामान्य पर दृष्टि स्थिर रहती है, उसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? आहा...हा...!

धर्मी ने नजरबंधी (की है), उन्होंने नजर बाँध दी है। आहा...! त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकभाव ध्रुवभाव सामान्यभाव पर नजर बाँध दी है, नजर बंधी है। आहा...हा...! उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन की-धर्म की दशा कहने में आता है; और उन्हें राग का विकल्प आता है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो तब तक आता है, परन्तु भेदज्ञान सतत् रहता है। उससे मैं भिन्न हूँ, ऐसा अन्तर में भेदज्ञान (सतत रहता है)। एकत्वबुद्धि में राग और मैं एक था (ऐसी मान्यता थी), तब तक तो मिथ्यादृष्टि था। आहाहा...! परन्तु राग से भिन्न होकर द्रव्यसामान्य पर दृष्टि दी तो राग से भेदज्ञान हो गया तो वह भेदज्ञान निरन्तर रहता है। आहा...हा...! समझ में आया ?

मुमुक्षु - दृष्टि और भेदज्ञान में अन्तर क्या है ?

उत्तर - दृष्टि का विषय सामान्य (है)। अब राग से भिन्न हो गया - ऐसा बताया। सामान्य की दृष्टि हुई तो राग से भिन्न हुआ, वह भेदज्ञान किया - ऐसा बताया।

फिर से, इसमें कोई पुनरुक्ति लागू नहीं होती। भेदज्ञान की धारा और द्रव्यसामान्य पर दृष्टि, उसमें अन्तर क्या ? ऐसा प्रश्न किया। ख्याल में है। ऐसा कहते हैं कि अन्दर प्रभु आत्मा जो है, (वह) पूर्ण गुण का पिण्ड एकरूप (है), ऐसी दृष्टि हुई तो राग से भिन्न हो गया, तो राग से भिन्नता का भेदज्ञान सदा रहता है - ऐसा कहते हैं। आहा...! समझ में आया ? राग आया तो राग मैं नहीं - ऐसा भेदज्ञान नया करना पड़ता है, ऐसा है नहीं। आहाहा...! धीरे से समझो, बापू! यह तो अपूर्व बातें हैं।

जिससे अनन्त काल के जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसी चीज है। आहा...हा...! यह कोई क्रियाकाण्ड से समझ में आ जाये या शास्त्र के ज्ञान से आ जाये ऐसी बात नहीं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु – तो हमें शास्त्र नहीं पढ़ने।

उत्तर – तो शास्त्र पढ़ना नहीं... (यह आशय नहीं है।) यहाँ तो शास्त्र बहुत पढ़ते हैं परन्तु अपने स्वभाव पर दृष्टि नहीं करता है, इसलिए कहने में आता है। आहा...हा...! हमारे समय में 'दौलतराम' कवि थे ना? ६०-७० वर्ष पहले एक कवि हुए। 'दलपतराम' 'कदड़ा'। 'कदड़ा' अर्थात् 'कवि दलपतराम डाह्याभाई'। वे स्कूल में थे। यह तो ७० साल पहले की बात है। ७० (साल) पहले। ८९ वर्ष हुए न? १२-१३ वर्ष की उम्र में 'दलपतराम' स्कूल में कहते थे, 'वांचे पण नहीं करे विचार, ये समझे नहीं सघणो सार'। उस समय (ऐसा कहते थे)। पढ़े लेकिन यह क्या चीज है? क्या भाव है? वह भाव क्या चीज है? वह भाव कितने काल का है? उसकी खबर नहीं। वह 'वांचे पण नहीं करे विचार' आहा...हा...! उन्होंने तो लौकिक अर्थ में कहा था। उसमें एक और (बात आती) थी। हमने तो छठवीं तक के पैसे दिये थे।

प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, गुजराती है।

प्रभुता, तेरी प्रभुता पूर्णानन्द का नाथ।

प्रभुता प्रभु तेरी तो खरी, मुझरो मुझ रोग ले हरी।

यह राग की एकता का भ्रान्ति का रोग (है)। हे भगवान! हे प्रभु! तेरी प्रभुता तो तब गिनने में आती है कि तेरी दृष्टि से राग की एकता का रोग नाश हो जाये तो तेरी प्रभुता सही है। आत्मा को कहते हैं, हों! स्कूल में कहते थे। आहा...हा...!

यहाँ एक समय में नित्यानन्द प्रभु वस्तु है न? है तो आदि-अन्त बिना की चीज है। शुरुआत नहीं, अन्त नहीं और हमेशा रहनेवाली चीज (है)। बदलती चीज है, वह तो पर्याय है। अवस्था बदलती है, विचार बदले, राग होता है, मन्दराग, तीव्रराग (होता है), ज्ञान कम-ज्यादा होता है। वह तो सब उसकी दशा में – पर्याय में है परन्तु पर्याय में पलटती दशा के अलावा जो त्रिकाली चीज है, उसे यहाँ द्रव्यसामान्य कहकर उसकी दृष्टि में स्थिर रहते हैं। दृष्टि में स्थिर रहने से राग से भिन्न ज्ञान हुआ, ऐसा भेदज्ञान सतत रहता है। आहा...! ऐसी बातें हैं। आहा...हा...!

देखो न बाहर में कैसी स्थिति हो जाती है! सबेरे (रतिभाई ने) पैसे लिखाये न?

www.vitragvani.com

उनका पुत्र आया है न ? एक महीने की शादी। शादी होकर एक महीना हुआ। एक महीने में महिला कुछ करती होगी। क्या कहते हैं उसे ? प्रायमर। प्रायमर कहते हैं न ? एक महीने की शादी। ऐसे कोई कपड़े पहने थे। एकदम आग लगी (और) देह छूट गया। एक महीने की शादी। जवान स्त्री। सुबह (रतिभाई ने) पैसे लिखाये ना ? उनका पुत्र बैठा है, उसकी बहू। वैशाख सुद-८ को शादी हुई और ज्येष्ठ सुदी-७ या अष्टमी को जलकर देह छूट गया। बेचारी कोई काम करती थी। रात को सोते समय ऐसे कोई कपड़े पहने थे और आग लग गयी। अग्नि की ज्वाला। समाप्त हो गयी ! वह पीड़ा कैसी होगी ? एक महीने की शादी, उसे पाप का उत्साह कैसा होगा ? क्या कहते हैं ? नहीं समझते। यह तो हिन्दी भाषा है। शादी कहते हैं। शादी नहीं समझते ?

एक महीने की शादी और कपड़े पहनकर सोने की तैयारी (थी)। कुछ काम कर रही थी, उसमें एकदम जल गई, कपड़े जल गये। देह छूट गयी। ओहो...हो... ! वह पीड़ा (कैसी होगी) ? जवान स्त्री, एक महीने की शादी, उसका देह छूट गयी। आहा... ! कितना दु:ख ! वह परिणाम एक तो वर्तमान दु:खरूप और उस परिणाम के फल में तो... आ...हा... ! क्या कहें ? प्रभु ! माँस आदि नहीं (खाते हैं) तो बहुत अवतार पशु के होते हैं, पशु का अवतार। आहाहा... ! सूक्ष्म बात (है)। क्योंकि आर्तध्यान हो जाये। अन्तर देह में (एकता है)। देह मेरी है। मैं भिन्न चीज हूँ — ऐसा तो भान है नहीं, राग से भी भिन्न हूँ - ऐसा भान नहीं है। देह में आग लगी... आहा... ! देह छूट जाये। प्रभु ! ऐसे बहुत अवतार तो पशु में जायेंगे। कठिन बात है, प्रभु ! कोई भले ऐसा कहे कि धर्म का रस था। अरे... ! बापू ! बालक को धर्म कैसा ? धर्म क्या ? और वस्तु क्या ?

यहाँ तो कहते हैं कि एकबार तेरे जन्म-मरण का अन्त लाने की चीज जो सम्यग्दर्शन (है); इस दर्शन का विषय त्रिकाली द्रव्यसामान्य है, वहाँ जा, तो तेरी दृष्टि सम्यक् होगी और भव का अन्त आ जायेगा। बाद में एक-दो-चार भव में मुक्ति हो जायेगी। किन्तु यह विधि और यह रीत करे तो। आहा...हा... !

यहाँ तो यह कहा न कि **भेदज्ञान की धारा....** राग से भिन्न (होकर) सामान्य पर दृष्टि करने से वह दृष्टि हमेशा स्थिर रहती है। उस कारण से राग से भिन्न भेदज्ञान की धारा

www.vitragvani.com

हमेशा रहती है। जैसे दृष्टि द्रव्य में हमेशा रहती है, ऐसे राग से भेदज्ञान भी हमेशा रहता है। आहा...हा... ! अपने आप समझ में आये ऐसा नहीं है। इंजेक्शन देना और अमुक करना (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु - उपाय क्या ?

उत्तर - समझना और यह करना उपाय है। निवृत्ति लेकर यह समझना।...

'बीछिया' के (नगीनभाई हैं।) उनके पुत्र की बहू। शादी को नौ महीने हुए थे। कहीं बाहर जा रही तो एकदम खत्म हो गयी... नौ महीने की शादी। 'जलगाँव' के की पुत्री। नौ महीने की शादी। खड़ी होकर जाने लगी तो गिर गयी। देह की स्थिति नाशवान है, बापू! अन्दर प्रभु अलौकिक अविनाशी है। जो हिलता नहीं, हलचल नहीं, जिसमें पर्याय भी नहीं है। आहा.. ! ऐसी वस्तु पर दृष्टि करने से (धर्म की होता है)। भाषा सादी सरल है। बापू! भाव बहुत मुश्किल, अलौकिक है। आहा...हा... !

सब पर से दृष्टि उठाकर... दृष्टि है पर्याय, परन्तु उस पर्याय की दृष्टि पर्याय पर से भी हटाकर। आहा...हा... ! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव कायमी चीज पर दृष्टि लगाने से दृष्टि स्थिर रहेगी। क्योंकि वस्तु ध्रुव शाश्वत् है तो दृष्टि स्थिर रहेगी। आहा...हा... ! जैसे घड़ी का पेण्डल होता है ना ? उस पर नजर करने जायेगा तो नहीं रहेगा। वहाँ हिल रहा तो (यहाँ नजर भी) हिल जायेगी, परन्तु स्थिर वस्तु पर दृष्टि लगाने से स्थिर रहती है। ऐसे पर्याय पर लक्ष्य करने से पर्याय अस्थिर है (तो) तेरी दृष्टि वहाँ स्थिर होगी नहीं। आहा... ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो माल-माल की बात है। नेमचन्दभाई !

एक बार वहाँ 'आगरा' में प्रवचन चला था न ? 'आगरा.. आगरा !' नेमीचन्द पाटनी के घर के पास, वहाँ एक पण्डित था, नाम भूल गये। क्या था नाम ? (श्रोता - बाबूराम) बाबूराम, (वह कहने लगा), 'बड़ी बात, करना-धरना कुछ नहीं और आनन्द बहुत।' अर्थात् कुछ करना नहीं। दया पालनी, व्रत करने, उपवास करने (ऐसा तो कुछ है नहीं)। अरे... ! सुन तो सही, भाई ! पण्डित था। एक घण्टा प्रवचन तो सुना। सुनकर ऐसा बोला, 'बड़ी आनन्द की बात। करना-धरना कुछ नहीं और आनन्द बहुत'। बात तो ऐसी ही है। राग करना और पर का करना कुछ है ही नहीं। देश की रक्षा करना तो उसमें

www.vitragvani.com

है ही नहीं। उसने तो मजाक किया था। होता है, बापू! क्या हो? भाई! आहा...हा...!

अन्तर वस्तु में दृष्टि करनी, वह कुछ करना नहीं है? जो अनन्त काल में किया नहीं। करने की चीज तो वह है। आहा...! लेकिन वह कैसे की जाती है, उसकी खबर नही, ज्ञान भी नहीं। द्रव्य क्या? अन्दर गुण क्या? और पलटती दशा क्या? और पलटती दशा, त्रिकाल पर दृष्टि करने से वह दृष्टि हमेशा स्थिर रहती है, उसके ज्ञान बिना समझे कैसे? आहा...हा...! समझ में आया?

ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता से ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभाव का अभाव होता है॥ ९४॥

९४, ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता से ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है,.... यहाँ भी यही आया। ध्रुव जो ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु (है)। वह ध्रुव-हमेशा रहनेवाला है। **ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता से...** एकाग्रता, पर्याय है। त्रिकाली ध्रुव में एकाग्रता से (निर्मल पर्याय होती है)। राग में एकाग्रता से दु:ख होता है और ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता होने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। राग में एकत्व होने से दु:ख उत्पन्न होता है और ध्रुव तत्त्व में एकाग्रता होने से निर्मल पर्याय अर्थात् आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? सूक्ष्म बातें करते हैं और कहते हैं समझ में आया! बापू! ऐसा मार्ग है, भाई! आहा...!

ध्रुव तत्त्व पर एकाग्रता से (अर्थात्) शाश्वत चीज पर दृष्टि करने से, वहाँ एकाग्रता होने से निर्मल वीतरागी आनन्द की दशा प्रगट होती है। राग में एकाग्र होने से दु:ख की दशा उत्पन्न होती है, आकुलता की दशा उत्पन्न होती है। भगवान ध्रुव आत्मा,... चारों ओर दृष्टि समेटकर ध्रुव पर दृष्टि करने से, उसमें एकाग्र होने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। उसमें से तो वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट होती है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, वह धर्म (है)। आहा...हा...! ऐसी महँगी चीज (है)।

ध्रुव तत्त्व में... परन्तु वह तत्त्व है न? आत्मतत्त्व है न? है तो ध्रुव है न? बदलती

www.vitragvani.com

पर्याय भले हो परन्तु वस्तु की अपेक्षा से ध्रुव है न! आहा... ! सोना, सोनेरूप कायम रहकर, कड़ा, कुण्डल की अवस्था होती है। कड़ा, कुण्डल की अवस्था ध्रुव नहीं। सोना सोनारूप हमेशा है। ऐसे अवस्था पलटत है परन्तु वस्तु की अपेक्षा से कायम ध्रुव है। आहा...हा... ! ऐसा उपदेश! यह मार्ग तो ऐसा है, भाई! वर्तमान में तो ये करो, व्यवहार करो, व्यवहार से निश्चय हो जायेगा। निवृत्ति लो, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ो, संन्यास लो, ये लो... धूल में भी नहीं है। आहा...हा... ! बाहर का त्याग-ग्रहण तो स्वरूप में है ही नहीं।

त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति। आत्मा में ऐसी एक शक्ति-गुण है कि रजकण का ग्रहण करना और रजकण का छोड़ना, ऐसा आत्मा में है नहीं। परद्रव्य को कैसे ग्रहे और कैसे छोड़े? मात्र विकारी दशा को माना है, ग्रहण किया है, पर्याय में अपनी है - ऐसा माना है। अपने ध्रुव पर दृष्टि करने से राग का त्याग दृष्टि में होता है, वह (वास्तविक) त्याग है। बाकी बाहर का त्याग (किया), कपड़े बदलकर संन्यासी हो गया और पीले कपड़े पहन लिये, (वह त्याग नहीं है)। 'रजनीश' पीले कपड़े पहनता था न? अरे... ! शरीर ही जहाँ उसका है नहीं तो कपड़े उसके कहाँ से हो गये? आहा...हा... !

ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता से ही.... एकाग्रता से ही। राग की एकाग्रता से निर्मल पर्याय कभी नहीं होती। व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि कोई भी विकल्प हो, उस राग से कभी निर्मल पर्याय नहीं होती, क्योंकि राग स्वयं मलिन है। मलिन में से मलिन पर्याय होती है। भगवान त्रिकाली आनन्द शुद्ध निर्मल है, उसमें एकाग्रता होने से निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति — ऐसी निर्मल पर्याय प्रगट होती है। यह निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह धर्म है। राग प्रगट हुआ, वह अधर्म है। आहा...हा... ! आया?

विभाव का अभाव होता है। दो बातें कही। व्यय, उत्पाद और ध्रुव, तीनों बात डेढ़ पंक्ति में ले ली। क्योंकि वस्तु 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्' (है)। नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था व्यय होती है और अपनी चीज ध्रुव स्वरूप से हमेशा रहती है। आहा...हा... ! अब ध्रुव जो चीज है, उसमें एकाग्र हो तो उसमें तो निर्मल पर्याय प्रगट होती है - उत्पाद; और विभाव जो राग है, उसका व्यय होता है; और ध्रुव का तो आश्रय है। आहा...हा... ! समझ में आया? यह सूत्र तो बहुत प्रसिद्ध है — 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्।'

www.vitragvani.com

उत्पाद-व्यय-ध्रुव (नाम का) भी आत्मा में एक गुण है। ४७ शक्ति। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो गम्भीर महत्व की बात है। संसार की परिपाटी से यह भिन्न चीज है। क्या कहते हैं? अन्तर में आत्मा जो है, उसमें ऐसा एक गुण है, ऐसी शक्ति है कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो — ऐसा उसका एक गुण है। उत्पाद और व्यय करना पड़े - ऐसा नहीं। आहा...हा...! भगवान आत्मा ध्रुव में एक ध्रुव गुण है कि जिसमें एकाग्र होने से उत्पाद-व्यय-ध्रुव के कारण निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व की विभाव पर्याय का नाश होता है और ध्रुव का आश्रय हमेशा रहता है। दृष्टि में तीन नहीं है; दृष्टि में ध्रुव एक (है)। किन्तु दृष्टि ध्रुव पर होने से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व की मलिन पर्याय का व्यय-नाश होता है। आहा...हा...!

जैसे लोहा है, लोहा। लोहा... लोहा..! काट है न? जंग... जंग। ऐसे छैनी मारे, छैनी। छैनी मारने से काट का-जंग का व्यय होता है और अन्दर जो प्रकाश है, उसकी उत्पत्ति होती है और लोहा तो कायम रहता है। आहा...हा...! लोहा होता है न, लोहा? उसमें जंग होता है न? जंग। हमारी भाषा में काट कहते हैं। जब जंग पर छैनी मारे, छैनी... छैनी, तो जंग के अंश का नाश होता है और लोहा तो सफेद है न? स्टील आदि। सफेद पर्याय उत्पन्न होती है, जंग का नाश होता है। लोहस्वरूप तो कायम है।

ऐसे भगवान आत्मा ध्रुव पर दृष्टि करने से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। ध्रुव तो है ही। उसकी एकाग्रता से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, (वह) उत्पाद (हुआ)। पूर्व का विभाव है, उसका व्यय होता है, (वह) व्यय (है) और हमेशा रहनेवाली चीज का आश्रय है, (वह) ध्रुव (है)। तीनों वहाँ आ गये। आहा...हा...! समझ में आया? एक सूक्ष्म बात आयी, फिर दूसरी सूक्ष्म फिर तीसरी सूक्ष्म.... इसमें पकड़ना कैसे? लोगों को अभ्यास नहीं है। सब पाप का अभ्यास। दुनिया के सयाने।

मुमुक्षु - कमायी करना पाप है?

उत्तर - कमायी करना पाप का ढेर है। दवाखाने में विकल्प करना कि इसकी दवा, उसकी दवा वह सब पाप है। मोटाणी! तुम्हारे काका को कहते हैं। आहा! अरे...! पैसा आया — ऐसा मेरा भाव भी पाप है। मैं कमाया — ऐसी मान्यता भी पाप है और मैंने पर

www.vitragvani.com

को पैसे दिये तो पैसा मेरा था तो मैंने दिया। मेरा है — ऐसी मान्यता भी पाप है। पैसा तो जड़ है, तेरा कहाँ से आया? आहा...हा...! जगत् की चीज बहुत कठिन, बापू!

मुमुक्षु - ये तो ऐसा लगता है कि हम चौबीस घण्टे पाप ही करते हैं।

उत्तर - पाप ही करते हैं, उसमें क्या? अभी तक क्या किया रामजीभाई ने वहाँ? पैसा कमाकर, पाप किया। फिर लड़के को पैसे दिये। पढ़ाई करने को 'अमेरिका' भेजा। ३५ हजार खर्च करके। उनके पुत्र को पढ़ाया। अभी तो आठ हजार का वेतन है, 'मुम्बई' में एक महीने का आठ हजार का (वेतन है)। वकालत में पाप किये। सलाह लेने को आते थे तो सबसे रुपया लेते थे। आहा...हा..!

मुमुक्षु - वह भी पाप था?

उत्तर - एकान्त पाप। और ये सब सलाह लेने आते थे। क्या कहते हैं? डेबर भाई, 'गाँधीजी' के लाईन के। सलाह लेने आते थे, वह भी पाप।

मुमुक्षु - उसमें तो लोगों का भला होता है।

उत्तर - धूल में भला होता नहीं। जेल में गये थे। एक महीना जेल में गये थे। 'गाँधीजी' की लाईन में सलाह देते थे तो सरकार ने पकड़ा। आहा...हा...! देश की सेवा करने की सलाह दे, वह भी पाप (है)।

मुमुक्षु - मोक्ष की अपेक्षा से पाप है।

उत्तर - पाप ही है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

मुमुक्षु - लौकिक अपेक्षा से अच्छा है, ऐसा कहते हैं।

उत्तर - लौकिक अपेक्षा से पाप है। लोग तो पागल है तो पागल तो अच्छा-अच्छा कहे। पागल अच्छा कहे, उस पागल की कीमत क्या? पागल का... क्या कहते हैं? रिपोर्ट? सर्टिफिकेट। पागल के पास सर्टिफिकेट लेता है, बहुत अच्छा है, उसका अर्थ क्या? दुनिया तो पागल है।

मुमुक्षु - धन्धा के लिये।

उत्तर - धन्धे के लिये करता है वह पाप। आहा...हा...! पैसा कमाने के लिये राग

www.vitragvani.com

करता है, वह पाप और पैसा देने में पैसा मेरा है — ऐसा मानकर देना, वह पाप (है) और पैसा देने में राग मन्द किया हो तो मुझे लाभ हुआ, वह भी पाप।

मुमुक्षु - यह तो मोक्ष की क्लास है।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह बात तो सच्ची। यह तो क्लास है। आहा...हा...! मोक्ष की कॉलेज है। मोक्ष होने की कॉलेज है। आहा...हा...! आज तो दो ही बोल ही चले। आया न?

ध्रुवतत्त्व की एकाग्रता से ही.... पर्याय में एकाग्रता से नहीं। परद्रव्य की लेनदेन पाप है। अपने त्रिकाली ध्रुवतत्त्व में एकाग्रता से ही निर्मल दशा प्रगट होती है, उसका नाम धर्म, वीतरागता (है)। आनन्द, शान्ति, सन्तोष, स्वच्छता, प्रभुता, ऐसी निर्मल दशा होती है। और **विभाव का अभाव होता है**। पूर्व में जो विकार था, उसका अभाव होता है; और भाव के आश्रय में निर्मल भाव की पर्याय उत्पन्न होती है। त्रिकाली भाव के आश्रय से निर्मल भाव की उत्पत्ति होती है और मलिन भाव का नाश होता है। यह वस्तु का स्वरूप है, बापू! उसे थोड़ा समझना पड़ेगा। समय हो गया। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता** - प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-५, सोमवार, दिनाङ्क १०-०७-१९७८
वचनामृत- ९५-९७ प्रवचन-३३

मुनि असंगरूप से आत्मा की साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिंग है॥ ९५॥

'वचनामृत' ९५। ९० + ५। ९४ हो गया न? **मुनि असंगरूप से....** मुनि की दशा (का वर्णन है)। **मुनि असंगरूप से आत्मा की साधना करते हैं,....** राग के संग बिना असंगता से अपने स्वरूप का साधन करते हैं। आहा...! यह मुनिपना! जैनदर्शन / वीतरागमार्ग में मुनिपना ऐसा होता है।

मुनि असंगरूप से.... वस्तु असंग है। राग का संग वस्तु में है ही नहीं। आहा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहारश्रद्धा आदि, उसका असंग वस्तु में संग है नहीं। आहा...! **असंगरूप से आत्मा की साधना करते हैं,....** स्वरूप की, आत्मा के आनन्द की साधना करते हैं। पंच महाव्रत पालते हैं या नग्नपना (लिया है) वह तो जड़ पर की (क्रिया है)। वह कोई मुनिपना नहीं। आहा...हा...! नग्नपना तो अजीव की दशा है। पंच महाव्रत आदि तो आस्रवतत्त्व है, तो आस्रव का संग भी (असंग) तत्त्व को नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है।

असंगरूप से आत्मा की साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं। स्वरूपगुप्त हो गये हैं। 'स्वरूपगुप्त' (शब्द) कहीं आता है? कहाँ?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु – 'नियमसार' में।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह दूसरी बात है। 'अमृतचन्द्राचार्य' अन्त में कहते हैं कि यह मेरा कर्तव्य नहीं, मैं तो स्वरूपगुप्त हूँ। आहा...हा... ! स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान (है) — ऐसे स्वरूप में मैं तो गुप्त हूँ। मैंने 'समयसार' की टीका बनायी – ऐसा मत मानो। आहा...हा... ! कैसी टीका है ? सुनी न ? तो कहते हैं, वह टीका मेरी नहीं है। वह तो शब्द से बन गयी है। आहा...हा... ! वह तो ठीक (है), मैं तो स्वरूप गुप्त (हूँ)। किंचित् मेरा कर्तव्य नहीं। आहा...हा... ! टीका बनायी, उसमें मेरा किंचित्... किंचित् (कर्तव्य नहीं), मैं अकिंचित्कर हूँ। आहा...हा... ! वह तो शब्द ही पर्याय है। उसमें मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं। शब्द तो ऐसा पड़ा है – 'किंचित्'। किंचित् भी मेरा कर्तव्य नहीं। वस्तु ऐसी है।

ऐसी टीका तो भरतक्षेत्र में है नहीं, ऐसी टीका ! फिर भी कहते हैं कि वह तो शब्द से बनी है, हों ! आहा...हा... ! मैं तो स्वरूप-ज्ञान और आनन्द में गुप्त हूँ। विकल्प से भी बाहर आया नहीं तो टीका करने के लिये मैं बाहर आया – ऐसा तो है नहीं। आहा...हा... ! मुनि कैसे होते हैं। आहा...हा... ! – उसका पहले उसका सच्चा ज्ञान तो होना चाहिए न ? आहा... ! मुनि किसको कहें ?

पहले तो ऐसी बात है कि जिस फल में या जो अनाज में त्रस दिखे, उस त्रस के भोजन का पहले से त्याग होना चाहिए। नहीं तो जिनवाणी सुनने के योग्य नहीं। समझ में आया ? अंजीर, पंच उदम्बर फल, माँस, मद्य, दारू, दो घड़ी के बाद का मक्खन, उसमें त्रस (जीव की) उत्पत्ति होती है। ऐसा 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' ७४ गाथा (में) 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' कहते हैं कि जिसे ऐसे त्रस के भोजन का त्याग नहीं है, वह तो जिनवाणी सुनने के योग्य नहीं। अभी धर्म (की बात) नहीं। त्रस का भोजन नहीं ले तो वह धर्म नहीं। मात्र सुनने के योग्य नहीं ! आहा...हा... ! जिसके भोजन में त्रस आवे, उसका तो पहले से उसे पक्का ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार का ज्ञान, हों ! यह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है, यह कोई सम्यग्ज्ञान नहीं है। इसमें त्रस है और उसका भोजन नहीं लेना, वह कोई सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, उनकी वाणी वीतरागता की प्राप्ति कराती है, आहा...हा... ! तो जिसे त्रस का भोजन है, वह तो मिथ्यात्वसहित का तीव्र राग है। आहा...हा... ! यह व्यवहार आया। आहा... ! परन्तु वह त्रस का भोजन छोड़ दिया, इसलिए धर्म हो गया, ऐसा बिल्कुल नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो आचार्य वहाँ तक कहते हैं कि वह तो (धर्म) नहीं परन्तु निर्दोष लेना, वह भी मैं नहीं; और टीका बनाने में जो विकल्प आया है, वह भी मैं नहीं। आहा...हा... ! मैं तो स्वरूपगुप्त (हूँ) । ज्ञानानन्द प्रभु जो निर्विकल्प चीज है, उसमें मैं गुप्त हूँ। आहा...हा... ! बाहर विकल्प आया वह मैं नहीं; वह तो परचीज है। आहा...हा... ! टीका का विकल्प आया, वह मैं नहीं। वह तो आस्रव है, पुण्य, शुभभाव है। 'समयसार' की टीका बनाने में जो भाव है, वह भी एक शुभभाव है। आहा...हा... ! वह धर्म तो नहीं, पुण्य है, तो मैं पुण्य में तो आता नहीं, मुनि तो ऐसा कहते हैं।

मैं स्वरूपगुप्त (हूँ) । आहा...हा... ! मेरा आनन्द और ज्ञानस्वरूप से भण्डार भरा है, उसमें मैं गुप्त हूँ। आ...हा... ! तो टीका मेरे से हुई – ऐसा किंचित्‌मात्र (नहीं), मैं अकिंचित्कर हूँ। टीका बनाने में मैं अकिंचित्कर हूँ। आहा...हा... ! यहाँ तो थोड़ी समझाने की भाषा आये या एक-दो ग्रन्थ बनाये तो (ऐसा लगे कि) बस ! मैंने बनाया, मैंने किया और धर्म प्रभावना हुई। अरे... ! यहाँ स्वरूपगुप्त कहना है। समझ में आया ?

स्वरूपगुप्त हो गये हैं। आहा...हा... ! मुनि तो अन्दर आनन्दकन्द में झुलते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द ! आहा...हा... ! उसका नाम मुनिपना है। दिगम्बर मुनि उन्हें कहते हैं। आहा...हा... ! ये लोग कहते हैं न, 'णमो लोए सव्व साहूणं।' (उसमें) सब साधु लेने। नेमचन्दभाई ! सुशीलकुमार है ? 'दिल्ली' में एक सुशीलकुमार स्थानकवासी हैं, 'अमेरिका' गये थे। मालूम है आप को ? (उनका) विरोध हुआ था। एक ने विरोध किया कि नहीं; दूसरा कहे नहीं जाना। कपड़े (वेष)उतारकर जाना और एक कहे कपड़े (वेष) लेकर जाना। कहाँ साधु थे ? अभी तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – .... वारन्ट निकल गया....

उत्तर – ...... कितने ही लोगों ने रोका था कि नहीं जाने देंगे। स्थानकवासी का वेश

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

था इसलिए। (फिर भी) गये थे। साथ में बड़े-बड़े आदमी थे। गये 'अमेरिका' गये, वांचन किया, फिर आ गये।

यहाँ तो क्या कहना है ? आहा...हा... ! मैं पर को समझने जाता हूँ। अभी तू तो समझ, तेरी दृष्टि मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! वस्त्रसहित मुनिपना मानना, वही अभी मिथ्यात्वभाव है। इसके अलावा स्थानकवासी धर्म है, उसे धर्म मानना वह मिथ्यात्व है। ...बापू! मार्ग ऐसा है। किसी को दुःख लगे, वह बात नहीं है। यह तो आत्मा की बात है। सत्य तो यह है, प्रभु! स्थानकवासी और श्वेताम्बर ये जैनमत ही नहीं है, वह तो अजैनमत है, अन्यमत है। आहा...हा... ! प्रभु! तुझे दुःख लगे तो माफ करना। आहा...हा... ! हमारे पास क्या (है) ? बापू! हमारे अन्दर जो है, वह कहते हैं। आहा... !

'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' शास्त्र है। नेमचन्दभाई! 'पद्मनन्दी पंचविंशतिका'। 'पद्मनन्दि आचार्य' दिगम्बर मुनि हुए। बहुत अलौकिक! २६ अधिकार बनाये परन्तु 'पद्मनन्दि' नाम है तो 'पंचविंशतिका' कहने में आया, अधिकार २६ हैं। एक अधिकार ब्रह्मचर्य का ऐसा बनाया.... ब्रह्मचर्य-ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें चरना-रमना, वह ब्रह्मचर्य है। शरीर से तुम स्त्री का भोग न लो और वचन, मन से भी भोग न लो, वह ब्रह्मचर्य है – ऐसा है नहीं। ब्रह्मचर्य की बहुत व्याख्या की, बाद में कहा, अरे... ! जवानों! मेरी बात तुमको न जँचे, तुमको स्त्री सुन्दर दिखे और सुन्दर शरीर के भोग में तुझे आनन्द दिखे तो हम तो कहते हैं कि वह तो पाप है और ब्रह्मचर्य तो अपने आनन्दस्वरूप भगवान में रमना, चर्या... चर्या (करना), यह बात हम तो कहते हैं। ओ... जवानो! तुमको यह बात नहीं जँचे, मैं तो मुनि हूँ, माफ करना – ऐसा लिखा है। मेरे पास क्या आशा रखेगा ? वस्तु का स्वरूप ऐसा है तो मैं तो ऐसा कहूँगा। तुम जवान हो, पैसा (है), शरीर ठीक है, स्त्री ठीक है, वह तो जड़ परपदार्थ मिट्टी-धूल है। आहा...हा... ! तुझे उसमें सुख लगे और मेरी ब्रह्मचर्य की बात तुझे नहीं जँचे तो माफ करना, भाई! आहा...हा... ! प्रेमचन्दजी!

ऐसे मुनि! नग्न मुनि दिगम्बर मुनि स्वरूपगुप्त! आहा...हा... ! विकल्प आया और ब्रह्मचर्य को समझाया और तुमको न जँचे तो तुझे बाह्य चीज के दिखाव में प्रभु तुझे मिठास लगे और मेरी तुझे नहीं (रुचे कि) ये कैसी बात करते हैं ? हमको प्रत्यक्ष दिखता है, मजा

www.vitragvani.com

आता है। अरे... ! प्रभु ! सुन तो सही। आहा... ! मजा तो अन्तर आनन्द में है। आहा...हा... ! ज्ञानी को भी राग आता है किन्तु वे तो दु:ख जानते हैं, दु:ख जानते हैं।

सम्यग्दृष्टि, क्षायिक समकिती हो तो उन्हें स्त्री का भोग तो है। जब तक अन्तर में मुनिपना नहीं है, तब तक राग है, भोग भी है। (किन्तु) दु:ख लगता है। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन होने के बाद भी... आहा...हा... ! विषय की वासना उठती है, भोग करते हैं। आहा...हा... ! परन्तु वह तो दु:ख लगता है, दु:ख। ये तो मैं जहर में आ गया। अरे ! मेरा अमृतकूप अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उससे छूटकर मैं यहाँ आ गया। आहा...हा... ! मैं तो दु:ख में आ गया। मेरे आनन्द में से (दु:ख में आ गया)। थोड़ा आनन्द तो है, सम्यग्दर्शन है तो अतीन्द्रिय आनन्द तो थोड़ा है ही, परन्तु राग में आ गये तो मानते हैं कि हम तो दु:ख में आ गये। आहाहा... !

अतीन्द्रिय आनन्द की, ब्रह्मचर्य बात हम करते हैं, तुम्हें न जँचे तो माफ करना, भाई ! ऐसा मुनिराज कहते हैं। हम तो यह धर्म की बात करते हैं। हम तो स्वरूपगुप्त हैं। टीका बनायी, वह तुझे नहीं जँचे कि नहीं... नहीं। टीका तो उन्होंने बनायी है और कहते हैं कि (हम तो) स्वरूपगुप्त... स्वरूपगुप्त कहते हैं ! पहले तो ऐसी टीका नहीं थी। (तो मुनिराज कहते हैं), माफ करना, भाई ! तुझे समझ में नहीं आये तो माफ करना। दूसरा क्या करें ? आहा... ! क्यों ?

कि प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिंग है। आ...हा... ! मुनि का भावलिंग-भाववेश, भावभेष, मुनि का भावभेष क्या है ? आहा...हा... ! प्रचुर स्वसंवेदन। ('समयसार' की) पाँचवीं गाथा में आया, प्रचुर स्वसंवेदन। सम्यग्दृष्टि प्रथम श्रेणी का धर्मी, उन्हें भी अतीन्द्रिय आनन्द का अंश (वेदन में) आता है। समझ में आया ? मुनि हैं, उन्हें तो प्रचुर आनन्द आता है। अतीन्द्रिय प्रचुर-बहुत, प्र-चुर-विशेषरूप से। ओ...हो...हो... ! प्रचुर स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना, सं - प्रत्यक्ष आनन्द का प्रचुर वेदन ही, वेदन ही। एकान्त कर देते हैं। यह **मुनि का भावलिंग है।** आ...हा... ! मुनि का भाववेश यह है। आहा....हा... !

अन्तर में प्रचुर स्वसंवेदन, स्व के आनन्द का बहुत वेदन आना। आहा...हा... ! यह मुनि का बाह्य नहीं लेकिन अभ्यन्तर वेश है। ऐसी दशावाले को बाह्य में नग्नपना होता है,

www.vitragvani.com

पंच महाव्रत का विकल्प भी होता है। समझ में आया? ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन हो और वस्त्रसहित हो – ऐसा बन सकता नहीं। समझ में आया? परन्तु वस्त्ररहितपना और पंच महाव्रत का विकल्प मेरा वेश नहीं; वह तो निमित्त की दूसरी चीज है। आहा...हा...! ऐसा निमित्त होता है परन्तु उस निमित्त से मेरा प्रचुर स्वसंवेदन रहा है – ऐसा है नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया? (प्रचुर स्वसंवेदन ही) **मुनि का भावलिंग है।** आ...हा...! ९५ (बोल पूरा हुआ)।

आत्मा ही एक सार है, अन्य सब निःसार है। सब चिन्ता छोड़कर एक आत्मा की ही चिन्ता कर। कुछ भी करके चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़; तभी तू संसाररूपी मगर के मुँह से छूट सकेगा॥ ९६॥

९६। **आत्मा ही एक सार है,.....** आहा...हा...! 'अष्टपाहुड़' में आता है। सार... सार (शब्द) टीका में बहुत आता है। सार (शब्द) 'अष्टपाहुड़' में आता है। एक गाथा की टीका में (आता है)। यहाँ तो (कहते हैं), **आत्मा ही एक सार है,....** राग, सार नहीं; व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, सार नहीं। शरीर की नग्नक्रिया, सार नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो सार में सार तत्त्व... एक समय की पर्याय भी सार नहीं। आहा...हा...! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु....

आत्मा ही.... आत्मा '**ही**'। **एक सार है,....** शीशम होता है न? शीशम। शीशम की लकड़ी होती है न? शीशम में बीच में उसका सार होता है, कड़क चीज (होती है उसे) निकालकर उसमें अन्दर कोई बन्दूक या ऐसा कुछ रखते हैं। शीशम... शीशम। शीशम की लकड़ी में सार होता है, चिकनाहट (होती है)। चिकनाहटीवाली चीज होती है। ऊपर लकड़ी है लेकिन अन्दर सार है, वह एकदम चिकना और मजबूत होता है, उसे निकालकर खोल देते हैं, बाद में उसमें हथियार रखते हैं। उसमें सार वह चीज है। ऐसे चौदह ब्रह्माण्ड में आत्मा एक सार है। आहा...हा...! व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भी सार नहीं।

www.vitragvani.com

आत्मा ही.... आत्मा 'ही'। **एक....** भेद भी नहीं। आहा...हा...! अभेद, सुबह छठवी गाथा में चलता है न? एकरूप वस्तु अनन्त गुण का एक पिण्ड वस्तु आत्मा ही, आत्मा ही एक सार जगत में है। आहा...हा...! 'मुम्बई' में कहते थे। भाई आये थे ना? ठाकुरदास। चन्द्रकान्तभाई आये थे ना? 'राजकोट' से चन्द्रकान्तभाई (आये थे), उनके श्वसुर।.... वे व्याख्यान में बोले थे, ओ...हो...! इस जगत में, चौदह ब्रह्माण्ड में एक सर्वोत्कृष्ट सार हो तो आत्मा है। सर्वोत्कृष्ट वस्तु हो तो आत्मा है। अभी आये थे चन्द्रकान्त। चन्द्रकान्त है न? वे कहते थे। बात तो अच्छी पकड़ी है। आहा...हा...!

पैसा, लक्ष्मी, चक्रवर्ती पद, इन्द्र का पद, जिस देव को हजारों साल बाद कण्ठ में से अमृत झरता है, उनको रसोई बनानी और आहार लेना, ऐसा है नहीं। हजारों वर्ष के बाद, तैंतीस सागर का आयुष्य हो तो तैंतीस हजार वर्ष के बाद अमृत झरे। वह चीज सार नहीं। यहाँ तो रोज रसोई बनाना और खाना। आहा...हा...! औदारिकशरीर का पोषण। वह तो वैक्रियकशरीर (है) और हजारों वर्ष के बाद कण्ठ में से अमृत झरता है परन्तु वह चीज सार नहीं और अन्दर दया, दान का विकल्प आता है, वह सार नहीं। आहा...हा...! अरे...! उसे जाननेवाली एक समय की पर्याय है, वह भी मूल सार नहीं। आहा...हा...!

चैतन्य अनन्त गुण का बादशाह, अनन्त प्रजा का नाथ,... आहा...हा...! वह एक ही जगत में सर्वोत्कृष्ट सार है और वही सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? सम्यक् पाने की यह एक चीज है और इसे प्राप्त किये बिना सब थोथा (व्यर्थ) करते हैं। बाह्य का त्याग किया, वह तो जगत को दिखावा (करते हैं)। मूल चीज की खबर नहीं और बाहर का दिखावा (करते हैं)। हम ब्रह्मचारी हुए हैं और प्रतिमधारी हुए हैं। आहा...! उस विकल्पवाले तुम हुए हो? ऐसे तुम हो? (ऐसा मानते हो) तो तुम आत्मा नहीं। आहा...!

आत्मा तो अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर (है)। आहाहा...! ध्रुव सामान्य वस्तु एक, वही जगत में सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय एक ही सार है। आहा...हा...! इन्द्र का इन्द्रासन भी सार नहीं, चक्रवर्ती का चक्रवर्ती पद, सार नहीं। आहा...हा...!

चक्रवर्ती के भोजन के 32 ग्रास होते हैं। ग्रास... ग्रास, एक ग्रास अरबों रुपये की कीमत का। क्योंकि उसमें भस्म होती है — हीरे, जवाहरात की भस्म का आहार बनाते हैं।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

एक ग्रास 56 करोड़ सिपाही पचा सकें नहीं। उसके 32 ग्रास चक्रवर्ती लेते हैं। रसोई करनेवाले भी ऐसी रसोई बनाते थे और उसकी बारह महीने में एक रसोई होती है। 360 रसोई बनानेवाले होते हैं। एक दिन का भोजन कराने के लिए 360 दिन की तैयारी होती है, तब एक दिन भोजन करते हैं। 360 बड़े पदाधिकारी जैसे (होते हैं)। समझ में आया? आहा...हा...! एक दिन की रसोई बनाने के लिये सब तैयारी 360 दिन करते हैं। ऐसा आहार कि जिसका एक ग्रास 56 करोड़ सिपाही पचा नहीं कर सके। फिर भी वह सार नहीं है। समझ में आया?

उनकी स्त्री (अर्थात्) गुलाम, दासी होती है। चक्रवर्ती की दासी (है)। दासी की इतनी शक्ति है कि चक्रवर्ती सिंहासन पर बैठते हैं। करोड़ों का हीरा होता है न? (तो वह दासी मुट्ठी में हीरा का चूरा कर देती है)। करोड़ों का हीरा! उनकी दासी ऐसी है। आहा...हा...! स्त्री नहीं, दासी। एक हीरा लेकर ऐसा (करे तो) आटा बन जाये। इतनी तो उसकी शक्ति है। आटा... आटा समझे न? ऐसे चूरा हो जाता है। वह कोई चीज नहीं, वह कोई सार चीज नहीं। आहा...हा...!

अन्दर तीन लोक का नाथ हीरा, अनन्त गुण का धाम आत्मा ही जगत में एक सार है और सम्यग्दर्शन का विषय यह एक ही है, इसके आश्रय बिना सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। आहा...हा...!

अन्य सब निःसार है। यह नास्ति कही। अन्य सब — व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी निःसार है। आहा...हा...! **सब चिन्ता छोड़कर....** भगवान आत्मा ही सार है। तेरा, तेरे पास, तुम स्वयं हो। दूसरी चिन्ता असार है, उसकी चिन्ता छोड़कर.... आहा...हा...! **सब चिन्ता छोड़कर.....** जितनी असार चीज है, रागादि, पुण्य-पाप, विकल्प, दया, दान इत्यादि। आहा...हा...! उसकी भी **चिन्ता छोड़कर एक आत्मा की ही चिन्ता कर**। अन्तर अन्तर्मुख होने का प्रयत्न कर। आ...हा...! जिसमें आत्मा का पता लग जाये — ऐसा अन्तर्मुख में एक सार में प्रयत्न कर। आहा...हा...!

सब चिन्ता छोड़कर एक आत्मा की ही.... एकान्त - 'ही'। व्यवहाररत्नत्रय की भी चिन्ता छोड़कर। आहा...हा...! **आत्मा की ही चिन्ता कर। कुछ भी करके**

www.vitragvani.com

चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़;..... आहा...हा... ! कुछ भी प्रयत्न करके स्वसन्मुख होकर चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का, कोई भी प्रकार से प्रयत्न करके उसे पकड़, उसका आश्रय ले। आहा...हा... ! जहाँ भगवान परिपूर्ण स्वरूप से अन्दर विराजमान है, उसके सन्मुख हो। व्यवहार से भी विमुख होओ। आहाहा.... ! समझ में आया ? तो धन्धा कब करना ? स्त्री, पुत्र आदि को पकड़े हो, उन्हें कहाँ रखना ? आठ-आठ पुत्र हो, उनकी आठ बहु। सोलह। स्वयं (पति-पत्नी) हो, अठारह। पुत्र के पुत्र मिलाकर ४०-५० मनुष्य हो और ऐसी महंगाई ! बापू ! उसकी चिन्ता करने से उसकी व्यवस्था होती है, ऐसा है नहीं। तेरी चिन्ता निरर्थक जायेगी; और यह स्वरूप की चिन्ता तेरी सार्थक होगी। आहा...हा... !

एक बनिया है न ? 'जामनगर' के हैं। अपने सुमनभाई रहते हैं। उनका लड़का नौकर है, उनके वहाँ (है)। जगन्मोहन साढ़े तीन करोड़ की एक साल की कमाई है। श्वेताम्बर है। रामजीभाई का पुत्र वहाँ नौकरी करता है। पहले 'ऐसो' (कम्पनी में) थे। उड़ता हुआ घोड़ा (जिसका चिह्न है), पेट्रोल। 'ऐसो' उसमें नौकरी करते थे, उसमें से निकल गये। साढ़े तीन करोड़ की तो एक साल की कमाई है। उसमें नौकरी करते हैं। और भी (व्यापार) बढ़ानेवाले हैं। साढ़े तीन करोड़ की कमाई है, कमाई, हों ! आमदनी। पूँजी नहीं। साढ़े तीन करोड़ की पूँजी नहीं, पूँजी तो बहुत (होगी)। यहाँ आये थे। व्याख्यान (सुना था)।

मुमुक्षु : 'वापी' में कारखाना किया।

उत्तर - हाँ, करे... करे। पैसे बहुत हैं। 'वापी' ? हाँ, 'वापी' है। 'वापी' गये थे। पैसा बहुत है, कहाँ डाले ? अरे...रे... ! होली... ! चिन्ता के घोड़े दौड़ाने। पाप की चिन्ता। आहा...हा... !

प्रभु ! एक बार सब चिन्ता छोड़। तेरी चिन्ता कर कि तू कौन है ? आहा...हा... ! **आत्मा की ही चिन्ता कर। कुछ भी करके....** कोई भी प्रकार से प्रयत्न करके.... आहा...हा... ! **चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़;....** चैतन्यस्वरूप जो सर्वस्व सार है, उसका ज्ञान (कर), स्वरूप को पकड़। आहा... ! जो रागादि, पुण्य, दया, दान के विकल्प को पकड़ रखा है कि यह मेरा है; तो तेरी पकड़ने की शक्ति तो है। विपरीत भी पकड़ने की

www.vitragvani.com

शक्ति तो है। अब ऐसे पकड़ न, अब गुलाँट खा जा, पलटा मार। आहा...हा...! जहाँ भगवान सर्वोत्कृष्ट तत्त्व अन्दर पड़ा है। अनन्त चैतन्यरत्नाकर, अनन्त चैतन्यरत्न से भरा पड़ा प्रभु अन्दर है। अन्दर चैतन्यरत्न है। आहा...! समझ में आया? कोई भी प्रयत्न से **चैतन्यस्वरूप....** अर्थात् पहले आत्मा को सार कहा न? परन्तु आत्मा है क्या? वस्तु क्या है? चैतन्यस्वरूपी आत्मा है। वह तो जानन-देखन का पुंज स्वरूप आत्मा (है)। स्वरूपवाला भी नहीं, (उस) स्वरूप आत्मा (है)। आहाहा...!

स्वरूप... **चैतन्यस्वरूप आत्मा....** बस! आहा...हा...! जानन-देखन—ऐसा चैतन्यस्वरूप आत्मा सर्वस्व सार (है), उसको पकड़। आहा...हा...! उसमें एकाग्र हो। पकड़ का अर्थ यह है कि जैसे राग में एकाग्र है, तो राग की एकाग्रता छोड़कर अन्तर ज्ञायकस्वरूप भगवान में एकाग्र हो। उसको पकड़ का अर्थ यह है। आहा...हा...! करने योग्य तो यह है; बाकी सब बन्धन का कारण है और बन्धन से अकेला कहाँ जाये? चौरासी के अवतार में, ओ...हो...हो...!

एक (आत्मा) को पकड़ तो अकेला हो जाएगा। पर को पकड़ेगा तो संयोग से कभी छूटेगा नहीं। संयोग में तुझे अवतार लेने पड़ेंगे। और संयोग भी कहाँ कैसे मिलेंगे? यहाँ का बंगला (छोड़कर) भेड़, बकरी, कौवे में जन्म ले। भाई! ऐसे जन्म तूने अनन्त बार किये, प्रभु! तेरी चीज को पकड़े बिना, तेरी चीज का अनुभव किये बिना, तेरी चीज में एकाग्रता किये बिना राग में एकाग्रता (की)। चाहे तो पुण्य हो, परन्तु वह भी परमार्थ से तो पाप है। अपने स्वरूप से पतित होना, (वह पाप है)। आहा...हा...! उसमें रहने से तुझे गति में जाना पड़ेगा, जिसमें संयोगी चीज मिलेगी, वहाँ (जाना पड़ेगा)। क्योंकि संयोगी भाव है। संयोगीभाव का फल संयोग मिलेगा और स्वभावभाव की दृष्टि करने से स्वभाव मिलेगा। आहा...हा...! मनुष्य को ऐसा कठिन पड़े; (इसलिए) चिल्लाते हैं कि एकान्त (है)।

'जैनदर्शन' में, 'करुणादीप' में (तात्कालिक जैन समाचार पत्र) तो बहुत (कहते हैं), एकान्त है, एकान्त है। बेचारे बोले, बापू! करो। भाई! प्रभु! तुझे मालूम नहीं है। उसकी बुद्धि में आये वह बेचारे कहे, उसमें क्या करें? कोई विरोध करने की जरूरत नहीं,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वैर करने की जरूरत नहीं, आत्मा है, भगवान है। प्रभु! तेरा हित तू चूक जाता है, भैया! आ...हा...! जिसे अहित मिले और अहित-दुःख की गन्ध में जाये उसका तिरस्कार क्यों करना? उसका तिरस्कार क्यों करे? आ...हा...! प्रभु! तुझे मालूम नहीं, भाई! व्यवहार से भी आत्मा मिलता नहीं, यह तुझे एकान्त लगता है। प्रभु! लेकिन तू तुझसे मिलता है। तो तेरी चीज तो निर्मल है, तो निर्मल परिणति से तुझे मिलेगा। आहा...हा...! यही सम्यक् एकान्त है और इसी सम्यक् एकान्त का फल अतीन्द्रिय आनन्द है। बाकी राग का एकान्त करके मर जाएगा, भाई! तुझे दुःख होगा, बापू! भाई! तू दुःखी होगा। राग वर्तमान में दुःख है, उसे अपना मानते हो (तो) बन्धन होगा और बन्धन का फल भी दुःख के संयोग मिलेंगे। आहा...हा...! यह बात (है)। समझ में आया?

आत्मा को पकड़;.... चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़;.... आहा...हा...! **तभी तू संसाररूपी मगर के मुँह से छूट सकेगा।** संसाररूपी मगरमच्छ। आहा...हा...! 'कलकत्ता' में एक नाव थी। समुद्र में नाव चली थी। शाम को माँ-बाप पुत्र को लेकर शाम को नाव में घूमने के लिये गये। उसमें एक लड़का था। उसने नाव के बाहर पैर रखे थे। सब बैठे थे और वह पैर बाहर रखकर बैठा था। एक बड़ा मगरमच्छ आया और लड़के के पैर पकड़ लिये। अब नाव चलानेवाला... क्या कहते हैं उसे? चलानेवाला (नाविक)। अरे...! भाई! पुत्र को डाल दो, नहीं तो पूरी नाव डूब जायेगी। यह मगरमच्छ बड़ा है। मगरमच्छ बड़ा है और उसने पैर पकड़ा है, वह छोड़ेगा नहीं और खींचेगा तो पूरी नाव डूब जायेगी। आहा...हा...! चलानेवाला तो दूर बैठा था और लड़के साथ माँ-बाप बैठे थे। माता ने हाथ पकड़ा, पिता ने हाथ पकड़े और समुद्र में फैंक दिया। क्या करे, बेचारे? आहा...! 'कलकत्ता' में बना था। ऐसे यह चौरासी के अवतार मगरमच्छ (है), प्रभु! उसने तुझे पकड़ रखा है। राग मेरा है, उससे लाभ लोगा ऐसे पकड़ लिया है। आहा...हा...!

तभी तू संसाररूपी मगर के मुँह में से.... मगर के मुख में से निकलना... प्रभु! आहा...हा...! उसने जो पकड़ा उसे नहीं छोड़ता। लेकिन यहाँ तो तूने पकड़ा है तो छूट सकेगा। आहा...हा...! आ...हा...! प्रभु! तेरे में पर से भिन्न होने की ताकत है और अपने में अभिन्न होने की प्रभु! तेरे में ताकत है। तेरा कार्य करने में राग की मन्दता भी सहायक

www.vitragvani.com

नहीं। आहा...हा... ! देव-गुरु की भी जिसमें सहायता नहीं। आहा...हा... ! जिसका शास्त्रज्ञान किया, उसका ज्ञान भी उसमें सहायक नहीं। आहा...हा... ! ऐसा अपना स्वरूप (है)। पर के कारण से कार्य हो – ऐसा स्वरूप ही नहीं और आत्मा, पर कार्य का कारण हो – ऐसा स्वरूप ही नहीं। आहा...हा... ! ऐसे स्वरूप को पकड़ तो संसाररूपी मगरमच्छ के मुख में से निकल जायेगा। आहा...हा... ! वह आता है न मगरमच्छ ?

संसाररूपी मगर के मुँह में से छूट सकेगा। आहा...हा... ! तू अकेला आनन्द में रहेगा। संयोगीभाव छूट जायेगा, संयोग छूट जायेगा, अकेला स्वभाव रहेगा। आहा... ! उसे पकड़ और अनुभव कर तो अकेला आनन्द का नाथ आनन्द के अनुभव में रह जायेगा। आहा... ! उसका संयोग छूट जायेगा। संसाररूपी मगरमच्छ ने तुझे पकड़ा है, तू छूट जाएगा।

(बाहर का) मगर तो छोड़े नहीं। वह खींचे तो पूरा डूब जाये। आहा...हा... ! मगरमच्छ को कैसे मारे ? वह तो खींच लेता है। नाव चलानेवाले ने कहा, डाल दो, नहीं तो मैं डाल दूँगा। पुत्र को डाल दो, मगरमच्छ ने पकड़ा है, नहीं छूटेगा। वह खींचे उतनी ही देर है, पानी बहुत गहरा है, पूरी नाव डूब जायेगी। आहा...हा... ! जिसने पुत्र को बड़ा किया, ऐसे माँ-बाप ने (छोड़ दिया), वहाँ लड़का रोता है... अरे.... ! पिताजी... पिताजी... ! आहा...हा... ! बापू ! क्या हो ? मगरमच्छ के मुँह में से निकलना....

ऐसे मिथ्यात्व का सेवन हो, राग मेरा है, राग से मुझे लाभ होगा – ऐसे मगर के मुख में वह घुस गया है। आहा...हा... ! ९६ (बोल पूरा हुआ)।

परपदार्थ को जानने से ज्ञान में उपाधि नहीं आ जाती। तीन काल, तीन लोक को जानने से सर्वज्ञता-ज्ञान की परिपूर्णता सिद्ध होती है। वीतराग हो जाय, उसे ज्ञानस्वभाव की परिपूर्णता प्रगट होती है॥ ९७॥

अब क्या कहते हैं ? कि अपना जो ज्ञानस्वरूप है, वह पर को जाने, वह कोई उपाधि नहीं। पर को करना और पर से मेरे में होना, वह मिथ्यात्व की उपाधि है, परन्तु

www.vitragvani.com

परपदार्थ को जानना, वह उपाधि नहीं है; वह तो तेरा स्वभाव है। मेरा ज्ञानस्वभाव है। जैसे अपने को जाने, ऐसे पर को जानना। पर को जानना, वह तो अपना स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। आहा...हा...! जैसे परपदार्थ से, राग से नुकसान है, ऐसे पर को जानने में नुकसान है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश (है)। कैसा उपदेश है, बापू! आ...हा...! 'मूल मारग सांभलो जिननो रे....' आत्मा है न? 'श्रीमद्' में आता है।

मूल मारग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखंड सन्मुख....

'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख' तारी परिणति अखण्ड सन्मुख, स्व की ओर कर और मेरी बात सुन! प्रभु का मूल मार्ग यह है। आहा...हा...! पहले थोड़ा कठिन पड़े लेकिन हाँ तो कह कि मार्ग तो यह है; दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहा...! उसे माननेवाले भले थोड़े हो, अरे...! विशेष संख्या में न भी हो, उसके साथ सत्य का कोई सम्बन्ध नहीं, सत्य तो सत्य ही रहेगा। भले एक माने, दो माने, चार माने... आहा...हा...! बहुत मानते हैं तो (सत्य है, ऐसा नहीं)। आहा...!

अभी तो जहाँ-तहाँ पूछो तो (कहते हैं), बस! ईश्वर की मेहरबानी, ईश्वरकर्ता, ईश्वर की इच्छा अनुसार होगा – ऐसी मान्यता। कत्लखाना करते हैं। कत्लखाना करने की ईश्वर की इच्छा होगी? 'अमेरिका' में तो डेढ़ मील में एक बड़ा कारखाना है (गायों का)। सैकड़ों गाय एकसाथ रखते हैं। ऊपर से हथियार गिरता है (और) गला और सिर (काट देता है)। उसका मालिक चाँदी की कुर्सी पर बैठनेवाला पैसेवाला करोड़पति, अरबोंपति (होता है)। दिखावा तो देखो! आहा...हा...! उसे जाना तो है नरक में। अरे...रे...! यह पर्दा किस प्रकार का? यहाँ चाँदी कुर्सी (पर बैठे)। चाँदी की हों! बैठता है। डेढ़ मील में कत्लखाना है। आहा...हा...! भैंस, बैल, गाय, पाड़ा, काट डालता है। वर्तमान में तो (ऐसा) दिखे, अच्छे कपड़े, अच्छे जवाहरात। अच्छे जवाहरात 'अमेरिका' में बेचने जाते हैं न? कत्लखानावाला भी बहुत पैसा लेकर जवाहरात (लेने जाता है)। अपने भाई लेते हैं न? पूरणचन्द गोदिका। पचास-साठ-सत्तर लाख तो थे, अब डबल हो गये। बाहर जाते हैं तो दो-चार लाख पैदा करते हैं। कहाँ के? 'जयपुर'! 'जयपुर... जयपुर...'! ये रहे 'जयपुर' के। पूरनचन्द गोदिका वहाँ जाते हैं तो दो-चार लाख पैदा करते हैं। मुझे

www.vitragvani.com

जवाहरात दिखाया था। क्या कहते हैं उसे? पन्ना... पन्ना। पन्ने का चूरा था। (उन्होंने कहा), इसमें से मैं दो-चार, पाँच-पचीस लाख पैदा करूँगा। तीन हजार के वेतनवाला तो एक नौकर था। अभी है। तीन हजार का (वेतन था)। मेरे पास आया था। मुझे तीन हजार देते हैं, लेकिन मैं बाहर जाऊँ तो मुझे पाँच हजार मिलते हैं। लेकिन मैं इस सेठ के पास बहुत साल से हूँ। एक महीने के तीन हजार तो एक नौकर को देते हैं। क्या कहते हैं उसे? पन्ने को साफ करने के लिये। छोटा सा टुकड़ा ले। एक महीने के तीन हजार रुपये का एक नौकर, ऐसे तो बहुत नौकर हैं। पूरनचन्द गोदिका यहाँ आते हैं। आहा...हा...! वह चीज क्या है? आहा....हा...!

यहाँ तो सार में सार चीज... आहा...हा...! परपदार्थ को जानने में कोई नुकसान नहीं है, परन्तु परपदार्थ मेरा है और परपदार्थ को मैं कुछ कर सकता हूँ, उसकी व्यवस्था मैं कर सकता हूँ, मैं बहुत चतुर और समझदार हूँ तो व्यवस्थित काम मैं ले सकता हूँ, यह सब भ्रमणा, अज्ञान है।

मुमुक्षु : ....इस्तीफा दे देना पड़े।

उत्तर : रामजीभाई सब करते होंगे? ये (दूसरे भाई है), वहाँ मन्त्री हैं। रतिभाई 'राजकोट' आते। करोड़पति हैं। रतिभाई घीया जानते हो? करोड़ ऊपर है, पैसा बहुत पैदा करते हैं, कारखाना चलाते हैं। क्या करना? भाई! कोई कर सकता नहीं। प्रभु! तुझे मालूम नहीं। वह तो उसके काल से, उस जड़ का स्वकाल है तो जन्मक्षण-उत्पत्ति के काल में पर्याय होती है। दूसरा कहे कि मेरे से उत्पन्न होती है, वह भ्रमणा में जाते हैं। आहा...!

यहाँ तो कहते हैं, आ...हा...! **परपदार्थ को जानने से ज्ञान में उपाधि नहीं....** परपदार्थ को अपना मानना और परपदार्थ से मेरे में ठीक होगा और मैं परपदार्थ को ठीक करूँगा, यह भ्रमणा और अज्ञान है परन्तु परपदार्थ को जानना वह अज्ञान नहीं, क्योंकि जानने का अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। समझ में आया? जानना कोई नुकसानकारक नहीं। पर को जानना यह नुकसानकारक है, ऐसा माननेवाला स्व-परप्रकाशक अपना ज्ञान है, उसे मानते नहीं। आहा...हा...!

परपदार्थ को जानने से ज्ञान में उपाधि नहीं आ जाती। आहा...हा...! तीन

www.vitragvani.com

काल-तीन लोक को जानने से (उपाधि नहीं आ जाती)। तीन काल तीन लोक। सर्वज्ञ परमात्मा एक **समय में....** 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाये। 'क' (इतना बोलने में) असंख्य समय (जाये)। उसका एक समय। एक समय में परमात्मा अपने स्वरूप का साधन करके सर्वज्ञ हुए, वे तीन काल और तीन लोक और अलोक सबको एक समय में जानते हैं। जानना यह कोई उपाधि नहीं; जानना तो अपना स्वभाव है और वह पर को जानते नहीं, वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानते हैं। आहा...हा... !

अपनी पर्याय का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य है, वह प्रगट हुआ तो उसे जानते हैं। लोकालोक को जानते हैं — ऐसा कहना एक असद्भूत व्यवहारनय से कथन है। क्योंकि उसमें तन्मय नहीं। पर को जानने में तन्मय होकर नहीं जानते और अपनी पर्याय में उसका ज्ञान और अपना ज्ञान तन्मय होकर जानते हैं। आहा...हा... ! कठिन बातें, भाई ! नयी-नयी बातें (आती हैं)। यह तो अलग मार्ग है, बापू !

जगत के परिभ्रमण के दुःख.... भाई ! देखो न, वह लड़की। एक महीने की शादी। कल कहा था न ? सोने जाने की तैयारी थी, ऐसे ही कपड़े पहने थे। उसमें प्रायमर की अग्नि लग गयी। जल गयी, मर गयी। प्रेमचन्दभाई 'बीछिया' वाले (आये थे)। यहाँ नहीं है ? गये ? नहीं है। उनका पुत्र आया था। दो जन थे, ये लोग नहीं थे। चिपक जाये ऐसे कपड़े पहने थे। जला तो वहीं के वहीं जल गयी। आहा...हा... ! ये चीज तो देखो !

'बीछिया' वाली एक लड़की थी न ? नौ महीने की शादी। कुछ कमजोरी होगी। चलकर (बाहर) जा रही थी। बस ! सास (बैठी थी) उस पर सर रख दिया। मर गयी। देह छूट गया, एक क्षण में देह छूट गया। वह तो नाशवान चीज है। उसे तू (रखना चाहे) तो कैसे रहे ? एक समय भी नहीं रहे। तेरे लाख डॉक्टर ऊपर से नीचे उतार, डॉक्टर भी मर जाते हैं। आहा...हा... !

यहाँ का डाक्टर जीवनलाल (था) 'जैतपुर' (नरशी डॉक्टर का दामाद था)। वे भी ऑपरेशन करते थे। उतने में खून एकदम... ऑपरेशन के हथियार में कुछ सेप्टिक हो गया। देह छूट गया, डॉक्टर का देह छूट गया। आहा...हा... ! दूसरी एक बाई थी। मणिभाई की लड़की। अपने मणिभाई जेठालाल की लड़की, (उसका) एक दाँत निकाला उसमें

www.vitragvani.com

सेप्टिक हो गया, देह छूट गया... प्रेम-लगन किया था ना? वह मर गयी। ३९ साल की उम्र थी, ऐसा कोई कहता था। दाँत में... उसे क्या कहते हैं? सेप्टिक। अपनी भाषा क्या है? परु हो जाता है। अपनी भाषा लो न! परु हो गया, देह छूट गया। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, उसे जानने में दु:ख नहीं। जानना उपाधि नहीं। वह सब तो जड़ में है। जड़ में व्यवस्थित कर सकूँ, ध्यान रखूँ तो शरीर ठीक रहे, यह सब भ्रमणा है। बराबर ध्यान रखूँ तो ठीक रहे। आहा...हा...! **तीन काल, तीन लोक को जानने से सर्वज्ञता-ज्ञान की परिपूर्णता सिद्ध होती है।** आहा...हा...! पर को पूर्ण जाने, तब तो ज्ञान की परिपूर्णता सिद्ध होती है। **(वीतराग हो जाये उसे ज्ञानस्वभाव की परिपूर्णता प्रगट होती है)**। वीतराग हो जाये अन्दर में। आहा...हा...! जैसा वीतराग स्वरूप है, वैसा हो जाये तो ज्ञान का स्वरूप त्रिकाल को जाने ऐसा प्रगट हो जाता है। वह कोई उपाधि नहीं, वह तो अपना स्वभाव है, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द आता है।

(विशेष कहेंगे....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ शुक्ल-६, मङ्गलवार, दिनाङ्क ११-०७-१९७८
वचनामृत- ९८-१०० प्रवचन-३४

दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर। तू अपने को भूल गया है। यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। जीव को रुचि हो तो गुरुवचनों का विचार करे, स्वीकार करे और चैतन्य को पहिचाने॥ ९८॥

'वचनामृत' ९८ बोल है। कल ९७ चला। **दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर**। आहा...हा... ! यह आया। त्रिकाल ज्ञायक ऊपर यथार्थ दृष्टि कर। जो पूर्ण स्वरूप भगवान.... आहा...हा... ! ध्रुव अनन्त सम्पदा का नाम पूर्णानन्द प्रभु अन्दर (विराजमान है), एक समय की पर्याय के अलावा, आहा...हा... ! उसकी दृष्टि कर। ज्ञान में उसे ज्ञेय बना। भाषा संक्षेप में है लेकिन भाव (गम्भीर है)। है ?

दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर। दृष्टि यथार्थ कर कि दृष्टि का विषय जो भूतार्थ त्रिकाल सत्यार्थ वस्तु है, उस पर दृष्टि दे। दृष्टि का विषय पूर्णानन्द का नाथ बना। आहा...हा... ! दृष्टि का ध्येय, दृष्टिरूपी ध्यान की पर्याय का ध्येय त्रिकाली ज्ञायकभाव को बना। दृष्टि में पूर्ण वस्तु की श्रद्धा आ जाती है, परन्तु पूर्ण वस्तु, दृष्टि में आती नहीं। क्या (कहा) ? दृष्टि यथार्थ कर, उसका अर्थ कि वस्तु जो पूर्ण स्वरूप भगवान ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु अनादि ध्रुव प्रवाहरूप प्रभु की दृष्टि कर। दृष्टि करके श्रद्धा में सारी चीज है, उसे श्रद्धा में ले। वह चीज श्रद्धा की पर्याय में आती नहीं। वस्तु तो वस्तु में रहती है। समझ में आया ? नहीं आया ?

www.vitragvani.com

फिर से। दृष्टि है न? दृष्टि-श्रद्धा; उसका विषय सारी चीज पूर्ण (है)। पूर्ण चीज को प्रतीति में लेना। दृष्टि का विषय पूर्ण बनाकर दृष्टि के विषय में पूर्ण की प्रतीति करना। परन्तु वह दृष्टि है, वह पर्याय है; तो पर्याय में सारे द्रव्य की प्रतीति आयी परन्तु वस्तु, पर्याय में आयी नहीं। प्रेमचन्दजी! कभी सुना नहीं ऐसा? भैया! ...भाषा नयी है न! आहा...हा...!

दृष्टि है, वह श्रद्धा की पर्याय है। श्रद्धा की पर्याय में पूर्ण वस्तु की श्रद्धा (कर)। श्रद्धा में पूर्ण वस्तु ज्ञायक त्रिकाली आनन्द का नाथ अनन्त गुण की सम्पदारूप की श्रद्धा ले। दृष्टि का विषय पूर्ण को बना दे। परन्तु पूर्ण वस्तु की श्रद्धा हुई है किन्तु श्रद्धा की पर्याय में पूर्ण (वस्तु) आ जाती नहीं। पर्याय में कैसे आये? जितना सामर्थ्य है, ऐसी प्रतीति पर्याय में आ जाती है। आहा...हा...! अरे...! मूल चीज तो यह है। आहा...हा...!

कभी विचार किया है? भाई! अभी किसी ने रास्ते में चलते-चलते नीम की दो-तीन डाली तोड़ दी। यहाँ से दिखती थी। अरे...! ये लोग क्या करते हैं? अरे...! बापू! उसके एक-एक पत्ते में असंख्य जीव हैं। भाई! तुझे मालूम नहीं। ये नीम... नीम। उसका एक पत्ता है, एक पत्ते में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक जीव है। दिखता है वह शरीर है। दिखता है, वह तो शरीर दिखता है। अन्दर में आत्मा है, वह तो अरूपी एक-एक जीव भिन्न है। आहा...! अरे...! कोई विचार नहीं करते कि तेरे माँ-बाप मर गये तो कहाँ गये मालूम है? उसमें उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि तेरी माता को मालूम नहीं कि धर्म क्या चीज है? आहा...! कहाँ गये? कहाँ उत्पन्न हुए?

मुमुक्षु : कोई पत्र आया नहीं।

उत्तर : पत्र आया नहीं, परन्तु ऐसा तो पत्र आता है न? कि एक राजा के घर उत्पन्न होता है, एक गरीब के घर उत्पन्न होता है। वह पूर्व के कोई पुण्य, पाप से उत्पन्न होता है न? वह पत्र तो आया या नहीं? तो वर्तमान में जो प्राणी था.... आहा...हा...! जिसे माता.... माता कहकर बुलाता था। माता! आहा...!

एक सेठ था ना? 'अहमदाबाद' का बड़ा सेठ था। कस्तूरलाल चन्द नहीं? वह तो अभी है। बड़ा सेठ था। ताराभाई की माँ, ताराभाई की माँ उनकी माता गुजर गयी तो स्वयं

www.vitragvani.com

(बोलने लगे), अरे...रे...! मुझे 'तू' कहनेवाली चीज चली गयी। चाहे जितना बड़ा सेठ हो फिर भी (माता तो ऐसा बोले ना) कि बेटा! ये (कर), बेटा! तुम जाओ। वह आप नहीं कहती। माता पुत्र को आप कहे ? ऐसा बोलकर शोक करते थे। अरे...! दुनिया में मुझे तू कहकर, बेटा! तू यहाँ जा, ऐसा कहनेवाली चली गयी। लेकिन कहाँ गयी, उसका विचार है ?

मुमुक्षु : उसकी खबर आप कराते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो ऐसा विचार आया कि जिसके ऊपर तेरी प्रीति है, मेरी माता चली गयी। नौ महीना उनके पेट में रहा, मेरा पालन किया, ऐसा किया। आहा...हा...! वह देह छोड़कर कहाँ गयी होगी ? उस समय उसे धर्म की तो खबर नहीं थी। धर्म क्या चीज है ? राग से भिन्न चीज क्या है, यह तो सुनने भी नहीं मिलता। आहा...हा...! कितनों के तो पिताजी मर गये, उसकी भी खबर नहीं होती। पिताजी धर्म बिना चले गये। आहा...हा...! कहाँ उत्पन्न हुए होंगे ? ऐसी दुर्लभ चीज का तू लाभ ले ले। यह बात है।

यहाँ तो (कहते हैं), यथार्थ दृष्टि कर ले। जिस दृष्टि में पूर्णानन्द का नाथ ही प्रतीत में आता है। दृष्टि का विषय ही पूर्ण परमात्मा स्वयं (है)। आहा...हा...! परम-आत्मा कहो या परमस्वरूपी भगवान आत्मा कहो, उसे परमात्मा ही कहते हैं। भगवान कहते हैं, परमात्मा कहते हैं, सर्वोत्कृष्ट आत्मा ध्रुव कहते हैं, उसकी दृष्टि यथार्थ कर ले और ज्ञान यथार्थ कर ले। तेरी ज्ञान की पर्याय में दूसरी सब चीज को छोड़कर, आहा...हा...! ज्ञान की पर्याय को पर से समेटकर, अपनी पर्याय में पूर्ण स्वरूप है, उसे ज्ञेय बना ले। ज्ञेय बनाकर उसका ज्ञान कर ले। ज्ञान होने पर भी, तूने जिसे पूर्ण ज्ञेय बनाया, वह तेरी ज्ञान की पर्याय में आयेगा नहीं, परन्तु पूर्ण स्वरूप जितना है, उतना ज्ञान तो तेरी पर्याय में आयेगा। समझ में आया ? आहा...! एक शब्द में इतना भरा है।

अभी कहा न ? (समयसार) ८ वीं गाथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो। गजब बात है, प्रभु! आहा...! ऐसा तो कहा नहीं कि जो राग को प्राप्त हो। राग से प्राप्त होता है, यह बात है नहीं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो, यह बात भी रही नहीं।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! पण्डितजी! सबेरे आया था न? और निमित्त से आत्मा प्राप्त होता है, यह भी रहा नहीं परन्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र से जो प्राप्त हो, यह भी रहा नहीं। आहा...हा...!

जो पूर्णानन्द का नाथ (है), वह अपने ज्ञान-दर्शन को प्राप्त करे, यह व्यवहार हुआ, परन्तु दर्शन का विषय जो है, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव है। ऐसी बातें कभी सुनी न हो। विचार में तो (आये कैसे)? आहा...हा...! प्रभु चैतन्यचमत्कारी महाप्रभु है। पूर्णानन्द की जिसमें पूर्ण सम्पदा पड़ी है। जीव की स्वरूप की सम्पदा, अनन्ती सम्पदा जिसमें पड़ी है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : कमरे भरे हैं।

उत्तर : सम्पदा के तो कमरे (भरे हैं)। 'बहिन' की (भाषा में आयेगा), अतीन्द्रिय आनन्दादि अतीन्द्रिय गुण के तो कमरे (भरे हैं)। भगवान आत्मा में... कभी यह बात सुनी नहीं, वहाँ 'दिल्ली' में। धन्धा बड़ा करो, ऐसा करो। दुनिया सब करती है। यह कहा था, दुनिया देखे। बालक भी देखे कि यह बालक पढ़ता है, हम भी पढ़ते हैं। जवान होता है तो शादी करता है, तो हम भी शादी करते हैं। धन्धा, करते हैं, नौकरी करते हैं, हम भी करते हैं। ये तो क्या चीज है? आहा...हा...! तेरे करने योग्य जन्म-मरण रहित (होने की) चीज तूने कभी की नहीं। आहा...हा...!

दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर। एक बुलेटिन आता है ना? पत्र आता है न? उसमें भी बहुत अच्छा लिखा है। द्रव्य का आश्रय, द्रव्य का अनुभव... ऐसा लिया है। किसी ने लिखा है। बोलने में (ऐसा लिया है), अच्छा है। एक बुलेटिन पत्र आता है। आज आया है, उसमें लिखा है। आत्मा अनुभूति से अपने से प्राप्त होता है, कोई दूसरे से नहीं। यही अनुभूति करने लायक है, बाकी (कुछ) नहीं। अब लोग लिखते हैं, भले समझे बिना (लिखते हैं), लेकिन करने योग्य यह चीज है ऐसी बात (तो करते हैं)। आहा...हा...!

अरे...! प्रभु! तुम कौन हो? तेरी चीज तो पूर्ण अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप (है), प्रभु! रूप (अर्थात्) क्या? कि ज्ञान तेरे में है। उसमें दूसरा एक अस्तित्वगुण है। यह अस्तित्वगुण, ज्ञानगुण में नहीं आता परन्तु अस्तित्व का रूप आत्मा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। क्यों ? कि ज्ञान है। वह अपने से है, ऐसा अस्तित्व का रूप उसमें भी आता है। आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? समझे ?

अनन्त गुण हैं ना ? गुण। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, इस एक-एक गुण में दूसरे अनन्त गुण का रूप है। (एक) गुण (दूसरे) गुण में नहीं। क्योंकि 'द्रव्याश्रया गुणा' 'उमास्वामी' 'तत्त्वार्थ सूत्र' (में कहते हैं)। 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा' गुण के आश्रय से गुण नहीं है; गुण, द्रव्य के आश्रय से हैं। अपना जो ज्ञानगुण है, उसके आश्रय से अस्तित्व नहीं। अथवा अस्तित्व गुण के आश्रय से ज्ञानगुण नहीं परन्तु ज्ञानगुण में ज्ञान है, ऐसा अस्तित्वपना अपने गुण में है, अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। आहा... ! समझ में आया ? भाई ! आहा...हा... !

संख्या से अनन्त गुण हैं। आकाश के प्रदेश का अन्त नहीं। अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... कहाँ अन्त है ? अन्त हो तो पीछे क्या ? आहा...हा... ! यह लोक पूरा गया, असंख्य योजन में जगत (है), पीछे खाली... खाली... खाली आकाश है, तो आकाश कहाँ पूरा हो गया ? कहाँ पूरा हुआ ? आहा...हा... ! क्षेत्र का भी ऐसा कोई अलौकिक स्वभाव है ! नास्तिक विचार करे तो उसे ऐसा लगे, यह है... यह है.... जगत भरी हुई चीज है, उसका तो असंख्य योजन में अन्त आया, लेकिन पीछे खाली-खाली आकाश है। उस आकाश का अन्त कहाँ ? ओ...हो...हो... ! जिसका अन्त नहीं, इतने आकाश के प्रदेश। एक परमाणु जितनी जगह रोके उसका नाम प्रदेश (है)। ऐसा आकाश का अमाप क्षेत्र (है), उसके प्रदेश अनन्त (हैं)। उससे अनन्त गुणा गुण एक आत्मा में हैं ! आहा...हा... ! और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहा...हा... ! ऐसे आत्मा को दृष्टि में ले। आहा... ! और ऐसे आत्मा को ज्ञान में यथार्थ ले।

तू अपने को भूल गया है। आहा...हा... ! प्रभु ! तू क्या है ?—यह भूल गया है। या तो राग मैं हूँ, मैं पुण्य हूँ, यह वर्तमान एक समय की प्रगट पर्याय है, उतना मैं हूँ परन्तु मूल चीज भूल गया। जो मूल चीज है, त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, अनन्त गुण की सम्पदा और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप, ऐसा प्रभु को तू भूल गया और भूलने की चीज को तुमने याद किया। पुण्य और पाप, पुण्य-पाप का फल,

www.vitragvani.com

जिसका स्मरण करना भूल जाना है, उसे याद किया और जिसे याद करना था, उसे भूल गया। आहा...हा...!

तू अपने को भूल गया है। यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें.... आहा...हा...! तुझे बतलानेवाले गुरु मिले। प्रभु! तुझमें अनन्त गुण की सम्पदा का रूप (है)। आकाश की गहनता भी ख्याल में न आवे... आहा...हा...! काल की आदि कहाँ? और काल का अन्त कहाँ? वह ख्याल में न आवे। उसका ख्याल करनेवाला... क्षेत्र का अन्त नहीं, काल का अन्त नहीं, उसका ख्याल करनेवाला आत्मा-ज्ञान, उस ज्ञान का अन्त नहीं। आहा...हा...! भले एक शरीरप्रमाण हो परन्तु भिन्न चीज में इतनी सम्पदा पड़ी है। आहाहा...! अरे...! मुख्य जो कर्तव्य है, वह तो करता नहीं। दूसरे में घुस गया—ये करना... ये करना... ये करना। उसमें अपनी ओर का विचार करने का मुख भी मिला नहीं, फुरसत मिले नहीं। आहा...हा...!

तू अपने को भूल गया है। यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। कोई धर्म की ऐसी बात करते हैं (—ऐसा सोचकर दरकार नहीं की)। आहा...हा...! और फिर समझे नहीं तो बाहर की क्रियाकाण्ड में जुट जाये। फिर पूरा दिन फुरसत नहीं। ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा देना, कपड़े साफ रखने, निर्दोष आहार लेना... उसका भी अभी कहाँ ठिकाना है? आहा...हा...! कहीं का कहीं रुक गया। भगवान अपना स्वरूप पूर्णानन्द जो मूल पूँजी है, उसको तो याद करता नहीं, स्मरण में नहीं, श्रद्धा में नहीं। आ...हा...! तो कहते हैं कि गुरु बतलाते हैं तो तुझे उनकी दरकार नहीं। होगी, कोई बात करते हैं। (ऐसा सोचता है)। तेरी रुचि की चीज, व्यापार आदि की रुचि की चीज बतावे तो तो होंश से सुनता है। आहा...हा...! इसमें एक महीने में पाँच लाख पैदा होंगे। ऐसी कोई पड़ी है कि वहाँ कोई लेने जाता नहीं और तुम जो पहले जाओगे तो एक-एक महीने में पाँच-पाँच लाख (मिलेंगे)। तो आ...हा...! धूल में खुशी-खुशी (हो जाता है)। यहाँ कहते हैं कि तुझे बतलानेवाले मिले तो तूने दरकार की नहीं। करना तो तुझे है। आहा...हा...! है?

बतलानेवाले (गुरु) मिले तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। क्या चीज है, यह

www.vitragvani.com

बताया उसकी दरकार नहीं। **जीव को रुचि हो तो गुरुवचनों का विचार करे,....** आहा...हा... ! उसको यदि रुचि हो, चीज पोसाती हो। व्यापारी को जो माल पोसाता है, वह माल लेता है न ? ढाई रुपये की चीज ली और वहाँ सवा दो रुपये मिलते हो तो वह माल उसे पोसाता है ? ढाई रुपये का हजार मण लो तो वहाँ तीन रुपये कमायेंगे तो माल लेगा। समझ में आया ? आहा...हा... !

हम भी अन्तिम में (संवत्) १९६८ के माघ महीने में दुकान का माल लेने गये थे। दुकान चलती थी, हमारी दुकान अभी चलती है। माल लेने गये थे। हमने सौ बोरी चावल लिये थे। चावल की सौ बोरी ली थी। लेकिन वह माल ऐसा लिया था कि वहाँ ज्यादा भाव मिलेंगे। 'पालेज' में दुकान में ज्यादा भाव मिलेंगे और यहाँ कम भाव में मिलता है तो सौ बोरी लिये थे। १९६८ की माघ महीने की बात है। ६६ वर्ष पहले की बात है। यहाँ लेकर आये और सौ बोरी में सौ रुपये कमाये थे। उस दिन की बात है। १९६८। जैसे लेकर आये तो ग्राहक मिल गया। एक बोरी में एक रुपया ज्यादा मिला। आपको जिस भाव में माल पड़ा हो उससे चार आना ज्यादा लो। सौ बोरी हमें दो। माल पोसाता है, वह लेते हैं या नहीं ?

वैसे तुझे आत्मा पोसाता है ? तुझे राग पोसाता है, निमित्त पोसाता है, बाहर के साधन स्त्री, कुटुम्ब को पोषण करना तुझे पोसाता है। आहा...हा... ! हैरान होकर, दुःखी होकर भी उसका रक्षण करना (पोसाता है)। हैरान होकर (करता है)। आहा...हा... ! अरे...रे... ! आहा...हा... !

मुझे तो कल रात को यह विचार बहुत आते थे कि पिताजी कहाँ गये होंगे ? माता कहाँ गयी होगी ? बापू ! तू तो कहता था कि मेरी माँ है, मेरे पिताजी हैं, भाई है। हमारे बड़े भाई थे, बहुत होशियार थे। उनसे छोटे 'खुशालभाई'। मुझ से छोटा (भाई) तो २२ वर्ष की उम्र में (चल बसा)। दो साल की शादी थी, शादी के दो वर्ष बाद गुजर गये। छोटी उम्र में। शरीर बहुत अलमस्त था। (संवत) १९७१ में शादी हुई और १९७३ में गुजर गया। १९७१ की साल। हमारी दीक्षा १९७० में हुई। मेरी दीक्षा के पहले उसकी सगाई की थी। उस समय मेरी हाजरी थी। फिर १९७१ में शादी हुई और १९७३ में दो साल

www.vitragvani.com

(के बाद गुजर गये)। शरीर 'अलमस्त' था। ऐसा कोई बुखार आया, आठ दिन में गुजर गये। आहा...हा...!

यहाँ तो यह विचार आया कि अरे...रे...! वह आत्मा है या नहीं ? भाई! तूने दुर्लभता का विचार किया है कि वह कहाँ होगा ? आहा...हा...! कोई पक्षी बहुत पास आते हैं न ? खिसकोली (गिलहरी) बहुत आती है तो विचार आता है कि रोज क्यों मेरे पास आती है ? मन्दिर में एक खिसकोली (गिलहरी) बहुत आती है। वहाँ उत्पन्न हुई है, पूरा दिन घूमती है। पूरा दिन घूमती है। उस पर से विचार आया। खिसकोली समझते हैं ? क्या कहते हैं ? गिलहरी। पूंछ लम्बी होती है। आहा...हा...! इसका आत्मा कौन होगा ? उसे कुछ मालूम नहीं। आहा...हा...! अभी तो यह शरीर मेरा शरीर (लगता है)। ओ...हो...हो...!

यहाँ तो तेरा आत्मा कैसा है, उसका यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान कर ले। तेरी (बात) कर। पर का तो जैसा भाव हुआ होगा, ऐसा हो गया। आहा...हा...! कहो, कान्तिभाई! गोर्धनदास भाई कहाँ गये ? रामजीभाई कहाँ गये ? कभी विचार किया है ? और ये और मर गया तो वह कहाँ गया, इसलिए रोता नहीं, हमारी अनुकूलता जाती है, इसलिए रोता है। तुम भले नरक में गये, हमें क्या ? आहा...हा...! नेमचन्दभाई! पिताजी गुजर जाये, कोई गुजर जाये तो रोये। उसका अर्थ यह है कि हमारी अनुकूलता में मदद करते थे, वह चले गये। लेकिन वे मरकर कहाँ गये, इसलिए रोते हैं ? आपके पिताजी को तो बहुत प्रेम था। उनको बहुत प्रेम था। बहुत आते थे, बहुत प्रेम था। आहा...हा...! इनके पिताजी को बहुत प्रेम था, यहाँ आते थे। आहा...हा...! प्रभु! करना तो यह है, भाई! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि **जीव को रुचि हो तो गुरुवचनों का विचार करे,....** सर्वज्ञ परमेश्वर अथवा सन्तों के जो वचन हैं, यदि उसमें रुचि हो तो उस सम्बन्धी विचार करे, परन्तु रुचि नहीं हो तो विचार करे नहीं, छोड़ दे। आहा...हा...! **स्वीकार करे,....** रुचि हो तो स्वीकार करे **और चैतन्य को पहचाने**। आहा...हा...! भगवान जानन स्वभाव, आनन्द स्वभाव, चैतन्य स्वभाव को पहचाने। राग, निमित्त तो दूर रहे। एक समय की पर्याय है, उसकी पहचान तो दूर रही। लेकिन उस समय की पर्याय चैतन्य को पहचाने। आहा...हा...! ऐसी चीज है। **चैतन्य को पहचाने**। ९८ (पूरा हुआ) यह आया अब, देखो! ९९ आया।

www.vitragvani.com

यह तो पक्षी का मेला जैसा है। इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायेंगे। आत्मा एक शाश्वत है, अन्य सब अध्रुव हैं; बिखर जायेगा। मनुष्य-जीवन में आत्मकल्याण कर लेना योग्य है॥ ९९॥

यह तो पक्षी का मेला जैसा है। स्त्री, पुत्र... आहा...हा... ! पुत्र की स्त्री, आहा...हा... ! लड़का, लड़के का लड़का, उसका लड़का.... ८०-८० साल की उम्र हो तो तीन-चार पीढ़ी होती है। पुत्र का पुत्र, पुत्र का पुत्र। बैठा हो, ७५-१०० कुटुम्ब के सदस्य हो तो बुलाये।

मुमुक्षु : लीली वाडी कहे।

उत्तर : धूल में लीली वाडी (नहीं) । सूख गयी है। तेरे पुण्य सूख गये, जल गये, भाई ! आहा...हा... ! लोग ऐसा कहे, लीली वाडी रखकर मर गया। लीली वाडी अर्थात् कुटुम्ब-कबिला अच्छा छोड़कर (गया) । उसकी वाडी तो सूखकर मर गया है। लेकिन कौन पूछता है ? कि मेरे पिताजी गये, मेरे भाई साथ में थे, हम दोनों को एक-दूसरे के साथ प्रेम था, वे देह छोड़कर कहाँ गये ? आत्मा तो नित्य है। आत्मा का नाश तो होता नहीं— तो है तो सही, तो कहाँ है ?

ये तो पक्षी का मेला है, प्रभु ! शाम का पेड़ पर पक्षी इकट्ठे होते हैं। पेड़ होता है न ? 'बढ़वाण' में हम जहाँ ठहरे थे। पीछे बड़ा पेड़ था। सैंकड़ों पक्षी आये। लेकिन शाम को आये, सबेरे चले जाये। किसी का कोई सम्बन्ध नहीं, अपने रास्ते पर चले जाते हैं। वैसे यह पक्षी का मेला है। आहा... ! भाई, बहन, पुत्री... आहा...हा... !

यह तो पक्षी का मेला जैसा है। पक्षी जहाँ से आते हैं वहाँ कोई, तुम कहाँ से आये-दूसरा पूछता नहीं। पूछता है ? बड़ा पेड़ होता है ना ? पेड़। हम 'बढ़वाण' में ठहरे थे। वहाँ पीछे एक मकान था। पीछे मकान खाली और बड़ा पेड़ था। शाम को बहुत पक्षी आते थे। कोई बगुले, कौए, तोता ऐसे... ऐसे ढेर सारे। लेकिन कोई पूछता है कि तुम कहाँ से आये हो ? और सबेरे होता है तो कोई पूछता है कि मैं यहाँ-से जाऊँ ? पूछता है ? अपने-

www.vitragvani.com

अपने रास्ते पर चले जाते हैं। ऐसे यहाँ जन्म लेकर दुनिया में कुटुम्ब में आदमी आता है, उसे पूछते हैं, तुम कहाँ से आये हो? और मर जाते हैं तो पूछते हैं कि तुम कहाँ जाओगे? आहा...हा...!

यह तो पक्षी का मेला जैसा है। आहा...हा...! **इकट्ठे हुए हैं, वे सब अलग हो जायेंगे।** आहा...हा...! अकेला प्रभु आत्मा आया, अकेला अपना परिणाम करता है और अकेला परिणाम करके परलोक में चला जाता है। आहा...हा...! **सब अलग हो जायेंगे। आत्मा एक शाश्वत है,....** आहा...हा...! भगवान तो शाश्वत है, वह कहाँ जाये? भविष्य में भी अनन्त काल रहेगा।

यदि दृष्टि राग और पुण्य या पर के प्रेम में हो तो भविष्य में मिथ्यात्व में रहेगा। वह तो अनादि चीज है। अनादि-अनन्त वस्तु है। रहेगा तो रहेगा ही, परन्तु कहाँ रहेगा? जिस पर प्रेम है, राग पर, पुण्य पर, पर ऊपर (प्रेम है) तो वहाँ विकार में रहेगा, आ...हा...! दुःखी होकर रहेगा; और यदि आत्मा पर प्रेम हो गया तो भविष्य में आत्मा में रहेगा; तो क्रमशः राग का नाश होकर केवलज्ञान हो जाएगा। आहा...हा...! समझ में आया?

आत्मा एक शाश्वत् है,.... बाकी सब मेला तो अशाश्वत्-क्षणभंगुर है। आहा...हा...! एक स्त्री मर जाती थी और मरते-मरते पति को कहा, तुम दूसरी शादी करना, क्योंकि तुम्हारी प्रकृति ठीक नहीं, तो तुमको अकेला नहीं पड़ेगा। स्त्री मरते-मरते उसे कह गयी। दूसरी स्त्री करना। पैसे बहुत नहीं थे, पैसे साधारण थे और उम्र ५३ वर्ष की थी। ५३ वर्ष की। हमारे घर की अन्दर की बात है। हमारे शिवलालभाई थे न? भागीदार रिश्तेदार थे। उसकी स्त्री मर गयी तो उसे ऐसा कह गयी। फिर शादी करने के लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु ५३ साल की उम्र, उसे कौन दे? उस समय शरीर भी साधारण था और पूँजी में भी कोई विशेष पूँजी नहीं थी। दस-पन्द्रह हजार रुपये होंगे। ऐसे ही फिर गुजर गये। हाय... हाय...! अरे...रे...! स्त्री कहकर गयी थी। मरण के समय फिर (बोलते थे), तुम ये नहीं करते हो, ये तुम नहीं करते हो, सेवा करते नहीं, मेरे पास बैठते नहीं। ऐसी कल्पना। आहा...हा...! झगड़े में जिन्दगी चली जाये। आहा....!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुम तो शाश्वत हो न! **अन्य सब अध्रुव हैं;....** आहा...हा...!

www.vitragvani.com

'प्रवचनसार' में आता है न? ध्रुव तो मैं हूँ, बाकी सब अध्रुव है। आहा...हा...! १९२। आहा...हा...! कायम रहनेवाली चीज तो मैं एक हूँ; बाकी तो सब चीज, पर्याय भी अध्रुव है तो फिर राग और परचीज की तो क्या बात करनी? आहा...हा...! प्रभु नित्य सम्पदावाला मैं हूँ और मेरी पर्याय भी नाशवान है, क्षणिक है, अवस्था है, विचार है, लेकिन वह तो एक समय रहता है, दूसरे समय दूसरी (अवस्था) होती है। आहा...हा...! ध्रुव तो मैं एक चीज हूँ। बाकी सब अध्रुव है। आहा...हा...!

अन्य सब अध्रुव है;.... दो आया न? स्व और पर। दुनिया में एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं। मैं भी हूँ, अन्य भी है। अन्य आत्मा भी है और अन्य रजकण / पुद्गल भी है। एक ही आत्मा सर्वव्यापक है, वेदान्त कहते हैं, ऐसा है नहीं। मैं एक शाश्वत् हूँ, **अन्य सब अध्रुव है; बिखर जायेगा।** आहा...हा...! ये मेला छूट जायेगा, मैं अकेला रहूँगा। मेरे साथ परद्रव्य का कोई सम्बन्ध है नहीं। लड़के पिताजी... पिताजी... करे, परन्तु पिताजी मरकर कहाँ गये? पिताजी आप मरकर कहाँ जाओगे, तुम्हारा कुछ नक्की किया? ऐसा किसी ने पिताजी को पूछा? मालूम नहीं है कि ये संयोगी चीज है तो संयोग तो छूट जायेगा। और आत्मा तो अन्दर है। और कहते भी ऐसा ही है न कि जीव चला गया। ऐसा कहते हैं कि जीव मर गया? नब्ज हाथ में नहीं आती। आत्मा चला गया लगता है। आत्मा चला गया तो आत्मा है न? लेकिन किसे विचार करना है? चला गया, जीव निकल गया, भैया! देह पड़ा है, पिंजर पड़ा है परन्तु गया वह कहाँ गया? कैसा था? कैसा परिणाम किया? इसका तूने विचार किया? आहा...हा...!

मुमुक्षु : सम्बन्ध ही नहीं।

उत्तर : कोई सम्बन्ध नहीं। बाहर के सम्बन्ध ने मार दिया। ये मेरा पुत्र, मैंने यह किया, वह किया। लड़की और लड़के की बहू.... आहा...हा...!

बिखर जायेगा। मनुष्य-जीवन में आत्मकल्याण कर लेना योग्य है। एक मनुष्य-जीवन मिला, इसमें तो आत्मा का कल्याण करना, वही एक करने योग्य है, बस! बाकी सब थोथा, धुँआ है। आहा...हा...! **मनुष्य-जीवन में आत्मकल्याण कर लेना योग्य है।** आहा...हा...! निवृत्ति लेकर अपने स्वरूप की ओर झुकना और उस ओर अन्तर में आत्मा का लाभ लेना, वह कल्याण का कारण है। आहा...हा...! ९९ (बोल पूरा) हुआ।

www.vitragvani.com

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ' — इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये' इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है॥ १००॥

१००। **मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ...** आत्मा जो है वस्तु, वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है। वह तो एक समय की पर्याय में कर्म और राग का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वस्तु के साथ कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! वस्तु है न? वस्तु है न? तत्त्व है न? पदार्थ है न? है तो वह पूर्ण रूप से भरा पड़ा तत्त्व अनादि से है। अकेला ज्ञानरस, ध्रुवरस, शान्तरस, आनन्दरस... आहा...हा...! यह चीज तो मुक्तस्वरूप ही है। यह १४-१५ गाथा में कहा न?

जो कोई अपने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट 'पस्सदि' आत्मा (का) राग से सम्बन्ध नहीं, शरीर से सम्बन्ध नहीं, विस्ता परमाणु से सम्बन्ध नहीं और विशेष भी नहीं, सामान्य है। अबद्धस्पृष्ट, अनन्य। अन्य-अन्य नारकी गति आदि में नहीं और पर्याय में जो कम-बेसी पर्याय होती है, वह भी नहीं। मैं तो सामान्य अबद्धस्पृष्ट मुक्तस्वरूप हूँ। अबद्ध कहते हैं वह तो राग के सम्बन्ध बिना की (चीज है)। ऐसे (अस्ति से) कहो तो मुक्तस्वरूप (है)। जो मुक्तस्वरूप आत्मा अन्दर एकरूप त्रिकाल है, उसे जो 'पस्सदि' नाम देखते हैं, अनुभव करते हैं, उसने जैनशासन देखा, उसने जैनशासन देखा। **पस्सदि जिणसासणं सव्वं** ऐसे १५ वीं गाथा (समयसार) में शब्द हैं। आहा...हा...!

जिसने भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु... आहा...हा...! 'स्वामी नारायण' में आटा लेने आये तब बोले, सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसा बोले। हमारे वहाँ 'बोटाद' के पास 'स्वामी नारायण' के घर थे। स्वामी नारायण के साधु होते हैं न? वे बोले। सच्चिदानन्द। लेकिन सच्चिदानन्द है कौन? (माने ऐसा कि) 'स्वामी नारायण' है, वह हमारा कर्ता है, वह हमारा ईश्वर है, उसकी हम भक्ति (करते हैं)। कौन कर्ता-फर्ता? चीज है, उसका

www.vitragvani.com

करनेवाला कौन ? नहीं है, उसका करनेवाला कौन ? आहा...हा... ! मोढ़ के घर हैं। अभी एक मोढ़ आये थे। अपासरा के सामने (रहते) हैं, बड़े गृहस्थ हैं। वहाँ एक लाख रुपये दिये। हॉस्पीटल की वहाँ (दिये)। हिम्मतभाई गाँधी वे सब पैसे इकट्ठे करके करते हैं न ? हिम्मत गाँधी नहीं ? अपासरा के सामने हैं, उसके पिताजी गुजर गये हैं। उन्होंने वहाँ हॉस्पीटल में लाख रुपये दिये हैं। यहाँ आये थे, बेचारे आये थे। उसे ऐसा लगे कि लाख रुपये दिये तो, आहा...हा... ! लोग प्रशंसा करे कि आहा...हा... ! लेकिन लाख (रुपये) तो जड़ की चीज है। आहा...हा... !

पैसा मेरा, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। जीव की अजीव चीज मानना और अजीव को जीव मानना, अपना है—ऐसा मानना... लक्ष्मी तो जड़ है, अजीव है, मिट्टी है, वह अपनी है—ऐसा मानना और अपनी मानकर किसी को दान में देना, वह भी मिथ्यात्व है। अपनी मानी है। चीज तो पर है। चीज है, उसमें मुझे बहुत राग है तो मैं दान देकर राग मन्द करता हूँ। वह चीज तो उसके कारण जाती है। जड़ चीज तो उसके कारण रहती है और क्षेत्रान्तर होकर जाती है तो उसके कारण से जाती है। क्योंकि उसमें क्रियावती नाम की शक्ति है। एक रुपया या क्या कहते हैं ? नोट। नोट ऐसे जाये, ऐसे जाये तो वह नोट उसकी क्रियावतीशक्ति के कारण जाती है। मैं हाथ से देता हूँ, इसलिए चलता है-ऐसा है नहीं। ऐसी बातें (हैं)।

डॉक्टर पैसे बहुत खर्च करते थे न ? 'कलकत्ता' वाले आये थे न ? 'गांगुली' ब्रह्मचारी है, शादी नहीं की है और आजीवन ब्रह्मचारी रहना है। पैसे बहुत कमाते हैं, बाहर में इज्जत बड़ी है। लाखों पैदा होते हैं, सब दे दे। कोई जीवदया, कोई गरीब (को देना)। उसे ऐसा हो जाये कि पैसा देने में (धर्म होता है)। पैसा मेरा मानकर देना, वही महाभ्रमणा है। थोड़ा खटका होगा ऐसा लगा। 'पालीताना' साथ में आये थे न ? कोई गरीब माँगे तो देते थे। किसी को दिये थे। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं कि वह पैसा जड़ है, अजीव है, अजीवतत्त्व है और उसके द्रव्य-गुण-पर्याय उसमें है और वह पर्याय पलटकर जाती है तो उसकी पर्याय से जाता है। तूने दिया इसलिए जाता है ऐसा है ही नहीं। आहा...हा... ! ऐसा सुनने मिले नहीं, वह कब निर्णय करे ? अरे... ! ऐसे ही भ्रमणा में (जीवन चला जाता है)।

www.vitragvani.com

यहाँ कहते हैं,.... आहा.... ! **मैं तो अनादि-अनन्त मुक्त हूँ।** अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। मुक्त होगा, वह तो पर्याय में मुक्त होगा; मेरा द्रव्य तो अनादि-अनन्त मुक्त ही है। आहा...हा... ! समझ में आया ? मैं चीज हूँ न ! वस्तु हूँ न ! तत्त्व हूँ न ! तो तत्त्व है, उसकी शुरुआत कहाँ से ? है उसकी शुरुआत कहाँ से ? है वह तो है ही। और है उसका अन्त कहाँ ? उसका अन्त कहाँ ? है उसका अन्त कहाँ ? है वह तो है ही। अनादि-अनन्त मैं तो हूँ। शुरुआत नहीं, अन्त नहीं। अनादि; आदि नहीं, अन्त नहीं-विनाश नहीं। ऐसा मैं मुक्तस्वरूप अन्दर हूँ। आहा...हा... ! ऐसी दृष्टि करना, यह कल्याण का कारण है। आहा...हा... ! और व्यवहार करते-करते ऐसी दृष्टि होगी, वह भी मिथ्यात्व का भाव है। बहुत सूक्ष्म बात है।

इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से.... इस प्रकार अर्थात् ? मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ, इस प्रकार। आहा...हा... ! मैं हूँ, आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द आदि सम्पदा से भरा पड़ा प्रभु। आदि नहीं, शुरुआत नहीं, अन्त नहीं —ऐसा अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। **इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर....** इस प्रकार से शुद्ध आत्मद्रव्य पर **दृष्टि देने से....** शुद्धपर्याय प्रगट होती है। उसमें दृष्टि देने से मोक्षमार्ग प्रगट होता है। आहा...हा... ! वर्तमान में तो सब की विवाद है कि व्यवहार भी कथंचित् उपादेय है। उपादेय अर्थात् ? पाप से तो पुण्य ठीक है न ! लेकिन वह ठीक कहा, किस अपेक्षा से ? आत्मा के लिये तो दोनों बन्धन के कर्ता हैं। आहा...हा... !

'प्रवचनसार' ७७ गाथा में तो ऐसा कहा कि कोई भी प्राणी, शुभ-अशुभ दो में भेद करते हैं, विशेष करते हैं कि शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है (तो) 'हिंडदि घोर संसार' घोर संसार नरक और निगोद में परिभ्रमण करेगा। 'प्रवचनसार' ७७ गाथा है। समझ में आया ? आहा...हा... ! दो में भेद करेगा कि यह पुण्य-शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, दो में विशेष (करेगा), है सामान्य, दोनों बंध का कारण, दुःख का कारण है। उसमें विशेष अर्थात् भेद करेगा तो 'हिंडदि घोर संसार' समझ में आया ? 'प्रवचनसार' भगवान की दिव्यध्वनि है न ? उसकी ७७ गाथा है। 'परमात्मप्रकाश' में भी है।

'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो' शुभ-अशुभभाव में कोई फर्क नहीं है,

www.vitragvani.com

दोनों बंध का कारण, दु:ख का कारण, आकुलता का कारण (है)। '**ण हि मण्णदि**' न माने। '**एवं णत्थि विसेसा**' पुण्य और पाप दो में कोई विशेष है नहीं, दोनों बंध का कारण, दु:ख है। आहा...हा...! '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' घोर संसार में '**गोहसंछण्णो**' मिथ्यात्व से ढका हुआ वह प्राणी, घोर संसार में भटकेगा। 'प्रवचनसार' भगवान की दिव्यध्वनि। यह ज्ञानप्रधान कथन है। समझ में आया?

शुभ और अशुभभाव दो। दो में जो विशेष करेगा कि शुभ ठीक और अशुभ अठीक, ऐसा विशेष (करेगा)। दोनों सामान्य दु:ख का कारण और बंध का कारण है, वह अपना स्वरूप ही नहीं और उससे अपने में लाभ नहीं, ऐसा नहीं मानकर शुभभाव करके मुझे कुछ लाभ होगा—ऐसा शुभ-अशुभ में जो भेद करता है, विशेष मानता है (वह) '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**'। ७७ वीं गाथा है। आहा...हा...! बहुत कठिन काम। वहाँ तो लोग ऐसा कहते हैं कि जो पाप में डूबे हुए हैं, उसे आप सीधा पुण्य को बंध का कारण और हेय कहो तो वह बेचारे थोड़ा पाप से तो बचे। लेकिन वास्तविक पाप तो मिथ्यात्व है। मूल पाप तो मिथ्या श्रद्धा पाप है। उस पाप से बचने के लिये तो यह बात है। आहा...हा...! बेचारे शुभ तो करते हैं। ब्रह्मचर्य पाले, व्रत पाले, ये करे, ये करे, ये करे... परिग्रह की मर्यादा करे, कम रखे—ऐसा कुछ करते हैं (तो) पाप से तो बचे। लेकिन वास्तविक पाप तो मिथ्यात्व है। तो शुभ और अशुभ में भेद करनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। आहा...हा...! लोगों को यह रुचता नहीं। 'सोनगढ़' का एकान्त है, एकान्त है—ऐसा लोग कहते हैं।

प्रभु! यह तो भगवान की वाणी है न! यह तो भगवान की पुकार है न! आ...हा...! 'कुन्दकुन्दाचार्य' की तो यह वाणी है कि शुभ-अशुभ सामान्य दोनों बंध का कारण है, बिल्कुल धर्म का कारण नहीं। धर्म तो नहीं परन्तु धर्म का कारण भी नहीं है। उसमें जो भेद करता है कि यह शुभ करता है, वह अच्छा है, अच्छा है। कुछ शुभ करता है, वह अच्छा है—ऐसा भेद करता है, वह घोर संसार में मिथ्यात्व के कारण से भटकेगा। नरक और निगोद में वह भटकेगा। आहा...हा...! **इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से...** किस प्रकार? मैं अनादि-अनन्त एकरूप शुद्ध ध्रुव हूँ, मुक्त हूँ। **इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य परदृष्टि देने से शुद्ध पर्याय....** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

उस पर दृष्टि देने से दृष्टि (श्रद्धा) ज्ञान, चारित्र प्रगट होता है। कोई पुण्य की क्रिया, व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

द्रव्य तो मुक्त है,.... वस्तु तो तत्त्व है न? पदार्थ है न? भले चाहे तो अनन्त गुण हो, परन्तु वस्तु तो एक है न? और वह चीज तो अनादि-अनन्त एकरूप चीज भिन्न है, मुक्त ही है। भगवान वस्तु है या नहीं? द्रव्य मुक्त न हो तो द्रव्य तो अमुक्त हो। पर के साथ सम्बन्ध (हो जाये तो) द्रव्य का अभाव हो जाये। पर्याय के साथ सम्बन्ध है तो पर्याय का अभाव हो जाये, मलिन हो जाये, परन्तु द्रव्य का सम्बन्ध यदि पर के साथ हो जाये तो द्रव्य का अभाव हो जाये। आहा...हा...! क्या कहा?

पर्याय जो है, वह राग का सम्बन्ध करती है तो मलिन हो, परन्तु पर्याय राग से मलिन हुई तो क्या द्रव्य मलिन हो गया? द्रव्य तो शुद्ध त्रिकाली एकरूप वस्तु है। आहा...हा...! चाहे तो निगोद में हो, चाहे तो सर्वार्थसिद्ध में हो, चाहे तो सिद्ध में (हो) त्रिकाली द्रव्य जो है, वह तो शुद्ध निर्मल ही है। आहा...हा...! वह तो मुक्तस्वरूप ही है।

अस्ति है, सत्तावाली चीज है, तत्त्व है, वह तो मुक्त ही है। वस्तु है, है, है वह तो है में ही है। बंध में जो नहीं है, उसमें वह है ही नहीं। आहा...! रागादि बंध में तो वह है ही नहीं। आहा...! समझ में आया? आहा...! **द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये।** आहा...हा...! क्या कहते हैं? मुक्तस्वरूप है—ऐसी दृष्टि हुई तो मुक्ति की पर्याय होनी हो तो हो, पर्याय पर उसका लक्ष्य, जोर नहीं; जोर तो द्रव्य पर है। आहा...हा...!

मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये। आहा...हा...! वह तो मुक्त द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई तो मुक्ति की पर्याय आयेगी ही। परन्तु यहाँ कहते हैं कि आनी है तो आयेगी, उसका लक्ष्य पर्याय पर नहीं है कि ऐसी पर्याय आयेगी। उस पर लक्ष्य नहीं, जोर यहाँ है। आहा...! बहुत सूक्ष्म (है)। आहा...! **मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये, इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन....** इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन। (इस) आलम्बन के कारण जोर है। आहा...हा...! जिसका द्रव्य पर आलम्बन है, बस! पर्याय आयेगी तो आयेगी, उसमें मुझे क्या? मैं तो यहाँ हूँ। आहा...हा...! व्यवहार का या निमित्त का आलम्बन तो छूट गया किन्तु निर्मल पर्याय का आलम्बन नहीं। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भगवान पूर्ण स्वरूप अस्ति तत्त्व है, मौजूदगी चीज है, हयातीवाली सत्ता चीज, सत्तावाली चीज है। चीज है, उसकी मुक्ति क्या? वह तो मुक्तस्वरूप ही है। आहा...हा...! ऐसी चीज का आलम्बन लेने से मुक्ति की पर्याय आनी हो तो आये। अर्थात् कि आयेगी ही। उसका अन्दर पर्याय पर जोर नहीं है - ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षा.... आहा...हा...! मुक्ति की पर्याय के प्रति भी उपेक्षा। आहा...हा...! ऐसी बात! **द्रव्य के प्रति आलम्बन...** त्रिकाली ध्रुव के प्रति ध्येय, आलम्बन कभी छूटता नहीं, तो मुक्ति की पर्याय होगी ही, तो हो। मैं तो कहाँ पर्याय में आनेवाला हूँ? मैं तो मुक्त हूँ वहाँ हूँ। आहा...हा...! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़े और धर्म तो अपूर्व चीज होती है न, भैया?

अपूर्व अर्थात् अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... बीत गया, फिर भी एक सेकण्ड भी धर्म किया नहीं तो वह चीज तो कोई अपूर्व (है) साधारण बात (नहीं)। आहा...हा...! **आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।** आहा...हा...! वस्तु त्रिकाली का आलम्बन लेने से शुद्ध मोक्ष की पर्याय तो उत्पन्न होगी ही। आहा...हा...! **उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।** आहा...हा...! मोक्ष की इच्छा करने से मोक्ष नहीं मिलता है- ऐसा कहते हैं। उस इच्छा को भी तोड़कर द्रव्य का एकदम पूर्ण आलम्बन लेने से शुद्धपर्याय पूर्ण होगी। वहाँ जोर तो द्रव्य की दृष्टि पर है, द्रव्य पर जोर है, उसका मोक्ष होगा, दूसरे का मोक्ष होगा नहीं।

(विशेष कहेंगे.....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-७, बुधवार, दिनाङ्क १३-०७-१९७८
वचनामृत- १०१-१०३ प्रवचन-३५

सम्यग्दृष्टि को ऐसा निःशंक गुण होता है कि चौदह ब्रह्माण्ड उलट जायँ तथापि अनुभव में शंका नहीं होती ॥१०१॥

'वचनामृत' १०१ बोल। १०० बोल हो गये न? **सम्यग्दृष्टि को ऐसा निःशंक गुण होता है....** सम्यग्दृष्टि को। सम्यग्दृष्टि का अर्थ—पूर्ण नित्य ध्रुव स्वभाव-सन्मुख होने से उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, अतीन्द्रिय आनन्द आदि स्वाद आया, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आत्मा में जो अनन्त-अनन्त अपार और अमाप शक्तियाँ-गुण हैं, उन सबका, द्रव्य का आदर करने से, द्रव्य का स्वीकार, निर्विकल्प दृष्टि से स्वीकार करने से पर्याय में जितनी संख्या गुण की है, उन सबका एक अंश व्यक्त / प्रगट होता है। आहाहा...! उसको यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

जिसको आत्मा चिदानन्द शुद्ध पूर्ण का अन्दर में पता लग गया, अन्तर निर्विकल्प दृष्टि से, व्यवहार के विकल्प से रहित, अन्तर निर्विकल्प दृष्टि से, निर्विकल्प चीज का जिसने अनुभव किया, वह सम्यग्दृष्टि (है)। इसके बिना सम्यग्दृष्टि होता नहीं। बाह्य त्याग चाहे जितना करे, उससे कोई सम्यग्दृष्टि नहीं। बाह्य त्याग तो है ही, आत्मा में बाह्य का तो त्याग ही है। अनादि से उसमें बाह्य चीज तो है नहीं। आहाहा...! बाह्य का ग्रहण करना और बाह्य को छोड़ना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया?

त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। आत्मा में अनादि से एक ऐसा गुण है कि परद्रव्य का

www.vitragvani.com

त्याग और परद्रव्य का ग्रहण, उससे तो रहित ही है। आहा...हा... ! तो परद्रव्य का थोड़ा त्याग करके माने कि हम त्यागी हैं, हम दूसरे से आगे बढ़ गये हैं, वह मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा... ! समझ में आया ?

यहाँ तो पूर्णानन्द के नाथ में, जो राग का सम्बन्ध जो पर्याय में था, उसकी दृष्टि, द्रव्य का आश्रय करके राग की एकता टूट गई और स्वभाव में एकता हो गई तो उसमें अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति की व्यक्तता / प्रगटता, अनन्त गुण की प्रगटता / व्यक्त अंश होता है। आहा.... ! यह तो अभी चौथे गुणस्थान की बात है।

ऐसे **सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा निःशंक गुण होता है....** अन्तर में निःशंक अनुभव में होता है कि **चौदह ब्रह्माण्ड उलट जाये....** सारी दुनिया पलट जाये, सारी दुनिया विरुद्ध में आ जाये। समझ में आया ? **तथापि अनुभव में शंका नहीं होती।** आहा... ! जो चीज, वस्तु जो परमब्रह्मस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का धाम, सुधा अर्थात् अमृत का सागर, जिसके तल में अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है, उसका अनुभव हुआ, उसे अनुसरते हुए सम्यग्दर्शन हुआ, उसका नाम सम्यग्दृष्टि (है)। उसे ऐसी निःशंकता होती है (कि) चौदह ब्रह्माण्ड में फेरफार हो जाये तो भी शंका नहीं होती, अनुभव में शंका नहीं होती। ये बड़े-बड़े त्यागी हैं और ये ऐसा कहते हैं कि तो उसमें कुछ होगा या नहीं ? (ऐसी) शंका बिल्कुल रहती नहीं। समझ में आया ? बहुत परीषह सहन करते हैं, उपसर्ग सहन करते हैं, स्त्री-कुटुम्ब का त्यागी है तो उसमें कुछ है या नहीं ? ना... उसने तो माना है कि मैंने परद्रव्य का त्याग किया है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा.... !

ऐसी बात जो सम्यग्दृष्टि को अन्तर में से अनुभव में आ गयी। उस निःशंकता में इतनी ताकत है कि चौदह ब्रह्माण्ड उलट जाये, पलट जाये तो भी उसे अनुभव में शंका होती नहीं। अनुभव में शंका नहीं होती। आहाहा... ! चीज कोई अलग चीज है। १०१, सौ के ऊपर एक। हमारे प्रेमचन्दभाई कहते हैं.... सौ के ऊपर एक.. आहा... !

पूर्णानन्द का अस्तित्व... जो पर्याय-वर्तमान दशा है; वह राग के सन्मुख, परद्रव्य सन्मुख थी, वह पर्याय तो वहाँ रही, बाद में दूसरी पर्याय जो द्रव्य में से उत्पन्न हुई और उसने द्रव्य का आश्रय लिया; उत्पन्न हुई और आश्रय लिया। गजब बात है, बापू!

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन अर्थात् तो... आहा...हा...! वह पर्याय अन्तर्मुख हुई और जो अनुभव हुआ (तो) परसन्मुखतावाले चाहे जितनी बातें करते हों, विशेष भी करे तो अनुभव में शंका नहीं होती। समझ में आया? है न? १०१।

शब्द बहुत संक्षेप में है। जो कोई पढ़ते हैं, वे प्रसन्न होते हैं। यह तो प्रेमचन्दभाई आये थे, उन्हें पूछा था (तो कहते थे), बहुत पढ़ा है, बहुत अच्छा है। आहा...! पहले उनका पत्र आया था। यह चीज तो बापू...! आहा...! जगत के भाग्य कि बाहर आ गयी है। बहुत संक्षिप्त शब्द, सादे शब्द गुजराती में आये। बाद में गुजराती में से हिन्दी में बनाया न? मूल तो गुजराती में है। आहा....! १०१ नम्बर। १०१ प्रतिशत सत्य बात है। आहा...हा...!

आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है। जगत में उससे ऊँची वस्तु नहीं है। उसे कोई ले जा नहीं सकता। जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है; उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है?॥ १०२॥

१०२, **आत्मा सर्वोत्कृष्ट है,...** आहा...हा...! अनादि से पर्याय में, एक समय की पर्याय जो प्रगट है उसमें, अपना अस्तित्व मानकर खेल किया है परन्तु पर्याय के पास भगवान पूर्णानन्द बिराजमान है, कोई आश्चर्यकारी चीज है। आहाहा...! बात तो अन्तर्मुख की बहुत सूक्ष्म पड़े परन्तु उसे करना तो पड़ेगा, प्रभु! वह चीज तो तेरे पास है और तू ही ऐसा है। तेरे पास कहा, क्यों? कि एक समय की पर्याय में उसका लक्ष्य अनादि से है। पंच महाव्रत लिया, मुनि हुआ, द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ परन्तु दृष्टि, पर्याय और राग पर थी। आहा...! उसमें तो दुःखरूप ही दृष्टि थी और एक समय की पर्याय को सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा, सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा, सब से उत्कृष्ट—सिद्ध की पर्याय से भी अपना आत्मा सर्वोत्कृष्ट है। आहाहा...! क्योंकि सिद्ध की पर्याय तो एक समय की है और आत्मा में तो ऐसी अनन्त पर्याय का पुंज पड़ा है... आहाहा...! आत्मा अर्थात् क्या? आहा...हा...! .....'भावनगर' (से आये हैं)। समझ में आया?

आत्मा सर्वोत्कृष्ट है,.... वस्तु है, स्वयंसिद्ध है। स्वयं अपने से ही सत्ता है, ऐसी

www.vitragvani.com

कोई अरूपी (वस्तु है) । भले उसका क्षेत्र थोड़ा हो, शरीरप्रमाण हो । आहाहा... ! अरे... ! निगोद के शरीर में अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य शरीर (हैं) और एक शरीर में अनन्त जीव (हैं) । तो भी उस पर्याय से अन्दर में भिन्न सर्वोत्कृष्ट वस्तु है । आहाहा... ! समझ में आया ? मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हो, वह भी उसके पास तो तुच्छ है । आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प अनुभव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह पर्याय भी त्रिकाल की अपेक्षा से हीन है । आहा...हा... ! पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य जो है, वह तो सर्वोत्कृष्ट है । आहा...हा... ! अरे... ! लेकिन यह चीज क्या है, उसकी खबर नहीं ।

अपरिमित अमर्यादित ज्ञान, अमर्यादित दर्शन, अमर्यादित आनन्द और अमर्यादित वीर्य—ऐसा अनन्त चतुष्टय सम्पन्न प्रभु त्रिकाल विराजता है । ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का पिण्ड वह सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा है और उसकी दृष्टि सर्वोत्कृष्ट प्रभु पर पड़े, तब उसकी दृष्टि सम्यक् और सम्यग्दर्शन होता है, क्योंकि जो सर्वोत्कृष्ट चीज है, उसे जो दृष्टि स्वीकारे, वह दृष्टि सम्यक्-सत्य है । आहाहा... ! पर्याय को स्वीकारे, गुणभेद को स्वीकारे, वह दृष्टि सम्यक् नहीं । आहा...हा... ! अन्तर में एक समय में चीज जो अनन्त गुण का पिण्ड (है), अनन्त शक्ति का संग्रह स्वरूप प्रभु, वह चीज जो है, वह सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें पर्याय का भी अभाव है । आहा...हा... ! ऐसा आत्मा सर्वोत्कृष्ट है । 'बनारस' का कहा न ? 'बनारस' कोई एक पण्डित है, अमृतलाल शास्त्री है । (इस ग्रन्थ को) देखकर प्रसन्न-प्रसन्न हो गये । आहा...हा... ! ऐसा पुस्तक ! भाई ! यह तो मुद्दे की रकम की बात है ।

कहते हैं कि प्रभु ! वस्तु जो है वस्तु,... 'गोम्मटसार' में कहा है कि वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण बसे हैं, टिके हैं । अनन्त गुण जिसमें रहे हैं, ऐसी वस्तु । आहा...हा... ! ऐसा **आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है** । आहा...हा... ! उसकी अद्भुतता और आश्चर्य की क्या बात ! आहा...हा... ! जिसके एक गुण में, ज्ञान की एक शक्ति में केवलज्ञान की सादि-अनन्त पर्याय उत्पन्न हों, तो भी वह शक्ति रहित (खाली) नहीं हो जाती, शक्ति तो अन्दर में पूर्ण रहती है । आहा... ! समझना कठिन (पड़े) ।

केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय की अवस्था है और वह भी नाशवान है ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

केवलज्ञान की एक समय की अवस्था भी नाशवान (है)। एक समय की अवस्था दूसरे समय नहीं रहती। भगवान अन्दर है, वह तो त्रिकाली अविनाशी है। आहा...हा...! जिसकी पूर्णता के गुणों की आश्चर्यकारी शक्ति... आहा...हा...! वह वचन में आ सके नहीं, विकल्प से जानने में आ सकता नहीं। आहा...हा...! ऐसा सर्वोत्कृष्ट प्रभु आश्चर्यकारी वस्तु है। आहा...!

कल्पवृक्ष भी वृक्ष है, वह तो जड़ का फल देता है। यह चैतन्यप्रभु कल्पवृक्ष... आहा...हा...! सर्वोत्कृष्ट वस्तु का जहाँ स्वीकार हुआ तो पर्यायबुद्धि छूट गयी तो राग की तो क्या बात करना? आहा...हा...! जिसकी दशा में अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह सर्वोत्कृष्ट चीज में से आता है। समझ में आया? आहा...हा...!

एक न्याय से तो ऐसा कहा कि एक समय की केवलज्ञान आदि पर्याय है न? वह भी परद्रव्य है – ऐसा कहा है। क्योंकि उसमें से नयी पर्याय आती नहीं। केवलज्ञान की पर्याय जो है, उसमें से केवलज्ञान की पर्याय नहीं आती। गुलाबचन्दभाई! आहा...हा...! भगवान आत्मा आश्चर्यकारी सर्वोत्कृष्ट वस्तु पदार्थ है, उसमें से केवलज्ञान की पर्याय, पूर्व की व्यय हो और नयी उसमें से (द्रव्य में से) आती है। आहा...हा..! तो निश्चय में तो स्व त्रिकाली वस्तु को स्वद्रव्य कहा, पर्याय को परद्रव्य कहा। आहा...हा...! गजब बात है!

शरीर, वाणी की क्रिया की तो बात क्या करना? वह तो जड़ की क्रिया है। राग की क्या बात करना? वह तो विभाविक दुःखरूप दशा है। एक समय की पर्याय की बात क्या करना? एक समय की पर्याय तो दूसरे समय रहती नहीं। आहा...हा..! जो त्रिकाली अविनाशी भगवान आत्मा (है)... आहा...हा...! जो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने देखा... आहा...हा...! ऐसा जो सर्वोत्कृष्ट, आश्चर्यकारी आत्मा (है)।

जगत में उससे ऊँची वस्तु नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय भी सर्वोत्कृष्ट ऊँची वस्तु से ऊँची नहीं। आहा...हा...! वह तो कल आ गया न? **द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** १००, १००। आहा...हा...! पूर्ण जो वस्तु... बापू! भाषा से उसे (नहीं बता सकते)। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

अद्‌भुत से अद्‌भुत चीज जो अन्दर में है... 'कलश टीका' में पीछे दो शब्द आये हैं न? अद्‌भुतात् अद्‌भुतम्। आहा...हा... !

जगत में उससे ऊँची वस्तु नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय भी सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा से ऊँची नहीं... तो ये पैसावाले बड़े हो जाते हैं, पच्चीस लाख, पचास लाख, करोड़पति.... धूलपति! आहा...हा... ! कौन चीज? वह तो प्रभु जड़ है न! जड़ है। जड़ में भी आश्चर्यकारी चीज है, परन्तु उसकी उसे खबर नहीं। और यहाँ तो आश्चर्यकारी कहे उसकी खबर है। खबर करनेवाले को। आहा...हा... ! एक परमाणु है, उसमें वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श है, वह पलटकर कोई दूसरा वर्ण-गन्ध हो जाता है? ऐसी परमाणु की भी अद्‌भुतता है तो आत्मा में जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द हैं, वह पलटकर कहाँ से अल्पज्ञ और राग हो? आहा...हा... ! क्या कहा?

पहले आ गया है कि परमाणु में.... आ गया है न? अब आयेगा? आ गया है। परमाणु में वर्ण-रंग-गन्ध-रस और स्पर्श पलट जाते हैं? गुण पलटे तो क्या चीज रहे? जिस परमाणु में रंग-गन्ध-रस-स्पर्श पलटते नहीं; चाहे जितना काल, चाहे जितनी पर्याय में आता हो लेकिन गुण है तो वह तीन काल में पलटता नहीं। जड़ में (ऐसा है)। लेकिन उसमें पलटता नहीं और पर्याय पलटती है, उसकी खबर तो उसे नहीं; उसकी खबर करनेवाला तो यह प्रभु है। समझ में आाय? तो सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी है।

जगत में उससे ऊँची वस्तु नहीं है। उसे कोई ले जा नहीं सकता। कौन ले? किसको ले? कहाँ है? खबर नहीं। ध्रुव वस्तु अनादि-अनन्त (है, उसे) कौन ले सकता है? आहा...हा... ! उसकी एक समय की पर्याय भी दूसरा ले सकता नहीं और दूसरा दे सकता नहीं। एक समय की पर्याय-अवस्था दूसरा ले सकता नहीं, दूसरा दे सकता नहीं; तो जो त्रिकाली चीज है (उसे कौन ले जाये?) आहा...हा... ! भगवान आत्मा अलौकिक वस्तु है, भाई! उसकी दृष्टि और सम्यक् बिना सब व्यर्थ है। आहा...हा... ! मूल सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी वस्तु जगत में (है) उसकी दृष्टि और पता नहीं और बाहर में ऐसा त्याग किया और ऐसा लिया... आहा...हा... ! आजीवन ब्रह्मचर्य लिया। उसमें क्या हुआ? उसमें क्या है? ब्रह्मचर्य की क्रिया शरीर की है, शुभराग है। वह कोई तत्त्व नहीं, आत्मा नहीं और

www.vitragvani.com

आत्मा को लाभदायक नहीं। आहा...हा... ! आत्मा को लाभदायक जो पर्याय है, उससे भी वस्तु तो सर्वोत्कृष्ट है। आहा...हा... ! 'आत्मलाभरूप मोक्ष', जिसमें आत्मा का लाभ मिले - ऐसा मोक्ष। आता है न ? भाई ! 'नियमसार'। मोक्ष की पर्याय से भी वस्तु तो सर्वोत्कृष्ट है। आहा...हा... ! किसे पता कहाँ है ? इसमें ये धूल का शरीर, पैसा, मकान, उसका फर्नीचर....

मुमुक्षु : हो उसका क्या करना ?

उत्तर : हो तो उसकी चीज में है, इसकी कहाँ है। एक बार कहा था न ? 'मुम्बई'। मणिभाई, रसिकभाई के बहनोई, शान्ताबेन के बहनोई के बहनोई। बहुत पैसे है, करोड़पति। एक बार भोजन के लिए कहा था तो शाम को एक बार गये थे। बाद में मकान में चरण करने के लिये गये। मकान में करीब पाँच लाख का तो फर्नीचर होगा। नीचे मखमल (था)। उससे उससे भी आगे उस दिन गये थे न ? ताता। ताता गये थे। एक लड़का बीमार था। नाम भूल गये। विजय, 'गुना' का था। जवान लड़का (था), एक साल की शादी थी। उसमें किडनी खराब हो गयी। ....बहुत रस था। जवान था और किडनी खराब हो गयी। अरे... ! महाराज ! मुझे दर्शन करने हैं, मैं बहुत दूर हूँ। ताता है न ताता ? 'जमशेदपुर'। ताता के एक भाग वहाँ 'मुम्बई' में था, उसमें नौकरी करता था। एक साल की शादी थी। बेचारा पड़ा था। इस चीज का प्रेम बहुत था। आहा... ! उसकी माँ ने किडनी दी। दी लेकिन गुजर गया।

एक बार हम उसके पास गये थे। एक बार तो 'दादर' में दर्शन करने आया था। वह बहुत दूर था और इस ओर हमें भोजन करना था। मणिभाई थे, उनके पास दो-पाँच करोड़ थे। (घर में सब जगह) नीचे मखमल... मखमल... मखमल... ऐसा कपड़ा नहीं। मुझे तो ऐसा लगा कि यहाँ से निकलना मुश्किल पड़ेगा। एक बार निकलना तो पड़ेगा। मखमल और चारों ओर फर्नीचर। ये तो साधारण है परन्तु तीन-साढ़े तीन करोड़ का मकान है न ? कहाँ ? 'मैसूर' में गये थे। खाली मकान (था)। साढ़े तीन करोड़ का मकान। राजा ने खाली कर दिया, नहीं तो पैसे भरने पड़े। खाली पड़ा था। आहा...हा... ! धूल में से निकलना.... आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि सुन तो सही प्रभु! तेरी पर्याय में तेरी प्रीति है, उसमें से निकलकर द्रव्य में आना, उसमें बड़ा पुरुषार्थ है। आहा...हा...! अनन्त काल में तेरी पर्याय के अलावा अन्तर में चीज है, उसे तूने देखी नहीं, सुनी नहीं, सुनी नहीं। 'श्रुत, परिचित, अनुभूत' यथार्थता से सुनी नहीं। आहा...हा...!

(ऐसी) सर्वोत्कृष्ट चीज **उसे कोई ले जा नहीं सकता।** कौन ले जाये? आहा...! उसकी एक समय की पर्याय को भी कोई ले जा सकता नहीं, तो त्रिकाली नित्यानंद प्रभु ध्रुव अनादि-अनन्त है। है.... है... है... है... अनन्त-अनन्त अपरिमित गुण का ढेर... क्या कहते हैं? ढेर। आहा...हा...! ऐसी चीज को कौन ले जा सके? **जो छूट जाती है, वह तो तुच्छ वस्तु है;....** आहा...हा...! जो छूट जाती है। यह शरीर, वाणी.... अरे...! राग छूट जाता है। वह तो तुच्छ साधारण वस्तु है। आहा...हा...! देह, वाणी ये तो मिट्टी जड़ की चीज है। उसमें है नहीं और उसकी है नहीं, उसमें है नहीं और उसकी है नहीं। और उसमें वह है नहीं। आहा...हा...!

कहते हैं कि **जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है;....** स्त्री छूट जाये, कुटुम्ब छूट जाये, मकान छूट जाये, शरीर छूट जाये, वाणी छूट जाये। आहा...हा...! मरते समय वाणी (बन्द हो जाती है)। हमारी भाषा में कहते हैं, वाचा बन्द हो गयी। अन्त समय में वचन बोल न सके। सुने, लेकिन वचन नहीं बोल सके। क्योंकि वाणी नाशवान है, छूट जाती है लेकिन आत्मा में ज्ञान और आनन्द है, वह कभी छूट सकते हैं? आहा...हा...! समझ में आया? वाणी छूट सकती है। वाणी छूटी हुई ही है, वाणी कहाँ उसकी है? वह तो तुच्छ चीज है। आहा...हा...!

सुन्दर शरीर का रूप भस्म हो जाता है। आहा...हा...! श्मशान की रख हो जाती है, यह तो तुच्छ चीज है। समझ में आया? सबेरे स्नान करके, चाँदला करके आईने में देखते हैं, कैसा दिखता हूँ? आहा...! यह तो नाशवान है न, प्रभु! वह तो (तुच्छ है)। छूटने लायक है, वह तो तुच्छ चीज है। आहा...हा...! तेरी चीज तुच्छ नहीं, प्रभु! आहा...हा...! भाषा बहुत संक्षिप्त में है, भाव बहुत (गहरे हैं)।

कोई ले जा नहीं सकता। जो छूट जाती है, वह तो तुच्छ वस्तु है; उसे छोड़ते

www.vitragvani.com

हुए तुझे डर क्यों लगता है ? छूट जाती है, चीज छूट जाती है, (उसका) डर क्यों लगता है ? वह तुच्छ है तो छूटने के लायक है। शरीर छूटनेवाला है—ऐसा मालूम पड़े तो हाय... हाय... हाय... ! अरे...रे... ! मैं मर जाऊँगा। तू मर जायेगा या शरीर छूट जायेगा ? तुम तो त्रिकाल हो, तुम मरते हो ? तुम्हारा जन्म हुआ है कि तुम मरोगे ? तुम तो अनादि वस्तु हो। आहा...हा... ! जन्म-जयन्ती मनाते हैं न ? ये तो धूल की जन्म-जयन्ती। देह जन्मा, वह तो धूल का जन्म है। आहा...हा... ! देह के संयोग की जयन्ती ? आहा... !

मुमुक्षु : आपके जैसे गुरु मिले तो जन्म-जयन्ती करे न!

उत्तर : आहा...हा... ! ये तो लोगों का प्रेम है, जयन्ती करानेवाले का जयन्ती कराने का प्रेम है। जयन्ती करे तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। लेकिन शरीर का जन्म हुआ, उसकी जयन्ती कैसी ? शरीर का जड़ का संयोग हुआ। आहा...हा... ! धर्म प्राप्त प्राणी को दूसरे प्रेम से करे, वह तो मन्द राग है। लेकिन करानेवाला का भाव, जहाँ अपनी जन्म-जयन्ती मनाये नहीं, वहाँ नहीं रहना और जन्म-जयन्ती मनाये वहाँ जाना, उसका अर्थ क्या हुआ ? आहा...हा... ! समझ में आया ? वह तो उसकी तुच्छ बुद्धि, जन्म-जयन्ती मनवाने का भाव है। आहा...हा... ! समझ में आया ? किसका (मनाना) ? संयोग जड़ का हुआ, उसकी जयन्ती मनाने का तुझे भाव है ? भाई ! आहा...हा... !

वह तो तुच्छ वस्तु है;.... आहा...हा... ! **उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है ?** शरीर छूटे तो डर लगे। अरे...रे... ! शरीर छूटता है, वाणी छूटती है, वाणी बोल सकते नहीं। वह तो तुच्छ वस्तु है। आहा...हा... ! एक लड़का हो और पाँच लड़की हो, रात को बिस्तर लगाया हो। रात के दस बजे हो और एक पलंग खाली देखे तो (कहे), कहाँ गई ? कन्या कहाँ है ? उसकी शोध करे। गुम गयी ? आई क्यों नहीं ? लेकिन ये भगवान अनादि से खो गया है, उसे खोज न!

मुमुक्षु : ....

उत्तर : उसकी थी कब ? वह तो उसकी है। उसका आत्मा और शरीर उसका है। आत्मा को लड़की और लड़का है कहाँ ? आहा...हा... ! उसकी नहीं है, वह गुम जाती है और रात को पलंग में दिखती नहीं। पहले तो ये बत्ती नहीं थी, पहले बत्ती (लाईट) नहीं

www.vitragvani.com

थी। पहले तो घर में बत्ती करते थे। मिट्टी का ऐसा एक रखते थे। उसमें (बत्ती) रखते थे। पलंग बिछाने हो तब बत्ती करे, फिर बन्द कर दे। फिर सोने का समय होवे और आये, तब बत्ती करे, फिर बत्ती बन्द कर दे। पहले ऐसा था। मिट्टी का बनाये उसमें रखे। हमारे घर पर था। अब तो बत्ती हो गयी, आहा... ! प्रकाश... प्रकाश... ! जाने क्या हो गया ! आहा... !

आज तो एक ऐसा विचार आया था, भाई ! **विकासहासः** ए विकास ! तेरा नाम याद आया था। फिर विकास में ह्रास शब्द आया। २७८ (कलश में) चितपिण्ड (आता है)। नूतन वर्ष के दिन (लेते हैं)। **विकासहासः, हासः** शब्द का अर्थ लोग हीन करते हैं, लेकिन ऐसा (अर्थ) नहीं है। 'समयसार' में है। २७८ कलश। **विकासहासः** भगवान अन्दर में जहाँ जागती ज्योत प्रगट होती है। **विकासहासः** विकास-निधान का विकास होता है। अन्दर निधान पड़ा है, उसके अनुभव से उसे विकास का निधान प्रगट होता है। निधान **विकासहासः**। दो-तीन अर्थ किये हैं। दो-तीन अर्थ देखे। यह भी देखा, 'राजमलजी' का देखा, 'जगनमोहनलाल' का देखा, 'अध्यात्म तरंगिणी' देखा। लेकिन प्रत्येक में प्रसन्नता, विशेषता ऐसे शब्द हैं। **विकासहासः** विकास होकर अन्दर में प्रसन्नता होती है। **हासः** अर्थात् हीन होता है, ऐसा नहीं। आहा...हा... ! **हासः** में कोई धातु है ? **हासः** में धातु कौन-सी ? यह तो **हासः** शब्द आया तो विचार किया। **हासः** क्या है ? **हासः** के लिये चार पुस्तक देखे। २७८ कलश है ना ? अपने यहाँ नूतन वर्ष के दिन लेते हैं।

जैसे कली खिले, गुलाब की कली लाख पंखुरी की खिले, ऐसे भगवान आत्मा **विकासहासः** अन्दर से कली खिल जाये। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि से प्रसन्नता प्रगट हो जाये। आहा... ! लेकिन ऐसी पर्याय से भी वस्तु तो सर्वोत्कृष्ट भिन्न है। आहा...हा... ! समझ में आया ? **विकास** शब्द और **हासः** शब्द। मालूम तो था कि **हासः** शब्द का अर्थ हीन नहीं है, **हासः** का अर्थ अधिक है, शोभनीक है।

भगवान आत्मा अपनी शक्ति जो पूर्ण पड़ी है, आश्चर्यकारी प्रभु है, उसका आश्रय लेकर जो पर्याय प्रगट होती है, वह निधान प्रगट हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का कल्पवृक्ष बाहर आया। आहा...हा... ! चिन्तामणि रत्न तो जड़ है। चिन्तामणि रत्न प्रभु आत्मा है। आहा...हा... ! कल्पवृक्ष भी आत्मा है। जितना अन्दर में एकाग्र हो, उतना

www.vitragvani.com

आनन्द झरे, आनन्द प्रगट हो – ऐसा कल्पवृक्ष प्रभु है। आहा...हा... ! चिन्तामणि रत्न कहो, उसे कल्पवृक्ष कहो, उसे कामधेनु (कहो)। कामधेनु गाय आती है न ? गाय। वह सुबह-शाम (ही) दूध (दे ऐसा नहीं), जब भी माँगो, तब दूध तैयार। कामधेनु गाय होती है। वहाँ 'बढ़वाण' में थी। क्या कहते हैं ? 'दादभावाले'। (एक मुमुक्षु ने) ब्रह्मचर्य (प्रतिज्ञा) (संवत्) १९८२ में मेरे पास ली थी। साधारण थे। व्याख्यान में तो बहुत लोग आते हैं, सब को बाँटे इतना तो नहीं था। ..... (संवत्) १९८२ की बात है। उनके वहाँ कामधेनु गाय थी। कामधेनु गाय होती है। जब माँगो तब दूध (मिले)। ये कामधेनु तो भगवान आत्मा है। आहा...हा... ! जब-जब जितना अन्दर में आश्रय लेते हैं, उस समय आनन्द तैयार है। कामधेनु गाय आत्मा है। (बाहर की गाय) तो धूल तुच्छ वस्तु है। आहा...हा... !

उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है ? शरीर छूटे, वाणी छूटे। लोग उसमें क्या लगाते हैं ? परवस्तु छोड़ो, परवस्तु छोड़ो.... लेकिन पर छूटा हुआ ही है, उसकी बात यहाँ है नहीं। आहा...हा... ! यहाँ तो शरीर और वाणी नजदीक है, वह छूटने लायक है तो छूट जाती है, उसमें तुझे डर क्यों लगता है ? समझ में आया ? कुछ लोग तो ऐसा अर्थ करते हैं कि साधु हो जाओ, परवस्तु को छोड़ो, स्त्री को छोड़ने में क्या डर लगता है ? क्या छोड़े ? पर को छोड़ने से कहाँ समकित होता है ?

एक साधु ने लिखा है। डरते क्यों हो ? साधुपना लेने में क्यों डरते हो ? छोड़ो, वह तो छूटने की चीज है। लेकिन वह छोड़े तो भी उसमें साधुपना कहाँ है ? वह तो बाहर में भिन्न पड़ी ही है, वह तेरे पास आयी नहीं, तेरी है नहीं। नजदीक में शरीर और वाणी छूटते हैं तो तुझे डर लगता है, उसे छोड़। मैं तो चैतन्य-शरीरी भगवान आत्मा हूँ। चैतन्य मेरा शरीर है; जड़ शरीर मेरा तीन काल में नहीं। आहा...हा... !

शरीर, वाणी आदि छूटने के काल में ख्याल आ गया कि अब यह शरीर नहीं रहेगा। डॉक्टर ने भी अकेले में कह दिया हो, उसे मत कहना, लेकिन अब यह शरीर नहीं रहेगा। दो-चार दिन में समाप्त हो जायेगा। आहा...हा... ! करोड़पति आदमी का एक ही २५ साल का पुत्र हो, क्षय हुआ हो। डॉक्टर ने कहा कि अब नहीं बचेगा, एक-दो दिन है। उसे मत कहना। उसे डर लगेगा। आहा...हा... ! हमारे तो बहुत अनुभव आ गये हैं। वहाँ 'बढवाण'

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

में (एक भाई थे)। उनका पुत्र था, उसे क्षय हुआ था। उसे दर्शन करने थे तो वहाँ गये थे। शरीर जीर्ण हो गया था, जवान था, साल-दो साल की शादी थी। आहा...हा...! शरीर जीर्ण हो गया था, सुन्दर शरीर, मरने की तैयारी, छोटी उम्र। उसके पिताजी आये थे, महाराज! पधारिये। ...बीमार था और हम गये थे। उसकी स्थिति एक दिन, दिन दिन की थी, हम वहाँ थे और देह छूट गया था। लोक उसे कहे नहीं, अन्दर सब को मालूम था। डॉक्टर ने कहा कि एक-दो दिन मुश्किल से रहेगा। सुननेवाले को डर लगे और कुटुम्बियों को डर लगे। आहा...हा...! लेकिन वह तो तुच्छ चीज छूटने लायक है, उसमें तुझे डर क्यों लगता है?

निर्भय आत्मा, निःशंक कहते हैं न? यह आत्मा तो निःशंक आत्मा, शुद्ध पवित्र आनन्द है—ऐसा भान हुआ तो निःशंक है, वह निडर है, निर्भय है, भय है नहीं। शरीर चला जाओ, सारी दुनिया जाओ, इज्जत जाओ, मान जाओ, मेरी चीज तो आनन्द नाथ मैं हूँ। मेरी चीज में कोई दखल करे-विघ्न कर सके—ऐसी कोई चीज जगत में है नहीं। आहा...हा...! ऐसा धर्मी को निःशंकपना अनुभव होकर होता है। आहा...! यह कहते हैं। **तुझे डर क्यों लगता है?** दो बोल हुए।

यदि वर्तमान में ही चैतन्य में सम्पूर्णरूप से स्थिर हुआ जा सकता हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि के होती है॥ १०३॥

१०३। **यदि वर्तमान में ही चैतन्य में सम्पूर्णरूप से स्थिर हुआ जा सकता हो....** आहा...हा...! क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि, जिसे आत्मा का अनुभव हुआ है, आनन्द का भान हुआ, स्वाद आया है—ऐसे सम्यग्दृष्टि को, सत्यदृष्टिवंत को, अनुभवी को **वर्तमान में ही चैतन्य में सम्पूर्णरूप से स्थिर हुआ जा सकता हो....** यदि अभी पूर्ण हुआ जा सकता हो तो **दूसरा कुछ नहीं चाहिए....** ऐसी सम्यग्दृष्टि की भावना है। मैं तो यदि इसी क्षण में पूर्ण हो जाऊँ तो दूसरी कोई चीज की चाहना नहीं है। थोड़ा समय रहूँ तो लोगों को थोड़ा उपदेश मिले और लाभ हो (ऐसी भावना नहीं है)। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि की भावना-चाहना, अपने में इसी क्षण में अन्दर में पूर्ण हो जाऊँ तो कोई विकल्प या दूसरे को समझाना, पाठशाला का काम शुरु किया हो तो थोड़ा समय मैं रह जाऊँ, ऐसी भावना समकिती को होती नहीं। आहा...हा...! पाँच लाख का चन्दा करके मैंने पाठशाला चलायी है, चालीस लड़के पढ़ते हैं और कल ही उनकी परीक्षा है तो मैं कल रहूँ, एक दिन रह जाऊँ तो ठीक, सम्यग्दृष्टि की ऐसी भावना होती नहीं। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है।

जिसका अनुभव हुआ है और जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है—ऐसा अनुभव में आया तो इसी क्षण यदि मैं पूर्ण हो जाऊँ तो मुझे कोई दूसरी चाह नहीं। आहा...हा...! कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं न कि दूसरे को सुधारने में यदि एकाध भव हो (तो कोई हर्जा नहीं)। वह अनन्त भव का अभिलाषी है। मैं दूसरे को सुधारने के कारण मेरा कदाचित एक भव विशेष हो (तो कोई बात नहीं)। भव परवस्तु है, वह मुझे रहे—ऐसी भावना ही मिथ्यादृष्टि की है। आहा...हा...! समझ में आया?

तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, उसमें ऐसा भाव नहीं। वहाँ तो ऐसी भावना, विकल्प आता है कि मुझे जैसी चीज मिली, ऐसी लोग समझे, बस! लेकिन समझे, इसलिए मैं भव करूँ -ऐसा है नहीं। आहा...! भव हो जाता है। राग बाकी है न? आहा...हा...! मुझे तीर्थंकरगोत्र बँधा है तो मुझे एक भव ठीक होगा, लोग सुनेंगे, लाभ होगा। (ऐसा है नहीं)। आहा...हा...! सम्यग्दृष्टि को तो आत्मा भगवान पूर्ण का पता लग गया है, उस पूर्ण में मैं पूर्ण हो जाऊँ। आहा...हा...! न रह सके अलग बात है, लेकिन भावना तो यही है। मैं अपूर्ण रहूँ और विकल्प आवे और लोग समझे, मेरे भव से लोगों को उतना लाभ तो मिले। पण्डितजी! वह बराबर नहीं है? आहा...हा...!

मुमुक्षु : भव मिले....

उत्तर : भव मिलने की भावना ही मिथ्यादृष्टि की है। भव लेना तो कलंक है। आहा...हा...! भव होना, वह तो कलंक है। आहा...हा...!

यहाँ 'शत्रुंजय' (में) पाँच पाण्डव (थे)। 'धर्मराज', 'भीम', 'अर्जुन', 'सहदेव' 'नकुल'। ध्यान में आनन्द में (थे)। अनुभवी थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले

www.vitragvani.com

थे, भावलिंगी सन्त थे। लोहे के हथियार बनाकर 'दुर्योधन' के भानजे ने गरमगरम लोहे के गहने पहनाये। मुकुट, पैर में कढा। तीन तो अपने ध्यान में रहकर देह छूट गया। केवलज्ञान होकर मोक्ष हो गया। छोटे दो थे (उनको) थोड़ा विकल्प आया.... आहा...हा...'' एक साथ पाँच (थे)। अरे...! कोई देव नहीं, कोई आदमी 'शत्रुंजय' आया नहीं। आहा...हा...! दो भाई को इतना शुभ विकल्प आया कि भाई को कैसे होगा? वृद्ध हैं, 'धर्मराज', 'भीम', 'अर्जुन' की दशा कैसी होगी? ऐसा एक विकल्प आया तो दो भव बढ़ हो गये। सर्वार्थसिद्धि में आ गये। ३३ सागर का भव हुआ। वहाँ से निकलकर मनुष्यभव होगा। ऐसा विकल्प आया और उससे लाभ है, ऐसी तो कोई बात नहीं थी, लेकिन आया तो दो भव बढ़ गये। आहा...हा...! वह भी मुनि हैं, वे भी साधर्मी सन्त थे, सहोदर थे, एक उदर में-माता के पेट में रहनेवाले थे। सहोदर और साधर्मी। एक विकल्प आया कि उनको क्या होता होगा? (उसमें) दो भव बढ़ गये। ऐसी बात है, भाई! भव की भावना उनको नहीं थी लेकिन विकल्प आया तो ऐसा नुकसान कर दिया। आहा...हा...! केवलज्ञान रुक गया। ३३ सागर के बाद मनुष्य होंगे, बाद में केवलज्ञान होगा। आहा...हा...!

सम्यग्दृष्टि की भावना तो, आज ही मैं पूर्ण हो जाऊँ, अन्दर में समा जाऊँ तो दूसरी कोई बात की जरूरत नहीं। आहा...हा...! ये पंच महाव्रत पालने हैं न! कौन पाले? वह तो राग है। आहा...हा...! मैं तो मेरी चीज में आज ही... आहा...हा...! समा जाऊँ तो दूसरा कुछ नहीं चाहिए। है? **वर्तमान में ही चैतन्य में सम्पूर्णरूप से स्थिर हुआ जा सकता हो....** स्थिर हुआ सम्पूर्णरूप से (जा सकता हो) **तो दूसरा कुछ नहीं चाहिए...** आहा...हा...! देखो! यह सम्यग्दृष्टि की भावना! आहा...हा...! दुनिया का कल्याण होता हो तो एकाध भव भले बढ़ जाये, वह दृष्टि ही मिथ्यात्व है। तेरे भव से दूसरे को लाभ होगा? या उसके कारण से उसे लाभ होगा? आहा...हा...! मार्ग कोई दूसरा है, भाई!

दूसरा कुछ नहीं चाहिए—ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि के होती है। ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को होती है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को ऐसी भावना होती नहीं। उसे तो एक भव करूँ, एक भव बढ़े, लोगों को लाभ हो, पुस्तक बनाना शुरु किया है तो पूर्ण हो

www.vitragvani.com

जाये, तब (तक) रहूँ तो ठीक (ऐसी भावना होती है)। आहा...हा...! गजब बात है! शास्त्र की शुरुआत की है, पूर्ण हो तब तक रहूँ तो ठीक—ऐसी भावना (सम्यग्दृष्टि के होती नहीं)।

मुमुक्षु : माता-पिता की सेवा करूँ।

उत्तर : सेवा-मेवा कौन कर सकता है? आहा...हा...! अपने शरीर को भी रख सकते नहीं। आहा...हा...! स्त्री को अर्धांगिनी कहे। अर्ध अंग। मर जाती है, तब रख सकता है? सेवा करके रख सकता है? आहा...हा...! एक क्षण में एकदम उड़ जाता है। २५-२५ वर्ष के अभी देखो न एक महीने की शादी थी। रतिभाई के लड़के की बहू। 'बीछिया'। एक मास की शादी। आये थे। रात्रि को सोते समय (कुछ पकाते थे), अग्नि की ज्वाला लगी। क्या कहते हैं? प्रायमस। जलकर मर गयी, तुरन्त मर गयी। एक महीने की शादी। वैशाख सुद ८, ज्येष्ठ सुद ८ को जलकर देह छूट गया। कौन रखे? भाई! आहा...हा...! अभी आये थे। साढ़े पाँच हजार उसके नाम पर दिये। दूसरी भी एक कन्या 'बीछिया' में है। नौ महीने की शादी। पैसेवाले हैं। नगीनभाई के पुत्र की बहू। नौ महीने। ऐसे उठकर बाहर जाती होगी, (रास्ते में) देह छूट गया। आहा...हा...! बापू! वह तो नाशवान है, वह छूटेगा ही। तू लाख प्रयत्न कर।

दरबार में आता है न? मेरा आयुष्य तुझे दूँ। इतिहास में (आता है)। हुमायूँ को मेरा आयुष्य दूँ। धूल में भी दे सकता नहीं। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... वह स्थिति पूरी होगी तो छूटेगा ही, तीन काल में कोई रख सकता नहीं। ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को होती है। मैं तो इस समय यदि अन्दर पूर्ण हो जाऊँ, कोई चीज शुरु की है तो पूरी हो तब जाऊँ, ऐसी भावना उसे नहीं है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-८, गुरुवार, दिनाङ्क १३-०७-१९७८
वचनामृत- १०४-१०५ प्रवचन-३६

'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा स्वीकार करने से पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि॥ १०४॥

१०४। पेराग्राफ है? १०३ हो गया न? **'मैं शुद्ध हूँ'...** सूक्ष्म बात है, भाई! वस्तु जो है, वस्तु त्रिकाल वह तो शुद्ध है। **'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा स्वीकार करने से....** दृष्टि में त्रिकाली आत्मा शुद्ध है—ऐसी दृष्टि करने से, स्वीकार करने से। आहा...हा...! **पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है।....** मैं रागवाला हूँ, मैं निमित्त के सम्बन्धवाला हूँ, यह भी यहाँ नहीं। यहाँ तो मैं आत्मा शुद्ध, द्रव्य शुद्ध त्रिकाली ध्रुव, शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ। आहा...हा...! दृष्टि का विषय (अर्थात्) सम्यग्दर्शन की प्रथम भूमिका का विषय त्रिकाली शुद्ध वस्तु। आहा...हा...! मैं शुद्ध हूँ—ऐसी अन्तर दृष्टि हुई तो उस समय शुद्ध पर्याय ही प्रगट होती है। ऐसी बात है। मैं ब्रह्मचर्य पालूँ, महाव्रत पालूँ या ऐसा मैं करूँ तो मेरी शुद्ध पर्याय प्रगट होगी—(ऐसा मानना) मिथ्यात्व है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! बाबूलालजी! भाई 'कलकत्ता' से आये हैं। बाबूलालजी, छोटेलालजी दोनों आये हैं। आहा...हा...!

यह आत्मा... मुद्दे की रकम की बात चलती है। आहा...! निमित्त से लक्ष्य छोड़कर, राग, दया, दान के विकल्प से भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की पर्याय का भी लक्ष्य छोड़कर... आहा...हा...! मैं तो त्रिकाल... त्रिकाल तो अपेक्षा से कहने में आता है, हमेशा रहनेवाली चीज मैं ध्रुव हूँ, शुद्ध हूँ। आहा...हा...! वर्तमान में परिपूर्ण ध्रुव और शुद्ध हूँ। आहा...हा...! ऐसी दृष्टि जब हो, तब पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है। तब धर्म की

www.vitragvani.com

पर्याय, सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की शुद्ध पर्याय की रचना होती है। सूक्ष्म है। आहा...हा...! वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ चली है। सम्यग्दर्शन बिना ये ले लो, व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो, ये ले लो... सम्यग्दर्शन क्या चीज है और उसका विषय क्या है?-उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसकी महिमा कितनी है, वह भी मालूम नहीं।

उत्तर : वह भी मालूम नहीं।

एक समय में, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वस्तु है, वह तो त्रिकाली एकरूप शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। बाद में आयेगा। ऐसे शुद्ध (स्वरूप को) स्वीकार करने से, अर्थात् कि शुद्ध का आदर करने से अर्थात् शुद्ध के सन्मुख होकर शुद्ध का आश्रय लेने से (धर्म प्रगट होता है)। समझ में आया? आहा...हा...! प्रथम में प्रथम कर्तव्य हो तो यह है, बाकी सब व्यर्थ, सब व्यर्थ-संसार है। व्रत, तप, भक्ति, पूजा सब विकल्प, राग है, संसार है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : संसार टालने की बात है।

उत्तर : टालने की बात भी यहाँ नहीं है। मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण शुद्ध हूँ—ऐसी दृष्टि हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, अशुद्ध मिथ्यात्व की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया?

वर्तमान पर्याय को शुद्ध त्रिकाली ध्रुव पर दृष्टि देने से... यह कोई बात है! शुद्ध का स्वीकार करने से, त्रिकाली पवित्र का पिण्ड प्रभु मैं हूँ, अरे...! मैं परमात्मा ही हूँ। आहा...हा...! परम-आत्मा अर्थात् परमस्वरूप—ऐसा शुद्ध का स्वीकार करने से **पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है**। पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है। क्योंकि अपने में-आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण पड़ा है, तो जब शुद्ध पर दृष्टि हुई और त्रिकाली का स्वीकार हुआ तो वीर्य का स्वभाव परिपूर्ण है, उसका भी स्वीकार आ गया।

वीर्य की कार्यशक्ति क्या? स्वरूप की शुद्ध रचना करे, वह वीर्य। आहा...हा...! यहाँ 'रचना' शब्द आया न? परिपूर्ण परमात्मा शुद्ध हूँ—ऐसा स्वीकार करने से वीर्य की रचना / स्वरूप की रचना, **पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है**। क्योंकि अन्दर वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ अन्तर में अनन्त पड़ा है, उसका स्वीकार सारे द्रव्य का स्वीकार करने में

www.vitragvani.com

आ गया तो वीर्य अपनी शुद्ध पर्याय की रचना करे, वह उसका कार्य है। दया, दान विकल्प ही रचना करे, वह नपुंसकता है। प्रेमचन्दजी ! क्यों ? कि जैसे नपुंसक होता है न ? हिजड़ा, उसे वीर्य नहीं होता (तो) पुत्र नहीं होता। ऐसे शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। आप पहली बार आये हो, लेकिन प्रेम से सुनते तो हैं। यह बात ऐसी है, भगवान ! वर्तमान में तो सब गड़बड़ चली है। आहा...हा... !

सिद्धान्त में-शास्त्र में कहा है कि शुभ से छूटता नहीं और शुद्ध की दृष्टि नहीं करते, वे नपुंसक हैं। 'पुण्य-पाप अधिकार' में है। समझ में आया ? 'अजीव अधिकार' की शुरुआत में है। क्लीव, क्लीव कहा। क्लीव अर्थात् नपुंसक है, पावैया, हिजड़ा है। आहा...हा... ! शुभभाव की रचना तो नपुंसकता है और उससे छूटकर शुद्ध की रचना (हो), वह पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ का कार्य है। आहा...हा... ! पुरुष का वह कार्य है। ऐसी बात सुननी कठिन पड़े। आहा...हा... !

(मैं शुद्ध हूँ) **ऐसा स्वीकार करने से पर्याय की रचना...** शुद्ध स्वरूप की दृष्टि करने से... आहा...हा... ! मैं त्रिकाल पवित्र का पिण्ड प्रभु हूँ—ऐसा पर्याय में स्वीकार करने से शुद्ध पर्याय की रचना होती है अर्थात् धर्म की रचना तब होती है। आहा...हा... ! बाकी लाख, करोड़ क्रियाकाण्ड करे, व्रत, तप, भक्ति, ब्रह्मचर्य (पाले), वह सब राग है; वह कोई आत्मा की धार्मिक क्रिया नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। सिद्धान्त कहा। दृष्टि राग के ऊपर है तो सृष्टि विकार की उत्पत्ति होती है। पर्याय पर दृष्टि है तो विकार की उत्पत्ति होती है। दृष्टि ऐसी सृष्टि; और द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि है तो दृष्टि ऐसी सृष्टि, तो निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होती है। भाषा तो सादी है लेकिन भाव तो परमात्मा के जो है सो है। आहा...हा... ! छोटाभाई !

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। यदि दृष्टि शुद्ध को, त्रिकाल को स्वीकार करे तो सृष्टि अर्थात् निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होती है। धार्मिक पर्याय (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की (पर्याय उत्पन्न होती है)। दृष्टि ऐसी सृष्टि। दृष्टि में शुद्ध का जब स्वीकार हुआ तो सृष्टि अर्थात् शुद्ध पर्याय की उत्पत्ति हुई; और अनादि से पर्याय और रागबुद्धि है तो दृष्टि मिथ्यात्व है तो वहाँ अशुद्धता उत्पन्न होती है। आहा...हा... ! १०४ (बोल पूरा हुआ)।

www.vitragvani.com

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है॥ १०५॥

१०५। सब सूक्ष्म है। आहा...! **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है।** थोड़ी सूक्ष्म बात है। जो आत्मा द्रव्य है न वस्तु? वह तो ज्ञायकभाव, बस! ज्ञायकभाव। एक ज्ञायकभाव है तो ज्ञायकभाव का ही वेश धारण किया है। आहा...हा...! 'समयसार' में आता है न? संवर, निर्जरा, मोक्ष अधिकार आते हैं तो कहते हैं कि ये सब वेश हैं। उसका ज्ञान हो गया। वह तो पर्याय का वेश है, द्रव्य का वेश नहीं। आहा...हा...! संवर, निर्जरा और मोक्ष, पर्याय का वेश है। आहा...हा...! द्रव्य का वेश तो द्रव्य त्रिकाली ज्ञायकरूप उसका वेश है। ऐसा है। है?

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक.... हमेशा एक **ज्ञायकपने का ही....** त्रिकाल एक ज्ञायकपने का उसे वेश है। क्या कहते हैं? ऐसी बात (है)। मूल बात की खबर नहीं और ऊपर-ऊपर से डाली, पत्ते तोड़ने लगे और मूल ऐसे ही रह गया। वैसे सम्यग्दर्शन बिना सब तोड़ने लगे—व्रत और तप सब शून्य हैं। आहा...! समझ में आया?

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल.... अर्थात् हमेशा, एकरूप। कायमी एकरूप। आहा...हा...! **ज्ञायकपने का ही....** आहा...हा...! **ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है।** आहा...हा...! भगवान तो त्रिकाल हमेशा त्रिकाल ज्ञायक ही है, बस! अब आयेगा।

ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,.... आहा...हा...! भगवान ज्ञायकस्वरूप वस्तु सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय ज्ञायक का ध्रुव धाम—ऐसा जो ज्ञायकभाव है, उसे तो... है न? **ज्ञायक तत्त्व को...** ज्ञायकभाव को, हमेशा रहनेवाले स्वभावभाव को **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** आहा...हा...! मोक्ष, केवलज्ञान, संवर, निर्जरा, व्यवहारवेश (पर्यायवेश) है। आहा...हा...! गजब बात

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है ! वस्तु... वस्तु अस्ति मौजूद चीज ध्रुव है, अनादि एकरूप ज्ञायकभाव, उसका वेश तो ज्ञायक ही है।

ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,.... पहले समुच्चय बात कही है, बाद में स्पष्टीकरण करेंगे। उसे संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय का वेश नहीं है। आहा...हा... ! क्योंकि पर्याय उसमें है नहीं। ....धन्धे से फुरसत नहीं मिलती, सुना कब है ? चौबीस घण्टे मजदूरी करता है, कमाना... आहा...हा... ! और धर्म के बहाने भी व्रत, तप (करता है) वह भी मजदूरी है। आहा...हा... ! क्लेश (है)। 'निर्जरा अधिकार' में कहा है, क्लेश है। आहा...हा... !

यहाँ तो क्लेश का अभाव संवर, निर्जरा और मोक्ष का वेश भी ज्ञायक को नहीं, द्रव्य को नहीं। यह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया ? आहा...हा... ! यह पुस्तक तो पढ़ी है न ? बाबूलालजी ! पढ़ी है न पुस्तक ? सब मिली है थोड़ा-थोड़ा समय होगा, पढ़ेंगे। वेदान्ती पढ़ते हैं तो उसे भी लगता है कि कोई चीज है। आहा...हा... !

ज्ञायक तत्त्व को.... माने क्या ? ज्ञायक ज्ञानरस ध्रुव, ऐसे ज्ञायक ध्रुव तत्त्व को, जो एकरूप ज्ञायक त्रिकाल एकरूप वस्तु को, आहा...हा... ! **परमार्थ से...** परमार्थ से। व्यवहार से संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि वेश हो। वह पर्याय है अर्थात् व्यवहार से हो। निश्चय से तो वह वेश ज्ञायक में नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बातें सुनने मिले नहीं, वह कब विचार करे ? और कब (प्रयोग) करे ? यह मनुष्यभव चला जा रहा है। आहा...हा... !

भगवान ज्ञायकतत्त्व.. ज्ञायकतत्त्व है न ? वह ध्रुव है। पलटन की पर्याय से, हलचल से भिन्न है। आहा...हा... ! ऐसे ज्ञायकतत्त्व को अर्थात् ऐसे ज्ञायकस्वभावभाव को **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं हैं, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है**। कोई पर्यायवेश नहीं है। भगवान ज्ञायकवस्तु, उसमें कोई पर्याय का वेश नहीं परन्तु कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! ज्ञायकतत्त्व वस्तु है, उसमें तो संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। वह पर्याय है (और) द्रव्य में तो पर्याय है नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं, बापू! अभ्यास होना चाहिए। मूल चीज यहाँ से शुरुआत करनी है। इसके बिना की शुरुआत में तो अभिमान होगा। हमने त्याग किया है, हम ब्रह्मचारी है, हमने प्रतिमा धारण की है... सब मिथ्यात्व का अभिमान है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

www.vitragvani.com

यहाँ तो संवर, निर्जरा और मोक्ष... आहा...हा... ! उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं। आहा...हा... ! पर्याय का वेश नहीं है। ज्ञायक तत्त्व का वेश, उसमें पर्याय का वेश नहीं है। संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय का वेश नहीं है और पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! सेठ ! पूरा पढ़ा है न ? पढ़ा है। आहा...हा... ! पुस्तक तो कोई अलौकिक प्रकाशित हुई है। आहा...हा... ! जैसे-जैसे लोगों के पास जायेगी, पढ़ेंगे, विचार करेंगे, तब (कीमत होगी)। बापू ! यह तो मूल चीज है। आहा...हा... !

जिसे पर्याय का वेश नहीं—ऐसी जो त्रिकाल चीज है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। अभी तो सम्यक् चौथा गुणस्थान। सम्यग्दर्शन का विषय जो ज्ञायक है, उस विषय में पर्याय की अपेक्षा नहीं और पर्याय का वेश नहीं है। आहा...हा... ! भाषा तो सादी है, प्रभु ! आहा...हा... ! भगवन्त ! तेरा स्वरूप ऐसी चीज अन्दर है। आहा...हा... ! पूर्ण स्वरूप प्रभु एकरूप त्रिकाली स्वरूप... आहा...हा... ! जिसमें अनेकता और भेद नहीं, आहा...हा... ! वह दृष्टि का-सम्यग्दर्शन का विषय है। यह दृष्टि का विषय हुए बिना सब व्यर्थ है। आहा...हा... ! उसकी महिमा ख्याल में न आये।

कहा था न ? कि क्षेत्र का अन्त नहीं। आकाश के क्षेत्र का अन्त कहाँ ? अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... (उसका) अन्त कहाँ ? आहा...हा... ! ऐसे काल की शुरुआत कहाँ ? और काल का अन्त कहाँ ? ऐसे भावस्वरूप ज्ञायक महागम्भीर चीज है। आहा...हा... ! जिसमें पर्याय का वेश नहीं। आहा...हा... ! जैसे क्षेत्र और काल गम्भीर चीज दिखती है, है न ? कब से काल उत्पन्न हुआ ? द्रव्य की पहली पर्याय कौन-सी ? आत्मा या कोई भी चीज की पहली पर्याय कौन-सी ? आहा...हा... ! जैसे गम्भीर... गम्भीर... क्षेत्र और काल का गम्भीर (स्वभाव है), ऐसे उसके गुण का गम्भीर (स्वभाव), ऐसे अनन्त-अनन्त गुण गम्भीर—ऐसा एकरूप तत्त्व महागम्भीर (है)। आहा...हा... !

जिसमें पर्यायवेश नहीं, पहले ऐसे लिया है। ज्ञायक वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... उसे पर्याय का वेश नहीं और पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहा...हा... !

मुमुक्षु : आनन्द आया, आत्मा का अनुभव हुआ, ऐसी अपेक्षा आयी।

उत्तर : उसकी अपेक्षा नहीं, आनन्द की पर्याय का वेश ज्ञायक का नहीं। आनन्द की पर्याय की अपेक्षा, वेश ज्ञायक का नहीं और आनन्द की पर्याय की अपेक्षा ज्ञायक को

www.vitragvani.com

नहीं है। आहा...हा...! ऐसा तत्त्व वीतराग जैन परमेश्वर के अलावा कहीं नहीं है। आहा...हा...! और वस्तुस्थिति ही ऐसी गम्भीर है। आहा...हा...! ऐसी स्थिति श्वेताम्बर शास्त्रों में भी नहीं। दिगम्बर शास्त्रों में है तो उसके पक्षकार को खबर नहीं। आहा...हा...!

तत्त्व है, तत्त्व कहा न? ज्ञायक तत्त्व है न? वस्तु है न? कायमी, नित्य, ध्रुव ज्ञायकभाव वस्तु है, ऐसी कायमी चीज को पर्याय का वेश नहीं। वह तो पर्याय है। आहा...हा...! द्रव्य में पर्याय का वेश नहीं। कभी 'दिल्ली', 'कलकत्ता' में सुना नहीं। ये भाई बाबूलालजी 'कलकत्ता' से आये हैं। भाग्य है, बापू! ऐसी बात सुनने मिले वह भी भाग्यशाली है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ के कहे हुए ये तत्त्व हैं। आहा...हा...!

प्रभु! एकबार सुन न! आहा...हा...! तेरे ज्ञायकद्रव्य की प्रभुता, तेरे ज्ञायकद्रव्य की ईश्वरता, उसमें पर्याय का वेश नहीं, अवस्था का वेश उसमें नहीं। और 'समयसार' में नाटक में भी ऐसा कहा न? ये मोक्ष का स्वाँग पूरा हुआ, संवर का पूरा हुआ। गजब बात कही है! 'संवर अधिकार' पूरा हुआ तो कहते हैं, संवर का स्वाँग निकल गया। जान लिया कि यह पर्याय है। निर्जरा का अधिकार पूर्ण होने पर वह स्वाँग भी निकल गया। मोक्ष का अधिकार पूरा हुआ, उसमें भी मोक्ष का स्वाँग निकल गया तो मात्र त्रिकाल ज्ञायक की दृष्टि (रही)। इसलिए यहाँ तो कहना है कि वेश नहीं है, उसका कोई आधार है? या यहाँ सिर्फ 'बहिन' ने ही लिखा है? आहा...हा...! आहा...हा...!

भाई! प्रभु! तुम महात्मा हो, मह-आत्मा, महाप्रभु हो। ज्ञायकभाव ध्रुव तत्त्व, एकरूप नित्य जिसका स्वभाव—ऐसे ज्ञायकतत्त्व में पर्याय का वेश नहीं, पर्याय का वेश पर्याय में है। अवस्था का धारण अवस्था में है, अवस्था का धारण, ठिकाना द्रव्य में नहीं। आहा...हा...! पर्याय का वेश अन्दर में नहीं है। आहा...हा...! उसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है। दो बोल लिये न? आहा...हा...! ऐसा ज्ञायक, सम्यग्दर्शन का विषय है, आहा...हा...! उसमें पर्याय का वेश नहीं और पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा वह निरपेक्ष तत्त्व है।

यहाँ तो अभी (कहते हैं), राग की क्रिया करते-करते निश्चय होगा। अरे...! प्रभु! बहुत दूर चला गया। यहाँ तो संवर और निर्जरा का वेश भी चैतन्य ज्ञायक वस्तु में कहाँ

www.vitragvani.com

है? आहा...हा...! अस्ति वस्तु अस्ति मौजूदगी चीज एकरूप रहनेवाला तत्त्व, उसमें अनेकरूप होनेवाली पर्याय, उस एकरूप में नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप फरमाते हो कि 'कूवा में होय वह बर्तन में आवे।'

उत्तर : वह तो किस अपेक्षा से (कहते हैं)? वस्तु में ऐसा भेद नहीं। व्यवहार / पर्यायनय से ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो जो ज्ञायक तत्त्व, द्रव्य तत्त्व है, वह मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप पर्याय की रचना करनेवाला नहीं। आहा...हा...!...भाई! ऐसी बातें हैं। आहा...हा...! बापू! धर्म की पहली शुरुआत, उसका विषय क्या? यह बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! उसने अनन्त काल से ऐसे ही जीवन गँवाया।

जिसमें एकरूप माल पड़ा है, आनन्द, ज्ञान आदि एकरूप ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... एकरूप पड़ा है। एकरूप पर दृष्टि की नहीं। दृष्टि है पर्याय, लेकिन पर्याय ने एकरूप को विषय किया नहीं और पर्याय, द्रव्य का वेश धारण करती नहीं। सम्यग्दर्शन-पर्याय उसे (ध्रुव को) ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होता है। जिसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का वेश नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। दो-पाँच-दस हजार श्रोता 'मुम्बई' में हो तो लगे कि ये क्या कहते हैं? लेकिन लोग अब सुनते हैं, हों! अब तो पन्द्रह-पन्द्रह हजार, बीस-बीस हजार लोग आते हैं। उस दिन 'भोपाल' में चालीस हजार लोग थे। जब गये थे, तब चालीस हजार लोग सुनते थे, सब सुनते थे। थोड़ा विरोध करते थे, दूसरे प्रकार का विरोध था। तीर्थ फण्ड, अमुक... अमुक... छोड़ न तीर्थ फण्ड। कुछ करना, लोगों को लगा इतनी बड़ी सभा! आहा...हा...! हुकमचन्दजी पण्डित को पचीस हजार दिये तो लिये नहीं। पचीस हजार दिये, लिये फिर सौ रुपये डालकर उन्होंने वापस दे दिया। चालीस हजार की सभा थी। 'भोपाल', पंच कल्याण था। बाहर की चीज में है क्या?

उस बाहर की रचना तो आत्मा तीन काल में करता नहीं। आहा...हा...! लेकिन आत्मा द्रव्य जो ज्ञायक है, वह संवर-निर्जरा और मोक्ष की पर्याय की रचना करता नहीं। तो रथ चलावे, मन्दिर बनावे... ये सब रचना आत्मा करे, (वह कहाँ है?) ऐ नवरंगभाई! आहा...हा...! भाई! तुम एक प्रभु हो, एक तत्त्व हो या नहीं? तुम तत्त्व, अस्ति हो न? तो है तो परिपूर्ण वस्तु है या नहीं? जो है वह अपूर्ण कैसे हो? और अपूर्णता-पूर्णता तो पर्याय

www.vitragvani.com

में होते हैं, वस्तु तो एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव है। आहा...हा...! वह सम्यग्दर्शन का विषय (है)। लेकिन सम्यग्दर्शन की पर्याय ज्ञायक में नहीं है और ज्ञायक को सम्यग्दर्शन की पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहा...हा...!

फिर से, इसमें कोई पुनरुक्ति (दोष) लगता नहीं। वस्तु है, वस्तु, अस्ति, सत्ता, होनेरूप नित्य चीज तो ज्ञायक, ध्रुव, नित्य, एकरूप और अभेद वस्तु कायम है। ऐसे अभेद में, एक में, ध्रुव में उसकी वर्तमान जो पर्याय है, वह उसमें है नहीं। तो पर्याय का वेश ज्ञायक को है नहीं, और पर्याय की अपेक्षा भी ज्ञायक को है नहीं। पर्याय है तो मैं हूँ—ऐसी बात है नहीं। आहा...हा...! निर्मल पर्याय है तो मैं हूँ—ऐसी अपेक्षा भी नहीं। मलिन पर्याय है तो मैं हूँ-ऐसा तो नहीं... आहा...हा...! लेकिन निर्मल पर्याय है तो मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा है नहीं। आहा...हा...! पर्याय तो अंश है, वर्तमान प्रगट-प्रगट दशारूप है। वस्तु तो प्रगट-अप्रगट (नहीं), ज्ञायक त्रिकाल है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय नहीं, लेकिन भूत-भावि की पर्याय तो है न?

उत्तर : उसे किसी की अपेक्षा नहीं। वर्तमान एकरूप ध्रुव कहा, तत्त्व कहा, फिर प्रश्न कहाँ है? तत्त्व कहा। तत्त्व तो द्रव्य है, द्रव्य अर्थात् वस्तु है, बस! खलास। उसे कोई पर्याय की अपेक्षा है नहीं। क्योंकि पर्याय उसमें है नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : द्रव्य और पर्याय...

उत्तर : दो तत्त्व बिल्कुल भिन्न हैं। पर्यायतत्त्व भिन्न और द्रव्यतत्त्व भिन्न। आहा...हा...! पर्याय का क्षेत्र भिन्न, द्रव्य का क्षेत्र भिन्न। मोक्ष की पर्याय है, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है, उस पर्याय का क्षेत्र, अंश जो है वह भिन्न है। द्रव्य ध्रुव है, वह तो त्रिकाली एकरूप ध्रुव भिन्न है। आहा...हा...! यह भगवान का भेदज्ञान (है)। भेदज्ञान उसने कभी समझा नहीं, किया नहीं। बाहर में क्रियाकाण्ड करके मर गया। आहा...हा...! आहा...हा...!

जागृत-ज्योति कभी धुंधली होती नहीं और कभी वृद्धि होती नहीं, ऐसी जागृत-ज्योति अन्दर ज्ञायक बिराजमान है। धुंधली होती नहीं, कभी होती नहीं और वृद्धि होती नहीं। आहा...हा...! कभी-वृद्धि तो पर्याय में है; वस्तु में कभी-वृद्धि है नहीं। आहा...हा...!

ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा

www.vitragvani.com

नहीं है। आ...हा... ! दो बात ली। यह तो सिद्धान्त है, अकेला तत्त्व (है)। आहा... ! समझ में आया ? **आत्मा मुनि है**—ऐसी एक भी पर्याय, ज्ञायक में नहीं। मुनि की जो दशा—तीन कषाय का अभाव, वीतराग पर्याय, प्रचुर आनन्द का वेदन, प्रचुर आनन्द का वेदन (है)। समझ में आया ? ऐसी मुनि की पर्याय भी द्रव्य में नहीं। आ...हा... ! एकरूप वस्तु है, उसमें पर्याय अंश भी कहाँ है ? पर्याय पर्याय में है, ध्रुव द्रव्य द्रव्य में है। आहा...हा... ! यहाँ तो अभी शरीर में आत्मा नहीं, शरीर शरीर में है और मैं भिन्न हूँ, इतना भी नहीं बैठता। यहाँ तो कहते हैं पर्याय, द्रव्य में नहीं और द्रव्य, पर्याय में आता नहीं। आहा...हा... ! सुनते हैं, अब तो लोग सुनते हैं।

वहाँ तो बहुत सूक्ष्म करना हो तो दृष्टान्त देने पड़े, शास्त्र के आधार देने पड़े कि देखो ! इस शास्त्र में ऐसा कहा है। यहाँ तो अकेले सिद्धान्त चल सकते हैं। आहा...हा... ! कहा था न ? मोक्ष का स्वाँग पूरा हुआ, संवर, निर्जरा का स्वाँग पूरा हुआ। वह स्वाँग निकल गया। आता है ? आता है न ? भाई ! आधार देने पड़े। आहा...हा... ! नवरंगभाई ! ओहो...हो... !

ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ज्ञायक ध्रुव एकरूप त्रिकाल में मुनि का वेश भी उसमें है नहीं। मुनि का वेश अर्थात् ? नग्नपना ये कोई मुनि का वेश नहीं है। अन्दर जो मोक्ष का मार्ग मुनि को प्रगट हुआ, वह ज्ञायक में नहीं है। नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प तो बाहर रह गये। आहा...हा... ! वह तो उसकी पर्याय में भी नहीं (है)। और यह पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। आहा...हा... ! लोग चिल्लाते हैं, व्यवहार से निश्चय होता है, नहीं तो एकान्त हो जाता है, निश्चयाभास हो जाता है। प्रभु ! सुन तो सही, प्रभु ! तेरी प्रभुता तो देख ! तेरी प्रभुता में मुनि की पर्याय का भी अभाव है, ऐसी तेरी प्रभुता है। आहा...हा... !

मुनि को तो निर्मल मोक्षमार्ग, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन (है), वह तो पर्याय है। वह पर्याय, द्रव्य में कहाँ है ? आहा...हा... ! पर्याय व्यवहारनय का विषय हुआ, द्रव्य निश्चयनय का विषय हुआ। आहा...हा... ! प्रेमचन्दभाई ! कभी ऐसा सुना था ? ...मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, बापू ! भगवान ! अन्दर तुम कौन हो तुझे मालूम नहीं। तेरी प्रभुता की महानता में मोक्ष की पर्याय, मुनि की मोक्षमार्ग की पर्याय भी तेरी महत चीज, महिमावाली चीज में है नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? अपने आप पढ़े तो कुछ पकड़ में आये ऐसा नहीं है। छोटाभाई ! आहा... !

आत्मा मुनि है या केवलज्ञानी है,.... आहा...हा... ! केवलज्ञान भी पर्याय है। वह पर्याय, द्रव्य का वेश नहीं, ज्ञायक का स्वांग नहीं। गजब बात है, नाथ ! आहा...हा... ! यह जैनदर्शन वस्तुदर्शन (है) । आहा...हा... ! यह जैनदर्शन वस्तुदर्शन (है) । आहा...हा... !

मुमुक्षु : केवलज्ञान पर्याय है, लेकिन केवलज्ञानी तो आत्मा है न ?

उत्तर : नहीं, वह तो ज्ञानमूर्ति गुण (हैं) । यह तो पर्याय की बात है। केवली को जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह तो पर्याय है। गुण उत्पन्न नहीं होता, गुण तो त्रिकाली ध्रुव है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : यहाँ तो केवलज्ञानी लिखा है।

उत्तर : पर्याय अपेक्षा से केवलज्ञानी कहो और मात्र ज्ञान की अपेक्षा से केवलज्ञानस्वरूपी ध्रुव कहो। वह अलग चीज है, यह अलग चीज है। वह तो ज्ञान प्रधानता से ज्ञ-स्वभावी, सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु (है), लेकिन उसके साथ अविनाभावी अनन्त गुण साथ में हैं। ये अनन्त गुण और सर्वज्ञ स्वभावरूप एकरूप चीज है। ज्ञायकपने की चीज एक है। आहा...हा... ! एकरूप अखण्डरूप... आहा...हा... !

मुमुक्षु : ......

उत्तर : भेद नहीं, केवलज्ञान की पर्याय का भेद उसमें कहाँ है ? ऐसी बात है।

यहाँ प्रयोजन एकरूप ज्ञायक की दृष्टि करवानी है। पर्यायदृष्टि भी छुड़ानी है। क्योंकि पर्याय, द्रव्य में है नहीं। है उसकी दृष्टि करानी है; उसमें नहीं है, उसकी दृष्टि छुड़ानी है। आहा...हा... ! यहाँ तो अभी (लोग) कहीं के कहीं अटके हुए हैं ?

पहले से लिया न ? **परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है।** वेश है, लेकिन ध्रुव ज्ञायक एकरूप का वेश है। आहा...हा... ! और **ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,....** ऐसे लिया। द्रव्यवेश है। आहा...हा... ! अब तो यह (विषय) व्याख्यान में बहुत जगह पर चलता है। चन्दुभाई ! यह पुस्तक ऐसा बाहर आयी है। पढ़ते हैं, पढ़ते हैं, पढ़ने तो दो। आहा...हा... ! अरे... ! ऐसा मनुष्यदेह चला जाता है। उसमें सत्य वस्तु त्रिकाली सत्य है, इस त्रिकाली सत् की दृष्टि न हुई तो कुछ नहीं हुआ, उसने कुछ किया नहीं। भले दुकान छोड़ी, आजीवन ब्रह्मचर्य

पाले, व्रत पाले सब निरर्थक है। सार्थक है, संसार में भटकने में। निरर्थक नहीं, सार्थक है-भटकने में। आहा...हा...!

यह चीज तो... आहा...हा...! वस्तु है न! तत्त्व है न! नित्य, हलचल बिना की नित्य चीज है न? हलचल अर्थात् पलटती पर्याय बिना की चीज है या नहीं? या पलटती चीज एक ही है? आहा...हा...! सुनना कठिन पड़े उसे समझना!

मुमुक्षु : मीठा लगता है।

उत्तर : मीठा है। हमारे भाई तो नये आये है न! प्रेमचन्दजी नये आये हैं, नये। ये तो हमारे पहचानवाले हैं। आहा...हा...! अरे...! आत्मा है न, प्रभु! उसमें बड़ा-छोटा है नहीं। जिसमें केवलज्ञान है नहीं, ऐसी तेरी चीज अन्दर है न, प्रभु! ओहो...हो...! 'समयसार' में प्रत्येक (अधिकार में ऐसे ही लिया है), स्वाँग को जान लिया। स्वाँग चला गया। जैसे भांड... भांड कहते हैं? क्या कहते हैं? बहुरूपिया। बहुरूपिया रूप धारण करके आवे (और) सेठ जान ले तो (वेश) छोड़कर चला जाता है। कल तो तुम भिखारी (बनकर आये थे)। वह तो वेश था। बड़ा टोपा पहनकर आये, लाओ! पेटी की रसीद लाओ, रसीद के पैसे लाओ। (सामनेवाला देखता है) कि ये कौन है? विचार करने पर लगता है, ये तो बहुरूपिया लगता है। (फिर) चला जाता है। आहा...हा...!

ऐसे भगवान आत्मा ने चाहे जितने स्वाँग धारण किये, विकार या अविकार, उसे जान लिया तो वह स्वाँग आत्मा में नहीं है, ऐसा हो गया। आहा...हा...! समझ में आया? बहुरूपिया पर्याय में हुआ है, वस्तु में बहुरूपिया होता नहीं। वह दृष्टान्त दिया है न? समयसार नाटक है न! आहा...हा...!

मुमुक्षु : नाटक में....

उत्तर : अलग-अलग प्रकार के स्वाँग आये। आ...हा...! हमने तो बहुत नाटक देखे हैं। गृहस्थाश्रम में बहुत नाटक देखे हैं। दुकान घर की थी। माल लेने जाते थे, तब देखते थे। 'बडोदरा' में एक नाटक देखा था। कहा था न? 'अनुसूया' एक 'अनुसूया' है। 'भरुच' के किनारे एक 'नर्मदा' नदी है, ('नर्मदा') और 'अनुसूया' दो बहनें थी। 'अनुसूया' शादी किये बिना स्वर्ग में जाती थी। स्वर्ग में से ऐसी आवाज आयी, जिसे पुत्र

www.vitragvani.com

नहीं है उसे गति नहीं मिलेगी। उनमें तो ऐसा है न? नीचे जाकर शादी की और एक पुत्र हुआ। मुझे दूसरा कहना था।

वह लड़के को ऐसा कहती थी, बेटा! तू उदासीन हो, निर्विकल्प हो, शुद्ध हो, बुद्ध हो। ऐसा गाती थी। (संवत) १९६४ के साल की बात है। संवत् १९६४ कितने वर्ष हुए? ७०। हम तो माल लेने को जाते थे। हम तो माल लेने को जाते थे न? दुकान तो अभी भी चलती है। दुकान छोड़कर ६६ वर्ष हुए। माल लेने गये थे, रात्रि को निवृत्ति थी। वहाँ 'अनुसूया' नाटक चल रहा था। चलो देखते हैं।

मुझे तो दूसरा कहना था। वह बाई तो उसमें गाती थी। सुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि। नाटक में ऐसा गाते थे। आहा...हा... ! और वह वेश लेकर आता है। मुझे तो वह कहना है। 'नारद' वेश पहनकर आते हैं। 'नारद' है न? लंगोटी पहनकर (आये)।

ब्रह्मा सुत मैं, नारद कहाऊँ, ज्यां होय संप त्यां कुसंप करावुं।

ऐसा नाटक में बोलते थे। 'नारद' समझे? 'नारद' है न? हाथ में वीणा लेकर, लंगोटी पहनकर (गाते थे)। नाटक में पहले यह आता है।

ब्रह्मा सुत मैं, नारद कहाऊँ, ज्यां होय संप त्यां कुसंप करावुं।

यहाँ नाटक में पहले यह आया।

आतम आनन्द भरपूर से भरा हूँ, ज्यां होय संसार का नाश करावुं।

यह ऐसा वेश है। नाटक बहुत देखे। निवृत्ति थी। 'भरूच' गये थे, तब नाटक देखा था। वहाँ तो 'मीराबाई' का बड़ा नाटक था। आठ दिन में तीन दिन नाटक करते थे। 'बांकानेर'वाले। एक रात्रि के पन्द्रह सौ रुपये लेते थे। उन दिनों में, हों! (संवत) १९६४-६५ में एक रात्रि के पन्द्रह सौ रुपये। इतना बड़ा नाटक था। हमने तो दुकान का माल खरीद लिया हो, रात्रि को निवृत्ति होती थी। चलो, चलते हैं। बहुत देखा है, नाटक भी देखे हैं, सरकस भी देखा है, फिल्म देखी है। 'मुम्बई' में पड़ी फिल्म देखी है। सब देखा है। आहा...हा... ! यह फिल्म दूसरे प्रकार की है। आहा... !

कहते हैं कि प्रभु! तू राग का वेश धारण कर तो भी वह वेश तेरी चीज में नहीं। प्रभु!

www.vitragvani.com

तू संवर, निर्जरा का मुनिपना का वेश धारण कर, सच्चे मुनि, हों! सच्चे मुनि। ये कपड़े छोड़कर नग्न हो गये, वे कोई साधु है नहीं। आहा...हा...! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञायक, जिसमें मुनिपने की पर्याय, सच्चे मुनिपने की पर्याय का भी वेश नहीं, ऐसे ज्ञायक पर दृष्टि देकर जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो... आहा...हा...! और जिसमें मुनिपना की मोक्षमार्ग की दशा प्रगट हुई हो, वह मुनिपना का वेश द्रव्य में नहीं। आहा...हा...! तो अभी तो ये नग्नपना मेरा वेश है, (ऐसा मानते हैं)। मैं नग्न हुआ हूँ, दिगम्बर हुआ हूँ। आहा...हा...! वह बाह्य वेश का अभिमान है। आहा...हा...! कपड़े छोड़ दिये हैं, नग्न हैं, देखो! कोपीन भी नहीं रखते। एक कमण्डल रखते हैं। अरे...! भगवान! वह चीज तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है और तुम (मानते हो कि) मैं नग्न दिगम्बर हूँ, वह तो मिथात्व का पोषण है। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! यहाँ वर्षा हुई, यहाँ भी वर्षा हुई।

आहा...हा...! प्रभु! तेरी चीज जो है, अखण्ड आनन्द और अखण्ड ज्ञायक, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन में पर्याय है, वह उसका विषय नहीं, केवलज्ञान भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। क्योंकि वह तो पर्याय का वेश है। आहा...हा...! समझ में आया? **'आत्मा मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं।** आहा...हा...! (अज्ञानी को तो) कठिन पड़ जाये, ऐसा क्या? भगवान! तेरी चीज बापू! तुझे मालूम नहीं। आहा...हा...! एक परमाणु जैसी छोटी सी छोटी चीज, वह भी अनन्त शक्ति से ध्रुवरूप हमेशा रहती है, उसमें भी पर्याय का प्रवेश नहीं। आहा...हा...!

पर्याय, व्यवहारनय का विषय है; द्रव्य त्रिकाली, निश्चयनय का विषय है। दो का विषय भिन्न है। दो नय हैं तो दोनों का विषय भिन्न है। आहा...हा...! लेकिन वीतराग की वाणी दोनों के विरोध का नाश कर देती है। हमने तो पर्याय की अपेक्षा से व्यवहार कहा, द्रव्य की अपेक्षा से निश्चय कहा, दोनों बराबर है। आहा...हा...!

एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। आहा...हा...! सिद्ध की पर्याय ज्ञायकभाव में नहीं। कभी सुना नहीं हो। लो, समय हो गया।

विशेष आयेगा..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-९, गुरुवार, दिनाङ्क १४-०७-१९७८
वचनामृत- १०५-१०६ प्रवचन-३७

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। क्या कहते हैं? यह आत्मा जो है आत्मा; जो ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, सामान्य त्रिकाली एकरूप भाव, उस आत्मा ने तो त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेष परमार्थ से धारण (किया है)। उसे कोई संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय का वेष द्रव्य में नहीं है। आहा...हा...! वस्तु जो है, जो सम्यग्दर्शन का विषय; सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव, उसमें त्रिकाली को ज्ञायकपने का ही एक वेष है, अर्थात् उसका रूप ही ज्ञायकपना ही एक उसका रूप है। आहा...हा...! उसकी दृष्टि करना, अनुभव करना— इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी ज्ञायकभाव में नहीं है। आहा...हा...! जो इसकी श्रद्धा करे, वह पर्याय भी श्रद्धावान चीज़ में नहीं। आहा...हा...! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में (तेरे) ज्ञायकभाव की श्रद्धा आ जाती है। यह पूर्णानन्द अखण्ड है—ऐसी श्रद्धा (हो जाती है), परन्तु वह ज्ञायकभाव, पर्याय में नहीं आता। पर्याय, ज्ञायकभाव में नहीं आती; ज्ञायकभाव, पर्याय में नहीं आता। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं, चन्दुभाई! इसने तो एक ज्ञायकभाव ही वेष धारण किया है। आहा...हा...! जाननस्वभाव शक्ति त्रिकाल एकरूप त्रिकालीस्वभाव ध्रुव, यह इसका वेष है, यह इसका वेष है, यह इसकी स्थिति है, यह इसका रूप है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई!

ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,... आहा...हा...! भगवान ज्ञायकस्वरूप, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे कोई पर्याय का वेष नहीं है। अर्थात् उसमें

www.vitragvani.com

मुनिपने की, मोक्षमार्ग की पर्याय का वेष, ज्ञायक में नहीं है। आहा...हा... ! द्रव्यलिंग तो है ही नहीं उसे। ये नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, ये यति के बाह्य धर्मचिह्न, धर्मलिंग, द्रव्यलिंग—यह तो आत्मा में, ज्ञायक में है ही नहीं।

अलिंगग्रहण का १७ वाँ बोल है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न, उसमें १७ वाँ बोल है। आत्मा में द्रव्य और भाववेद का अभाव है; वैसे धर्म के चिह्न बाह्य नग्नपना, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण—यह बाह्य वेष, उस वस्तु में नहीं है। आहा...हा... ! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में बाह्य वेष नहीं; बाह्य वेष तो नहीं...

यहाँ कहते हैं, देखो ! **ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है**। दो बात ! आहा...हा... ! उसे कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं कि मोक्ष की पर्याय हो तो ज्ञायकपना रहे, संवर-निर्जरा की पर्याय हो तो ज्ञायकपना रहे—ऐसी कोई पर्याय की अपेक्षा वस्तु को नहीं है। ज्ञायकभाव, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे पर्याय का वेष नहीं है। कोई पर्याय का, यह कहेंगे, और किसी पर्याय की ज्ञायकपने को अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा है। ऐसा यह सम्यग्दर्शन का विषय ज्ञायकभाव, नित्यानन्द प्रभु ! अभी तो चौथे गुणस्थान की बात है। बाबूलालजी ! आहा... ! ऐसा दिगम्बर धर्म है। सेठियों ने भी सुना नहीं होगा। जो सुना हो, वह जय नारायण ! जो सुना हो, उसे हाँ करते हैं। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं प्रभु ! निज सत्ता, जो ध्रुव ज्ञायक सत्ता, जानन सत्ता, जिसका जानना—वह सत्ता उसका स्वरूप है। वह ज्ञायक त्रिकाल है। उसे—ज्ञायक को, सम्यग्दर्शन के ध्येयरूपी ज्ञायक को, सम्यग्दर्शन के विषयरूपी ज्ञायक को पर्याय का वेष नहीं है तथा उसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। दो बातें (हुई)।

अब तीसरी बात, देखो ! कहते हैं **आत्मा 'मुनि है'....** यह भी वेष है; मुनि का भावलिंग, वह आत्मा में—ज्ञायकपने में नहीं है। यह 'परमात्म प्रकाश' में ८८ वीं गाथा में कहा है परमात्मप्रकाश। परमात्मप्रकाश है न ? उसकी ८८ वीं गाथा में कहा है। यहाँ यह है '**अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि**' आत्मा में एक भी लिंग नहीं है। द्रव्यलिंग और भावलिंग दोनों आत्मा में, ज्ञायकभाव में नहीं है। त्रिकाली सत्ता ज्ञायकभाव, आहा...हा... ! मूल पाठ

www.vitragvani.com

है, हों! ८८ गाथा, परमात्मप्रकाश '**अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि णाणिउ जाणइ जोइ**' धर्मी ऐसा मानता है कि मेरे ज्ञायकभाव में कोई लिंग ही नहीं। द्रव्यलिंग अर्थात् अट्ठाईस मूलगुण या नानपना, वह भी मेरे स्वरूप में नहीं।

इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है, और वीतराग निर्विकल्पसमाधिरूप भावलिंग.... यह मुनि का (भावलिंग) । भावलिंग उसे कहते हैं जिसे निर्विकल्प समाधि और आनन्द उग्र वर्तता हो, उसे मुनि कहते हैं। आहा...हा... ! बाकी सब द्रव्यलिंगी बाहर के पंच महाव्रतादि अच्छे हों तो... वह भी अभी तो ठिकाना नहीं है, क्योंकि उनके लिये चौका करके आहार लेते हैं। चौका करते हैं न ? निर्दोष तो मिले ऐसा नहीं है। इसलिए वह तो व्यवहार का द्रव्यलिंग ही नहीं है। आहा...हा... ! यह द्रव्यलिंग जिसे कहते हैं, जिसके लिये बनाया हुआ आहार भी न ले और अट्ठाईस मूलगुण जिसके चुस्त हों और नग्नदशा चुस्त हो, वस्त्र का टुकड़ा भी न हो। अन्दर में राग की तीव्रता का मिथ्यात्वभाव भले हो परन्तु बाहर में टुकड़ा नहीं और अन्दर में निर्दोष आहार लेने के लिये सदोष आहार ले नहीं—ऐसा जिसका द्रव्यलिंग है, वह भी स्वरूप / ज्ञायकभाव में तो नहीं है।

तदुपरान्त निर्विकल्प, वीतरागी निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग... आहा...हा... ! भावलिंगी मुनि को वीतरागता, निर्विकल्प अभेदता, आहा...हा... ! और... है ? समाधि, शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहा...हा... ! तीन कषाय के अभावरूपी शान्ति उन्हें —मुनि को होती है। चौथे गुणस्थान में एक अनन्तानुबन्धी की कषाय का अभाव और शान्ति होती है। अन्दर शान्ति होती है। शान्ति का वेदन हो, तब तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहा...हा... ! यह तो अकेला आकुलता का वेदन (होवे) व्रत और तप और भक्ति अकेली आकुलता, उस वेदन को स्वयं माने कि हम व्रती हैं, तपस्वी हैं। आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई !

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे ये व्रत और तप के परिणाम बराबर हों तो भी वह आकुलता और दुःखरूप है। आहा...हा... ! वह तो स्वरूप में / ज्ञायक में / त्रिकाल में तो नहीं परन्तु निर्विकल्प समाधि जिसका भावलिंग... आहा...हा... ! विकल्प अर्थात् रागरहित निर्विकल्प शान्ति और निर्विकल्प आनन्द और निर्विकल्प ज्ञान और निर्विकल्प / रागरहित

www.vitragvani.com

जिसमें आनन्द की, चारित्र की स्वरूप की स्थिरता है—ऐसा जो निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप भावलिंग, वह भी ज्ञायक में नहीं है, क्योंकि वह पर्याय है। आहा...हा...! अब ऐसा कठिन पड़े। मार्ग तो यह है। आहा...हा...!

त्रिकाली ज्ञायकभाव वस्तु है न? अस्ति है न? अस्तित्व है न? और वह एकरूप त्रिकाल अस्तित्व है। आहा...हा...! ऐसे त्रिकाली एकरूप अस्तित्व में मुनि का भावलिंग जो मोक्ष का मार्ग वीतराग, निर्विकल्प शान्तिरूप भावलिंग **यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है...** पूर्ण आनन्द मोक्ष का, वह भावलिंग साधक है। द्रव्यलिंग तो साधक है ही नहीं। मोक्ष का साधक निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप वीतरागदशा, वह मोक्ष का साधक है।

इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है... व्यवहारनय से जीव का स्वरूप कहने में आता है। निर्विकल्प समाधि वीतराग आनन्द को भी जीव का उपचार से, व्यवहार से उसका लिंग है—ऐसा कहने में (आता है)। क्योंकि पर्याय है। पर्याय है कहो या उपचार से कहो या व्यवहार से कहो। इस ज्ञायकभाव को भावलिंग है, यह व्यवहार से कहने में आता है। यह पर्याय है न? पर्याय अर्थात् व्यवहार। आहा...हा...! कठिन बातें, ...भाई! कहीं सुना नहीं था तुम्हारे बाप ने कहीं?

मुमुक्षु : जोरदार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी जोरदार है न! आहा...हा...!

आहा...हा...! क्या सन्तों का, दिगम्बर सन्तों का प्रवाह—मोक्ष का मार्ग! आहा...हा...! कहते हैं कि ज्ञायकभाव जो महा अनन्त गुण की सम्पदा से भरपूर प्रभु, ऐसा जो ज्ञायक त्रिकाली एकरूप रहनेवाली चीज़, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में द्रव्यलिंग तो है नहीं परन्तु भावलिंग भी उसे उपचार से पर्याय में है अर्थात् कहने में आता है परन्तु **तो भी परम सूक्ष्म निश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** आहा...हा...! कहो शिवलालभाई! अन्य कहते हैं देव-गुरु पर? देव-गुरु पर? (संवत्) २०१० के साल ऐसा प्रश्न किया था। अरे! देव-गुरु तो पर परन्तु यह भावलिंग मुनि का मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान निश्चय सत्य, त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, यह वस्तु है,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वह भी पर है; द्रव्य में नहीं। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। कहो ! धर्मचन्दजी ! खण्डवा में सुना है कभी ? तुम तो पहले से दिगम्बर हो। आहा...हा... !

प्रभु ! तू एक समय में अनन्त-अनन्त गुण की सम्पत्ति से भरपूर प्रभु ज्ञायकद्रव्य, द्रव्य है। आहा...हा... ! वस्तु अनन्त सम्पत्ति का नाथ अकेला ज्ञायकभाव जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें भावलिंग का भी अभाव है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का तो अभाव है परन्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्ग: जो निश्चय पर्याय है, निश्चय, हों ! व्यवहार की बात तो पहले निकाल डाली। व्यवहार तो उपचार से असद्भूत व्यवहारनय से कहने में आया है, वह मार्ग है ही नहीं। आहा...हा... ! परन्तु जो सद्भूत व्यवहारनय, पर्याय की अपेक्षा से, हों ! ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, ज्ञायकस्वरूप की अन्तर्मुख प्रतीति, अनुभव में पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति और पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान और अन्दर पूर्ण ज्ञायकभाव में अन्दर पर्याय में स्थिरता, ये तीन दशा भी ज्ञायकभाव में नहीं है। आहा...हा... !

इसमें पहले से बात आ गयी थी कि किसी भी पर्याय की अपेक्षा नहीं और कोई भी पर्याय का वेष नहीं, इसलिए यहाँ यह कहा। आहा...हा... ! **परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है**। क्योंकि भावलिंग तो साधनरूप है, पर्याय है; त्रिकाली ज्ञायकभाव नहीं। आहा...हा... ! त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, जिसमें इसकी सिद्ध की पर्याय का भी जिसे वेष नहीं है। आहा...हा... ! यह इसमें आया।

जिसे **'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है'....** इस पर्याय का ज्ञायकभाव में अभाव है। अरे ! केवलज्ञानी की पर्याय का भी ज्ञायकभाव में अभाव है। आहा...हा... ! समझ में आया ? **आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है'....** आहा...हा... ! **या 'सिद्ध है'....** आहा...हा... ! **ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है**। आहा...हा... ! मोटाणी ! कभी सुना नहीं यह सब वहाँ पाउडर के धन्धे में और यह और... आहा...हा... !

श्रोता : आज सुनने आये हैं।

दान का भाव होता है, वह तो राग है, वह भी ज्ञायकभाव में तो नहीं परन्तु जो राग को जाननेवाली वीतरागी पर्याय... आहा...हा... ! व्यवहार को जाना हुआ प्रयोजनवान है—

www.vitragvani.com

ऐसा जो कहा, वह व्यवहार तो आत्मा में है नहीं, पर्याय में नहीं तो वह व्यवहार जो राग है, वह तो द्रव्य में है ही नहीं। परन्तु जो व्यवहार को जाननेवाली सम्यग्ज्ञान पर्याय... आहा...हा...! उस राग को जानने की तो वास्तव में तो अपने को जानने की (पर्याय) है क्योंकि पर्याय में स्वद्रव्य ज्ञात होता है और पर्याय में स्वपरप्रकाशक स्वभाव के कारण राग ज्ञात होता है, वह राग ज्ञात नहीं होता परन्तु अपनी स्वपरप्रकाशक पर्याय ज्ञात होती है... आहा...हा...! वह स्वपरप्रकाशक पर्याय भी ज्ञायकभाव में नहीं। देवीलालजी! यहाँ तो चारों ओर शान्ति एकान्त है। यह सब चलता है। बड़े-बड़े पन्द्रह हजार लोगों में (लें तो लोगों को ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं? बात तो यह आवे परन्तु इसे कोई दृष्टान्त-तर्क करके (स्पष्ट करना पड़ता है)। आहा...हा...! गजब बात है।

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। पर्याय की अपेक्षा, मुनि की अपेक्षा, भावलिंगी सन्त, हों! आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन वैभव। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? कि मैं मेरे निज वैभव से समयसार कहूँगा। वह निज वैभव क्या? प्रचुर स्वसंवेदन, स्व आत्मा का प्रचुर बहुत अधिक प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन, वह मेरा वैभव है - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने (समयसार की) पाँचवीं गाथा में कहा है। वे ही कुन्दकुन्दाचार्य वापस कहते हैं कि यह मोक्ष की और मोक्ष के मार्ग की पर्याय मेरे द्रव्य में नहीं है और मेरा जो द्रव्य है, सम्यग्दर्शन का विषय जो ज्ञायक है, वह मोक्ष की पर्याय और मोक्ष के मार्ग की पर्याय को करता नहीं। आहा...हा...! कठिन आया, चन्दुभाई! सुने तो सही, बापू! ऐसी वस्तु कब मिलेगी? भाई! आहा...हा...! भगवान सर्वज्ञदेव का कहा हुआ परम सत्य, सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं, आढ़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं कि मार्ग यह है। आहा...हा...! तुझे रुचे तो ले, न रुचे तो स्वतन्त्र है, न रुचे तो स्वतन्त्र है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : पर्याय को करे नहीं परन्तु जानने का काम तो करे न?

उत्तर : जानने का काम पर्याय करे। द्रव्य-गुण है, द्रव्य गुण तो ध्रुव है। कार्य तो पर्याय में होता है। यह तो त्रिकाल कारण है। उनकी शक्ति कहलाती है। स्वपरप्रकाशक शक्ति त्रिकाल परन्तु यह स्वपरप्रकाशक शक्ति। स्वपरप्रकाशक का परिणमन-पर्याय वह

www.vitragvani.com

नहीं। आहा...हा... ! वहाँ भी प्रश्न हुआ था। कुरावड में तुम थे ? प्रश्न हुआ था। बहुत लोग थे न ! दिल्ली से भाई आये थे न ? दिल्ली से... हितैषी, प्रकाशचन्द (हितैषी) दिल्ली से आये थे, उन्होंने प्रश्न किया था, यह जो ज्ञान को आत्मा का लक्षण कहा है, वह क्या चीज़ है ? लक्षण कहा है, वह दो प्रकार से (कहा है) एक तो त्रिकाली ज्ञान को लक्षण कहकर आत्मा लक्ष्य बताया है कि जो ध्रुव है। नियमसार में त्रिकाली ज्ञान ध्रुव को लक्षण (कहा है और) आत्मा लक्ष्य। इतना समझाया है परन्तु वह लक्षण और लक्ष्य को समझ कौन सकता है ? पर्याय। ज्ञान की पर्याय, वह उसका वास्तविक लक्षण है जो कि पर्याय में लक्षण जो है ज्ञान त्रिकाल, त्रिकाली लक्षण और त्रिकाली वस्तु उसका लक्ष्य। इसका निर्णय करती है लक्षण, वह तो पर्याय। कुरावड़ में बड़ा प्रश्न चला था। झमकलालजी ! हमारे झमकलालजी वहाँ बहुत ध्यान रखते। लोग बहुत, बराबर ध्यान रखना, दस-दस बारह हजार लोग व्याख्यान में (आते थे) और उन लोगों की व्यवस्था भी बहुत... पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोगों के जीमने की रसोई। दिगम्बर सब एकत्रित (हुए)।

मुमुक्षु : १५०-२०० वर्ष में ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। कुरावड़ में ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। इतनी ज्यादा संख्या...

उत्तर : दस-दस, बारह-बारह हजार की सभा ! लोग सुनें, बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! पहले धीमे-धीमे, धीरे-धीरे समझना परन्तु मार्ग यह है। इस मार्ग के अतिरिक्त कुछ भी कम-अधिक विपरीत होगा तो मिथ्यात्व है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : उदयपुर में बहुत....

उत्तर : उदयपुर में तो शिक्षण चला था। आहा...हा... ! बीस दिन शिक्षण चला था। उदयपुर में हम तीन दिन थे, बाद में वह चलाया। लोगों में प्रचार है। विरोधी विरोध भी करते हैं, करें, उन्हें न जँचे तो क्या होगा ? ऐसी बात... व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत परिणाम, वह धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। शुभराग है। भैयाजी ! सबेरे प्रश्न किया था। आहा...हा... ! राग है न ? विकल्प है, कषाय का अंश है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहा...हा... ! अकषायभाव जो है, ज्ञायक त्रिकाली जिनस्वरूप है, त्रिकाली-उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता जो निर्विकल्प शान्ति, वह भी पर्याय है। आहा...हा... ! वह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मोक्ष का मार्ग है, वह मार्ग हो परन्तु वह पर्याय और मोक्ष की पर्याय दोनों का द्रव्य में तो अभाव है। अथवा द्रव्य है वह... आहा...हा... !

दो बात याद आयी। एक तो ३८ गाथा, नियमसार की ३८ वीं गाथा। निश्चय आत्मा किसे कहा ? ऐसा लिखा। पर्यायरहित त्रिकाली चीज़, वह निश्चय आत्मा। भाई ! ३८ गाथा। केवलज्ञान भी नाशवान है—ऐसा लिया है। नियमसार ३८ गाथा। पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध, संवर-निर्जरा और मोक्ष सातों हीं पर्याय नाशवान हैं क्योंकि पर्याय है। एक समय की स्थिति—मर्यादा है। वह नाशवान है और भगवान त्रिकाली वस्तु है, वह अविनाशी है। आहा...हा... ! और वह अविनाशी-त्रिकाली वस्तु है, उसे यहाँ हम निश्चय से सत्यार्थ आत्मा कहते हैं। सत् आत्मा वह है। आहा...हा... ! त्रिकाली ज्ञायकसत्ता पूर्ण, उसे निश्चय आत्मा, सत् आत्मा एक है—ऐसा कहने में आया है। पर्याय को सत् आत्मा नहीं क्योंकि पर्याय नाशवान् है। केवलज्ञान की पर्याय नाशवान है। आहा...हा... ! एक बात।

दूसरी बात, समयसार की ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका और मूल पाठ। कि भगवान आत्मा इस बन्ध के मार्ग को करता नहीं, बन्ध को करता नहीं, मोक्ष के मार्ग को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं। भैयाजी ! वस्तु है न त्रिकाल ! मोक्ष का मार्ग तो पर्याय है। द्रव्य है, वह पर्याय को करता नहीं। समझ में आये ऐसी भाषा है। आहा...हा... ! ३२० गाथा है। उदय को भी भगवान जाने, निर्जरा को जाने, मोक्ष को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष के मार्ग को भी जाने। आहा...हा... ! इस मोक्ष के मार्ग को और मोक्ष को आत्मा करता नहीं। आत्मा तो द्रव्य-त्रिकाली ज्ञायक है। आहा...हा... ! यह पर्याय करती है। आहा...हा... ! कार्य तो पर्याय में होता है, त्रिकाली ध्रुव तो सदृश पड़ा है, उसमें कार्य कैसा पर्याय का ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अकारक और अवेदक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; भगवान आत्मा... निश्चय आत्मा तो उसे कहा कि एक समय की चीज़ या केवलज्ञान की पर्याय, वह भी नाशवान है; इस अपेक्षा से त्रिकाली ज्ञायकवस्तु सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... एकरूप सदृश त्रिकाली है, उसे निश्चय सत्य आत्मा कहा और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

समझ में आया ? और इस बन्ध तथा मोक्ष के मार्ग की पर्याय को नाशवान गिना; इसलिए उसे अविनाशी भगवान को आत्मा कहने में आया। इस पर्याय को आत्मा कहने में नहीं आया। यह व्यवहार आत्मा। निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्षपर्याय यह व्यवहार आत्मा, त्रिकाली वह निश्चय आत्मा। ऐसी बातें, आत्मा के वापस दो प्रकार (हुए)। आहा...हा...!

केवलज्ञान और केवलदर्शन, अनन्त आनन्द सर्वज्ञ अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ को पूर्ण आनन्द और अनन्त गुण, पर्याय (में) प्रगट हो गये। तथापि वह पर्याय है। आहा...हा...! उसे द्रव्य करता नहीं तथा वह पर्याय, द्रव्य में नहीं। आहा...हा...! समझ में आता है न? भले भाषा तो सादी है, भले भाव तो बहुत ऊँचे हैं। आहा...हा...!

यह तो बहिन का १०५ वाँ बोल। १०५। जिसे केवलज्ञान और मुनिपना या सिद्ध **ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है**। दूसरा बोल आया था न? **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं....** इसका अर्थ किया। इसे मुनिपना, मोक्ष का मार्ग या सिद्धपद या केवलज्ञान, वह तो पर्याय है; एक समय की अवधि की एक समय की (पर्याय है)। सिद्धपने की भी पर्याय एक समय की, दूसरे समय दूसरी (होती है)। ध्रुव जो द्रव्य ज्ञायक त्रिकाल, वह तो त्रिकाल है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा तो जब पुस्तक सामने आयी हो तो चले न! खींचकर लेने जाये तो (आवे नहीं)। यह तो है इसमें, इसलिए इसका विस्तार होता है।

द्रव्यलिंग नहीं, भावलिंग नहीं, मुनिपना नहीं, केवलज्ञान नहीं, सिद्धपद नहीं, आहा...हा...! ऐसा एकरूप सदृश अर्थात् ध्रुव, उसे हम यहाँ आत्मा कहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं, उसे सामान्य कहते हैं, उसे पर्यायरहित आत्मा कहते हैं। आहा...हा...! यहाँ तो अभी बाहर से अटके हैं, यह व्रत पालते हैं और यह नियम करना और यह अमुक खाना, ऐसा न खाना और वस्त्र घटा देना और वस्त्र छोड़ देना... कहाँ था? आहा...हा...!

जो प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय, वह तो मोक्ष के मार्ग को और समकित को भी नहीं करता—ऐसा कहते हैं। ऐ...ई...! यह त्रिकाली अपरिणामी चीज़ है। यह पलटता नहीं, बदलता नहीं। जिसकी पर्याय में हलचल, वह पर्याय इसमें अन्दर नहीं। आहा...हा...! हलचलरहित ध्रुव। आहा...हा...! वह एकरूप त्रिकाल चीज़,

www.vitragvani.com

वह सम्यग्दर्शन को आश्रय करने योग्य वह चीज़ है। समकिती की ध्रुव पर हमेशा नज़र रहती है। चाहे तो विकल्प आवे खाने-पीने का, बोलने का सब (विकल्प आवे) परन्तु दृष्टि में तो त्रिकाली; जिसमें मोक्ष की पर्याय भी नहीं—ऐसे ध्रुव पर नज़र हमेशा होती है। आहा...हा...! और ध्रुव की नज़र हटे और यदि पर्याय पर नज़र जाये, हटकर नज़र जाये, हों! जानने के लिये जाने, वह तो ज्ञान जाने की पर्याय है, परन्तु द्रव्य में—ध्रुव का आश्रय छूटकर पर्याय को यदि जोड़ने जाये तो पर्याय में विकल्प उठे और उसमें लाभ माने तो, आहा...हा...! यहाँ तक मिथ्यात्व कहलाता है।

इसलिए यहाँ कहा कि ज्ञायकतत्त्व को इस ज्ञायकपने का वेष एक है। त्रिकाली ज्ञायकपना; जानने की क्रिया, वह भी जिसमें नहीं, क्योंकि वह तो परिणमन है, परिणमन पर्याय है और वस्तु अपरिणामी त्रिकाल है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ज्ञायक कहकर जानने की पर्याय....

उत्तर : यह तो (समयसार की) छठी गाथा में नहीं कहा? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो**।' परन्तु यह पर्याय के जानने का कहा परन्तु वह पर्याय जो है, वह पर को जानती है, वह पर्याय को पर्याय जानती है। वह पर्याय पर को जानती है—ऐसा कहना व्यवहार है। पर्याय पर्याय को जानती है, वह निश्चय है। आहा...हा...! चौथा पद आ गया है। '**णादो जो सो दु सो चेव**' चौथा पद है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' भगवान आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त है ही नहीं। पहले गुणस्थान से चौदह गुणस्थान आत्मा में नहीं है। आहा...हा...! नवरंगभाई! तेरहवाँ गुणस्थान... हमारे एक .....भाई थे। तेरहवाँ कहते। तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं, 'लाठी' वाले, धीरुभाई के भाई, तलटिया। उन्हें बेचारों को सुनने का प्रेम था, पहले दूसरे रस में चढ़ गये, गाने में और उसमें... फिर यहाँ सुनने आते। तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! क्योंकि वह तो पर्याय है। एक समय की पर्याय तो व्यवहार का विषय है। त्रिकाली जो है, वह निश्चय का विषय है। उसमें एक पर्याय का विषय, व्यवहार का विषय उसमें नहीं। दोनों हैं अवश्य। ऐसा नहीं कि (है ही नहीं) त्रिकाली में नहीं परन्तु पर्याय पर्याय में है, व्यवहारनय का विषय भी वर्तमान में जो है, वह विषय है। मोक्ष का मार्ग है, केवलज्ञान है, सिद्ध है क्योंकि एक जीववस्तु है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सुनो ! जीववस्तु है, उसकी पर्याय में दो भाग किये—एक संसार अनादि शान्त, एक मोक्ष, सादि-अनन्त; संसार अनादि-शान्त पर्याय है न ? मोक्ष सादि-अनन्त। दो भाग पड़ गये। आहा...हा... ! ये जीव वस्तु त्रिकाली में दो भाग करना, वह व्यवहार का विषय हो गया। आहा...हा... ! ऐसा है। जँचना कठिन पड़े। यह मानो कि यह जैन की बात होगी ऐसी ? जैन में तो दया पालो और व्रत करना और त्याग करना और तपस्या (करना)... अरे ! बापू ! तूने सुना नहीं, भाई ! वीतराग दर्शन कोई अलौकिक बात है, यह विश्व दर्शन है, वस्तु का स्वरूप है, वैसा जाना ऐसा भगवान ने कहा है। आहा...हा... ! तुझे सुनने को न मिले; इसलिए यह दूसरी चीज़ है, नयी है-ऐसा तुझे लगता है। नयी नहीं है, अनादि की ऐसी ही है। आहा...हा... !

ज्ञायकभाव, यही त्रिकाली निश्चय आत्मा। ज्ञायकभाव त्रिकाली में मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, मुनि पर्याय का अभाव है। ज्ञायकभाव, यही निश्चय आत्मा। ज्ञायकभाव, यह मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की पर्याय को नहीं करता, वह ज्ञायकभाव। आहा...हा... ! पर्याय, पर्याय को करे। क्यों ? कि केवलज्ञान जो उत्पन्न होता है या सिद्ध की पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय षट्कारक से परिणमति स्वयं से उत्पन्न होती है। आहा...हा... ! जिसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं। यह पाठ है ऐसा। समझ में आया ? आहा...हा... ! प्रवचनसार। विकार के षट्कारक हैं, वे स्वतन्त्र हैं। यह बात वर्णीजी के साथ चली थी (उन्हें) नहीं जमती थी, यह बात थी नहीं, हिन्दुस्तान में नहीं थी।

मुमुक्षु : आपने कहा उसमें कि एक भी नहीं।

उत्तर : हाँ, एक भी नहीं थी। उस दिन तो इतनी बात हुई थी, (संवत्) २०१३ के साल। पहले सम्मेदशिखर की यात्रा आये न पहले। २१ वर्ष (हुए) २०१३ के साल। २००३ के साल तो यहाँ विद्वत्परिषद भरी थी। २१ वर्ष (पहले) चर्चा हुई। सब पण्डित बैठे थे। कहा, आत्मा में / पर्याय में जो विकार होता है, वह पर्याय में षट्कारक का परिणमन पर्याय का है। राग की कर्ता पर्याय राग, राग का कर्म राग, राग का साधन राग, राग में से राग, राग का आधार राग है। इस राग को द्रव्य-गुण का कारण भी नहीं तथा पर कारक की अपेक्षा नहीं। एकदम कठिन पड़ गया था। यह ऐसा ? (उन्होंने कहा) अरे ! बड़ी भूल में आये, सुना नहीं, यह बात चलती नहीं थी।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पंचास्तिकाय की ६२ गाथा, पंचास्तिकाय की ६२ गाथा रखी थी कि देखो! इसमें लिखा है कि एक समय की जो पर्याय विकारी, हों! मिथ्यात्व की, राग-द्वेष की, विषय-वासना की उस पर्याय (का) कर्ता पर्याय, कर्म पर्याय, करण पर्याय साधन वह पर्याय, पर्याय का आधार पर्याय, पर्याय से पर्याय (हुई)। पर्याय से पर्याय रखी; यह षट्कारक पर्याय का परिणमन, जिसे पर कारक की तो अपेक्षा नहीं परन्तु जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। आहा...हा...! कोलाहल हो गया कि ये लोग मूल में भूले हैं। आहा...हा...! विकार को कर्म की अपेक्षा नहीं? यह पाठ देखो! पंचास्तिकाय ६२ गाथा। परकारक की जिसे अपेक्षा नहीं तो फिर जहाँ निर्विकारी पर्याय... आहा...हा...! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्दोष शान्ति और आनन्द की पर्याय (हुई), उस पर्याय के षट्कारक का परिणमन स्वयं से है; द्रव्य-गुण से नहीं, तथा कर्म का अभाव हो तो यह परिणमन हो—ऐसी अपेक्षा उसे नहीं। आहा...हा...! यह तो कल हिन्दी में चला था, अब गुजराती में आज (लिया है)। मूल बात थी न! आहा...हा...!

ऐसा उपदेश है। इसमें अब क्या करना? कुछ सूझ नहीं पड़ती। व्रत कर सके नहीं, दया कर सके नहीं, वह तो विकल्प है (—ऐसा कहते हैं)। परन्तु सुन तो सही! वस्तु जो त्रिकाली है, उस पर दृष्टि कर सकता है या नहीं? दृष्टि करता नहीं, वह करना है, वह करने का है। आहा...हा...! और जो दृष्टि का विषय है, वह दृष्टि वहाँ करनी है और फिर उसमें स्थिर होना है, वह चारित्र है। चारित्र कोई व्रत और वह कोई चारित्र नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। आहा...हा...! चिल्ला उठें ऐसा है। यह मथुरा, मथुरा, मथुरा में गये थे न एक बार? सभा में पण्डित थे, सभा बड़ी थी। कहा-केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, वह नाशवान है। आहा...हा...! पण्डित कहें - यह क्या? एक समय का केवलज्ञान गुण नहीं। गुण है, वह तो त्रिकाल है आत्मा में। उत्पन्न हो, वह गुण नहीं होता; उत्पन्नध्वंसी है, वह पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है, केवलज्ञान भी अवस्था है। भाई! पण्डितों में खलबलाहट हो गयी परन्तु कैलाशचन्दजी थे कि बात पर्याय की है। पर्याय है वह कहीं त्रिकाली चीज नहीं, गुण त्रिकाली हैं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मूल तत्त्वज्ञान का विषय ही पूरा सब फेरफार हो गया। मूल चीज़ सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण कौन? इसमें ही सब विवाद उठे हैं। आहा...हा...! अन्य मार्ग को / कुमार्ग को मार्ग मान लिया है। अरे प्रभु! इसमें हित क्या होगा? भाई! आहा...हा...! आहा...हा...! देह छोड़कर जहाँ जाना है, बापू! वहाँ ऐसी मान्यता होगी कि इस राग से धर्म होता है और... बापू! वहाँ तू दुःख का वेदन करेगा क्योंकि वर्तमान वह राग है, वह दुःख है और दुःख के वेदन में भविष्य में तू जायेगा। अर...र...! आहा...हा...! भाई! तेरे हित की बात है।

जहाँ से आनन्द उत्पन्न होता है—ऐसी जो चीज़, उसे ऐसा कहना कि आनन्द इससे उत्पन्न हुआ, यह भी व्यवहार है। आनन्द, आनन्द से उत्पन्न होता है। छोटाभाई! बात अच्छी आ गयी। ठीक तुम यहाँ आये हो न! कलकत्ता से आये हैं, माल बात आ गयी। आहा...हा...!

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। आहा...हा...! जिसमें सिद्ध और मुनिपने के मार्ग की पर्याय का भी अभाव है। आहा...हा...! यह पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर। इस पर्याय की महिमा से उत्पन्न हुए, वहाँ नज़र न रख। नज़र तो वहाँ ज्ञायकस्वरूप एकरूप है, वहाँ नज़र (रख)। नज़रबन्दी... यह जादूगर नज़रबन्दी नहीं करते? इसी प्रकार यहाँ तेरी जादूगरी, नज़रबन्दी नज़र को ध्रुव में ध्रुव पर ले। आहा...हा...! तब वह नज़रबन्दी का सम्यग्दर्शन कहलाता है। आहा...हा...! और इस सम्यग्दर्शन के बिना यह पठन जो शास्त्र के ग्यारह अंग का किया, वह भी अज्ञान है और उस सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तप और परीषह सहन करे, वह सब क्लेश है। आहा...हा...! समझ में आया? १०५ (बोल पूरा) हुआ। वह तो इस गुजराती में थोड़ा लिया।

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। परपदार्थ पर का है, अपना नहीं होता, अपना बनाने में मात्र आकुलता होती है॥ १०६ ॥

www.vitragvani.com

१०६ **चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है....** तू स्वयं चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञायकस्वरूप तो तू पोते (स्वयं) है। पोते अर्थात् स्वयं। आहा...हा...! वह कहीं बाहर से लाना है ऐसा है नहीं। **इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है**। है तो स्वयं, उसे प्राप्त करना है। आहा...हा...! प्रभु है। चैतन्यस्वरूप आत्मा, ज्ञायकस्वरूप प्रभु। यहाँ ज्ञायक नहीं कहकर चैतन्यस्वरूप लिया। वह जाननस्वरूप आत्मा था (यहाँ) त्रिकाली चैतन्यस्वरूप आत्मा (लिया)। आहा...हा...!

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा तो त्रिकाल तेरा है। वह तेरा स्वयं का अर्थात् तू स्वयं है। चैतन्यस्वरूप आत्मा तो तू स्वयं है। आहा...हा...! स्वयं तू स्वयं है। आहा...हा...! है, उसे प्राप्त करना; है, उसकी सत्ता / अस्तित्व, अस्तित्व को अस्तित्व से प्राप्त करना, वह तो सरल है। आहा...हा...! समझ में आया?

चैतन्यस्वरूप आत्मा.... पहले व्याख्या यह की है कि आत्मा अर्थात् क्या? चैतन्यस्वरूप। वह रागस्वरूप, पुण्यस्वरूप और पापस्वरूप वह नहीं। आहा...हा...! चैतन्यस्वरूप जो भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु... आहा...हा...! वह तो तू स्वयं ही है अर्थात् वह तो तेरा है। आहा...हा...! तेरा अपना है वह तो। आहा...हा...! वह अपनेरूप करना, उसमें कहते हैं कि दुर्लभ क्या है? आहा...हा...! **इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है**। श्रीमद् में भी आता है—सत् सरल है, सर्वत्र है। आहा...हा...! वस्तु है, वह शाश्वत् स्वयं स्थायी किसी भी क्षेत्र में हो और किसी भी पर्याय में हो, वस्तु तो वस्तुरूप से अन्दर शाश्वत् है। आहा...हा...! यह चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है; इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। आहा...हा...! है, उसे प्राप्त करना, उसमें विशेष क्या है? कहते हैं। परन्तु परपदार्थ है... आहा...हा...!

परपदार्थ पर का है,.... वास्तव में राग है न? दया, दान, व्रत का राग भी परवस्तु है। उसे अपना करना, वह नहीं हो सकता। आहा...हा...! राग है, वह अपना नहीं हो सकता, क्योंकि वह परवस्तु है। तो रजकण को, शरीर को, पर को अपना करना, वह तो दूर रहा। आहा...हा...! भाई! यह हमारी स्त्री है, अर्धांगिनी है, आधा अंग हम और आधा यह, तीन काल में नहीं, बापू! आहा...हा...! वह तो धूल है। उसका शरीर अलग, उसका

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आत्मा अलग, वह तो पर है; पर को अपना करना, वह तो दुर्गम्य है, क्योंकि वह नहीं हो सकता और है, उसे प्राप्त करना, वह तो हो सकता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? पैसा लक्ष्मी, इज्जत, मकान, ये सब पर हैं। उन्हें अपना करना, वह नहीं हो सकता। उस पर को अपना करने में तुझे आकुलता होगी, तथापि परवस्तु तेरी होगी नहीं। आहा...हा... !

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है; इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। सरल है। आहा...हा... ! कोई स्थल हो, वहाँ जाना हो, तब तो वह सुगम है परन्तु स्थल ही न मिले वहाँ कहाँ जाना ? इसी प्रकार राग और पुण्य और परवस्तु में तो आत्मा का स्थान ही नहीं। आहा...हा... ! उसे तू आत्मा का करना चाहेगा तो किसी प्रकार होगा नहीं। आहा...हा... ! आकुलता होगी। पर को अपना करना चाहेगा वहाँ कर तो नहीं सकेगा (परन्तु) आकुलता होगी। आहा...हा... ! ऐसी बात है।

परपदार्थ पर का है,.... परपदार्थ पर का है। वह है अवश्य परन्तु वह उसका है; तेरा नहीं। शरीर, मकान, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, माँ, बाप... आहा...हा... ! वे तो परचीज़ हैं। वह पर (चीज़) तो पर की है, उसे तेरी करना, वह किस प्रकार हो सकेगा ? और वहाँ तेरा पुरुषार्थ काम करता है पूरे दिन। इसे सम्भालूँ और इसे यह करना और यह करना और उसका यह करना। आहा...हा... ! स्त्री को प्रसन्न रखूँ और स्त्री को अनुकूल संयोग मिलाऊँ... परन्तु प्रभु वह पर है, उसे क्या करेगा तू ? आहा...हा... ! लड़के-लड़की और पुत्र-पुत्री, विवाह करके ठिकाने लगाना... भाई ! पर का तू क्या कर सकता है। आहा...हा... !

परपदार्थ पर का है, अपना नहीं होता,.... यह अंगुली है, वह अंगुली की है, यह अंगुली इस अंगुली की नहीं। इसीलिए इस अंगुली को यहाँ करना, यह नहीं हो सकता। इस अंगुली को इस अंगुली की करना नहीं हो सकता। इस अंगुली को अंगुली की करना यह हो सकता है। अपनी अपने को करना वह हो सकेगा। अंगुली की जड़; वैसे आत्मा स्वयं अपना करना, वह हो सकेगा परन्तु परपदार्थ जो पररूप है, उसे अपना करना नहीं हो सकेगा। आहा...हा... ! पहले से बाबा ! आहा...हा... ! राग, यह रजकण परद्रव्य है। आहा...हा... !

यहाँ तो नियमसार में वहाँ तक लिया कि मोक्ष का मार्ग है, वह परद्रव्य है। उसे तू

www.vitragvani.com

स्वद्रव्य करना चाहेगा पूरे त्रिकाल में तो नहीं हो सकेगा। मोक्ष का मार्ग, हों! पर्याय। वह है तो परद्रव्य से पर / भिन्न है, उसे वहाँ परद्रव्य कहा। उसका कारण? कि वह परद्रव्य है, वह स्वद्रव्यरूप नहीं हो सकती। वह पर्याय स्वद्रव्यरूप नहीं हो सकती। आहा...हा...! वह पर है, वह पररूप रहेगी। पर्याय, पर्यायरूप रहेगी, परन्तु पर्याय को तू द्रव्य की करने जायेगा तो नहीं बन सकेगी। आहा...हा...!

मुमुक्षु : यह न्याय नया है।

उत्तर : ऐसा कहा था न कि परपदार्थ क्यों कहा, यह पहला अर्थ किया था कि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती; वैसे मोक्ष के मार्ग की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इसलिए परद्रव्य कहा—यह अर्थ तो हो गया है। समझ में आया? आहा...हा...! क्या कहा? कि आत्मा जो वस्तु-त्रिकाली है, उसमें जो मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, उसे भी परद्रव्य कहा। अर्थात्? कि जैसे आत्मा को नयी मोक्ष, केवलज्ञान की पर्याय आदि प्राप्त करनी होवे तो परद्रव्य में से नहीं होती; वैसे पर्याय में से पर्याय नहीं होती। यह नयी केवलज्ञान आदि की पर्याय तो द्रव्य में से होगी; इस कारण पर्याय को परद्रव्य कहा। समझ में आया? और इस परद्रव्य को अपना करना चाहे तो नहीं हो सकता।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-१०, शनिवार, दिनाङ्क १५-०७-१९७८
वचनामृत- १०७-१०९ प्रवचन-३८

शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है। विकल्प के भेद से शुद्धपर्याय प्रगट नहीं होती। एक को ग्रहण किया, उसमें सब आ जाता है। दृष्टि के साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है॥ १०७॥

१०६ चला न? गुजराती, अब चलेगा। ये तो हिन्दी आये थे न?

शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है। देखो! सिद्धान्त! वस्तु जो आत्मा है, वह शाश्वत् है, त्रिकाली है, उत्पन्न और ध्वंसरहित चीज़ है; उत्पन्न और व्ययरहित, वह चीज़-वस्तु शाश्वत् है। आहा...हा...! उसे, संयोगी चीज़ से दृष्टि हटाकर, राग से दृष्टि हटाकर, एक समय की पर्याय की दृष्टि हटाकर... सूक्ष्म बात है। शुद्धिधाम, शाश्वत् शुद्धिधाम प्रभु वस्तु स्वयं ऐसी है। शाश्वत् और शुद्धिधाम-शुद्ध का स्थल, शुद्ध का स्थान, जिसमें से शुद्धि पके, अतीन्द्रिय आनन्द (का) पाक हो, अतीन्द्रियज्ञान हो—ऐसा वह शुद्धिधाम आत्मा है। ऐसी बात! आहा...हा...!

(आत्मा) शाश्वत् त्रिकाली वस्तु है, कायमी चीज़ है। एक समय की पर्याय सिवाय की चीज़, राग से तो रहित है, संयोग के सम्बन्ध से तो रहित है, परन्तु एक समय की पर्याय से भी रहित है। आहा...हा...! ऐसा अब इसे जाना। क्या कहते हैं, यह समझना कठिन पड़ता है।

www.vitragvani.com

यह भगवान शुद्धधाम नित्य प्रभु तू ही है, तेरे पास ही है, तू ही है वह। आहा...हा...! **ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य,....** शाश्वत्, शुद्धि का धाम, शुद्धि, पवित्रता, आनन्द का धाम / स्थल.. आहा...हा...! **ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य,....** जोरदार आत्मद्रव्य, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! **उसकी दृष्टि प्रगट हुई....** जो यह शाश्वत् शुद्धिधाम, बलवान आत्मपदार्थ, वस्तु त्रिकाल—उस पर दृष्टि होकर... आहा...हा...! अन्तर्मुख शाश्वत्तत्त्व है, उस पर दृष्टि हुई... आहा...हा...! इसका नाम सम्यग्दृष्टि। बाबूलालजी! सूक्ष्म बात है, ऐसी बात है। आहा...हा...! भाई को तो बहुत अभ्यास था विमलचन्द। उसे तो अभ्यास था। अन्त में स्थिति जरा-सी... वह तो देह की स्थिति है। आहा...हा...! यह चीज़....

देह के अस्तित्व में जिसका अस्तित्व नहीं; राग के अस्तित्व में जिसका अस्तित्व नहीं; जिसकी एक समय की पर्याय में अस्तित्व नहीं... आहा...हा...! जिसका अस्तित्व शाश्वत् है। यह अन्दर भगवान आत्मा की बात चलती है, हों! आहा...हा...! यह शाश्वत् शुद्धि का स्थल... आहा...हा...! ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य है, जिसमें अनन्त-अनन्त वीर्य और बल पड़ा है। आहा...हा...! एक ओर ऐसा कहना कि आत्म वीर्य है और अनन्त जो बल का धनी स्वरूप, ऐसा आत्मद्रव्य जिसने पकड़ा, उसका वीर्य स्वरूप की रचना करता है। एक ओर ऐसा कहना कि वीर्य है, वह स्वरूप की पर्याय को रचता नहीं। आहा...हा...! गहन विषय है। सर्वज्ञ, सर्वज्ञ... प्रभु! तू सर्वज्ञ है। जो सर्वज्ञ हुए, वे पर्याय में हुए, वे आये कहाँ से? आहा...हा...!

यहाँ उस शुद्धिधाम शाश्वत् पर दृष्टि पड़ने से, बलवान आत्मद्रव्य होने से, आहा...हा...! **उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है।** आहा...हा...! शुद्ध त्रिकाली का जहाँ स्वीकार हुआ अर्थात् शुद्ध अर्थात् आनन्द की दशा, सम्यग्दर्शन की दशा, शान्ति की दशा, ईश्वरता की-प्रभुता की दशा, वह शुद्धता प्रगट होती ही है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। लोगों ने सब बाहर में ऐसा कर डाला, मानो यह बाहर का त्याग किया और यह अमुक हो गये हम समकिती, हो गये हम चारित्रवन्त... आहा...हा...! भाई! बापू! ये वस्तु कैसे कहना? और कैसे समझना? वह कोई अलौकिक बात है! आहा...हा...!

यह शाश्वत् शुद्ध का धाम-स्थल, इस पर दृष्टि होना यह कोई साधारण बात है? यह

www.vitragvani.com

कोई बात से, उपदेश से कुछ प्राप्त हो ऐसी है ? यह तो अन्तर की दृष्टि करे, तब प्राप्त होता है। आहा...हा... ! ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य... आहा...हा... ! उसकी दृष्टि प्रगट होने से शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान का अंश प्रगट होता ही है। यह शुद्धिधाम शाश्वत् बलवान भगवान पर दृष्टि देने से धर्म की / वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती ही है। आहा...हा... !

देव-गुरु और शास्त्र की श्रद्धा या पंच महाव्रत के परिणाम तो राग हैं। राग की श्रद्धा करना, वह तो मिथ्यात्व है; राग मेरा स्वरूप है-ऐसा मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा... ! परन्तु रागरहित चैतन्य शुद्धि का स्थल महा प्रभु, चैतन्य प्रभु, पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर... गुणवाला नहीं परन्तु अनन्त गुण से भरपूर पदार्थ है, वे गुण भी शाश्वत्, द्रव्य भी शाश्वत् है। आहा...हा... ! जैसे वह द्रव्य शाश्वत् है, जैसे उसकी जो शक्तियाँ हैं, अनन्त ज्ञान-दर्शन, वे भी शाश्वत् हैं। आहा...हा... ! इससे अनन्त गुण का धारक गुणी, उस पर दृष्टि होने से शान्ति और आनन्द तथा सम्यग्दर्शन और वीतरागी पर्याय प्रगट होती ही है। आहा...हा... ! भगवान ! ऐसा मार्ग है, प्रभु ! इसे अपनी महिमा सूझती नहीं। महिमा, पर में महिमा (लगती है)। संयोगों में या साधन अनुकूल हो, ऐसा कि कुछ लड़का-बड़का कमाना सीख जाये, साधन ठीक हो तो अपने को निवृत्ति मिले। अरे ! भगवान क्या है तुझे यह ? आहा...हा... !

तू तो राग से भी निवृत्तस्वरूप ही त्रिकाल है। आहा...हा... ! राग की तो यहाँ बात नहीं, शुद्धि का धाम कहा है यह तो। आहा...हा... ! शुद्ध का, आनन्द का कन्द प्रभु है अन्दर नित्यानन्द दल और बलवान, जोरदार आत्मद्रव्य है। आहा...हा... ! इस बलवान का जिसने आश्रय लिया, इस बलवान पर जिसने दृष्टि दी और वह दृष्टि (कि) जिसने पूरे पूर्ण को स्वीकार किया उसकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। आहा...हा... ! प्रवीणभाई ! ऐसी बातें हैं। साधारण बहिनों को तो समझना बहुत कठिन पड़े। अभ्यास नहीं इन्हें। आहा...हा... !

शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है। विकल्प के भेद से शुद्धपर्याय प्रगट नहीं होती। आहा...हा... ! जितना अन्दर में विकल्प अर्थात् राग उत्पन्न हो, चाहे तो दया का, दान का, भक्ति का, अरे ! परमेश्वर-परमात्मा की श्रद्धा का राग उत्पन्न हो, पंच परमेष्ठी, गुरु, शास्त्र

www.vitragvani.com

की श्रद्धा का भी विकल्प उत्पन्न हो कि यह परमात्मा है, इस विकल्प से... आहा...हा...! **विकल्प के भेद से शुद्धपर्याय प्रगट नहीं होती**। इससे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और शान्ति / वीतरागता प्रगट नहीं होती। आहा...हा...!

यह तो इसमें याद आया था। अभी वह पढ़ा, श्रीमद् की वह कड़ी (थी) 'सुखधाम अनन्त सु सन्त चहि' (इसमें) शुद्धिधाम आया न?

श्रीमद् राजचन्द्र आत्मज्ञानी हो गये, गृहस्थाश्रम में थे। एक भव करके मोक्ष जायेंगे, ऐसी शक्ति थी। वैसे झवेरी का लाखों का व्यापार था परन्तु वह सब पर, पर (भासित होता था)। आहा...हा...! दृष्टि में तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ तैरता था। वे स्वयं कहते हैं कि अरे! मुझे किंचित् राग बाकी रहा लगता है। आहा...हा...! पूर्णानन्द की पूर्ण प्राप्ति के बीच में उन्हें जरा थोड़ी दखल लगती है। यह थोड़ा राग थोड़ा अस्थिरता का, अस्थिरता का छूटता नहीं, पुरुषार्थ की कमी है। आहा...हा...! क्या आया नहीं रणका...? रण में... भूल गये, भाषा नहीं आती? महारण प्रगट हुआ, बहुत शीघ्रता से प्रवास पूरा करना था परन्तु बीच में सहारे का रण (आया) भाषा भूल जाते हैं। एकदम शुद्धि की दृष्टि पड़ी है न! आहा...हा...! जिसमें से शुद्धि की पूर्णता प्रगट होने की भावना है, तथापि सहारा का रण... रण, कच्छ का रण है न? अकेली रेत, अकेली रेत, पानी नहीं, वृक्ष नहीं, पानी भी नहीं और वृक्ष भी नहीं। आहा...हा...! अरे! सहारा का रण प्राप्त हुआ पैर में निकाचित थाक ग्राह... ऐसा आया है न? आहा...हा...! अरे! भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्धि के धाम में हम गये परन्तु स्थिर हुए नहीं, अभी स्थिरता कर नहीं सके। उसके कारण 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे...' यह राग अभी कुछ बाकी लगता है, यह छूटता नहीं, पुरुषार्थ की कमी है। आहा...हा...! 'इससे एक देह धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश' एकाध देह धारण करना पड़ेगा, अभी ऐसा लगता है। आहा...हा...! गृहस्थाश्रम में थे, भाई बाबूलालजी! श्रीमद् राजचन्द्र! मुम्बई में, गृहस्थाश्रम में जवाहरात का धन्धा था। आये और फिर बैठे थे परन्तु फिर भी अन्दर में से नहीं, जैसे नारियल में से गोला भिन्न पड़ जाता है। आहा...हा...! और वह कांचली... क्या कहते हैं कांचली को? नरेटी, टूटकर गोला भिन्न पड़ जाता है, तब सिद्ध हो जाता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में इस कांचली में से-नरेटी में से भिन्न

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

गोला अन्दर रहे, तब तक उसे समकिती और ज्ञानी कहने में आता है परन्तु उसमें से पूर्ण तोड़ डालकर पूर्ण सिद्धदशा प्राप्त हो... आहा...हा...! तब अकेला परमात्मपद पर्याय में प्राप्त हुआ। वह यहाँ सहरा का रणमां अरे! आये, जा चढ़े हैं।

हमने पूर्णानन्द के नाथ में पहुँच जाने का... आहा...हा...! बहुत प्रयास है, परन्तु प्रयास रुक गया है। आहा...हा...! राग की मन्दता में जरा अटक गया है। आहा...हा...!

सुखधाम अनन्त सुसन्त यही
दिन-रात रहे तद् ध्यान मही
परशान्त अनन्त सुधामय जो
प्रणमुं पद ते वरते जय ते॥

आहा...हा...! यह अन्तिम कड़ी है। देह छूटने (से पहले की) अन्तिम कड़ी... आहा...हा...! भाई को कहा, भाई! छोटी उम्र, तैंतीस वर्ष की उम्र, तैंतीस वर्ष और चार महीना। भाई को कहा - भाई! माँ को दुःखी मत होने देना। आहा...हा...! यह वाणी निकली। माता थी, पिता थे, पुत्र-बहू-स्त्री थी। भाई! माँ को दुःखी मत होने देना। मैं अब स्वरूप में समाता हूँ। देह छूटने का काल आ गया है। मैं अन्दर मेरे स्वरूप में जाता हूँ। कुर्सी पर बैठे थे, खड़े होकर, आराम कुर्सी में लेटे, अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में दृष्टि देकर लीन हुए परन्तु अभी पूर्ण स्थिरता नहीं हुई; इसलिए एकाध देह धारण करना पड़ेगी। आहा...हा...!

ऐसा जो शुद्धि का धाम प्रभु परमात्मस्वरूप ही स्वयं है। आहा...हा...! परम आत्म, परम स्वरूप, परम भगवान (हूँ)—ऐसी जहाँ दृष्टि हुई... आहा...हा...! तो कहते हैं कि शुद्ध दशा, धर्म दशा तब प्रगट होती है। धर्मी ऐसा जो शुद्धिधाम, उसे अन्तर स्वीकार करते हुए शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है। पूर्ण आश्रय ले तो पूर्ण शुद्धपर्याय प्रगट होती है, अल्प आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। भगवान शुद्धिधाम का मध्यम आश्रय ले तो चारित्र आदि या (केवलज्ञान) आदि होते हैं। आहा...हा...! अन्तर में एकदम पूर्ण आश्रय होने पर एकदम सर्वज्ञ हो जाये—सिद्ध हो जाये। आहा...हा...!

ऐसा जो भगवान आत्मद्रव्य, इस **विकल्प के भेद से शुद्धपर्याय प्रगट नहीं**

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

होती। तू चाहे जितनी विकल्पवृत्ति कर—मैं शुद्ध हूँ और पूर्ण हूँ, अभेद हूँ और अबन्ध हूँ और शुद्धिधाम हूँ—ऐसी वृत्ति / विकल्प उठा (तो भी) उससे शुद्धि प्रगट नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया?

एक को ग्रहण किया, उसमें सब आ जाता है। भगवान अनन्त गुण का धाम, उसे जिसने दृष्टि में ले लिया, उसका जिसने अवलम्बन लिया... आहा...हा...! उस एक को जिसने ग्रहण किया, उसमें सब आ जाता है। उसमें से ज्ञान होता है, दर्शन होता है, चारित्र, आनन्द होता है, सब होता है। आहा...हा...! एक जाना, उसमें सब आ जायेगा। उसे जाने बिना तू सब लाख बातें जान, शास्त्र की या बातें करने की जगत की... आहा...हा...! उसमें से शुद्धता नहीं आयेगी। आहा...हा...! अन्दर पूर्णानन्द के नाथ को—एक को जिसने पकड़ा... आहा...हा...! उसमें सब आ गया। क्योंकि उसमें तो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि सब पड़ा है। आहा...हा...!

दृष्टि के साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है। क्या कहा यह? वस्तु जो शुद्धि का धाम / स्थल, उसमें जिसकी दृष्टि पड़ी और उसे पकड़ा, उसने एक को जाना, उसमें सब आ गया। भगवान आत्मा जाना, उसने सब जाना। आहा...हा...! क्यों? कि **दृष्टि के साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान....** आहा...हा...! यह दृष्टि तो हुई और इसने सब प्रगट दृष्टि में लिया; अब पर्याय न्यून है, कुछ राग है, उसे दृष्टि के साथ हुआ ज्ञान, उसे विवेक करके जानता है। जानता है कि है, अभी राग है, अभी मैं पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ। पूर्ण शुद्ध को पकड़ा है परन्तु अपूर्णता है, उसे दृष्टि नहीं जानती।

दृष्टि का विषय तो त्रिकाली है परन्तु दृष्टि होने पर जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान त्रिकाल को ही स्वीकार करता है और वह ज्ञान, अपूर्णता है-अभी मुझमें पुरुषार्थ की कमजोरी है —(ऐसा भी जानता है)। आहा...हा...! जितना तीव्र आश्रय लेना चाहिए, उतना है नहीं—ऐसा ज्ञान, समय-समय में जितने रागादि हैं और शुद्धाशुद्धि की अपूर्णता है, उसे जानता है, जानता है। वह ज्ञान ऐसा नहीं जानता कि मैं पर्याय में पूर्ण हो गया। आहा...हा...! समझ में आया? अब ऐसी बात है। दूसरे कहते हैं सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना और प्रौषध करना... आहा...हा...! बापू! मार्ग दूसरा है, भाई!

www.vitragvani.com

जिसमें करना और विकल्प को भी जहाँ अवकाश नहीं... आहा...हा... ! अरे ! जिसे गुणी-गुण के भेद का विकल्प है, उससे भी वह प्राप्त हो—ऐसा नहीं। आहा...हा... ! वह दूसरे प्रकार से किस प्रकार प्राप्त होगा ? भाई ! पंचम काल हो या चौथा काल हो या नरक का काल हो या तिर्यंच का (काल हो)... आहा...हा... ! परन्तु भगवान शुद्धि का धाम तो शाश्वत् सर्वत्र स्वयं ही पूरा पड़ा है। आहा...हा... ! उस स्थल में जाने पर उसकी निर्मल दशा प्रगट होती है, होती ही है और दूसरे किसी भी विकल्प से वह प्रगट नहीं होती। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

ऐसी बात है; इसलिए कठिन लगता है। बहुत बेचारे अभी आये थे। एक थे, कहा, बापू ! सम्यग्दर्शन भाई... अरे ! परन्तु समझे नहीं, सुना नहीं। उन्होंने ऐसा कि यह त्याग करते हैं, इतना-इतना उन्हें... अरे बापू ! क्या कहें ? भाई ! आहा..हा... ! किसका त्याग ? भाई ! यह स्त्री-पुत्र छोड़े और घर छोड़ा, (इस मान्यता में तो) धर्म छोड़ा है। अरे बापू ! तुझे पता नहीं। (उन्हें कहा) परन्तु ऐसे हमारे सबमें सम्यग्दर्शन नहीं—ऐसा तुम्हें किस प्रकार पता पड़ता है ? प्रभु ! क्या कहें ? बापू ! आहा...हा... ! अरे बापू ! श्रुतज्ञान क्या चीज है ? आहा...हा... ! श्रुतज्ञान में तो केवली को भी परख लेता है। यह श्रुतज्ञान कहाँ, किस प्रकार सम्यग्दर्शन हो और न हो ?—यह श्रुतज्ञान सब जान सकता है। यह अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान हो तो जान सके ऐसा कुछ है नहीं।

इसलिए कहा न ? **एक को ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है।** आहा...हा... ! उसके ज्ञान में सब विवेक आ जाता है। वह ज्ञान जहाँ-जहाँ अपनी दशा अपूर्ण है, उसे जानता है। आहा...हा... ! सामनेवाले की दशा में मिथ्यात्व किस प्रकार है, वह भी यह जानता है। आहा...हा... ! ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, दृष्टि के साथ हुआ, वह सब विवेक करता है। पर्याय में अभी अल्पज्ञ हूँ। आहा...हा... !

एक ओर ऐसा कहना कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है और श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है परन्तु पूरा जानता है—ऐसा कहा। और एक ओर ऐसा कहना कि श्रुतज्ञान की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय के अनन्तवें भाग है। आहा...हा... ! किस अपेक्षा से ? समझ में आया ? उसे प्रत्यक्ष नहीं हुआ, इसलिए उसे अपूर्ण और अनन्तवें भाग में गिनने में आया

www.vitragvani.com

है। आहा...हा...! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके साथ दृष्टि होकर ज्ञान हुआ, वह विवेक करता है। आहा...हा...! १०७, १०७ (बोल पूरा) हुआ। क्या कहलाता है यह? पैराग्राफ बोल, १०७ बोल। आहा...हा...!

जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्य से बढ़कर हो। तू इस चैतन्य में - आत्मा में स्थिर हो, निवास कर। आत्मा दिव्य ज्ञान से, अनन्त गुणों से समृद्ध है। अहा! चैतन्य की ऋद्धि अगाध है॥ १०८॥

१०८, **जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्य से बढ़कर हो।** आहा...हा...! सिद्ध भी चैतन्य के द्रव्य से बढ़ जाये, वह चीज नहीं। पर्याय है न? वह पर्याय है। आहा...हा...! बारह अंग का शास्त्रज्ञान आदि हो... आहा...हा...! तो भी चैतन्यवस्तु से वह बढ़ नहीं जाता। चैतन्यवस्तु तो अलौकिक है। आहा...हा...! शास्त्र में तो आता है न? आचारांग शास्त्र के अठारह हजार पद होते हैं। एक पद में इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक होते हैं, उनके अक्षर कितने? उन्हें गिने ऐसा ज्ञान भी अनन्त बार हुआ। आहा...हा...! परन्तु वह सब परलक्ष्यी ज्ञान है। भगवान अनन्त ज्ञान का समुद्र भरा है, उसका तरंग में से उठना चाहिए। आहा...! पानी की तरंग पानी में से उठना चाहिए। आहा...हा...! कठिन बातें भाई! आहा...हा...!

चैतन्य तत्त्व प्रभु माहात्म्यस्वरूप, जगत में उसके सिवाय कोई चीज बड़ी है नहीं। है? **जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है....** कोई वस्तु नहीं। **जो चैतन्य से बढ़कर हो।** आहा...हा...! केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय की स्थिति (रखती है)। आहा...हा...! और चैतन्य को त्रिकाली अनन्त गुण का सागर-समुद्र है। आहा...हा...! उससे बढ़ जाये, वह कौन सी चीज जगत में है? आहा...हा...!

यहाँ द्रव्य का लेना है, हों! केवलज्ञान, वह भी पर्याय है परन्तु वस्तु जो है चैतन्य त्रिकाल, अरे! भाई! यह त्रिकाल शब्द भले हो परन्तु वह त्रिकाल रहनेवाली चीज ऐसी की ऐसी शाश्वत् चीज है, उस ध्रुव में दृष्टि आना... आहा...हा...! तो उसके जैसी बड़ी

www.vitragvani.com

चीज जगत में कोई है नहीं। आहा...हा...! ऐसी सब निश्चय की बातें, लोगों को ऐसी लगती है कि... अनजाने लोगों को तो ऐसा लगता है कि यह क्या किस प्रकार का धर्म? यह कोई वीतराग का धर्म होगा? वीतराग के धर्म में तो छह काय की दया पालना, व्रत पालना, उपवास करना, रात्रि को भोजन न करना, चौविहार करना, करना अर्थात् चौविहार का (रात्रि भोजन का) त्याग करना – ऐसा। आहा...हा...! अरे प्रभु! सुन तो सही।

पर्यायदृष्टि का त्याग करना और द्रव्यदृष्टि को ग्रहण करना, यह मूल चीज है। आहा...हा...! बाहर का त्याग तो अन्दर में त्रिकाल वर्तता ही है। वस्तु में बाहर की चीज का तो अभाव ही है। उसे स्पर्श भी नहीं किया है। कर्म, शरीर तो आत्मा को स्पर्श भी नहीं करता है और उस चीज का अस्तित्व उसमें हो, परन्तु आत्मा की अस्तित्व की मौजूदगी में तो उसकी नास्ति है। ओहो...! अब जिसकी नास्ति है, उसका त्याग करना है? आहा...हा...! परन्तु इसकी पर्याय में रागादिभाव है, मलिन अवस्था है; उसे त्रिकाल की दृष्टि करके, उसकी उत्पत्ति न हो, उसने उसका त्याग किया—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहा...हा...!

अरे! इस चीज के बिना बाह्य का त्याग करके अभिमान चढ़ जाये। हमने त्यागा है, तुमने त्यागा नहीं। आहा...हा...! हम एक बार आहार लेते हैं, रूखा आहार लेते हैं, जो हमारे लिये बनाया हो, वह भी नहीं लेते, ऐसी स्थिति होवे तो भी वह कोई वस्तु नहीं है। सेठ! ऐसी चीज है यह। आहा...हा...!

जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है.... केवलज्ञान भी जिसके चैतन्यद्रव्य के समक्ष कुछ उत्कृष्ट नहीं है। आहा...हा...! ऐसा भगवान तू स्वयं है न प्रभु! आहा...हा...! तुझे हीन मानना, वह महा भ्रम है। आहा...हा...! तुझे गतिवाला मानना, वह भ्रम है। आहा...हा...! तुझे परद्रव्य के सम्बन्धवाला मानना, प्रभु! तुझे भ्रम है। भगवानस्वरूप प्रभु विराजता है, उसे परद्रव्य का माहात्म्य आवे, उसे स्वद्रव्य का माहात्म्य उड़ गया है। आहा...हा...! जगत में उसके जैसी ऊँची चीज नहीं है। आहा...हा...!

प्रभु! **तू इस चैतन्य में – आत्मा में स्थिर हो,...** उसके जैसी कोई ऊँची चीज नहीं है। तत्त्व वस्तु भगवान आत्मा, द्रव्य, वस्तु, पदार्थ वस्तु अस्तित्व जिसकी मौजूदगी पूर्ण

www.vitragvani.com

स्वभाव से भरपूर है, उससे बड़ी कोई चीज नहीं है। इसलिए बड़ी चीज में जा। उस बड़ी का माहात्म्य कर। जिसके समक्ष पर्याय का माहात्म्य भी उड़ जाता है। आहा...हा...! अनुभूति या समकित, चारित्रपर्याय भी, सर्वोत्कृष्ट चीज प्रभु उत्कृष्ट के पास इस चीज का माहात्म्य है ही नहीं। आहा...हा...! परन्तु यह वस्तु अन्तर में, अन्तर में यथार्थरूप से ग्रहण होना और दृष्टि में वहाँ उसका विषय करना / बनाना। आहा...हा...! तो तू वहाँ जा, वहाँ स्थिर हो, तुझे शान्ति होगी। वहाँ जाकर स्थिर हो, जो वस्तु पहले दृष्टि में देखी है, जानी है दृष्टि में, जानी है ज्ञान की पर्याय में, उस वस्तु में अब स्थिर हो। आहा...हा...! इसका नाम चारित्र है। आहा...हा...!

आठ-आठ वर्ष के राजकुमार! आता है न भरत चक्रवर्ती के, नहीं? क्या लड़के का नाम? गेंद खेलते हैं। रविकीर्ति। १०८ लड़के, सोने के गेंद और क्या कहलाता है वह? गेंद-डण्डा, गेंद और डण्डा सोने की गेंद और सोने का डण्डा (उससे) खेलते थे। उसमें बाहर से बात आयी कि अरे! सेनापति... क्या नाम? जयकुमार सेनापति, ९६ करोड़ सैनिकों का स्वामी, मुनि हुए हैं। आहा...हा...! भावलिंगी, जिन्हें अन्तर आनन्द प्रगट हुआ है—ऐसा उन लड़कों ने सुना... खेलते थे और माँ ने एक व्यक्ति साथ में भेजा था कि ध्यान रखना, कहीं जाये नहीं। एक व्यक्ति सम्हालने को (भेजा था)। वे खेलते थे वहाँ, कहीं जाये नहीं। उल्टे-सीधे हो नहीं। आहा...हा...! इन्हें वापस घर लाना। इन लड़कों ने जहाँ सुना... आहा...हा...! जयकुमार ने घर ढूँढा और वह तो घर में गये। आहा...हा...! वे मुनिपना लेकर घर में गये। आहा...हा...!

एक व्यक्ति साथ में था, उसने कहा, भाई! चलो, चलो। हम भगवान के पास दर्शन करने (जाते हैं)। ऐसे करते... करते... करते... ले गये, नहीं तो वे जाने नहीं दें। भगवान के पास दर्शन करेंगे। आहा...हा...! जहाँ समवसरण में गये, आहा...हा...! प्रभु! हमें दीक्षित करो! आहा...हा...! चक्रवर्ती के पुत्र, मणिरत्न के पुतले जैसे जिनके शरीर, मणिरत्न जैसे उनके शरीर, चक्रवर्ती के पुत्र अर्थात्! आहा...हा...! जिन्हें एक सेकेण्ड की अरबों की आमदनी, वह भी थोड़ी कहलाती है।

अभी है न एक साधारण राजा, नहीं? अरब स्थान में। एक दिन की एक अरब की

www.vitragvani.com

आमदनी अभी है। पेट्रोल निकला, जगह छोटी है परन्तु पेट्रोल का कुँआ निकला। पेट्रोल का इतना प्रवाह आता है कि एक-एक दिन की अरब की आमदनी। अभी है। यह तो हल्का काल, पंचम काल। आहा...हा... ! और अनार्य देश। दूसरा एक देश है, उसे एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी है। वह पेट्रोल की ही। पेट्रोल के ऐसे कुएँ निकले। कुएँ में से वस्तु निकलने लगी। लाखों-करोड़ों धोध ! आहा...हा... ! और एक कुँआ अभी यहाँ नहीं कहा गाँव में ? कुछ कहा। कौन सा गाँव ? 'कोडीनार'।

एक कुँआ निकला, उसमें गहराई से ऐसा पानी निकला कि जो कोई अन्दर जाये वह मर जाये। जहर चढ़ गया। जहरवाला पानी। जैसे पेट्रोल का पानी, यह ठण्डा पानी, वैसे यह पानी ऐसा कुछ जहरीला कि अन्दर देखने जाये वहाँ समाप्त ! अभी हुआ, आठ लोग मर गये। पहले लड़का देखने गया तो मर गया, उसका पिता देखने गया तो मर गया, उसका काका देखने गया तो मर गया, उसका लड़का देखने गया तो मर गया, ऐसे दूसरे चार देखने गये कि यह हुआ क्या ? क्या है अन्दर ? यह है क्या ? ऐसा देखने जाये वहाँ (समाप्त)। वह इतना जहरीला पानी, जिसकी गन्ध आवे और लोग मर जाये। आहा...हा... ! अब ऐसे अरबोंपति भी अभी जीव हैं। उसमें वह क्या चीज़ है ? अरबों पैसे पैदा (हो) उसकी चीज़ वह क्या है ? उसकी महिमा है ? आहा...हा... !

भगवान चैतन्यस्वरूप है। महा अनन्त-अनन्त आनन्द का धाम, अनन्त-अनन्त अमर्यादित ज्ञान का स्थान, अनन्त-अनन्त प्रभुता ईश्वर की। ईश्वरता से भरपूर भगवान। आहा...हा... ! अब तुझे यहाँ दो, पाँच, दस करोड़ रुपये हों, वहाँ तो ऐसा हो जाता है कि आहा... ! हमने क्या कमाया और हम क्या बढ़ गये ! बढ़ गये, दुर्गति में जाने के लिये बढ़ गये। आहा...हा... ! ए... बापू ! ये पाँच-पाँच, दस-दस करोड़ के बँगले, ये छोड़कर जायेगा और मेरापन मानकर बैठा, उसे छूटने के समय आकुलता का पार नहीं होगा और उस आकुलता में जाकर कहीं तिर्यंच आदि में चला जायेगा। बापू ! वहाँ इसके पैसे क्या करेंगे ? आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं कि बड़े में बड़ी चीज़ प्रभु ! तेरे पास कुँआ पड़ा है बड़ा, जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरे, अतीन्द्रिय केवलज्ञान प्रगट पर्याय प्रगट हो—ऐसा बड़ा

www.vitragvani.com

कुँआ है यह। समझ में आया? यह आता है न? (समयसार नाटक जीव द्वार-३३)

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपनौं रससौं भर्‌यौ अनादि टेक हौं।

अनादि वस्तु हूँ।

मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप हे,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥३३॥ (समयसार नाटक)

सिन्धु! शुद्ध चेतना का समुद्र भगवान अन्दर है, बापू! आहा...हा...! **सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।** आहा...हा...! अरे! यह दृष्टि जब तक न हो, तब तक सब भटकने के रास्ते हैं। समझ में आया? दृष्टि में यह महाप्रभु बड़ी चीज़ है, उसका स्वीकार न हो और उससे साधारण चीज़ का भी माहात्म्य आवे (तो वह) दृष्टि विपरीत है। आहा...हा...! अरे! ग्यारह अंग के ज्ञान का भी माहात्म्य आवे; एक अंग में तो अठारह हजार पद और छप्पन करोड़ जैसे अक्षर हैं। आहा...हा...! अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ अधिक तो श्लोक हैं। आहा...हा...! एक-एक श्लोक बत्तीस अक्षर का। कितने अक्षर? कण्ठस्थ (होवे) उससे क्या? आहा...हा...! ऐसे एक नहीं किन्तु ग्यारह अंग का ज्ञान! उसका माहात्म्य क्या? आहा...हा...!

महा प्रभु जिसमें से केवलज्ञान झरे—ऐसा वह गहरा कुँआ, अन्दर में से जैसे पेट्रोल झरे जिसे अभी करोड़ों की आमदनी है। यह तो अनन्त आनन्द का झरना! स्वभाव का झरना है। आहा...हा...! इसमें दृष्टि कर प्रभु! और वहाँ जाकर स्थिर हो। दृष्टि कर और जाकर स्थिर हो! आहा...हा...! ये करना है।

निवास कर। तू इस चैतन्य में - आत्मा में स्थिर हो, निवास कर। आहा...हा...! निवास-वास, रहने का स्थान उसे बना। आहा...हा...! निवासस्थान। किस गाँव के? कि अमुक गाँव के। यहाँ किस गाँव के? कि आत्म गाँव के। आहा...हा...! आत्मा में जिसका निवास है। आहा...हा...! सादी भाषा तो देखो! सादी भाषा और भाव तो बहुत गहरे! आहा...हा...! **निवास कर।** आहा...हा...!

आत्मा दिव्य ज्ञान से, अनन्त गुणों से समृद्ध है। भगवान में दिव्य अर्थात् अक्षय

www.vitragvani.com

अनन्त दिव्य ज्ञान। आहा...हा...! यह दिव्यध्वनि में ऐसा आया, प्रभु! तेरा ज्ञान तो दिव्य ज्ञान है न! केवलज्ञान की पर्याय की भी उसके समक्ष कोई कीमत नहीं। आहा...हा...! ऐसा ज्ञान की लादी, ज्ञान का सागर, ज्ञानस्वभाव का दल ऐसा तू प्रभु है न। आहा...हा...! ऐसा दिव्य ज्ञान से, दिव्य ज्ञान। आहा...हा...! ऐसे दूसरे अनन्त गुण, वापस एक नहीं। अरे! इसने आत्मा के गुण, उसकी अचिन्त्यता और अनन्तता सुनी नहीं है। आहा...हा...!

अनन्त दिव्यज्ञान और अनन्त गुणों से समृद्ध है। भगवान अनन्त गुणों से समृद्ध, समृद्धिवाला है, अनन्त गुण की सम्पदावाला है। आहा...हा...! बाकी तो सब आपदावाले हैं। आहा...हा...! ये पुण्य और पाप और शरीर मेरा और लक्ष्मी मेरी, ये सब आपदावाले हैं। यह तो (आत्मा को) सम्पदावाला है। आहा...हा...! अनन्त गुणों से समृद्ध है।

अहो! चैतन्य की ऋद्धि अगाध है। बाहर की ऋद्धि यह करोड़ोंपति, विशाल बँगले, करोड़-करोड़ों के और पाँच करोड़ के और दस करोड़ के बँगले... आहा...हा....! बापू, यह तो धूल, श्मशान की राख है। तुझमें जो समृद्धि है, वह अलौकिक है। वह अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसा अनन्त समृद्धि का स्वामी आत्मा भगवान है। आहा...हा...! **अहो! चैतन्य की ऋद्धि अगाध है।** लो! १०८, माला के मणके (मोती) १०८ होते हैं न? यह १०८ वाँ मणका आया। १०८ बोल। आहा...हा...।

चैतन्य की ऋद्धि अगाध है। भगवान! एक बार तो ऐसे भगवान ऐसा कहा था न? इस हिन्दुस्तान में से बात बाहर गयी तो कहे, आत्मा को भगवान कहते हैं। अरे! प्रभु! सुन न भाई! पर्याय में भगवान की बात नहीं, वस्तु से भगवान है। यह भगवान कहने से क्रियाकाण्डियों को नहीं बैठा। यह व्रत लिये और तपस्या ली और अमुक किया... भगवान आत्मा (कहें तो कहते हैं) नहीं... नहीं, अभी भगवान आत्मा (नहीं)। यहाँ तो त्रिकाली भगवान आत्मा है। आहा...हा...! उसे कोई काल लागू नहीं पड़ता, उसे कोई रौद्रध्यान की पर्याय हो तो भी वह... आहा...हा...! उसके त्रिकाल में लागू नहीं पड़ती। आहा...हा...! जिसे आँसू की धारा निरन्तर बहे—ऐसा दुःख दशा में हो परन्तु वस्तु तो वस्तु है, उसमें कुछ फेरफार नहीं। उसकी ऋद्धि तो त्रिकाल उस समय भी पूर्ण भरी है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

अरे...रे... ! यह बात सुनने को मिले नहीं, उसके विचार में यह बात आवे नहीं, वह विचार स्वभाव तरफ ढले नहीं और ढलकर फिर स्थिर होना... आहा...हा... ! ऐसी बात है, तब इसका कल्याण हो और मोक्ष हो। आहा... !

आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है, उसमें स्नान कर। आत्मा पवित्रता से भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा। आत्मा के गुणों में सराबोर हो जा। आत्मतीर्थ में ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय और मलिनता दूर हो॥ १०९॥

१०९, **आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है,....** शत्रुंजय, गिरनार, और सम्मेदशिखर और.... यह तो इसे भाव हो तो शुभभाव है, पुण्य है; वह कोई आत्मा नहीं। आहा...हा... ! एक साधु नाम धराकर हमारे पास आये थे। हमारे पास सम्मेदशिखर के माहात्म्य की पुस्तक है (ऐसा उन्होंने कहा) श्वेताम्बर में शत्रुंजय के माहात्म्य की एक पुस्तक है। यह कहें — हमारे पास यह है। मैंने कहा क्या है इसमें ? कि सम्मेदशिखर के दर्शन करे तो ४९ भव में मोक्ष होता है। कहा—यह भगवान का वचन नहीं। लाख, अनन्त बार सम्मेदशिखर को करे, वह तो शुभभाव है। आहा...हा... !

इन लोगों ने सम्मेदशिखर यहाँ बढ़ा दिया है। श्वेताम्बर लोगों में यह शत्रुंजय। बहुत माहात्म्य और बहुत माहात्म्य। वहाँ सिर पर साधु चाहे जैसा पागल हो परन्तु यात्रा करके उतरे, वहाँ उसे आहार-पानी से उसका ऐसा हो जाता है और अमुक होता है। आहा...हा... ! अर...र..र... ! कहाँ-कहाँ मनवाया ?

यहाँ तो कहते हैं तेरा तीर्थ जो है, वह तो यहाँ तेरे पास है। आहा...हा... ! **आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है,...** परमपवित्र तीर्थ है। आहा...हा... ! क्योंकि तिरने का उपाय उसमें से प्रगट होता है, उसे तीर्थ कहते हैं। केवलज्ञान को प्राप्त करने का जो उपाय है, वह उसमें से आता है। अर्थात् उसका आश्रय करने से आता है। आहा...हा... ! उस स्वरूप में आरूढ़ हो, वह तीर्थ है। उस तीर्थ की यात्रा इसने की। आहा...हा... ! कुन्दकुन्दाचार्य, पंचम काल

www.vitragvani.com

के साधु, भगवान के पास सदेह यात्रा की। आहा...हा...! यह आत्मा परम तीर्थ है कि जिसमें आरूढ़ होने से पवित्र की धारा प्रगट होती है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रपात बरसे—ऐसा यह भगवान आत्मा पवित्र तीर्थ है। उसमें स्नान कर, उसमें जा! आहा...हा...! उसमें स्नान कर, तेरा संसार जलकर राख हो जायेगा और पवित्रता प्रगट होगी, प्रभु! आहा...हा...!

यहाँ तो बाहर के शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य (करते हैं) यात्रा करके आवे, फिर (बोले) हमने तो ऐसी ९९ वें की और अमुक की और अमुक की... हम मानो तिर गये। आहा...हा...! धीरुभाई! धीरुभाई के पिताजी को तीर्थ करके लेकर आये थे। यहाँ कहा कि उसमें कुछ नहीं है। वह तो शुभ पुण्यभाव है, चिल्लाने लग गये। हाय... हाय...! यह धर्म किस प्रकार का? यह शत्रुंजय जाकर यात्रा करके आये तो ये कहते हैं शुभभाव है, धर्म नहीं। उस सम्मेदशिखर में नहीं आता? 'एक बार वंदे जो कोई' आता है न? वह तो अशुभ से बचने की अपेक्षा से बात है, वरना वास्तविक सम्मेदशिखर तो प्रभु स्वयं है। आहा...हा...!

अकेला समता का सागर! समता का पर्वत! वीतरागभाव से भरपूर पर्वत, वह सम्मेदशिखर है। वहाँ एक बार जाने से तेरा पवित्र काम हो जायेगा। उसमें ऐसा आवे, इसलिए लोगों को (ऐसा लगता है कि) अरे..रे! हमारे तीर्थ को उड़ाते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को, भक्ति को राग कहते हैं। बापू! वह राग तो है ही, भाई! आहा...हा...! बापू! तेरा नाथ तो वीतरागभाव से भरपूर है न! वह वीतरागस्वरूप, जिनस्वरूप ही है। अन्दर भगवान जिनस्वरूप ही आत्मा है – ऐसे जिनस्वरूप में आरूढ़ हो। आहा...हा...!

उसमें स्नान कर। आत्मा पवित्रता से भरपूर है,.... पहले पवित्र तीर्थ कहा न? पवित्र तीर्थ। क्योंकि पवित्रता का तो अकेला पिण्ड है, पवित्रता का धाम है, पवित्रता से तो भरा हुआ भगवान है। आहा...हा...! उसमें डुबकी मार। आहा...हा...! अरे! राग में रूंध गया है, भाई! यहाँ जा न अन्दर। आहा...हा...! जहाँ भगवत्स्वरूप पूर्ण है... आहा...हा...! **उसमें स्नान कर। आत्मा पवित्रता से भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा।** आहा...हा...! जो जानने-देखने का उपयोग, राग में वर्तता है, वह वर्तता तो है। उस

www.vitragvani.com

उपयोग को आत्मा में जोड़ दे, वहाँ लगा। जानने-देखने का जो व्यापार है, पर्याय (है), उसे द्रव्य में जोड़ दे। आहा...हा...! वह जाननेवाले को जानने की पर्याय कर। वह जाननेवाला, वह पर को जानता है, जिसकी सत्ता में यह शरीर और राग ज्ञात होता है, वह ज्ञात नहीं होता; वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय वहाँ ज्ञात होती है। अन्य चीज तो दूर रह गयी। उस सम्बन्धी ज्ञान की पर्याय की सत्ता है, वह ज्ञात होती है।

अब यहाँ तो कहते हैं कि जिस ज्ञान की पर्याय में, तू पर को जानने का तुझे लगता है, उस पर्याय को यहाँ जना दे। समझ में आया? ऐसा मार्ग! परन्तु इसमें कुछ दो, पाँच लाख करोड़ रुपये खर्च करे तो कुछ कल्याण हो—ऐसा नहीं है? परन्तु करोड़ पैसा तो जड़ है। वे मेरे हैं—ऐसा मानकर दे तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...! वहाँ राग भले मन्द होवे तो पुण्य हो परन्तु वे मेरे हैं—ऐसा माना, इसलिए मिथ्यात्व का महापाप है। आहा...हा...! जड़ है, वह चैतन्य का कहाँ से आया? तेरी पवित्रता तो तुझमें पड़ी है, वह कहीं बाहर में है कहीं? समझ में आया?

उपयोग लगा। आहा...हा...! **आत्मा के गुणों में सराबोर हो जा।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ शुक्ल-११, रविवार, दिनाङ्क १६-०७-१९७८
वचनामृत-१०९-१११ प्रवचन-३९

ज्ञानी को भी अशुभ से बचने के लिये (शुभभाव) आवे परन्तु है तो दु:खरूप और भगवान आत्मा तो पवित्र सुखरूप है। आहा...हा...! अब यह इसकी नजर में बात आना... चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पवित्र का पिण्ड, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा तीर्थ है, वह **आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है,....** आहा...हा...! **उसमें स्नान कर**। आहा...हा...! पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पवित्र अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, उसमें स्नान कर। आहा...हा...!

आत्मा पवित्रता से भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा। वर्तमान ज्ञान का व्यापार जो राग और पुण्य और पर के प्रति है, उसे अन्तर में पवित्रता का धाम भगवान है, वहाँ उपयोग लगा। अरे! ऐसी बातें। अन्तर में परमात्मास्वरूप से विराजमान आत्मा है। जिनस्वरूपी आत्मा है। आहा...हा...! वह पवित्रता का स्थल है। उस तीर्थ में जा, तुझे स्नान होगा। मलिनता टल जायेगी और निर्मलता अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट होगी। अब ऐसी बातें... बात तो ऐसी है बापू! आहा...हा...! वहाँ उपयोग लगा।

आत्मा के गुणों में सराबोर हो जा। आहा...हा...! आत्मा जो अन्तर अनन्त गुण जो शुद्ध-पवित्र, उसमें जा तो तू सराबोर हो जायेगा। जैसे पानी में स्नान करके बाहर आवे और ऐसे सराबोर हो जाते हैं, पानी ऐसा शरीर से नितर जाये। आहा...हा...! वैसे यदि तुझे पवित्र होना हो तो वह पवित्र परमात्मस्वरूप ही तू है। उसमें जा तो तुझे पवित्रता होगी। अरे! अब ऐसी बातें कभी सुनने को मिले नहीं।

www.vitragvani.com

भगवान अन्दर परमात्मस्वरूप से विराजमान आत्मा परमात्मा है। उसका स्वभाव, उसकी शक्ति, उसका सत्व, उसके गुण, उसका भाव पवित्र है। आहा...हा...! ऐसा परमपवित्र प्रभु (विराजता है), वहाँ अन्तर उपयोग लगा। शुभ और अशुभभाव, वह तो बाहर का उपयोग है। आहा...हा...! अन्तर भगवान... जैसे छोटी पीपर है न? छोटी पीपर नहीं (आती)? लींडी पीपर, काली... चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। तीखास हमारी गुजराती भाषा है। चौसठ पहरी अर्थात् सोलह आना। उस पीपर में सोलह आना पूर्ण चरपराहट और हरा रंग पूर्ण भरा है। आहा...हा...! तो उसमें से घोंटते-घोंटते बाहर आता है। आहा...हा...! इसी प्रकार भगवान आत्मा में... कठिन बात, लोगों को बैठना (कठिन पड़ता है)। अन्दर में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति और पूर्ण ईश्वरता से भरपूर वह तत्त्व है। चौसठ पहरी चरपराहट अर्थात् रुपया-सोलह आना।

इसी प्रकार आत्मा में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण स्वच्छता आदि स्वभाव की पवित्रता का वह धाम है। आहा...हा...! उसके ऊपर उपयोग लगा। तुझे यदि वर्तमान आत्मा का कल्याण करना हो तो वह कल्याणमूर्ति प्रभु आत्मा है, वहाँ नजर कर ऐसी बातें हैं। यह तुम्हारे पैसे-वैसे में कहीं यह सूझ ही पड़े ऐसा नहीं है। पैसा कमाओ और यह पैसा... आहा...हा...! धर्म के नाम से अभी फेरफार हो गया है। आहा...हा...! स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु है। सत्-है, चित्-ज्ञान और आनन्द। वह बाहर में झपट्टे मारता है (मानो कि) यहाँ से आनन्द आयेगा और यहाँ से आयेगा। स्त्री में से आनन्द आयेगा और पैसे में से आयेगा। मूर्खता-अज्ञान सेवन करके चार गति में चौरासी के अवतार कर रहा है। आहा...हा...! यहाँ आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है।

जैसे इस पीपर में चौसठ पहरी चरपराई / तिखास भरी है और हरा रंग भरा; यह बाहर तो काली दिखती है। इसी प्रकार आत्मा की पर्याय में पुण्य-पाप की मलिनता की कालिमा है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहा...हा...! यह वस्तु, जिसे आत्मतत्त्व कहते हैं। यह पुण्य-पाप की मलिनता तो पुण्य-पापतत्त्व, आस्रवतत्त्व है। उससे भिन्न भगवान आत्मा... आहा...हा...! शुद्ध आनन्दघन, शुद्ध ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, वहाँ उपयोग लगा। वर्तमान परिणाम को वहाँ जोड़ दे। ऐसी बातें हैं।

www.vitragvani.com

आत्मा के गुणों में सराबोर हो जा। अनन्त गुण जो पवित्रता का धाम प्रभु! वह स्वयं प्रभु है, सर्वोत्कृष्ट आत्मा ही स्वयं है, उसमें जा और एकाग्र हो। सराबोर हो। अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय जिसमें झरेगी। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता से भरपूर भगवान, उसका एकाग्रपना-उसमें परिणाम को जोड़ने से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना होगा। उससे मलिनता टल जायेगी और निर्मलता प्रगट होगी। ऐसी बात है। सोनगढ़वाले अकेले निश्चय की बातें करते हैं, निश्चयाभास है (—ऐसा लोग कहते हैं)। कहो बापू! कहो! आहा...हा...! भाई! तुझे तेरी महिमा की-तेरे तत्त्व की तुझे खबर नहीं है प्रभु! आयेगा अभी... आहा...हा...!

आत्मतीर्थ में ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय.... आहा...हा...! यह शुद्ध चैतन्यधाम भगवानस्वरूप प्रभु अन्दर शुद्ध चैतन्यधाम, उसमें जा, एकाग्र हो तो पर्याय / अवस्था में जो मलिनता है, उस मलिनता का नाश होगा और निर्मलदशा उत्पन्न होगी। आहा...हा...! इसका नाम धर्म है - ऐसी बात है।

मलिनता दूर हो। आहा...हा...! उत्पाद किया। ध्रुव त्रिकाली आनन्द का नाथ, उस पर नजर करने से शुद्धपर्याय उत्पन्न होगी और अशुद्धता का नाश होगा और ध्रुव पर तो नजर ध्रुव है। आहा...हा...! ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? और कोई तो ऐसा कहता है नया निकाला। अरे प्रभु! नया नहीं, भगवान! बापू! तुझे पता नहीं, भाई! अन्दर आत्मा कैसा कौन है प्रभु! तुझे इसका पता नहीं।

यह सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा का पुकार है, दिव्यध्वनि द्वारा... आहा...हा...! इसे पुकार करके जगाते हैं, जाग रे प्रभु जाग! आहा...हा...! राग और पुण्य-पाप के भाव में एकत्वबुद्धि से तू अनादि से सो गया है, प्रभु! तेरी जाति को तूने जगाया नहीं। आहा...हा...! ये पुण्य और पाप के दुःख भाव में तू जागकर, दुःख के वेदन में तू रहा है। आहा...हा...! अब तेरा वेदन करना हो तो जहाँ अन्दर वस्तु है, पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आत्मा है, वहाँ एकाकार हो। आहा...हा...! ऐसी भाषा सरल है परन्तु भाव तो बापू! आहा...हा...! वहाँ पण्डिताई के शास्त्र के पठन काम नहीं आते। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसकी वर्तमान पर्याय को त्रिकाली में जोड़ने पर... भले थोड़ा ज्ञान हो परन्तु रुचि त्रिकाली की करने से पर्याय उसमें ढलती है, एकाकार (होती है), तब निर्मलदशा प्रगट होती है और वह निर्मलदशा प्रगट हो, उसे यहाँ धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहा...हा...! १०९ (बोल पूरा) हुआ। आहा...हा...! शब्द संक्षिप्त है परन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं।

परम पुरुष तेरे निकट होने पर भी तूने देखा नहीं है। दृष्टि बाहर की बाहर ही है॥ ११०॥

परम पुरुष तेरे निकट होने पर भी तूने देखा नहीं है। तूने देखा नहीं, प्रभु! आहा...हा...! तेरी पर्याय जो है न, चलती विचारधारा; उस पर्याय के समीप में ही पूरा तत्त्व पड़ा है परन्तु तूने पर्याय में उस तत्त्व को कभी देखा नहीं। वह पर्याय पर को, राग को, पुण्य को, पाप को, और पर को देखा करती है। आहा...हा...! पर को देखने के काम अकेले, वह तो मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा है। आहा...हा...!

अन्तर देखने का जहाँ देखनेवाला, देखनेवाला है, उसे देखने से; जाननेवाले को जानने से; देखनेवाले को देखने से... आहा...हा...! जिसकी सत्ता के अस्तित्व में लोकालोक ज्ञात होता है, वह सत्ता ज्ञान है और लोकालोक ज्ञात होता है, यह भी नहीं; इसके ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व ज्ञात होता है। आहा...हा...! यदि ज्ञान न हो तो यह... यह... है, यह है, जाना किसने? अर्थात् पर को जानने में भी ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व, वह स्वयं का है परन्तु उसे ऐसा लगता है कि इस पर को जानूँ, वह मेरा ज्ञान। आहा...हा...! परन्तु जो ज्ञान, पर को जानने में रुका हुआ है, वह अज्ञान है, भ्रम है, वह भगवान की भ्रमणा है। उस भगवान को जब देखना हो अन्दर तो... आहा...हा...! भारी कठिन काम।

परम पुरुष तेरे निकट.... यह पर्याय जो विचारधारा चलती है, उसके निकट ही अन्दर ध्रुवतत्त्व पड़ा है परन्तु अन्तर्मुख तूने कभी देखने का विचार नहीं किया। आहा...हा...! समझ में आया? **परम पुरुष तेरे निकट होने पर भी तूने देखा नहीं है।** आहा...हा...! बड़ा करोड़पति, अरबपति कोई राजा पन्द्रह मिनिट के लिये मिलने आया हो, वह आया

www.vitragvani.com

और यह व्यक्ति अपना छह महीने का, बारह महीने का लड़का था (उसके साथ) खेलने में समय गँवाया। वह (राजा आया) था, वह उठकर चला गया। इसे-सेठ को पाव घण्टे (पन्द्रह मिनिट) मिलना था। राजा आया परन्तु सेठ अपने लड़के की क्रीड़ा में पाव घण्टा गँवाया। वैसे यह तीन लोक का नाथ अन्दर चैतन्यप्रभु, पर्याय के समीप विराजता है परन्तु पर्याय, राग की क्रीड़ा में रुककर उसे भूल गया। आहा...हा...!

अन्यमत में यह कहावत है 'मारी नजर ने आलसे रे मैं निरख्या न नयणे हरि' हरि यह आत्मा, हों! जो अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। आहा...हा...! जो पुण्य के पाप के विकार, वे मेरे हैं—ऐसा मिथ्यात्वभाव और जो राग-द्वेष की प्रीति-अप्रीति का भाव, उसे हरे अर्थात् नाश करे, उस भगवान आत्मा को हरि कहा जाता है। आहा...हा...! हरति इति हरि—ऐसा आत्मा अन्दर समीप है... आहा...हा...! परन्तु बहिरात्मबुद्धि से अन्तर आत्मा को कभी देखा नहीं। निधान है, नजर पड़े, ऐसा वह निधान है... आहा...हा...! परन्तु तूने कभी देखा नहीं। अनादि से ऐसी की ऐसी चीज रह गयी।

परम पुरुष, परम आत्मा! पुण्य-पापतत्त्व, वह तो अचेतनतत्त्व, अन्धकारतत्त्व है। शरीर वह अचेतनतत्त्व है, रंग-रंग रसवाला; पुण्य-पाप वह रंग-रसवाला तत्त्व नहीं है परन्तु अचेतन (अर्थात्) उसमें चैतन्य का अंश नहीं, इसलिए अचेतन है। उस अचेतन के सामने—नजदीक में भगवान पूर्णानन्द का चैतन्य प्रकाश, पूर्ण प्रकाशरूप चैतन्यचन्द्र शीतल... शीतल... शीतल... शान्ति और सुख से भरपूर... शान्ति शब्द से (आशय) वीतरागता, चारित्र; सुख शब्द से आनन्द—ऐसा तत्त्व तेरे समीप है। एक समय की पर्याय में नजदीक तत्त्व है। आहा...हा...! परन्तु तूने कभी उसे देखा नहीं। आहा...हा...!

अरे! आहा...हा...! यह अनन्त काल भटकते हुए चौरासी के अवतार कर-करके, पर का लक्ष्य करके, पर को जानने में रुककर स्व को भूल गया। भूल गया के परिणाम, वे भटकने के हैं। आहा...हा...! अब तो कहते हैं भाई! तुझे अनन्त काल में ऐसा मनुष्य देह मिला... अन्दर भगवान तेरी वर्तमान पर्याय के समीप में पड़ा है, बैठा है न! आहा...हा...! तेरी नजर को फेरने के काल में वह तुझे ज्ञात नहीं होता। नजर राग और पुण्य और उसका फल बाहर में यह और यह और यह उसमें रुक गयी। आहा...हा...! परन्तु जिस ज्ञान की वर्तमान दशा के समीप में प्रभु नजदीक में पड़ा है। है?

www.vitragvani.com

होने पर भी तूने देखा नहीं है। आहा...हा... ! उस प्रभु तो तूने देखा नहीं। आहा...हा... ! एक समय की पर्याय और राग, उसकी रुचि के आड़ में, पूरा भगवान समीप में है, उसे इसने देखा नहीं। अनन्त बार दिगम्बर मुनि साधु हुआ परन्तु इन सब दया, दान और व्रत के परिणाम को देखकर सन्तुष्ट हो गया कि हमने बहुत किया। यह तो अज्ञान है। आहा...हा... ! 'सुखधाम अनन्त सुसंत चहि' श्रीमद् का अन्तिम वाक्य है। सुखधाम, वह इसमें भी कहा है और 'स्वयं ज्योति सुखधाम' उसमें भी कहा है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन...' प्रभु ! तू शुद्ध है, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पुंज है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन...' - असंख्य प्रदेशीघन है। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त असंख्य प्रदेशी किसी ने देखा नहीं। जिनेश्वर सर्वज्ञ के अतिरिक्त (किसी ने देखा नहीं)। यह चैतन्यघन है।

'स्वयं ज्योति...' स्वयं ज्योति-चैतन्य ज्योति, जलहल ज्योति, शाश्वत् और सुखधाम, वह अतीन्द्रिय आनन्द का धाम-स्थल है। अरे... अरे... ! ऐसी बातें अब। आहा...हा... ! यहाँ तो दो बीड़ी ठीक से पीवे तब भाईसाहब का मस्तिष्क तर हो जाये। आहा...हा... ! सबेरे यह डेढ़ पाव सेर उकाला पीवे, यह उकाला अर्थात् चाय, गर्म-गर्म डेढ़ पाव सेर (पीने के बाद कहे) आहा...हा... ! अब मस्तिष्क ठिकाने रहा। चाय पिये बिना आया हूँ तो मस्तिष्क ठिकाने नहीं है, ऐसे तो अपलक्षण ! आहा...हा... ! परन्तु इन अपलक्षण के पास में पूरा प्रभु विराजता है। आहा...हा... ! स्वलक्षणवाला विराजता है और ये तो अपलक्षण है। आहा...हा... ! कहो शान्तिभाई ! ऐसा स्वरूप है। दिगम्बर में जँचना कठिन पड़ता है।

यह तो सनातन सत्य, परम सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा इन्द्र और गणधरों के समक्ष में यह कहा है। आहा...हा... ! वह बात यहाँ सन्तों जगत् को प्रसिद्ध की है। समझ में आया ? यह बहिन ने अपनी सादी भाषा में यह बाहर रखा। आहा...हा... ! मन्त्र हैं।

प्रभु ! **परम पुरुष तेरे निकट होने पर भी....** आहा...हा... ! **तूने देखा नहीं है। दृष्टि बाहर की बाहर ही है।** यह दृष्टि की पर्याय जो है, इसकी दृष्टि तो बाहर की बाहर है। ऐसा भगवान पूर्णानन्द है, उसकी ओर देखने का अवसर लेता नहीं और उसे देखे बिना कभी धर्म होता नहीं। क्योंकि जाननेवाला परिपूर्ण है—ऐसी दृष्टि में न आवे तो वहाँ स्थिर

www.vitragvani.com

किसमें होना ? यह बात तो उसे रहती नहीं। राग की क्रिया करके राग में स्थिर हो, वह तो अज्ञान है। आहा...हा... ! कठिन काम भाई !

परम पुरुष... इस आत्मा को परम पुरुष कहा है। पुरुषार्थसिद्धि में आता है न ? पुरुषार्थसिद्धि, अमृतचन्द्राचार्य की पुस्तक है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय। पुरुष-चैतन्य में चेति इति पुरुष। अपने आनन्द और ज्ञान में रहता है, इसलिए उसे पुरुष कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धि में है। आहा...हा... ! यहाँ यह स्त्री और पुरुष जो शरीर है, उसकी यहाँ बात नहीं है। यह तो हड्डियाँ, जड़-मिट्टी है। अन्दर भगवान परम पुरुष अर्थात् ? पूरा-पूरा ऐसा जो आत्मा अपने चैतन्य आनन्द और ज्ञान में रमे; उसमें सो रहा है, अर्थात् उसमें है। उसका नाम चैतन्य कहते हैं। राग में रहे वह हराम कहते हैं। स्वरूप में रमे उसे राम कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? कठिन लगे भाई ! परन्तु क्या हो ? मार्ग तो ऐसा है बापू ! जन्म-मरण कर-करके कचूमर निकल गया, देखो न यह ! आहा...हा... !

एक छोटी लड़की बेचारी, एक महीने का विवाह, सोने की तैयारी थी, उसमें साड़ी पहनी थी और वस्त्र को आग लगी। क्या कहलाता है तुम्हारे में ? प्रायमस की (आग लगी) जल गयी। प्रेमचन्दभाई के लड़के की बहू, एक महीने का विवाह। बैशाख शुक्ल अष्टमी (को विवाह हुआ और) ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को देह छूट गयी। आहा...हा... ! वह दु:ख कैसा होगा ? युवा अवस्था, विषय की तृष्णा का पार नहीं होता। आहा...हा... ! उसमें वह जलहल वस्त्र ऐसे चिपककर पहना हुआ मजबूती से, सोना है। वह सुलगा, वहाँ हो गया -देह छूट गयी। आहा...हा... ! ऐसे मरण एक के नहीं परन्तु प्रभु ! तेरे अनन्त बार हुए हैं, भाई ! तू अनन्त काल है न प्रभु ! आहा...हा... ! तेरी मौजूदगी, अस्ति तो अनन्त काल की है; कहीं नया हुआ है—ऐसा नहीं है। आहा..हा... ! अनादि से तेरी मौजूदगी / अस्ति है प्रभु ! कहाँ रहा ? ऐसे भवभ्रमण के दु:ख में रहा। आहा...हा... ! और माना कि हम सुखी हैं, ऐसा माना। आहा...हा... ! कोई दो, पाँच, दस लाख पैसे (रुपये) हों, स्त्री-पुत्र अच्छे ठीक हों, पुत्र कमाऊ पके, बँगले हों दो-पाँच-दस पचास लाख के (तो मानता है कि) सुखी हैं। आहा...हा... !

एक व्यक्ति कहता था यहाँ नानालालभाई के समधी थे। एक बार कहे हमारे समधी

www.vitragvani.com

सुखी हैं, ऐसा कहता था यहाँ। नानालाल कालीदास, करोड़पति! मैंने कहा— भाई! सुखी की व्याख्या क्या? बापू! आहा...हा...! हमारे रिश्तेदार सुखी हैं, वह तो क्या कहलाता है वह? 'चूड़गर' पोपटलाल। बापू! सुखी हैं, सुखी की व्याख्या क्या? बापू! यह पैसा और स्त्री-कुटुम्ब और बड़ा सौ सौ मनुष्यों का परिवार और...

मुमुक्षु : सब प्रकार के साधन-सुविधा हो...

उत्तर : वह सुखी कहो, है मूर्ख? बाहर की सब सुविधा, जिस सुविधा को छूता ही नहीं। परचीज को तो छूता ही नहीं, चाहे तो करोड़ों रुपये हों और स्त्री का सुन्दर शरीर हो तो भी स्त्री के शरीर को तो यह जीव स्पर्श भी नहीं करता। आहा...हा...! इस भोग के काल में भी स्त्री के शरीर को स्पर्श नहीं करता। यह तो अज्ञानी, अपने आनन्द में है, आनन्द को भूलकर और यह ठीक है—ऐसा विकल्प उठाता है, उस राग का अनुभव करता है, स्त्री के शरीर को। वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। प्रभु तो अरूपी है न! आहा...हा...!

भगवान तो रंग, गंध, रस, स्पर्शरहित प्रभु है न! ये रंग, गंध, रस, स्पर्शरहित चमड़े को किस प्रकार भोगे? आहा...हा...! मात्र अपने स्वरूप का लक्ष्य छोड़कर, पर के लक्ष्य में इसे ठीक है, अनुकूलता है—ऐसा जो राग उठाता है और बिच्छु के काटने में भी बिच्छु के डंक को स्पर्श नहीं करता; मात्र इसे द्वेष होता है—यह ठीक नहीं-इस द्वेष को वेदता है और भोग के काल में राग को वेदता है, शरीर को नहीं।

लड्डुओं को खाता है, यह लड्डू! इन लड्डुओं को कोई खा नहीं सकता। आहा...हा...! इस मौसम्बी के पानी और आईसक्रीम, क्या कहलाता है तुम्हारे होता है न बड़ा ऊँचा? रसगुल्ला, दूध का बनाते हैं न? उसे आत्मा खाये? उसे छूता ही नहीं न! प्रभु, वह तो जड़ है न! प्रभु तो-आत्मा तो अरूपी है, स्पर्श कैसे करे? आहा...हा...! वास्तव में तो जीभ भी उसे स्पर्श नहीं करती और जीभ को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आहा...हा...! मात्र स्पर्श किये बिना भी, स्वरूप का-स्वभाव का भान नहीं है; इसलिए पर में; है तो परवस्तु ज्ञेयरूप से-जाननेरूप से वस्तु है, उसे ज्ञेयरूप से न जानकर यह मुझे ठीक है—ऐसा इष्टपना मानकर, उस इष्टपने के राग को वेदता है। आहा...हा...! इसी प्रकार बिच्छु का काटना, सर्प का काटना, सिंह ने गला पकड़ा, वह कोई आत्मा उसे छूता नहीं, मात्र

www.vitragvani.com

उसमें प्रतिकूल देखकर यह ज्ञेय प्रतिकूल है (-ऐसा मानता है)। है तो ज्ञेय, ज्ञान में जाननेयोग्य चीज है, भले गला पकड़ा। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

उस महिला की बात नहीं आती? क्या नाम? विशल्या! लक्ष्मण को जब रावण ने विद्या (शक्ति) मारी न? लक्ष्मण बेहोश हो गये। राम और लक्षण। राम तो उसी भव से मोक्ष जानेवाले और लक्ष्मण तो वासुदेव। ये (राम) बलदेव। रावण ने विद्या मारी (तो) बेहोश हो गये। हाय... हाय...! (अब) क्या करना? करोड़ों मनुष्य और... लश्कर करोड़ों मनुष्य और रामचन्द्र जैसे महापुरुष, पुरुषोत्तम पुरुष। यह अन्तिम देह है, मुक्त होनेवाले हैं, इसी भव में। आहा...हा...! वे रामचन्द्रजी ऐसे लक्ष्मण को देखते हैं कि भाई! तू जवाब दे न एक बार, ऐसा कहते हैं। हम वहाँ पालेज में बोलते थे। छोटी उम्र की बात है। ७० वर्ष, पौने सौ वर्ष पहले की (बात है)। एक तो सीताजी को रावण हरकर ले गया और इन लक्ष्मण को बाण / विद्या मारी और बेहोश हो गये। भाई! मैं देश में जाऊँगा माता पूछेगी तो मैं क्या जवाब दूँगा? आहा...हा...!

आये थे तब तीन जने और जाऊँ एकाएक

ऐसा हम वहाँ गाते थे। पर्यूषण में चारों प्रकार का आहार छोड़कर उपवास करते और हम रात्रि को, शाम को निवृत्ति लेकर (बैठते थे)। यह तो पौने सौ वर्ष पहले की बात है। बाबूलालजी! दुकान पर (बैठते थे)। अभी दुकान तो चलती है, बड़ी दुकान है। आहा...हा...!

आये थे तब तीन जने और जाऊँ एकाएक
माताजी खबर पूछेगी उन्हें क्या क्या उत्तर दूँगा?
लक्ष्मण जाग रे जाग बंधु बोल दे एक बार।

यह तो उस दिन, हों! पौने सौ वर्ष पहले की बात है। यह गाते थे, वहाँ दुकान पर शाम को निवृत्ति होवे न, दुकान पर।

हे लक्ष्मण! हम आये थे तीन, सीताजी, लक्ष्मण अपने तीन वनवास (लिया था) अब मैं अकेला जाऊँगा, भाई! सीताजी वह ले गया और तुम हो गये असाध्य (बेहोश) भाई! माता पूछेगी मैं क्या कहूँगा? परम पुरुष, परम पुरुष आत्मज्ञानी हैं, यह अन्तिम देह है। परमात्मा सिद्ध होनेवाले हैं परन्तु अभी राग का भाग है। तब किसी ने कहा—तुम्हारे

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

राज्य में एक 'विशल्या' नामक कन्या है, राज तो सौंपा है भरत को, स्वयं तो वनवास में थे न? भरत को सौंपा था। उस भरत के राज्य में एक विशल्या राजकुमारी है, वह यहाँ आवे तो तुरन्त इनकी विद्या उतर जायेगी।

वह विशल्या राजकुमारी कौन थी? पूर्व में कौन थी? चक्रवर्ती की पुत्री। और उस चक्रवर्ती की पुत्री को किसी विद्याधर ने उठाकर जंगल में छोड़ दिया और जंगल में बड़ा अजगर, अजगर। अजगर पहचानते हो न? अज अर्थात् बकरा और गर अर्थात् निगल जाये। पूरे बकरे को निगल जाये, उसका नाम अजगर। उसका शब्दार्थ यह है। बड़े-बड़े अजगर नहीं (होते)? उसमें उस लड़की को जंगल में अकेली छोड़कर चला गया। उसका विरोधी था। उसमें अजगर आया (लड़की को निगाल गया)। इतना सा मुँह थोड़ा बाकी रहा, बाकी सब (अन्दर)। उसमें चक्रवर्ती की पुत्री, चक्रवर्ती स्वयं शोध-खोज के लिये निकला, ऐसा जहाँ आता है, वहाँ अरे रे! यह मेरी पुत्री यहाँ? बाण लेकर अजगर को मार डालूँ। (पुत्री कहती है) पिताजी! कुछ करना नहीं, मैंने तो आजीवन आहार का त्याग किया है। मैं जीवित रहूँगी तो भी आहार तो करनेवाली नहीं। इसलिए वह ऐसी मारने की तैयारी की परन्तु बन्द कराया। पश्चात् देह छूट गयी। उसमें यह राजकुँवरी हुई, उसमें यह लब्धि हुई। ऐसी लब्धि हुई कि उसकी हवा ऐसे किसी को लग जाये तो बीमार हो, वह ठीक हो जाये। उस कन्या को लाये। यहाँ लश्कर में बहुत लोग... क्या कहलाता है वह? चोट खाये हुए, घायल हुए, घायल। तुम्हारी भाषा भूल जाते हैं।

रामचन्द्र और लक्ष्मण अर्थात् कौन? जिनकी आठ-आठ हजार देव तो सेवा करते थे। उन करोड़ों मनुष्यों में बहुत घायल हुए थे। वह विशल्या जहाँ पाण्डाल में आयी, बड़ा पाण्डाल, आहा...हा...! जहाँ अन्दर आयी, वहाँ घायल ठीक होने लगे और यहाँ लक्ष्मण के पास आयी, वहाँ (लक्ष्मण तो जागकर पूछते हैं) कहाँ गया रावण? जग गये। आहा...हा...! यह पूर्व में वहाँ मरण में-अजगर के (समय में) इतनी शान्ति, कषाय की मन्दता रखी थी न! इसलिए उसके कारण ऐसी लब्धि हुई।

पश्चात् तो उन लक्ष्मण को होश आता है और रावण को मारते हैं। वासुदेव हैं न! तथापि वे तो महापुरुष हैं, उस रावण को मारते हैं, तथापि उसकी—रावण की स्त्री के पास

www.vitragvani.com

जाते है (और कहते हैं) माँ! हम तो राम और लक्ष्मण हैं, वासुदेव हैं। हमारी पदवी प्रमाण यह बनाव बना है, इसमें दूसरा कुछ हो ऐसा नहीं था। जलाने गये तो साथ में गये। राम स्वयं और लक्ष्मण साथ में। वे तालाब पर बैठते हैं और यहाँ जलाते हैं। स्वयं साथ में गये। वे पुरुषोत्तम पुरुष हैं। मात्र पुण्य के कारण बलदेव और वासुदेव हुए, इसलिए उस पदवी प्रमाण उन्हें यह कार्य होता ही है। आहा...हा...!

वहाँ जलाने गये। जिसे मारा (उसे) जलाने गये, वहाँ तालाब में जले तब तक साथ में बैठे। हम साथ में हैं। माँ, बहिन! हम कोई इसके विरोधी नहीं परन्तु हमारी पदवी प्रमाण (हुआ है)। आहा...हा...! देखो तो सही इनका जीवन! इनका जीवन कितना है! ऐसी स्थिति में भी इन्होंने रावण की स्त्री को बहिन कहकर (कहा)। बहिन! हमने यह किया, वह हमारी पदवी ऐसी है, दूसरा क्या हो? बाकी यह खराब है। आहा...हा...! उस कन्या का (विशल्या का) पुण्य कितना? कि पूर्व में अजगर में मर गयी, उसकी यहाँ लब्धि (यहाँ प्रगट हुई)। यहाँ आयी वहाँ लक्ष्मण जाग उठे। फिर तो रावण को मारा। आहा...हा...! ऐसी स्थिति अनन्त बार की है परन्तु भगवान अन्दर आत्मा का नाथ को जगाया नहीं कभी। आहा...हा...!

चैतन्य ज्योति, जलहल ज्योति, चन्द्र-जिनचन्द्र प्रभु अन्दर है। आहा...हा...! वीतरागी शीतलता की शान्ति से भरपूर वह पुरुष तेरे पास है न प्रभु! आहा...हा...! तूने कभी देखा नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं, लो!

तूने देखा नहीं है। दृष्टि बाहर की बाहर ही है। प्रभु! आहा...हा...! दिगम्बर मुनि हुआ पंच महाव्रतधारी, परन्तु दृष्टि वहाँ राग और पर के ऊपर ही रही।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

ये पंच महाव्रत के परिणाम भी राग और दु:ख हैं। आहा...हा...! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को स्पर्श नहीं किया और पंच महाव्रत के परिणाम और ब्रह्मचर्य-स्त्री का त्याग, यह सब दु:ख का वेदन किया, सुख लेश न पायो। पंच महाव्रत धारण करके भी इसे सुख का अंश नहीं आया। क्योंकि वह तो आस्रव

www.vitragvani.com

है। आहा...हा... ! उस आस्रव के समीप प्रभु अन्दर विराजता है। आहा...हा... ! उसे तूने देखा नहीं, प्रभु ! तेरी नजरों में वह निधान तूने लिया नहीं, तेरी नजर में वह निधान (आया नहीं)। भगवान निधान अन्दर है... आहा...हा... ! जिसमें अनन्त-अनन्त चैतन्यरत्न संख्या के पार बिना ऐसे रत्न अन्दर पड़े हैं। आहा...हा... ! उसे तूने देखा नहीं, देखा नहीं, तेरी नजरों में वह निधान लिया नहीं और पामर चीज यह पुण्य और पाप, इसके फल को बाहर देखने में रूक गया। प्रभु ! इससे तेरा परिभ्रमण नहीं मिटता। आहा...हा... !

मुमुक्षु : आत्मा तो केवलज्ञान में दिखता है तो वह देखे किस प्रकार ?

उत्तर : अरे... जाननेवाला जानता है—ऐसा अस्तित्व है या नहीं ? ऐसा ख्याल में आता है या नहीं ? मैं ज्ञात नहीं होता - ऐसा निर्णय किसने किया ? बाबूलालजी ! मैं ज्ञात नहीं होता, यह किसने निर्णय किया ? किसमें निर्णय किया ? किस ज्ञान में। मुझे मेरा पता नहीं पड़ता परन्तु पता नहीं पड़ता, यह ऐसा निर्णय किस सत्ता में किया ? इस ज्ञान की सत्ता में पता पड़ा। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

यह ज्ञानस्वरूपी प्रभु, सद्चिदानन्द जलहल ज्योति, इसके समक्ष इसने देखा नहीं, जाननेवाले को जाना नहीं। जाननेवाला दूसरों को जानने में रुक गया है परन्तु जाननेवाले में निधान है, वह समीप में पड़ा है, उस पर्याय और राग के समीप में ही ध्रुव चैतन्य अन्दर है। आहा...हा... ! परन्तु तूने देखा नहीं। आहा...हा... ! ऐसा तेरा अज्ञान ! साधु हुआ तो भी तूने तुझे देखा नहीं। अभिमान किया (कि) हम महाव्रती हैं, हम साधु हैं और हम त्यागी हैं। किसके त्यागी ? बापू ! तुझे अभी पता नहीं। आहा...हा... !

शुद्ध चैतन्य को ग्रहण करने से जो राग का त्याग हो, वह भी परमार्थ से त्याग का कर्ता आत्मा नहीं है। आहा...हा... ! यह क्या कहा ? चैतन्यस्वभाव का, प्रकाश का पुंज प्रभु, उसे पकड़ने पर—ग्रहण करने पर... आहा...हा... ! उसकी शान्ति की उत्पत्ति होती है, तब उसे राग की उत्पत्ति नहीं होती। तब उत्पत्ति नहीं होती, उसका उसने नाश किया—ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। वास्तव में तो उसका नाश किया ही नहीं। वह उत्पन्न हुआ ही नहीं। यहाँ स्वरूप में स्थिर होता है, वहाँ उस प्रकार का भाव उत्पन्न हुआ ही नहीं। आहा..हा... ! शशीभाई !

www.vitragvani.com

कोई कहता था न ? खलबलाहट हो गयी थी। नेमचन्दभाई, दिल्ली से आये थे न नेमचन्दभाई ? पैसेवाले हैं बड़े, बड़े सेठ... बहुत-बहुत लाखोंपति, बड़े कारखाने हैं। दिल्ली में (रहते हैं)। यहाँ जमीन ली है। वह कहते थे कि लालचन्दभाई आये थे। मुमुक्षु मण्डल में बोले कि राग का त्याग आत्मा कर नहीं सकता - ऐसा बोले वहाँ खलबलाहट हो गयी, मुमुक्षु में खलबलाहट हो गयी!

यहाँ तो ३४ वीं गाथा में कहते हैं कि प्रभु! तेरा स्वरूप है, उस पर तेरी नजर पड़ने पर उसमें स्थिर हो, तब उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती, (तब) आत्मा ने उनका नाश किया—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। निश्चय से उत्पन्न ही नहीं हुआ, उसे नाश कहना कहाँ से ? आहा..हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

परम पुरुष तेरे समीप ही है परन्तु देखा नहीं, बाहर ही बाहर में गया। आहा...हा... ! वृत्ति बाहर की बाहर रह गयी। मुनि हुआ हो तो भी राग और पुण्य की क्रिया को वहाँ देखने में रह गया। सन्तुष्ट हो गया कि हमने बहुत किया, हजारों रानियाँ छोड़ी, बँगले छोड़े, मकान छोड़े... बापू! कुछ नहीं किया और समकिती को आत्मा हाथ आया - ज्ञात हुआ, अनुभव में आया, वह कहते हैं कि मुझे तो अभी बहुत करना बाकी है, बापू! अभी तो चारित्र और केवलज्ञान और बहुत करना है, मैंने बहुत किया ऐसा नहीं। वह (अज्ञानी) तो बाहर का त्याग करके जहाँ स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, पैसा छोड़ा, बहुत किया (मानता है)। धूल भी नहीं किया। आहा...हा... !

जिसने कुछ नहीं किया, उसने बहुत किया माना है। सम्यग्दृष्टि ने आत्मा को जाना, आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द है - ऐसा जाना, तब उसे लगा कि ओहो! अभी पूर्ण पर्याय और पूर्ण चारित्र है, वह मुझे बाकी है; मुझे तो अभी बहुत पुरुषार्थ करना बाकी है। समझ में आया ? मेरी पर्याय कृतकृत्य हो या कुछ करना बाकी न रहे, वहाँ तक जाना है। आहा...हा... ! क्योंकि वस्तु स्वयं कृतकृत्य है, उसका जहाँ अनुभव होने पर स्थिरता हो और जहाँ सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हो, (वहाँ) कृतकृत्य हो गया। अब कुछ करना नहीं रहता। जो कृतकार्य करना था, वह हो गया। आहा...हा... ! सम्यग्दृष्टि को तो बहुत करना बाकी है भाई! उसे पूर्ण का नाथ दृष्टि में आया, प्रतीति में आया, वेदन में आया परन्तु मेरी

www.vitragvani.com

पर्याय सर्वज्ञ की अपेक्षा से तो अनन्तवें भाग है। मैं तो अभी पामर हूँ। वस्तु से पूर्ण हूँ, पर्याय से पामर हूँ। आहा...हा...! ऐसी चीज है। सुनना कठिन पड़े ऐसा है। बहुत फेरफार हो गया है, भाई! आहा...हा...!

मूल तत्त्व की बात और जिससे जन्म-मरण मिटे और जन्म-मरणरहित की दशा प्रगट हो—ऐसा सम्यग्दर्शन... आहा...हा...! उसका विषय पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसे जानकर प्रतीति में लिया कि यह आत्मा। यह होने पर उसे कल्याण की शुरुआत हो गयी। दु:ख के अभाव की शुरुआत होने लगी। उस पूर्णानन्द के नाथ को पूर्ण अवलम्बन कर स्थिर होगा तो पूर्ण दु:ख का नाश होगा। मोक्ष अर्थात् दु:ख का नाश होगा और मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी। आहा...हा...! समझ में आया? ११० (बोल पूरा हुआ)।

परमात्मा सर्वोत्कृष्ट कहलाता है। तू स्वयं ही परमात्मा है॥ १११॥

१११, तीनों एकड़े। एक, एक, एक तीनों ही। तीन नम्बर तीन एक के।

परमात्मा सर्वोत्कृष्ट कहलाता है। इस जगत में परमात्मा, परमेश्वर सर्वोत्कृष्ट कहलाते हैं। आहा...हा...! बात सत्य परन्तु, वे हैं कौन? आहा...हा...! परमात्मा—परम+आत्मा। परम स्वरूप। परम स्वरूप सर्वोत्कृष्ट कहलाता है। आहा...हा...! वह कौन? **तू स्वयं ही परमात्मा है।** कैसे जँचे? आहा...हा...! परमस्वरूप ही तेरा है, प्रभु! वह परमस्वरूप अर्थात् परमात्मा। आहा...हा...!

सर्वोत्कृष्ट तेरा स्वरूप ही परम सर्वोत्कृष्ट है। अतीन्द्रिय ज्ञान-दर्शन आनन्द... आहा...हा...! अनन्त गुण का पिण्ड सर्वोत्कृष्ट प्रभु और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप; ऐसे अनन्त गुण के रूपवाला यह भगवान जो आत्मा... आहा...हा...! वह सर्वोत्कृष्ट जो परमात्मा कहलाता है। प्रभु! तू स्वयं परमात्मा है। यदि परमात्मा न हो तो सर्वज्ञ की परमात्मदशा आयेगी कहाँ से? कहीं बाहर से आवे ऐसी है? आहा...हा...!

चौसठ पहरी पीपर में से चौसठ पहरी चरपराहट आती है। कहाँ से आती है? प्राप्त

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

की प्राप्ति है; है, उसमें से आती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, पर्याय में परमात्मा हो। सर्वज्ञ अरिहन्त जिनेश्वरदेव सर्वोत्कृष्ट दशा, जिनके सौ इन्द्र... आहा...हा...! प्रभु विराजते हैं, महाविदेह में, समवसरण में विराजते हैं। आहा...हा...! सौ-सौ इन्द्र, सैकड़ों बाघ और सैकड़ों केसरी सिंह जंगल में से समवसरण में सुनने आते हैं और काले नाग बड़े पच्चीस-पच्चीस हाथ के लम्बे, वे जंगल में से ऐसे सघलत सघलत करते हुए सुनने आते हैं। वह परमात्मा की वाणी और वे सुननेवाले, बापू! वे कैसे होंगे? साक्षात् विराजते हैं प्रभु! आहा...हा...! महाविदेह में, महाविदेह में... ऐसे आगे-आगे जाते महाविदेह में विराजते हैं। आहा...हा...!

वे प्रभु ऐसा कहते हैं कि इस जगत में जो परमात्मा कहलाते हैं, वे कौन? कि तू (स्वयं)। हम तो परमात्मा हुए, पर्याय में हुए परन्तु इस पर्याय में परमात्मा हुए, वह आया कहाँ से? आहा...हा...! वह परमात्मस्वरूप है, उसमें से परमात्मपर्याय आयी है। आहा...हा...! उसे यहाँ पामररूप से स्वीकारा। एक दया का पालनेवाला मैं, बस! आहा...हा...! अरे प्रभु! यह राग की क्रिया, इसका करनेवाला तू? ज्ञायक चैतन्य ज्योति को राग का कर्तव्य सौंपना... आहा...हा...! यह तो अज्ञान और मिथ्याभ्रम है। आहा...हा...!

यह तो तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला अपनी एक समय की पर्याय में और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड वह ज्ञान है और ऐसे प्रत्येक गुण की अनन्त पर्यायों का पिण्ड वह प्रत्येक गुण है, ऐसे अनन्त गुण का साहिब प्रभु! वह सर्वोत्कृष्ट जो परमात्मा कहलाता है, वह तू स्वयं है। आहा...हा...! ऐसा जिनेश्वरदेव का पुकार दिव्यध्वनि द्वारा, गणधरों और इन्द्रों के बीच में प्रभु का पुकार अभी है। वह वाणी यहाँ आयी है। समझ में आया? आहा...हा...! कैसे जँचे?

धाम स्वयं सुख का धाम, आनन्द का धाम, ध्रुवधाम... आहा...हा...! ऐसी चीज को तूने नजर में नहीं लिया। वह स्वयं परमात्मा है। परमस्वरूप वह तेरा स्वरूप है। उस स्वरूप से तू भिन्न नहीं है। एक समय की पर्याय है, वह भी स्वरूप से भिन्न है। आहा...हा...! जो इसे जाननेवाली पर्याय है, वह भी स्वरूप से भिन्न है। आहा...हा...! तो राग और द्वेष और शरीर, वे तो कहाँ रह गये प्रभु! वे तो कहीं अलग हैं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : अनुभव के काल में....एकमेक हो गया है।

उत्तर : एकमेक हुआ नहीं। इस राग का अभाव करके अन्दर जाये, वहाँ उसमें राग नहीं दिखता। एक श्लोक नहीं आता? दूसरा नहीं दिखता। उस श्लोक का क्या नाम? श्लोक है न इस समयसार में? एक सर्वोपरि तत्त्व दिखता है। आहा...हा...! श्लोक है। सब कहीं याद रहते हैं? भाव याद रहता है। क्षयोपशम शक्ति कहीं इतनी सब... आहा...हा...! ऐसा कि अन्दर देखने पर एक ही दिखता है अथवा जड़ भिन्न दिखता है, ऐसा। जड़ है, वह अत्यन्त भिन्न दिखता है। आहा...हा...! यह तो अन्दर की क्रीड़ा है, बापू! आहा...हा...!

स्थिरता एक समय में ठाणे एक समय में ध्रुवपने भी रहे। 'स्थिरता एक समय में ठाणे उपजे विनसे तबहि।' पर्याय में नयी उत्पन्न हो और पूर्व पर्याय जाये, तथापि स्थिरता तो कायम है।

स्थिरता एक समय में ठाणे उपजे विनसे तबहि।
उलट-पलट ध्रुव सत्ता राखे या हम सुनी न कबहि॥

उत्पाद-व्यय रखे और ध्रुवपना रखे। आहा...हा...! पर्याय में उत्पाद-व्यय है; वस्तुरूप से जो त्रिकाल है, वह ध्रुव है। यह उलट-पुलट, ध्रुवसत्ता रखे। आहा...हा...! 'या हम सुनी न कबहि, अवधू नट नागर की बाजी।' चौदह ब्रह्माण्ड के नगर में एक आत्मा नट चार गति में रमा। आहा...हा...! 'नट नागर की बाजी, क्या जाणे ब्राह्मण काजी।' ब्राह्मण के वेद कौन जाने, काजी अर्थात् मुसलमान के क्या कहलाते हैं? कुरान, उसे क्या पता पड़े इस वस्तु का? ऐसा कहते हैं।

यह तो त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव को एक समय में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें यह बात आयी। दूसरों ने जाना कहाँ है? बापू! आहा...हा...! ऐसा पुरुष तो तू स्वयं ही परमात्मा है। आहा...हा...! ऐसी दृष्टि अन्दर में होना, मैं तो वस्तु से पूर्ण परमात्मा हूँ; पर्याय में जो पर्याय हो, वह भले न्यूनाधिक हो, वस्तु तो पूर्ण हूँ—ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल-१२, सोमवार, दिनाङ्क १७-०७-१९७८
वचनामृत-११२-११३ प्रवचन-४०

सहज तत्त्व अखण्डित है। चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परमपारिणामिकभाव ज्यों का त्यों अखण्ड रहा है; कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है ॥११२॥

१११ हुआ न? ११२ बोल।

सहज तत्त्व अखण्डित है। क्या कहते हैं? जो आत्मा स्वाभाविक द्रव्य / वस्तु है, द्रव्यवस्तु, वह सहज तत्त्व स्वाभाविक है और वह अखण्ड है। आहा...हा...! उसमें पर्याय का भेद भी नहीं, खण्ड-खण्ड ज्ञान की दशा नहीं तथा राग नहीं, ऐसी अखण्ड चीज, वह वस्तु है। अखण्ड कहो, अभेद कहो, वस्तु अनादि-अनन्त अखण्ड चीज है।

चाहे जितना काल गया,.... इसके ऊपर चाहे जितना काल गया। **चाहे जितने विभाव हुए,...** आहा...हा...! विकार, मिथ्यात्व के भाव—गृहीत मिथ्यात्व, अगृहीत मिथ्यात्व, ३६३ पाखण्ड का मिथ्यात्व और विभाव—पुण्य और पाप के भाव चाहे जितने हुए; वस्तु में कुछ हुआ नहीं। वे तो पर्याय में थे। आहा...हा...! वस्तु जो अखण्ड द्रव्यस्वभाव जो तत्त्व है-चैतन्यतत्त्व, उसका अखण्डपना, उसकी पर्याय में चाहे जितने विभाव मिथ्यात्व आदि हुए, अरे! 'मैं आत्मा नहीं' नास्तिक का ऐसा मिथ्यात्वभाव पर्याय में हुआ परन्तु अखण्ड तत्त्व में उसका प्रवेश नहीं। आहा...हा...! वह तो इसकी सब पर्याय

www.vitragvani.com

ऊपर-ऊपर है, उसमें सब है। अन्तर्वस्तु जो अखण्ड तत्त्व सहज वस्तु है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, ध्यानी के ध्यान का जो ध्येय है, वह तो अनादि-अनन्त अखण्ड (तत्त्व) है।

चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विभाव हुए,.... दो बातें (की हैं) वह तो अखण्ड है वह है। आहा...हा...! ऐसा कैसे जँचे? मिथ्यात्व की, अज्ञान की पर्याय तो इसकी है न? परन्तु वह पर्याय अंश है। वह अखण्ड तत्त्व के अन्दर में नहीं है। सूक्ष्म विषय है। अनन्त काल में, अनन्त भव में यह अखण्ड तत्त्व है, उस पर इसकी दृष्टि ही गयी नहीं। वर्तमान पर्याय की क्रीड़ा में इसने मुनिपने की क्रियायें की, हजारों रानियाँ छोड़ी, घरबार छोड़े, छह-छह महीने के उपवास किये, वे सभी क्रियायें राग की मन्दता की हैं। उनके साथ मिथ्यात्व है, तीव्र मिथ्यात्व-झूठी श्रद्धा है; तथापि अखण्ड तत्त्व में उनका प्रवेश नहीं है। आहा...हा...! ऐसी वस्तु है। है? **चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परमपारिणामिकभाव....** अर्थात् ज्ञायकभाव, स्वाभाविक सहज परम स्वभावभाव। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक यह तो पर्यायभाव है। उदय—राग-द्वेष; उपशम समकित, क्षायिक समकित या क्षायिक केवलज्ञान, ये सब पर्यायें हैं। अखण्ड वस्तु में ये पर्याय है नहीं। आहा...हा...! **चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परम-पारिणामिक....** प्रभु, आहा...हा...! क्योंकि वह तो तत्त्व है, द्रव्य है, वस्तु है, अनन्त-अनन्त गुणरूपी ध्रुवधाम प्रभु है। वह तो चाहे जितना काल (गया) और विभाव (हुए) परन्तु वह तो है वह है। आहा...हा...! ये सब क्रीडायें पर्याय पर है, द्रव्य में नहीं। अरे! ऐसी बात है। यह द्रव्यदृष्टि और इस द्रव्य को पकड़ना, पर्याय द्वारा द्रव्य को पकड़ना और पकड़कर अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा...हा...! इसका नाम प्रथम धर्म की शुरुआत है। इसके बिना सब व्यर्थ है। आहा...हा...!

परमपारिणामिकभाव ज्यों का त्यों अखण्ड रहा है;.... सत् है न? वस्तु है न? तत्त्व है न? मौजूदगीवाली चीज है न, अस्ति? वह तो अखण्ड ही है। आहा...हा...! चाहे जितना काल बीत गया और चाहे जितने विभाव—गृहीतमिथ्यात्व के भी, अनन्त बार हुए, तथापि वह वस्तु तो अखण्ड है वह है। यह विश्वास (कैसे आवे)? आहा...हा...! तत्त्व

www.vitragvani.com

है, वस्तु है, सहजस्वाभाविक वस्तु है। यहाँ सहजस्वाभाविक पारिणामिक कहा, वरना पारिणामिक (भाव) तो परमाणु में भी होता है। इससे वास्तव में परमपारिणामिकभाव अर्थात् परम ज्ञायकभाव, उसरूप जो तत्त्व सत् है, वह तो अखण्ड है।

पंचास्तिकाय में टीका में उसे ऐसा कहा है। 'परिणामिभाव, परिणामि गह' सहजभाव से होता है वह पारिणामिक, ऐसा। 'परिणामिभाव, परिणामिभाव' संस्कृत पाठ है। पंचास्तिकाय में अमृतचन्द्राचार्य की टीका में परिणामीभाव है इसमें? पंचास्तिकाय में है। '**द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः**' संस्कृत है। अमृतचन्द्राचार्य... जो यह सबेरे समयसार में अमृतचन्द्राचार्य की टीका पढ़ते (हैं।) न? उनकी कही हुई यह टीका है। '**द्रव्यात्मलाभहेतुकः**' वस्तु के स्वरूप का लाभ अर्थात् है, वह '**परिणामः**' यहाँ परिणाम अर्थात् पर्याय ऐसा नहीं। समझ में आया? पंचास्तिकाय की ५६ गाथा है, '**द्रव्यात्मलाभ**' द्रव्य के स्वरूप का लाभ अर्थात् है, द्रव्य का स्वरूप है—ऐसा जो द्रव्य का लाभ हेतु, वह परिणाम-वह पारिणामिकस्वभाव।

पश्चात् कहा '**परिणामेन युक्तः पारिणामिकः**' सहजस्वभाव से सहित, वह पारिणामिकभाव। उसमें पर्याय भी नहीं और कोई बिगाड़ या सुधार उसमें कुछ नहीं। वह तो पवित्र अखण्डानन्द प्रभु एकरूप शुद्ध है। '**परिणामेन युक्तः पारिणामिकः**' ऐसा हुआ। सहजस्वभाव से सहित, वह भाव-तत्त्व होता है। ५६ (गाथा में) है। आहा...हा...! '**तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबंधनाश्चत्वारः, स्वभावनिबंधन एकः**' चार उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, ये तो '**उपाधिचतुर्विधत्वनिबंधनाश्च**' उदय का निमित्त और उदय का अभाव—ऐसे उपाधिभाव दोनों। और इसी के ऐसे चार भाव-उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक... उदय, उपशम क्षायोपशम, क्षायिक और '**स्वभावनिबंधनम्**' स्वभाव का एकरूप जो है। **एकः** त्रिकाली स्वभाव **एकरूपः** वह ज्ञायकभाव। आहा...हा...! ऐसी बात है।

वह पारिणामिकभाव, वह अखण्ड तत्त्व; उस तत्त्व की पर्याय में चाहे जितना काल गया और चाहे जितने मिथ्यात्व के विभाव आदि हुए, तथापि वह तो अखण्ड है। आहा...हा...! कैसे इसका विचार आवे? आहा...हा...! इस प्रकार ऐसा कहलाता है कि 'द्रवति इति द्रव्यम्' जो पर्याय को द्रवे। जैसे पानी है, वह तरंग को उठावे, द्रवे; इसी प्रकार द्रव्य उसे

www.vitragvani.com

कहते हैं जिसमें द्रवति—विभाव और स्वभाव की पर्यायरूप परिणमे परन्तु वह तो पर्याय की अपेक्षा से बात की है। समझ में आया? आहा...हा...!

एक ओर भगवान ऐसा कहते हैं कि उसे द्रव्य क्यों कहा? कि 'द्रवति इति' वह इस पंचास्तिकाय नौवीं गाथा में (कहा है)। पंचास्तिकाय की नौवीं (गाथा)। स्वयं विभावरूप से परिणमे और स्वभावरूप से परिणमे (अर्थात्) द्रवे, द्रवे। आहा...हा...! जिसकी पर्याय में हलचल हो, गतिमान परिणमन हो, वह द्रव्य। वह तो एक अपेक्षा से उसे बतलाया है। वरना वस्तु है, वह स्वयं परिणमन में नहीं आती, विभाव या स्वभाव की पर्याय में वह वस्तु नहीं आती।

अब एक ओर ऐसा कहा न, अथवा छह गुण सामान्यगुण नहीं? यह तो अपने साधारण लड़कों को आते हैं। छह गुण—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, (प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व) तो द्रव्यत्वगुण का अर्थ यह है, द्रव्यत्व उसमें एक गुण है, वह द्रवता है। द्रवना अर्थात् परिणमना, बदलना, अन्दर दशा का उथल-पुथल होना, इसका नाम द्रव्य। आहा...हा...! यह तो एक इसकी पर्याय का वर्णन किया परन्तु वस्तु है, वह स्वयं परिणमति नहीं; वह तो त्रिकाल ध्रुव अखण्डरूप से है। अरे... अरे...! देवीलालजी! ऐसा मार्ग! यह तो अभी पहले सम्यग्दर्शन, उसका विषय अखण्ड द्रव्य है, उसमें पर्याय की चाहे जितनी उपाधि गयी, तथापि वस्तु में खण्ड नहीं पड़ा। उसके ऊपर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा...! धर्म की शुरुआत तब होती है। समझ में आया? ऐसा अखण्ड रहा है।

कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है। लो, ठीक! पर्याय में परिणमन कर विकाररूप हुआ, वह कोई भी गुण उस प्रकार अंश भी खण्डित नहीं हुआ। यह तो पर्याय की बात हुई। आहा...हा...! समझ में आया? प्रवचनसार में तो पर्याय को अंश कहते हैं। यहाँ कहते हैं कोई भी गुण अंश भी, पर्याय का अंश भी खण्ड नहीं हुआ। आहा...हा...! भाषा बहुत मीठी है, सादी है, गुजराती है। परन्तु समझने के लिये जरा... आहा...हा...!

वह अखण्ड तत्त्व वस्तु है, सहज है, अकृत्रिम है, अकृत है, सहजस्वभाव से है; उस चीज को चाहे जितना काल लागू पड़े। आहा...हा...! अनन्त काल पहले सिद्ध हुए,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वे भी उसे विकारों का काल भले थोड़ा गया तो वस्तु तो अखण्ड है, (वे) भी अखण्ड पर दृष्टि रखकर, समकित करके स्वरूप में स्थिर होकर मोक्ष को प्राप्त हुए और बाद में भी उनका अनन्त काल बीत गया। कितना विभाव उसमें? आहा...हा...! और अनन्त काल पश्चात् भी पर्याय में कितना ही विभाव अभी बहुतों को वर्तेगा। आहा...हा...! तथापि वस्तु खण्डित नहीं, कहते।

आहा...हा...! क्योंकि अनन्त काल पहले सिद्ध तो हुए हैं न! त्रिकाली, (तीन) काल में त्रिकाली को जाननेवाले का तो कभी विरह नहीं होता। आहा...हा...! जैसे अनादि काल से छह द्रव्य और लोक है, वैसे अनादि काल से केवली भी अनादि से है। आहा...हा...! पहले लोक और फिर जीव को केवलज्ञान हुआ (-ऐसा नहीं)। ऐसी बात है। यह लोक भी अनादि है और इसके जाननेवाले सर्वज्ञ केवली भी अनादि से है। आहा...हा...! ऐसी अनादि से निर्मल दशा जिसकी है, उसे ऊपर भी अनन्त काल, भूतकाल में विभाव का वर्ता, तथापि वस्तु तो अखण्ड है और उसके पश्चात् जो आत्मा पर मिथ्यात्व से, राग से, द्वेष से अनन्त काल बीता, तथापि वस्तु तो जो है वह है, अखण्ड है। अभी भी अज्ञानी को-कितनों को ही अनन्त काल विभाव में, क्रीड़ा में जिसे रमना है, उसे रमते हुए भी वस्तु तो अखण्ड है। आहा...हा...! समझ में आया?

भाई! सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय वह अलौकिक है। लोगों को अभी उसका ख्याल ही नहीं आता। बस, यह करना यह छोड़ना, यह लेना और देना... कर्ताबुद्धि। यह मैंने छोड़ा, यह मैंने रखा और मैंने लिया... कर्ताबुद्धि तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...! यह तो पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। राग की पर्याय (का) कर्ता होवे तो भी मिथ्यात्व है और ऐसे मिथ्यात्व अनन्त काल में ऊपर बीत गये हैं, तथापि वस्तु तो अखण्ड, अभेद पड़ी है वह है। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

यह पर्याय, स्वभावभाव-पारिणामिकभाव, द्रव्यभाव के ऊपर तैरती है। पानी के दल पर तरंग (तैरती है)। तरंग ऊपर तैरती है। पानी का दल होता है न? उसकी तरंग उठती है, वह ऊपर-ऊपर है, उसमें अन्दर (नहीं उठती)। आहा...हा...!

इसी प्रकार सहज भगवान आत्मा, चाहे जितना काल और विकारी दशायें व्यतीत

www.vitragvani.com

हो गयीं और जिसे अभी वर्तती है, तथापि वह वस्तु तो अखण्ड है। आहा...हा...! कैसे जँचे? तीव्र मिथ्यात्व कहे, मैं आत्मा हूँ ही नहीं - ऐसा जो पर्याय में भाव हुआ, तथापि वस्तु तो अखण्ड है। आहा...हा...! देखो! सहजस्वरूप का तत्त्व! भगवान जिनेश्वरदेव परमेश्वर की दिव्यध्वनि की आवाज है। समझ में आया? कि भगवान आत्मा—भग अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि; वान—जिसका रूप, वह द्रव्य को अनादि-अनन्त अखण्ड ही है, अभेद है। जिसमें पर्याय के अनेक भेद बीत गये, तथापि उसके वस्तु में कहीं भेद आ गये या खण्ड हो गया—ऐसा नहीं है। अरे! यह क्या? आत्मा नहीं—ऐसा माननेवाले के मिथ्यात्वभाव के काल में भी... आहा...हा...! वस्तु तो अखण्ड है।

यह अखण्ड वस्तुतत्त्व सहजस्वभाव है। इस पर दृष्टि करना, वह अनन्त पुरुषार्थ -सापेक्ष है। वीर्य को अन्दर में ढालना... आहा...हा...! जो वीर्य, पुण्य और पाप में ढलकर नपुंसकतारूप से कार्य करता है... आहा...हा...! उस वीर्य को अर्थात् उसकी पर्याय को। वीर्यगुण तो त्रिकाल है। त्रिकाल गुण में तो खण्ड है नहीं परन्तु वर्तमान पर्याय जो वीर्य की है, उसे अन्तर में अखण्ड में झुकाना तो उसे अखण्ड का पता दृष्टि में लगेगा और इससे तुझे आनन्द और शान्ति मिलेगी। आहा...हा...!

धर्म प्राप्त किये हुये का लक्षण यह है कि अखण्ड पर दृष्टि जाने से उसकी पर्याय में अनन्त काल में नहीं हुई (ऐसी) अपूर्व शान्ति आती है। आहा...हा...! वह शान्ति अपूर्व हुई, तथापि वस्तु तो अखण्ड है। आहा...हा...! इतना शान्ति का अंश जो अन्दर में शक्तिरूप से उसके साथ-स्वस्वभाव के साथ अंश था... अंश था ऐसा किसलिये कहते हैं? सर्वज्ञ तो ऐसा जानते हैं कि यह अंश बाहर आया और यह अंश अन्दर गया। सूक्ष्म बातें हैं। आहा...हा...! परन्तु एकरूप स्वरूप है। आहा...हा...! बाहर आया और अन्दर गया, यह भी भेद का कथन है। आहा...हा...! एकरूप ही वह परमपारिणामिकभाव वस्तु रही है। जिसमें चार भाव का प्रवेश नहीं और चार भाव को वह द्रव्य स्पर्श भी नहीं करता। राग को भी वह द्रव्य स्पर्श नहीं करता। स्पर्श नहीं करता (अर्थात्) छूता नहीं। केवलज्ञान हो तो भी द्रव्य, केवलज्ञान की पर्याय को छूता (स्पर्शता) नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : आनन्द उसी समय आता है या बाद में आता है?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय में आता है, तथापि उस आनन्द को द्रव्य नहीं छूता। किसने कहा ? यह आनन्द तो कहा, यह बात तो बहुत बार कही, यह तो बहुत बार कहा गया है, तथापि इस आनन्द की पर्याय को द्रव्य छूता नहीं। आहा...हा... ! उस समय भी आनन्द की पर्याय का वेदन हुआ, उस समय में वस्तु तो अखण्ड है। आहा...हा... ! मिथ्यात्व टलकर सम्यग्दर्शन हुआ और आनन्द हुआ, दु:ख का अंश थोड़ा टला और आनन्द का अंश आया, तथापि वह वस्तु तो अखण्ड की अखण्ड है। आहा...हा... ! ऐसी बात कहाँ ? समझ में आया ?

भाई ! यह तो वस्तु का स्वभाव, पर्याय का स्वभाव, क्षेत्र का स्वभाव, काल का स्वभाव, भाव का स्वभाव, बापू ! आहा...हा... ! इसकी गम्भीरता, इसकी गहनता, इसकी गहराई / तल में जाना। आहा...हा... ! क्योंकि जो पर्याय है, वह असंख्य प्रदेश में है। असंख्य प्रदेश है न ? तो वह ऊपर-ऊपर है। ऊपर का अर्थ यह प्रदेश यहाँ है, इसलिए यह ऊपर है यह पर्याय, ऐसा नहीं है। अन्दर पेट के मध्य में भी जीव के असंख्य प्रदेश हैं, उन असंख्य प्रदेश के मध्य में भी ऊपर पर्याय है। अरे... अरे... ! आहा...हा... ! शरीर, वाणी, मन तो नहीं परन्तु कहते हैं कि यह ऊपर पर्याय अर्थात् असंख्य प्रदेश है, इनके ऊपर-ऊपर इतने में पर्याय है-ऐसा नहीं। जहाँ-जहाँ मध्य और ऊपर प्रदेश रहे हैं... आहा...हा... ! वहाँ-वहाँ उसकी पर्याय उसके ऊपर-ऊपर है। अन्तर में, ध्रुव में वह पर्याय गयी नहीं। समझ में आया इसमें ? कनुभाई !

ईश्वरभाई ने एक बार प्रश्न किया था कि ये सब समकिती होते हैं और तीन तीन गद्दों पर सोवे वह समकिती ! पूछा था न कनुभाई ? (संवत्) १९९४, स्वाध्यायमन्दिर, तुम (एक ओर) समकिती कहते हो और तीन-तीन मुलायम मखमल के तलायु (गद्दे), तलायु समझे ? गद्दे ! उन पर सोवे और समकिती और कहे कि हम एक गोदड़ी बिछाकर सोते हैं तो कहे तुम मिथ्यादृष्टि। कनुभाई ! कहो, हंसमुख आया है ? समझ में आया ? आहा...हा... ! बापू ! यह चीज कोई अलग है, इसके साथ कुछ (लेना देना नहीं है)। आहा...हा... !

जिसे छियानवें हजार स्त्रियों का संयोग हो, इन्द्र को करोड़ों अप्सराओं का सम्बन्ध होता है परन्तु उसे आत्मा में उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अकेली दृष्टि

www.vitragvani.com

द्रव्य पर पड़ी है, वह पर्याय में राग को भी स्पर्श नहीं करता। आहा...हा...! जिसे निरन्तर राग से भिन्न भेदज्ञान की धारा बहती है। वह भेदज्ञान की धारा धर्मी को, राग को छूती नहीं। अरे रे! ऐसी बातें हैं। अभी मूल वस्तु को समझे बिना... आहा...हा...!

यह यहाँ कहते हैं। **कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है**। अंशतः अर्थात् उसकी पर्याय में विकार चाहे जो हो परन्तु गुण में खण्ड नहीं है, वह तो पर्याय में विकार है। गुण कहो या गुणी-द्रव्य कहो दोनों ध्रुव है। जैसे द्रव्य अखण्ड है, वैसे गुण भी अखण्ड है। समझ में आया? पहले तो द्रव्य लिया। है न? अखण्डित तत्त्व लिया, फिर यहाँ कहा कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ। यह गुण है, उसका एक अंश भी विकृतरूप (नहीं हुआ)। गुण, वह गुण ऐसा ही है। जैसे वस्तु अनादि एकरूप है, वैसे गुण भी अनादि एकरूप है। आहा...हा...! उसमें विकृत अवस्था प्रवेश नहीं की और विकृत अवस्था हुई; इसलिये गुण हीन हो गया है (-ऐसा नहीं है)। शक्ति ऐसा सत्त्व का सत्त्व जो है, सत् ऐसा जो तत्त्व, उसका जो सत्त्व गुण है, उसका एक अंश भी खण्ड नहीं हुआ। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा यह गहन शब्द है। मेरे हिसाब से तो लोग मध्यस्थता से पढ़ेंगे, तब तो उन्हें ऐसा लगेगा कि कुछ बात तो लगती है परन्तु अब आग्रह छोड़कर (पढ़े तो) आहा...हा...! सब सादी भाषा में पूरा तत्त्व अन्दर में आ गया है। आहा...हा...! ११२ (बोल पूरा हुआ)। आहा...हा...! अब मुनि (की बात करते हैं)।

मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्त में स्वभाव में डुबकी लगाते हैं। अन्तर में निवास के लिये महल मिल गया है, उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता। मुनि किसी प्रकार का बोझ नहीं लेते। अन्दर जायें तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्वचिन्तन आदि। साधकदशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्य से तो कृतकृत्य हैं ही परन्तु पर्याय में भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गये हैं ॥११३॥

मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्त में स्वभाव में डुबकी लगाते हैं। आहा...हा...! मुनि उन्हें कहते हैं कि अल्प काल में... अन्तर्मुहूर्त शब्द से (आशय) अल्प काल में-अल्प

www.vitragvani.com

काल में छठवें से अन्दर आनन्द में चले जाते हैं, सातवें गुणस्थान में अप्रमत्तदशा में चले जाते हैं। आहा...हा... ! गुण का सागर भगवान, गुण का अगाध सागर, जिसके तल को दृष्टि पहुँच गयी है, दृष्टि ध्रुव को पहुँच गयी है और तदुपरान्त जिनकी स्थिरता—मुनि है, इसलिए जिनकी आनन्द की स्थिरता जम गयी है। आहा...हा... ! उस आनन्द की दशा में अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त में अर्थात् अल्प काल-अल्प काल में **स्वभाव में डुबकी लगाते हैं**। आनन्द में जाते हैं। आहा...हा... ! अर्थात् उग्र आनन्द प्रगट होता है। आहा...हा... !

शुरुआत में मुनि विकल्प में हों, तब तक विकल्प का बोझ है। अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अनुभव हुआ, उन्हें भी जब पंच महाव्रत का विकल्प आवे, वह भी बोझ है, दुःख है। इससे वे बाहर में आवे, तब भी दृष्टि तो ध्रुव पर ही त्रिकाल पड़ी है, तथापि एक क्षण में अन्दर में वापस चले जाते हैं। दृष्टि जहाँ है, उस द्रव्य पर लीनता करते हैं। समझ में आया ? आहा... !

मुनि... आहा...हा... ! उन्हें मुनि कहते हैं। **अन्तर्मुहूर्त में....** अर्थात् अल्प काल में। रतनचन्दजी ने ऐसा स्पष्टीकरण किया है कि छठवें गुणस्थान की स्थिति पौन सैकेण्ड के अन्दर है, क्योंकि एक मुहूर्त में हजारों बार आवे ऐसा शास्त्र में पाठ है। मुनिपना छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त में वहाँ श्रेणी की अपेक्षा से है परन्तु वह श्रेणी चढ़ते कालवाले को भी अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आता है। हजार बार नहीं, हजारों—ऐसा लिखा है। धवल में पाठ है। अडतालीस मिनिट में छठवें-सातवें की भूमिका हजारों बार आती है। आहा...हा... !

यह मुनिदशा कहते हैं कि अन्दर से विकल्प आया परन्तु वापस उसे छोड़कर तुरन्त अन्दर में डुबकी मारते हैं। आहा...हा... ! यह राग में आये वहाँ उन्हें रुचता नहीं, रुचता नहीं। आहा...हा... ! पंच महाव्रत के विकल्प में भी आये परन्तु वहाँ उन्हें रुचता नहीं, वहाँ दुःख है। आहा...हा... ! व्रत का विकल्प उठे वह दुःख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा कहते हैं। यह तो पाठ है सही न ? रात्रि में बहुत लम्बा विचार किया, नहीं रात्रि में ? तुम नहीं थे ? रात्रि में बहुत चर्चा हुई। अड़तालीस मिनिट में २८८० सैकेण्ड होते हैं, अड़तालीस मिनिट में। एक मिनिट के ६० सैकेण्ड (होवे) तो

www.vitragvani.com

अड़तालीस मिनिट में २८८० इतने सैकेण्ड होते हैं। आहा...हा...! और इन इतने सैकेण्डों में हजारों बार मुनिपना आवे और जावे। आहा...हा...! हजारों बार तो पाठ है, हुआ, अब अड़तालीस मिनिट में, तब अड़तालीस मिनिट को हमने इन २८८० के ३००० सैकेण्ड गिनो, (इतनी देर में) हजारों बार आवे। ३००० सैकेण्ड, उसमें हजारों बार आवे तो एक सैकेण्ड में कितनी बार आवे ? ऐसा हुआ न ? भाई! वहाँ तो ऐसा हुआ। २८८० है तो इनको हम संक्षेप में ३००० गिनें। ४८ मिनिट में ३००० सैकेण्ड और ४८ मिनिट में हजारों बार मुनिपना आवे—छठवाँ-सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ... धवल में ऐसा पाठ है।

बापू! मुनिपना किसे कहते हैं ? आहा...हा...! वह वस्तु कोई लोगों ने अभी सुनी नहीं। तत्त्व की बातें नहीं। बातें सब यह करो और यह करो और यह करो। मर गया करना इसमें मानकर। समझ में आया ? वहाँ तीन हजार सैकेण्ड में हजारों बार मुनिपना छठा-सातवाँ (गुणस्थान आता है)। तीन हजार सैकेण्ड में छठा-सातवाँ (गुणस्थान) हजारों बार (आता है) तो इसका अर्थ हो गया भाई! एक सैकेण्ड में भी बहुत बार आया। इसलिए फिर लो! आहा...हा...! रात्रि को विचार (आते थे)।

यहाँ यह कहते हैं कि मुनि छठवें में आते हैं परन्तु मुनि वापस एकदम अन्दर में चले जाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्ददशा में डुबकी मारते हैं। आहा...हा...! उसे मुनिदशा कहा जाता है। आहा! (वे) णमो लोए सव्व साहूणं में या णमो लोए सव्व आयरियाणं में, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं में मिलते हैं। आहा...हा...! जिन्हें ४८ मिनिट में अर्थात् २८८० सैकेण्ड में हजारों बार मुनिपना आवे तो एक सैकेण्ड में भी बहुत बार आया, ऐसा हो गया। आहा...हा...! और फिर कोई ऐसा लेता हो कि अन्तिम स्थितिवाला है और उसे ऐसा होता है और पहले में जरा अधिक काल भी, तथापि अधिक काल उन्हें गिना है। पौन सैकेण्ड में भाई ने ऐसा गिना है। रतनलाल मुख्तार ने गिनती का विषय गिनकर। आहा...!

जिसे अनुभव की अन्तर्दृष्टि हुई है, आनन्द का नाथ जिसे जगा है और उसने फिर चारित्रदशा। आहा...हा...! वह तो आनन्द में जिसका चरना, रमना हो गया है—ऐसे सन्तों को, बाहर में से एकदम स्वभाव में डुबकी मारते हैं। आहा...हा...! वे हिलते-चलते दिखने

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पर भी, उस समय में भी अन्दर में क्षण में आनन्द में डुबकी मारते हैं। वे बोलते दिखें, घण्टे भर व्याख्यान (देते हुए दिखें) परन्तु अन्दर में डुबकी (मारकर) तुरन्त ही अन्तर आनन्द में जाते हैं। आहा...हा...! ऐसी स्थिति है।

मुमुक्षु : मुनि को बहुत सरल हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो गया है? सरल, परन्तु किस प्रकार हुआ? स्वयं पुरुषार्थ से चारित्र को प्रगट किया है; इसलिए सरल हो गया है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन के उपरान्त जिसने स्वरूप का तीव्र आश्रय लेकर अन्दर चारित्र प्रगट किया है। आहा...हा...! जिन्हें चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक, गणधर भी चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं, बाहर अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं, वे गणधर भी इन सन्तों को पैर लगते हैं (नमस्कार करते हैं)। णमो लोए सव्व अरिहंताणं ऐसे णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती साहूणं। बाहर नमस्कार नहीं करते। अपने से छोटी दीक्षा हो, उसे बाहर में (नमस्कार नहीं करते) परन्तु णमो लोए सव्व साहूणं – ऐसा विकल्प आता है। आहा...हा...! जो इसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं, इसी भव में जिनकी बारह अंग की रचना की सामर्थ्य जगी है। बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं! आहा...हा...! और उस उपयोग में शास्त्र का करोड़ों (शास्त्र का) अगाध शास्त्र फट... फट... फट... फट... फट... पारायण कर डालते हैं। ओहो! ऐसा ज्ञान का उपयोग तीव्र काम करता है! ऐसे गणधर भी सन्तों के चरणों में नमते हैं। वह सन्तपना कैसा होगा! बापू! हैं! आहा...हा...!

केवलज्ञानी भगवान राजा, गणधर उनके दीवान। भगवान ज्ञान में बादशाह। आहा...हा...! तब गणधर उनके पट्ट दीवान और अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग और चार ज्ञान की उत्पत्ति करे और बारह अंग की रचना करे। आहा...हा...! वे गणधर भी णमो लोए सव्व साहूणं (का उच्चार करे तब) दो घड़ी पहले जो मुनि हुआ हो और स्वयं को अरबों वर्षों से मुनिपना हो, (तथापि नमस्कार पहुँचता है)। आहा...हा...! अब तेरापंथी (तुलसी) है वह कहता है लोए निकाल डालो। अरे! बापू! तुझे पता नहीं बापू! णमो लोए नहीं चाहिए तब फिर एक स्थानकवासी (साधु है) वह कहता है सव्व साहूणं है, उसमें सभी साधु

www.vitragvani.com

आते हैं। जैन के अतिरिक्त भी अन्य आते हैं। अरेरे! जैन के अतिरिक्त के सभी साधु तो सब मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : साधु तो है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु है नहीं, मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! वे लोए सव्व साहूणं में आयेंगे? आहा...हा...! अरे रे! स्वार्थ के कारण शास्त्र के अर्थ भी विपरीत करना...! ऐसा ही जगत अनादि से अन्धकार में पड़ा है। आहा...हा...!

'लोए' का अर्थ यह है कि अरिहन्त हैं और वे एक ही जगह (नहीं हैं)। अरिहन्त हैं वे एक विजय है। नौ सौ योजन गहरा उतरा हुआ, जम्बूद्वीप में यह बत्तीस विजय है न? बत्तीस विजय, एक-एक विजय में एक-एक चक्रवर्ती होता है। ऐसा एक-एक, ऐसे महाविदेह में बत्तीस विजय हैं। बत्तीस पहाड़ है। उस एक-एक विजय में एक ही चक्रवर्ती, तीर्थंकर होते हैं। अब उस विजय में एक विजय ऐसा है कि ऐसे तिरछे नहीं परन्तु ९०० योजन ऐसे नीचे उतर गया है। 'सरिलावती' नामक एक विजय है, वह अधोगम ऐसे उतर गया है। वहाँ केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जाते हैं। एक ऊर्ध्व में जाकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जाते हैं और एक मध्य में रहकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जाते हैं। वे सब णमो लोए सव्व साहूणं—ऐसा कहा है और सिद्ध को भी णमो लोए सव्व क्यों कहा? कि यहाँ से सिद्ध होते हैं न? तो रास्ते में एक समय ऐसा होता है न? वे भी वहाँ पहुँचते हैं एक समय में, यहाँ है वहाँ उन्हें नमस्कार करते हैं। लोए सव्व सिद्धाणं। जो सिद्ध अभी १०८ यहाँ से जाते हुए उस समय के समय को भी मैं तो नमस्कार करता हूँ। आहा...हा...!

आचार्य, उपाध्याय, साधु तो कोई नीचे हों या कोई मध्य में हों, कोई मेरुपर्वत में ध्यान करने गये हों। मेरुपर्वत! तो णमो लोए, ऐसा होना चाहिए, हों! अन्यमति के साधु की यहाँ बात है ही नहीं। यह तो लोक में सव्व नाम ऐसे प्रकार के भिन्न-भिन्न क्षेत्र में और इस प्रकार वर्तते हों, उन सबको नमस्कार करता हूँ - ऐसी बात है। इसलिए लोए भी यथार्थ है और सव्व भी यथार्थ है। सव्व अर्थात् जो जैनदर्शन के सन्त हैं, भिन्न-भिन्न क्षेत्र और भिन्न-भिन्न काल में होते हैं उन्हें वह लागू पड़ता है। अज्ञानी को वह लागू नहीं पड़ता। समझ में आया? आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्त में स्वभाव में डुबकी लगाते हैं। डुबकी समझे, तुम्हारी भाषा में ? आहा...हा.. ! आनन्द से सराबोर हो जाते हैं। विकल्प में हों तब आनन्द है परन्तु जहाँ अन्तर में जायें तब तो आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... का अनुभव करता हूँ—ऐसा भी जहाँ ख्याल नहीं। आनन्द को वेदते हैं। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप उनका-प्रभु का है। आहा...हा... ! उनकी महत्ता, उनकी महिमा जब तक न आवे, तब तक बाहर के राग और दया, दान के विकल्प की महिमा नहीं छूटती। आहा...हा... ! अरे ! इस द्रव्य की ऐसी शक्ति और ऐसा सत्त्व अखण्ड है—ऐसा जिसे ख्याल में महिमा और आश्चर्यकारी वस्तु ख्याल में न आवे, तब तक उसकी पर्यायबुद्धि नहीं छूटती, पर्याय प्रगट कर महिमा नहीं छूटती। आहा...हा... !

एक समय की पर्याय के पास अखण्ड तत्त्व पड़ा है। एक समय की पर्याय के पास उसी क्षेत्र में, उस क्षेत्र का अंश भले विकार का या पर्याय का भिन्न हो, परन्तु उस अंश का यह दूसरा वहीं का वहीं है। उसमें का अंश का क्षेत्र वहीं का वहीं है। आहा...हा... ! उसमें जो बिराजमान है... आहा...हा... ! उसमें जो स्थिर है, उन्हें बाहर आना रुचता नहीं परन्तु कमजोरी के कारण वापस विकल्प उठे परन्तु वहाँ उसे रुचता नहीं। आहा...हा... !

दूसरे में आ गया है न ? अपने इसमें अब आयेगा, नहीं ? १४९ पृष्ठ पर। इसमें आ गया है। १४९ पृष्ठ है। बोल ४०१, उसमें यह अंक नहीं है, इसमें ४०१ बोल होगा, है, अंक इसमें है ? अंक है इसमें ? उसमें नहीं, उसमें नहीं। ४०१ है ?

ज्ञानी का परिणमन विभाव से पराङ्मुख होकर स्वरूप सन्मुख ढल रहा है। है ? **ज्ञानी निजस्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाना चाहते हैं।** स्थिर हो जाना चाहते हैं। यदि अभी स्वरूप में पूर्ण होकर केवलज्ञान होवे तो दूसरी घड़ी नहीं चाहिए। आहा...हा... ! जिसने दृष्टि में भगवान देखा, पूर्णानन्द का नाथ अचिन्त्य अखण्ड तत्त्व का जहाँ भान हुआ, ज्ञान में जिसका प्रत्यक्षपना स्वाद आया... आहा...हा... ! (वे) उसे अन्तर में जाने को तरसते हैं।

यह विभावभाव हमारा द्वेश नहीं। ये पंच महाव्रतादि का कोई भी विकल्प उठा... आहा...हा... ! वह हमारा देश नहीं। आहा...हा... ! **इस परदेश में हम कहाँ आ**

www.vitragvani.com

पहुँचे ? आहा...हा... ! ये पंच महाव्रत का या भक्ति (इत्यादि के) विकल्प में आते हैं न ? अरे ! यह तो परदेश है। इसमें हम कहाँ आ पहुँचे ? हमारा देश तो अन्तरस्वरूप आनन्द है, वह हमारा स्वदेश है। आहा...हा... ! **हमें यहाँ नहीं रुचता।** आहा...हा... ! सम्यग्दृष्टि को राग में आना नहीं रुचता, यह तो परदेश है। आहा...हा... ! **यहाँ हमारा कोई नहीं।** यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम में हमारा कोई नहीं। आहा...हा... ! है ? वह आयेगा तब विस्तार करेंगे।

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। लाडनूँ में से निकल गये तो कलकत्ता परदेश है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! देखो ! यह स्वरूप ! अनन्त गुण हमारा परिवार है। **वह हमारा स्वदेश है।** अनन्त आनन्द और अनन्त गुण का धाम मेरा नाथ, वह मेरा स्वदेश है। आहा...हा... ! **हम अब उस स्वरूप-स्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहा...हा... ! उस तरफ हमारा झुकाव हो गया है अब, उसमें हम जा रहे हैं। **हम शीघ्रता से हमारे मूल वतन में जाकर....** मूल वतन हमारा वह है। बाहर से चाहे जितना कमाये परन्तु वापस उसके निज वतन में आता है न ? आहा...हा... ! वतन अर्थात् देश, मूलस्थान। आहा...हा... ! हमारा वतन तो यह असंख्य प्रदेशी अनन्त गुणधाम, यह हमारा वतन है, यह हमारा स्थान है, यह हमारा देश है। आहा...हा... ! वहाँ हमारा परिवार बसता है। आहा...हा... !

ऐसी वस्तु है, उसका जहाँ अनुभव हुआ तो उसे आनन्द में से बाहर निकलने पर (ऐसा लगता है कि) यह क्या हुआ ? अरे ! हम तो परदेश में आ पड़े। यह सब देश-यह भाव हमारे नहीं। यह परिवार हमारा नहीं। आहा...हा... ! **शीघ्रता से हमारे मूल वतन में जाकर निश्चिन्त बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।** आहा...हा... ! नियमसार में आता है न ? ज्ञाननिधि को पाकर स्वयं गुप्त होकर स्वदेश में रहे। नियमसार में है। कोई परदेश में गया और दो-पाँच करोड़ रुपये आये, एकदम आमदनी हो गयी, फिर स्वदेश में चला आवे और गुप्त (रखे)। फिर उसका ढिंढ़ोरा नहीं पीटे कि हम बहुत पैसा लाये हैं। तो फिर सब खा जायेंगे। नियमसार में ऐसा पाठ है। नियमसार, कुन्दकुन्दाचार्य ! कोई भी पैसे को प्राप्त करके, परदेश में से पैसा मिला तो देश में चला आवे। देखो न, ये यह लाखाणी

www.vitragvani.com

है न ? है कोई लाखाणी ? यह लाखाणी । मूलजीभाई और दामोदरभाई के पिता, बाहर से-मुम्बई से पैसा ले आये। सोलह लाख या अठारह लाख, फिर दुकान बन्द कर दी और यहाँ देश में आये। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है, हों! बहुत वर्ष पहले। तुम्हारे जन्म से पहले की बात है। एक साथ पैसे की आमदनी हो गयी। सोलह लाख, अठारह लाख उस समय, अर्थात् ? पचास वर्ष, साठ वर्ष पहले। छोड़ दिया। दुकान छोड़कर देश में (आ गये)।

इसी प्रकार यहाँ नियमसार में कहते हैं कि जैसे बाहर में बहुत पैसा मिल गया, और स्वदेश में आकर गुप्तरूप से स्वयं अनुभवे-खावे—पीवे, बाहर (ढ़िंढोरा) पीटे नहीं तब तो कुटुम्बी आकर कहें कि दो हमको। गाँव के चंदा करनेवाले आकर (माँगेंगे)। ऐसा होता है न ? भाई! इसलिए स्वयं गुप्तरूप से (रहे)। इसी प्रकार ज्ञाननिधि को पाकर... आहा...हा...! नियमसार में है। आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु इसे मिला है जहाँ, उसे पाकर स्वयं एकान्त में अनुभवे, बाहर में उसका ढिंढ़ोरा नहीं पीटे। आहा...हा...! बाहर प्रसिद्ध होने के लिये (कि) कोई हमें पहचाने और हमारा मान बढ़े, यह सब बातें बाहर में प्रसिद्ध होने की हैं, अन्दर में जाने की नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? आहा...हा...! यह अपने यहाँ लिया है। यह तो यहाँ दृष्टान्त दिया, हों! अपने तो यहाँ चलता है न ?

अन्तर में निवास के लिये महल मिल गया है,.... अपने चलता हुआ अधिकार। मुनि को अन्दर में निवास के लिये महल मिल गया है। आहा...हा...! कहाँ बसना, इसका पता नहीं था। जहाँ भान हुआ, वहाँ इसमें बसनेयोग्य है, यही निवासस्थान है। अन्तर आनन्द के धाम में बसनेयोग्य है, वहाँ निवास करनेयोग्य है। आहा...हा...! **उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता**। महल मिल गया, उससे बाहर आना अच्छा नहीं लगता। **मुनि किसी प्रकार का बोझ नहीं लेते**। आहा...हा...! क्या शब्द आया - प्रक्रम ? सर्वविशुद्ध में नहीं ? प्रक्रम, कोई काम सिर पर (नहीं लेते।) भाई! इस पाठशाला का तुम्हें ध्यान रखना पड़ेगा या इस पाठशाला के लिये पैसा एकत्रित करने के लिये तुम्हें जाना पड़ेगा। इस तीर्थ के लिये अभी करते हैं न ? तीर्थ के लिये तुम्हें पैसा इकट्ठा करना पड़ेगा—मुनि ऐसा काम सिर पर नहीं लेते। आहा...हा...! यहाँ समवसरण बनाना है, उसके लिये

www.vitragvani.com

पच्चीस लाख खर्च करना है तो तुम ध्यान रखो तो वह पैसा आवे। मुनि ऐसा बोझ सिर पर नहीं रखते। आहा!

मुनि किसी प्रकार का बोझ नहीं लेते। अन्दर जायें तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्वचिन्तन आदि। आहा...हा...! स्वाध्याय और ध्यान – दो काम लिये हैं न? मुनि को दो (काम हैं)। ध्यान में रहे और ध्यान में नहीं रह सके तो शास्त्र-स्वाध्याय (करें)। है शुभभाव। आहा...हा...! दूसरा काम उन्हें नहीं होता। भाई! हमें यह पंच कल्याणक करना है, अमुक दिन तुम्हें मेरे यहाँ आना पड़ेगा—ऐसा बोझ मुनि को नहीं होता। आहा...हा...! उन्हें अन्दर में जहाँ आनन्द वर्तता हो, उन्हें जो विकल्प उठता है, वह बोझ लगता है, इसके बदले, इसके बदले तुम्हें आना पड़ेगा और इस जगह तुम्हें जाना, यह काम मुनि को नहीं होता। आहा...हा...!

साधकदशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्य से तो कृतकृत्य हैं ही.... वस्तु तो कृतकृत्य अखण्ड कृतकृत्य ही है। **परन्तु पर्याय में भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गये हैं।** आहा...हा...! जिसमें तीन कषाय के अभाव की, आनन्द की दशा की वीतरागता / प्रचुर स्वसंवेदन (प्रगट हुआ है)। पर्याय में भी कृतकृत्य, बहुत कृतकृत्य हो गये हैं। पूर्ण कृतकृत्य तो केवली होते हैं परन्तु बहुत कृतकृत्य हो गये हैं। ऐसे मुनि को अन्दर में जाना वह उनका निवास है, बाहर में आना वह उन्हें बोझ लगता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ शुक्ल-१३, मंगलवार, दिनाङ्क १८-०७-१९७८
वचनामृत-११४-११६ प्रवचन-४१

जिसे भगवान का प्रेम हो, वह भगवान को देखता रहता है, उसी प्रकार चैतन्यदेव का प्रेमी चैतन्य चैतन्य ही करता रहता है ॥११४॥

वचनामृत ११४। ११३ चले हैं न? इस पुस्तक का नाम ऐसा देना, पत्र आया है न? 'सरल रोचक द्रव्यदृष्टि' ऐसा नाम इसका देना पड़ेगा... 'सरल रोचक द्रव्यदृष्टि' सोगानी का 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' है न? उसकी अपेक्षा 'सरल रोचक द्रव्यदृष्टि प्रकाश'... प्रकाश उसने नहीं लिखा परन्तु बात सच्ची है। भाषा सादी है। मन्दसौर से आया है, कन्हैयालाल... ११४।

जिसे भगवान का प्रेम हो, वह भगवान को देखता रहता है,... आहा...हा...! जिसे भगवान, परमात्मा, ईश्वर कहो या भगवान माने न अथवा अपने भगवान को लो। जिसे प्रेम है, वह भगवान को देखा ही करता है। **उसी प्रकार चैतन्यदेव का प्रेमी....** आहा...हा...! जिसकी पर्यायबुद्धि गयी है, रागबुद्धि, निमित्तबुद्धि टली है—ऐसे चैतन्यदेव को जिसने देखा है, जाना है, उसका जिसे प्रेम है, वह **चैतन्यदेव का प्रेमी चैतन्य चैतन्य ही करता रहता है**। चैतन्य ही ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... आहा...हा...! मैं तो ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ।

मुमुक्षु : बोलता है या परिणमता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहने की बात नहीं, यहाँ तो प्रेम की बात है। जिसे अन्दर चैतन्य का प्रेम लगा है। इसीलिए कहा न? कि जिसकी संयोगबुद्धि, रागबुद्धि और

www.vitragvani.com

पर्यायबुद्धि गयी है, उसका जिसे प्रेम गया है, उसे चैतन्य का प्रेम लगा है। जैसे भगवान, भगवान, भगवान का प्रेमी किया करता है... आहा...हा...! वैसे यह चैतन्य का प्रेमी चैतन्य... चैतन्य... त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप, वर्तमान में त्रिकाली एकरूप स्वरूप, वह राग में भी नहीं या पर्याय में भी वह नहीं; वह तो उसके ध्रुवस्वरूप में चैतन्य है। उसकी दृष्टि जिसे हुई अर्थात् जिसे उसका प्रेम हुआ, वह चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... यही उसे रमा करता है। चैतन्य चैतन्य किया करता है, उसका अर्थ यह है। आहा...हा...!

उसका चैतन्यस्वरूप क्या? ज्ञायकध्रुव क्या? उसमें आया है न? ३२० में, नहीं? धर्मी जीव अपने स्वरूप को (कि) जो सकल निरावरण है, प्रभु द्रव्य जो वस्तु है, वह तो सकल निरावरण है। सकल निरावरण एक, अखण्ड एक, अखण्ड वस्तु है, एक है, भेद नहीं और प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। जिसकी ज्ञान की दशा में प्रत्यक्ष आता है, प्रतिभास होता है—ऐसी वह चीज है। आहा...हा...! ज्ञानरूपी पर्याय में, दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब दिखता है, प्रतिबिम्ब अर्थात् प्रतीति हुई, वैसे इस पर्याय में... आहा...हा...! प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। ज्ञान की पर्याय में तेरा भगवान प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है—ऐसी बात है।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष और प्रतिभास का अर्थ कहो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? है, ऐसा भास होवे, उसे प्रतिभासमय (कहते हैं)। जैसे सामने अग्नि हो तो दर्पण में अग्नि का, वह बिम्ब है, यहाँ प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब है तो दर्पण की स्वच्छता; वैसे जैसा ज्ञायक द्रव्यस्वभाव है, वैसा पर्याय में प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, प्रतिभासमय अर्थात् जो है, वैसा भासित हो। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

जो सकल निरावरण है, अखण्ड एकरूप है। प्रत्यक्ष प्रतिभास-जिसकी पर्याय में प्रत्यक्ष वह जैसा है, वैसा भासित होता है। आहा...हा...! ऐसा जिसे चैतन्यस्वभाव का प्रेम जगा है, वह तो चैतन्य चैतन्य करता है। अर्थात्? अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण परमात्मा, वह परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ। आहा...हा...! वह यह चैतन्य चैतन्य, त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर अविनाशी वस्तु है। आहा...हा...! और शुद्ध पारिणामिक सहजभाव परमपारिणामिक परमभाव जिसका लक्षण है। आहा...हा...! सहज स्वभावभाव, वह जिसका लक्षण है—ऐसा वह परमात्मद्रव्य,

www.vitragvani.com

वह मैं हूँ। उसकी अन्दर रटन जगे। आहा...हा...! बहुत कठिन काम! मार्ग तो यह है, बापू! आहा...हा...!

वह व्यवहार से प्राप्त नहीं होता, निमित्त से प्राप्त नहीं होता; वह तो प्रत्यक्ष प्रतिभासमय ज्ञान की पर्याय में सीधा भासे... आहा...हा...! ऐसा जो परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ—ऐसा कहते हैं। वह मैं हूँ—ऐसा भी नहीं। वही मैं हूँ, वही मैं हूँ। आहा..हा...! ऐसा जिसे ज्ञायक के प्रति प्रेम हुआ और दृष्टि का विषय पकड़ा, उसे वह चैतन्यज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ—ऐसी ही रटन ज्ञानधारा में हमेशा होती है। आहा...हा...! चाहे जो विकल्प हो, दूसरी चीज हो परन्तु यह इसकी ध्रुव की धारा हटती नहीं। अरे... अरे... ऐसी बात है।

ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे रस लगा, जिसने उसे-ज्ञायक को ज्ञेय बनाकर और ज्ञायक का प्रेम लगा... आहा...हा...! उसे चैतन्य चैतन्य ही हुआ करता है। मैं राग नहीं, पुण्य नहीं, नहीं का नकार नहीं यहाँ, हकार है यहाँ तो। मैं तो चैतन्यस्वरूप, परम शुद्धपारिणामिकभाव लक्षण शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण... आहा...हा...! ऐसा जो त्रिकाली चैतन्य, वह परमात्मद्रव्य, वह चैतन्य मैं हूँ। आहा...हा...! ऐसा उसे हुआ ही करता है। आहा...हा...! दो लाईनें हुई।

जैसे माता की अंगुली से छोटा लड़का हो और भिन्न पड़ जाये... अब उसे पूछो तो एक ही लगन, मेरी माँ... मेरी माँ... मेरी माँ... माँ... माँ... माँ... माँ... यह तो मैंने नजरों से देखा है, हों! पोरबन्दर उपाश्रय के पास किसी की एक लड़की, उसकी माँ होगी, उसकी अंगुली से पृथक् पड़ गयी। पुलिस उससे पूछे तू कहाँ की कौन है? तेरी सखी कौन? तेरी सखी अर्थात् बहिनपणी... कौन सी गली? माँ। बस, इतना कहा। अंगुली से भिन्न पड़ गयी थी, उसकी माँ कहीं आगे-पीछे हो गयी। पुलिस ने उसे ढूँढकर, उसका क्या कहलाता है? गली, किस गली में रहती है। लड़की की सखी की पहचान से, उसके माँ के नाम की, उसके बाप के नाम की (पूछे तो) एक ही बात - माँ... माँ...।

इसी प्रकार आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु! उसे जिसने देखा, उसे आत्मा ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। धर्मी जीव को ऐसी रटन होती है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। अब यह सब क्या करना है? यह स्त्री, पुत्र और ये सब। यह सब होली सुलगी है। यह कहाँ तुझमें है?

www.vitragvani.com

प्रभु! यह तो पर है, यह तो इसके कारण आये और उसके कारण टिके और उसके कारण चले जायेंगे। कहीं तेरे कारण आये और तेरे पास आये-ऐसा है नहीं। आहा...हा...! यह तो जगत की चीजें हैं। तुझसे भिन्न चीज है। उस भिन्न का परिणमना और बदलना और टिकना और हटना तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में (जाना), वह तो उसके कारण है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : हमारे घर में उसका कोई मेल होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : घर कब तुम्हारा था? लड़के के नाम का घर बेच दिया। पचास हजार का मकान लेकर वापस पचास हजार लड़के के नाम में लिख दिये। मकान 'चेतन' के नाम से रहा, इसलिए घर का घर में। घर कहाँ था तुम्हारा? भाई को घर था न?.... तो बहुत था परन्तु फिर 'सुमन' की सास है उन्होंने लिया, उसने फिर पचास.... प्रयोग करने दें और पचास हजार लेने के बाद सुमन के लड़के के नाम से दे दिया। रहा तो वहीं का वहीं। माना है न? ऐसा माना है कि यह मेरा था, मैंने बेचा और मेरे लड़के के लड़के को मिला, कल्पना है, सब भ्रम। आहा...हा...!

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा यह एक राग का हुआ नहीं। यह एक समय की पर्याय में रहता नहीं। एक समय की पर्याय का होता नहीं। सूक्ष्म बात है प्रभु! यह तो धर्म वीतराग का मार्ग। सर्वज्ञ परमेश्वर और तेरा स्वरूप ही सर्वज्ञ स्वाभाविक प्रभु! तू है। आहा..हा...! सर्वज्ञ पर्याय जिसे प्रगट हुई परन्तु वह प्रगट हुई कहाँ से? केवलज्ञान ऐसा पूर्ण ज्ञान। वह अन्दर में तू पूर्ण सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है, भाई! सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की... की है सब। आहा...हा...! सर्वज्ञस्वभावी अर्थात् चैतन्य कहो या सर्वज्ञस्वभावी कहो। आहा...हा...! ज्ञायक कहो या दृष्टि का विषय जो अभेद है, वह सामान्य और अभेद कहो। आहा...हा...! कहीं शब्द पकड़ में नहीं आते, वह कब धर्म करे? अरे रे! ऐसा का ऐसा चौरासी के अवतार में भटककर मर गया है। इसमें फिर किंचित् पाँच-पच्चीस लाख रुपये हों (तो) मैं चौड़ा और गली सँकरी हो जाती है। आहा...हा...! क्या हम बढ़ गये! किसमें? भटकने में।

आहा...हा...! प्रभु तू कौन है? भाई! तेरी जाति में क्या है? तेरी जाति में आनन्द

www.vitragvani.com

और ज्ञान भरा है। इस पर्याय में उसकी भात पड़ती है। आहा...हा...! जैसी इसकी सर्वज्ञस्वरूपी जाति है, वैसी पर्याय में भात पड़े इसे, इसे प्रतिभास हो। इसे प्रतिभास होता है। आहा..हा...! तब इसकी पर्याय (में) इसे ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... का रटन होता है। अर्थात् ज्ञायक पर उसकी दृष्टि होती है। आहा...हा...! ऐसी बातें अब। कठिन है, इसमें करना क्या? वे तो कहे व्रत करो, भक्ति करो, दान करो, पूजा करो, यात्रा करो... धूल में भी नहीं, यह तो सब राग की क्रियायें हैं। वहाँ आत्मा नहीं और आत्मा में उससे कुछ लाभ नहीं होता। आहा...हा...! ११४ (बोल पूरा हुआ।)

गुणभेद पर दृष्टि करने से विकल्प ही उत्पन्न होता है, निर्विकल्पता-समरसता नहीं होती। एक चैतन्य को सामान्यरूप से ग्रहण कर; उसमें मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा। भिन्न-भिन्न ग्रहण करने से अशान्ति उत्पन्न होगी॥११५॥

११५ **गुणभेद पर दृष्टि करने से विकल्प ही उत्पन्न होता है,....** क्या कहते हैं प्रभु! सुन भाई! तूने तेरी कथा सुनी नहीं, नाथ! प्रभु! तू कौन है? कितना है? कहाँ है? भाई! तुझे तेरी खबर नहीं। यहाँ कहते हैं कि प्रभु! इतना है अन्दर, अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, एक-एक आत्मा में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आहा...हा...! इसने गुण पर दृष्टि करने से, गुण के भेद पर दृष्टि करने से,... गुण का पिण्ड जो अखण्ड अभेद है... आहा...हा...! अरे! इसमें गुण का भेद विकल्प उत्पन्न करने से (अर्थात्) यह गुण है इस गुणी का - ऐसा भेद का विकल्प उत्पन्न करने से दुःख है। वह विकल्प उत्पन्न होता है, वह दुःख है। आहा...हा...! ऐसी बात अब कहाँ...! तेरी प्रभुता के अभेद में यह 'ज्ञान, वह आत्मा' और ऐसा गुणभेद उत्पन्न करे, वह भी एक विकल्प है, अशान्ति है, दुःख है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया का भाव तुझे होता है, वह भी राग है और वह तेरी हिंसा है, भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू तो चैतन्यस्वरूप है न! उसमें प्रभु! (दया, दान

www.vitragvani.com

का) राग है। अब इस बात का कहाँ मेल करना? आहा...हा...! गुणभेद पर दृष्टि करने से अर्थात्? आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु, देव-गुरु और धर्म की दृष्टि करने से भी राग होता है। कारण कि परवस्तु है, उस पर लक्ष्य जाने से राग ही होता है। ऐसा राग है, उस पर दृष्टि जाने पर भी राग ही होता है। ऐसे एक समय की पर्याय है, उस पर दृष्टि जाने पर भी राग ही होता है। ऐसे गुण और गुणी के भेद करने पर भी विकल्प / राग ही होता है। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह? अनादि अन्ध, दुनिया अन्धी चली जाती है। चार गति में भटकते अन्धे अन्ध, कुछ भान नहीं होता, क्या है यह? बाहर में मानो चतुर के पुत्र हो गये, उसमें दो हजार का वेतन हो, पन्द्रह हजार का वेतन हो, बड़ा बैंक का वह (आफीसर) हो। आहा...हा...! अरे प्रभु! क्या है तुझे यह? आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं तेरे अतिरिक्त देव-गुरु-शास्त्र की दृष्टि तू करे तो भी विकल्प होगा, तुझे राग होगा क्योंकि पराश्रय हुआ। राग हुआ, उस पर दृष्टि करे तो राग होगा। आहा...हा...! और एक समय की पर्याय है... 'पर्यायमूढा परसमया' आहा...हा...! भले फिर इसने पर्याय की व्याख्या नरक या मनुष्य की गति की पर्याय गिने परन्तु वास्तव में तो एक समय की पर्याय है न, परिणमन का अंश है न, उसमें जो एकाग्र है, वह मूढ़ है, और उस पर्याय का आश्रय लेने जाता है तो वह राग होता है।

यहाँ तो इससे आगे जाने पर गुणी ऐसा आत्मा अनन्त गुण का धनी, वह ज्ञानस्वरूप हूँ, दर्शनस्वरूप हूँ—ऐसा विचार में गुणी में से गुण का भेद उठे, वह भी एक विकल्प और दुःख है। अरे रे! यह बात कब (समझे)? संसार के... वह आता है न? तृष्णा ने बैल की तरह मोह के भूत ने, मोह को... मिथ्यात्व तृष्णारूपी फिर दाह लगी और बैल की तरह सबको काम कराता है, बैल की तरह। बैल। जैसे बैल होता है न? आहा...हा..! वैसे मैंने यह धन्धा किया और मैंने इसका ऐसा किया और मैंने ऐसे पैसे कमाये... ऐ...ई! मैंने ऐसे लड़कों को बड़ा किया और लड़कों को शिक्षा दी... आहा...हा...! और नौकरों को शिक्षा देकर होशियार किया और अब मैं न होऊँ तो भी नौकर दुकान चलाता है। आहा...हा...! यह सब अज्ञानी के भ्रम हैं। आहा...हा...!

यह तो भ्रम है परन्तु यहाँ तो कहते हैं—गुणी जो वस्तु अभेद जो चीज है उसमें -

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अभेद में गुण का भेद (करना कि) मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, आनन्द हूँ—ऐसा भी एक विकल्प गुण का गुणी में से उठाना वह विकल्प है, वह दु:ख है, वह राग है, वह जहर है, उस जहर का प्याला तू पीता है, प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। आहा...हा...! बाबूलालजी! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! दुनिया में कहीं मिले ऐसा नहीं है। वहाँ तो यह करो और यह करो और यह करो, बस उसमें कुछ पैसा हुये हों दो, पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ अर्थात् वर्ष में लाख-दो लाख खर्च करे। तुम्हारी पाठशाला के लिये महीने में पाँच हजार दूँगा, वहाँ तो लोग ओहोहो! वाह! (करते हैं)।

मुमुक्षु : सेठ का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ का कितना मान! अभिनन्दन पत्र दो। यह तुम्हारी पाठशाला के लिये जब तक चले तब तक महीने में मेरे पाँच हजार। सभा प्रसन्न प्रसन्न हो जाये। धूल में भी नहीं वहाँ। तेरे पाँच हजार क्या लाख, करोड़ दे न! वह चीज़ कहाँ तेरी थी? वह तो जड़ है। जड़ को मेरा मानकर उसे दे, वह तो बड़ा महामिथ्यात्व का पाप लगता है, असत्य का पाप है। आहा...हा...! ऐसी कठिन बातें, बापू! जन्म-मरण रहित होने का पंथ कोई अलौकिक है। यह जन्म-मरण कर ही रहा है।

यहाँ तो गुणी ऐसा प्रभु, गुणी अर्थात् यह चावल की बोरी और गेहूँ की गुणी (बोरी) वह नहीं, हों! यहाँ... यह तो गुण का धारक गुणी। भगवान आत्मा वस्तु है, अभेद चीज है, उसमें अनन्त गुणरूप परन्तु एकरूप वस्तु है। आहा...हा...! उसमें भी **गुणभेद पर दृष्टि करने से....** गुणभेद पर दृष्टि करने से अर्थात् यह ज्ञान है और दर्शन है। उस अभेद में भेद अन्दर है परन्तु अभेद की दृष्टि करने से, अभेद को देखने से उसमें भेद दिखायी नहीं देता, भले अन्दर हो परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी दृष्टि करने से अभेद में वे भेद दिखायी नहीं देते। उसे भेद पाड़कर अलग देखना चाहे... आहा...हा...! तब तो कहते हैं कि तूने विकल्प किया, तू दु:खी हुआ। आहा! अब ऐसी बात!

यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया पालो, पर को बस ऐसा करो—भूखे को आहार दो, प्यासे को पानी दो, रोगी को औषध, मकान-वकान न हो उसे चबूतरा-बबूतरा बाँधकर (दो)। आहा...हा...! मुम्बई में तो दो-चार लाख लोग बाहर पड़े रहते हैं। मकान भी नहीं

www.vitragvani.com

और कुछ नहीं। मुम्बई में। आहा...हा...! अरे रे! ऐसा करे, इसने किया इसलिए कुछ धर्म किया... आहा...हा...! मैं उन्हें पैसा देता हूँ, मैं उन्हें अनाज देता हूँ, मैं उन्हें पानी देता हूँ, दवा देता हूँ... वह परचीज है, वह देता हूँ—यह मान्यता ही मिथ्यात्व है, झूठ है, क्यों? परचीज तेरी नहीं कि तू उसे दे और ले। आहा...हा...! अरे! इसे तो वहाँ से तो हटना है परन्तु पर्याय की दृष्टि से हट जाना है। जिसे कल्याण करना हो और जन्म-मरण मिटाना हो तो। बाकी तो भटकती है पूरी दुनिया। आहा...हा...!

यहाँ तो गुण और गुणी के भेद का विकल्प भी मिटाना है। आहा...हा...! अनन्त गुण का प्रभु, तेरी प्रभुता में भेद करे तो वह अप्रभुता की पामरता है, कहते हैं। आहा...हा...! अब यह किस प्रकार समझना? यह तो कोई वीतराग का मार्ग होगा यह? जिनेश्वर का होगा? भाई! हम तो (समझे कि) दया पालना, व्रत करना, उपवास करना, यात्रा करना, भक्ति करना, दान करना, लो! बापू! अरे! बापू! तुझे पता नहीं, भाई! तू तो ज्ञानस्वरूप प्रभु है। इस जानने के काम के अतिरिक्त देने-लेने का काम माने... आहा...हा...! यह तो बड़ा भ्रम है।

इससे यहाँ तो आगे जाकर (कहते हैं)... आहा...हा...! वस्तु प्रभु चैतन्यज्योत अन्दर है जलहल ज्योति प्रभु है, उसमें अनन्त गुण हैं, तथापि उस गुण का भेद डालकर गुण की दृष्टि करे तो विकल्प ही उत्पन्न होते हैं। रागी है इसलिए ऐसा लेना। (समयसार की) सातवीं गाथा में आ गया न? रागी प्राणी है, इसलिए भेद पर दृष्टि करेगा तो उसे राग ही होगा, रागी है इसलिए। आहा...हा...! भेद को, अभेद को तो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा सब जानते हैं परन्तु वे तो वीतराग हैं, वीतराग होने से जानने पर उन्हें किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता परन्तु यह तो रागी प्राणी है और अभेद की दृष्टि छोड़कर भेद का विकल्प उठायेगा तो वहाँ राग ही होगा। रागी है, इसलिए राग होगा। आहा...हा...!

इसमें क्या समझना? क्या करना इसमें क्या? इसे तो यह कुछ करना हो न बाहर में। दया की मण्डली, चंदा इकट्ठा करे, पाँच लाख इकट्ठे किये। यह नहीं अभी वह हुआ था न? क्या कहलाता है नहीं? परदेश में क्या हुआ? समुद्र की रेल आयी न? वावाझोड़ा को क्या कहा कहलाये? (आँधी-तूफान) देश, आन्धदेश फिर बड़े खरड़ा (चन्दा) हुआ। पाँच-पाँच लाख, दस लाख के और किसी ने पचास हजार लिखाये, किसी ने लाख

www.vitragvani.com

और प्रसन्न प्रसन्न हो जाये कि आहा...हा... ! मानो मैंने क्या किया ! अरे ! प्रभु ! सुन भाई ! तू चैतन्यस्वरूप है न ! वह जानने के अलावा क्या काम करे ? आहा...हा... ! उसे गुणभेद भी करना, वह राग का कारण है। अरे ! ऐसी बातें सुनी न हो, उसे (ऐसा लगता है) क्या होगा यह तो ?

मुमुक्षु : गुण और स्वरूप दो को साथ में देखें तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ दो को देखने जाये तो राग होगा। अखण्ड अभेद पर दृष्टि करेगा तो निर्विकल्पता रागरहित होगी। अत: इसे सम्यग्दर्शन होगा। आहा...हा... ! यह आयेगा, लो !

निर्विकल्पता- समरसता नहीं होती। आहा...हा... ! जो वस्तु-प्रभु अन्दर है वह तो अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। जिसके अनन्त गुण के अनन्त की संख्या की हद नहीं, इतने अनन्त गुण प्रभु आत्मा में प्रत्येक में भरे हैं परन्तु वे भरे हैं, उन्हें भेद करके अलग गुण है, ऐसा भेद करना, वहाँ अशान्ति और विकल्प उत्पन्न होता है। निर्विकल्पता, अर्थात् शान्ति, अर्थात् समरसता नहीं होती। गुणी में से गुण का भेद करने पर भी समरस-समता नहीं होती अथवा सम्यग्दर्शन नहीं होता अथवा सत्य दर्शन निर्विकल्पता के अतिरिक्त नहीं होता। आहा...हा... ! ऐसा क्या होगा यह ? कहाँ का मार्ग ऐसा होगा ? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा की यह दिव्यध्वनि है। समझ में आया ? आहा...हा... !

निर्विकल्प समरसता... अर्थात् ? एक गुणी चीज अभेद है, उसमें गुण का भेद उत्पन्न होने से समरसता-समता प्रगट नहीं होती। उसे विषमता अर्थात् राग प्रगट होता है। आहा...हा... ! कहाँ जाना इसे ? कहाँ से उठाकर कहाँ जाना ?—इसका पता नहीं होता बेचारे को। अहा ! उसे निर्विकल्पता अर्थात् समरसता नहीं होती।

एक चैतन्य को सामान्यरूप से ग्रहण कर;.... एक चैतन्यस्वरूप, एक स्वरूप है, सामान्यस्वरूप है, अभेदस्वरूप है, उसे ग्रहण कर। आहा...हा... ! चैतन्य की त्रिकल्पता / त्रिकाल ध्रुवता (को ग्रहण कर)। भेद को पकड़ना छोड़कर अभेद को पकड़। आहा...हा... ! मार्ग बहुत (सूक्ष्म है)। **चैतन्य को सामान्यरूप से ग्रहण कर;....** गुण और गुणी का विशेष भेद न डालकर, यह गुणी अखण्ड प्रभु है—ऐसी सामान्य पर दृष्टि कर तो तुझे

www.vitragvani.com

समता और सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। धर्म की पहली शुरुआत वहाँ से होगी; इसके बिना हराम है धर्म होवे तो कहीं। आहा...हा... ! अभी तो बेचारे शोर मचाते हैं। यह व्रत पालते हैं और तपस्या करते हैं और भक्ति करते हैं और दान करते हैं और व्यवहार करते हैं, यह करते-करते निश्चय होगा। भले करे... दु:ख करते-करते सुख होगा ? अरे भाई ! ऐसा तो अनन्त बार किया है न, प्रभु ! तुझे पता नहीं भाई ! आहा...हा... ! स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब छोड़कर, राजपाट छोड़कर साधु हुआ है। दिगम्बर साधु तू अनन्त बार हुआ है, भाई ! तुझे पता नहीं परन्तु उस राग से रहित अन्दर चैतन्य प्रभु भगवान पूर्णानन्द अभेद है, उसकी दृष्टि नहीं की उसका आश्रय नहीं लिया और अकेले व्रत-तप में रुक गया, उसे स्वर्ग मिला और वहाँ से मरकर ढोर होकर नरक में जायेगा। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा स्वरूप, परमेश्वर का कहा होगा ऐसा ? आहा...हा... !

एक चैतन्य को सामान्यरूप से ग्रहण कर;.... संयोग का लक्ष्य तो छोड़ दे। आहा...हा... ! यह पंचाध्यायी में ऐसा लिया था। ऐसा कि यह असद्भूत उपचारनय राग, परन्तु इसका फल क्या मैंने कहा ? कि रागसहित ज्ञान की पर्याय को देख, इस ज्ञान की पर्याय को और असद्भूत अनुपचार का अर्थ कि इस साधन से साध्य राग है—ऐसा सिद्ध होता है। जो राग अन्दर है तो वर्तमान में दिखता है, वह सिद्ध होता है, ऐसा। राग का साधन जो अव्यक्तरूप से है, वह साधन होकर यह राग वर्तमान है, इससे सिद्ध होता है; और इसका फल रागरहित तू है, उसके ज्ञान में जा, यह उसका फल है। यह दवाखाना अलग प्रकार का है। आहा...हा... !

यहाँ तो जन्म-मरण के भटकने के चक्कर, चौरासी के चक्कर कर-करके मर गया है। आहा...हा... ! बड़ा करोड़पति, अरबोंपति माँस आदि यदि खाता हो तो नरक में जायेगा और माँस न खाता हो, शराब न पीता हो, और इस व्यापार-धन्धे में लवलीन है, वह मरकर पशु में जाता है, पशु होता है। गाय, भैंस या (दूसरा) होता है। आहा...हा... !

यहाँ तो जिसे आत्मकल्याण करना हो, उसे क्या करना, कैसे करना ?—उसकी बात है। उसे तो आत्मा निर्विकल्प एकरूप वस्तु है, उसका आश्रय लेना। आहा...हा... ! उसकी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में उसके त्रिकाली का आश्रय लेना। वह पर्याय ऐसा मानती

www.vitragvani.com

है कि मैं तो त्रिकाली परमात्मद्रव्य हूँ, वह मैं हूँ। पर्याय मैं हूँ, यह नहीं। अरे! पर्याय क्या और गुण क्या? द्रव्य-गुण और पर्याय तीन तो जैन परमेश्वर के इकाई की शून्य की बातें हैं। इकाई के शून्य, हों! शून्य यों ही अलग होते हैं, यह तो इकाई का शून्य ऐसा करके, वापस ऐसा लम्बापना करना हो और (उसमें) शून्य हो। यह तो अभी शून्य की बातें हैं। आहा...हा...!

प्रभु! तू अनन्त गुण का पिण्ड, नाथ! आहा...हा...! इसे एकरूप चैतन्यस्वरूप जो है, जिसमें वर्तमान पर्याय का भी भेद नहीं, लक्ष्य नहीं। गुण-गुणी के भेद का भी जहाँ लक्ष्य नहीं—ऐसा एकरूप चैतन्य ध्रुव भगवान आत्मा, उसे ग्रहण कर; उसे समता होगी, समकित होगा, आनन्द होगा; दु:ख का नाश होगा। आहा...हा...!

उसमें मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा। देखा? एक चैतन्य वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... ध्रुव में दृष्टि देने से तुझे मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा, तुझे धर्म प्रगट होगा। इसका नाम धर्म। आहा...हा..! यहाँ तो जरा सा पचास हजार, लाख, दान में दे फिर तख्ती लेकर पत्थर के नाम की तख्ती लगाता है। तस्दी-मेहनत बहुत करता है बेचारा। किसी भाई बन्धु को कहे - उन्हें कहना मैंने दिया है। यह कहे। अरे! मर गया। आहा...हा...! वे रुपये कहाँ तेरे थे कि तूने दिये, यह सब क्या है? यहाँ तो पर्याय, इतना भी तेरा नहीं और गुणभेद भी तेरे स्वरूप की चीज में नहीं। आहा...हा...! वहाँ फिर उसमें पैसा और स्त्री-पुत्र उसमें-तेरी चीज में कहाँ आये?

अभेद में भेद नहीं, एकरूप चैतन्यस्वरूप त्रिकाली ज्ञायक—ऐसा एकरूप अभेद चीज, उसमें गुण-गुणी के भेद का भी जहाँ अभाव है, तब तो पर्याय का अभाव है, राग का अभाव है, बाह्य सामग्रियाँ यह जो सब धूल की, फासफूस / चमक है, वह सब बाहर की चमक श्मशान की हड्डियों की है। आहा...हा...! प्रभु! तू अन्दर चैतन्य का, अमृत का सागर, वहाँ जा, उसे देख और उसकी दृष्टि कर, तुझे धर्म प्रगट होगा और मुक्ति का मार्ग होगा। इस राग से छूटने का पंथ तुझे हाथ आयेगा। अरे... अरे...! ऐसी बात है। इस मार्ग के अतिरिक्त कोई दूसरा हल्का मार्ग होगा या नहीं? ऐसा कठिन मार्ग की अपेक्षा कोई एक हल्का मार्ग होगा या नहीं? मार्ग ही यह है वहाँ, प्रभु! हल्का और भारी किसे कहना? भाई!

www.vitragvani.com

एक चैतन्य को सामान्यरूप से ग्रहण कर; आहा...हा... ! **उसमें मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा।** विकार और दु:ख से छूटने का पंथ तुझे हाथ आयेगा। आहा...हा... ! **भिन्न-भिन्न ग्रहण करने से अशान्ति उत्पन्न होगी।** अर्थात् क्या कहा ? कि एकरूप चैतन्य सामान्य एकरूप है। उसमें से यह ज्ञान, यह दर्शन, यह वीर्य और यह अस्तित्व ऐसे अलग-अलग भेद पाड़कर ग्रहण करने जायेगा (तो) अशान्ति होगी। आहा...हा... ! पर की दया पालने का भाव, वह अशान्ति है, राग है। आहा...हा... ! यह व्रत का भाव, पंच महाव्रत आदि का भाव, वह राग है, अशान्ति है, भाई ! तुझे पता नहीं। आहा...हा... ! प्रभु चैतन्य के स्वरूप में अभेद को छोड़कर भेद का ग्रहण करने जायेगा तो प्रभु ! तुझे अशान्ति होगी। आहा...हा... ! कितनों ने ही तो ऐसा सुना भी नहीं होगा। परन्तु यह क्या है ? पागल जैसी बातें लगे। सत्य बात, बापू ! पागलों को पागल जैसी बात लगती है। आहा...हा... !

प्रभु ! तू तो गुण-गुणी के भेदरहित अभेद चीज है न। आहा...हा... ! उस अभेद पर दृष्टि दे तो तुझे शान्ति होगी। बाकी गुण-गुणी का भेद करने जायेगा तो अशान्ति उत्पन्न होगी। तब तो पर की दया पालने जाने पर भी अशान्ति होगी। आहा...हा... ! तथापि पर की दया पाल सकता नहीं, क्योंकि उसका आयुष्य हो, तब तक जीता है और तू कहता है कि मैं उसे जिला दूँ, तीन काल में जी नहीं सकता। उसका आयुष्य हो तो जीता है और आयुष्य समाप्त हो तो उसे जिलाने का तो लाख उपाय कर (तो भी) वह देह छूट जानेवाली है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : अच्छा डाक्टर होवे तो अन्तर पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : डाक्टर मर जानेवाले हैं। डाक्टर बेचारा, बड़ा डाक्टर नहीं था अपने ? 'भावनगर', 'हेमन्तकुमार' सर्जन डाक्टर। दो-तीन बार यहाँ आया था। अब वह स्वयं किसी का आपरेशन करता था, उसमें एकदम (कहा) मुझे कुछ होता है। बस ! ऐसा कहा, वहाँ कुर्सी पर बैठ गया, वहीं समाप्त हो गया, भावनगर, बड़ा हॉस्पीटल है। उसे क्या कहते हैं ? समझ में आया ? उसका सर, बड़ा डाक्टर हेमन्तकुमार। एक क्षण में बापू ! यह तो देह है, यह तो मिट्टी है, उसकी अवधि / स्थिति पूरी हुई; इसलिए छूटना ही है, छूटना ही है। आहा...हा... ! लाख तेरे डाक्टर आवे नहीं ! ये डाक्टर क्या करे ? प्राण डालता होगा ?

www.vitragvani.com

धर्मचन्दभाई ! इंजेक्शन दो, नब्ज हाथ नहीं आती। पल्स हाथ नहीं आती... पल्स हाथ आये बिना उसे कैसे दे ? यहाँ इंजेक्शन दिया था न ? धर्मचन्दभाई ने दिया था न ? 'शिवलाल पटेल' थे न ? खा-पीकर आये, बैठे। यह पटेल नहीं ? यह 'विजय पटेल' और इसके बड़े कुटुम्बी थे। कौन सा गाँव कहा वह ? 'करमसद' है न ? देखा है न ? करमसद, बीड़ी का बड़ा धन्धा है। करमसद है। 'आणंद' से जाया जाता है। आणंद स्टेशन है न ? वहाँ से करमसद जाया जाता है। वहाँ हमारा व्यापार था न पालेज, तो मैं भी वहाँ गया था। परन्तु इसे सत्तर वर्ष हो गये। वहाँ बीड़ी का बड़ा धन्धा है परन्तु उसमें वरियाली डालकर, वरियाली डालकर बीड़ियों में जलावे। तो बीड़ी लेने गये एक बार। आणंद से वहाँ करमसद। पटेल के यहाँ उतरे। पटेल बीड़ी का बड़ा व्यापारी था। वहाँ देखा था, सब देखा था परन्तु यह १८-१९ वर्ष की, २० वर्ष की उम्र की बात है। यहाँ तो अभी तो ८९ हुए। आहा...हा... ! धूल में कुछ नहीं मिलता। सब व्यर्थ और अभिमान का पार नहीं कि हम ऐसे जाकर आये और हम ऐसे ले आये और... कौन ले-दे ? बापू !

प्रभु ! तू तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य है न ! उस ज्ञेय को तू आगे-पीछे करने जाये, यह तेरा मिथ्याभ्रम है। आहा...हा... ! यहाँ तो गुण-गुणी का भेद पाड़ने जाये तो मिथ्याभ्रम है, विकल्प है। आहा...हा... ! **भिन्न-भिन्न ग्रहण करने से अशान्ति उत्पन्न होगी।**

चाहे जैसे संयोग में आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है ॥११६ ॥

११६ है न ? **चाहे जैसे संयोग में आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है।** इसमें क्या कहते हैं ? कि रोग से शरीर घिर गया हो, निर्धन हो, लड़का-लड़की कोई न हो, जंगल में अकेला पड़ा हो। आहा...हा... ! यह नहीं हुआ एक बार ? क्या कहलाता है ? तुम चले आये थे। कौन सा देश ?

मुमुक्षु : ब्रह्मा, ब्रह्मदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ब्रह्मा में से। ये ! ये सब थे न ? तुम थे या नहीं ? साथ में थे।

www.vitragvani.com

लोग रास्ते में चलकर जाये। नहीं गाँव, नहीं ठाम (स्थान), नहीं खाने का, नहीं पीने का साथ में थोड़ा लिया हो वह, उसमें एक-दो लड़के को, क्या कहलाता है वह ?'कोलेरा' हुआ। अब उसे मकान नहीं, वाहन नहीं, कुछ नहीं। सब चलकर जाते-जाते आठ-आठ गाँव, छह-छह गाँव चलकर जाये। आहा...हा...! उसमें इन दो लड़कों को हुआ 'कोलेरा'। ये माँ-बाप छोड़कर गये। अरे भाई! हम यहाँ अकेले रहेंगे तो अनाज नहीं मिलेगा, लोग नहीं मिलेंगे, गाँव नहीं मिलेगा। आहा...हा...! एक पानी का कलश रखकर दो भाई जवान व्यक्ति... पाँच, पचास, सौ मनुष्य सब एकसाथ जाते थे। अब उसमें जंगल में, जंगल के अतिरिक्त कहीं गाँव नहीं। जंगल ही जंगल में खाने का कुछ साथ में हो तो... आहा...हा...! ये भाई अकेले तड़पकर मर जायेगा। दूसरा कौन वहाँ? पलंग नहीं मिले, सोने को नहीं मिले, ढँकने को नहीं मिले। आहा...हा...! बापू! ऐसी स्थिति अनन्त बार हुई है, तथापि ऐसे संयोग में भी... आहा...हा...! यदि आत्मा पर दृष्टि करे तो तुझे वहाँ आत्मा मिल सकेगा। ये संयोग बाधक नहीं है। आहा...हा...! लोग ऐसा कहते हैं न? कुछ खाने-पीने का हो, साधन हो, शरीर निरोग हो, लड़के-बड़के दुकान में जाना सीख गये हों तो फिर हमें निवृत्ति से धर्म हो। आहा...हा...! धूल में भी नहीं सुन न!

यहाँ तो कहते हैं कि चाहे जैसे संयोग हों। आहा...हा...! सातवें नरक का नारकी है, वहाँ अनन्त बार यह जीव जा आया है। अभी सब सिद्ध करने जायें तो लॉजिक से सब सिद्ध हो सकता है परन्तु सब सिद्ध करने जायें तो लम्बा चलेगा। आहा...हा...! नीचे सात नरक हैं, यहाँ के माँस और शराब आदि खाने (पीने) वाले ये राजा और महाराजा सब वहाँ सीधे नरक में जाते हैं। आहा..हा...! जिसकी तैंतीस सागर की उत्कृष्ट तो स्थिति है। आहा...हा...! एक पानी की बूँद नहीं मिलती, वहाँ तैंतीस सागर अर्थात् एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष। भगवान! तू वहाँ अनन्त बार गया है प्रभु! आहा...हा...! अनादि काल का भाई! तूने तेरी जाति को जाना नहीं। जाने बिना कुजाति को अपनी जाति मानकर यह परिभ्रमण कर रहा है। आहा...हा...! उस सातवें नरक के नारकी को, जाये तब मिथ्यादृष्टि जाता है परन्तु वहाँ होवे तब किसी को समकित होता है, किसी को। ऐसे संयोग में जिसे पानी की बूँद नहीं मिलती, जिसे

www.vitragvani.com

आहार का कण नहीं मिलता, सोने का स्थान नहीं मिलता... आहा...हा... ! और जन्म / उत्पन्न होने पर शरीर के सोलह रोग। आहा...हा... ! भले ऐसा संयोग हो, उस संयोग में कहाँ आत्मा स्पर्श करता है ? कहते हैं। आहा...हा... !

चाहे जैसे संयोग में.... चाहे जैसे अर्थात् ऐसे—प्रतिकूल संयोग हो, जन्म से क्षय हो... आहा...हा... ! कैंसर हो। यह कैंसर होता है न ? गले का कैंसर, छाती का कैंसर, कान का कैंसर, आँख का कैंसर। अभी एक कहीं पढ़ा था, एक महिला को आँख का दर्द उठा। आँख में दर्द उठा, उसमें मर गयी। इतना दर्द, ऐसा आँख का दर्द। कहीं अभी समाचार-पत्र में आया था। था तो धर्म के स्थान में / समाचार-पत्र में। एक आँख में दर्द उठा था ऐसा दर्द उठा, मर गयी। आहा...हा... ! बापू ! ऐसा तो अनन्त बार हुआ है, प्रभु ! तू तो अनादि का है न ! कहाँ नया है ? आहा...हा... ! अभी एक महिला का तो ऐसा सुना था। यह दाढ़ निकाली वहाँ उसका क्या कहलाता है वह ? सेप्टिक, सेप्टिक हो गया, देह छूट गयी। महिला मर गयी। आहा...हा... ! बापू ! यह तो संयोगी चीज है। इसकी रहने की अवधि हो, उतनी अवधि तक रहेगी और चले जायेगी, वह कहीं तेरी चीज नहीं है। इसलिए ऐसे प्रतिकूल संयोगों में भी... आहा...हा... ! **आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है।** आहा...हा... !

मुमुक्षु : संयोग तो बाधक न हो, परन्तु संयोगीभाव तो बाधक हों न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ने भी भाव किया, वह संयोगीभाव है। वह इसका स्वभाव कहाँ है ? उस भाव में... यह तो कहते हैं। संयोग हो तो संयोग का भाव करे, तब तो समाप्त परन्तु संयोग में संयोग का भाव न करके, स्वभाव का भाव करे। आहा..हा... ! यह तो लोग ऐसा कहते हैं कि भाई ! कहीं पेट में भूखे हों और धर्म करो, धर्म करो... पेट में चूहे बोलते हों और धर्म करो। एक व्यक्ति पूछता था, नहीं ? बहुत वर्ष हुए तब (संवत्) १९८९ के साल। भाई ! वढ़वाणवाले नहीं ? क्या नाम ? कीरचन्दभाई ! लड़कों को बड़े सिखानेवाले थे। शिक्षा के बड़े व्यक्ति (थे) गाँधी की लाईन का सब था। उसमें मुझे मिला। १९८९ की बात है। बाहर जंगल में गये थे और साथ में आये। महाराज ! तुम कहते हो कि आत्मा का धर्म करो परन्तु पेट में चूहे बोलते हों, पेट में रोटियाँ न हों और तुम कहते हो धर्म करो,

www.vitragvani.com

तो कहाँ से करना ? कहा, सुन भाई ! पेट में रोटियाँ पड़ने के पश्चात् तू कहेगा पचे नहीं तबतक किस प्रकार धर्म करूँ ? फिर दस्त साफ न आवे, तब तक मैं किस प्रकार करूँ ? और वापस फिर से... आहा...हा... ! भाई ! तू उलझन में पड़ा है बापू ! आहा...हा... !

यहाँ तो चाहे जैसे संयोग कहा है न ? क्षुधा का पार न हो, पानी पचता न हो, पानी पचता न हो, पानी पड़े तो उल्टी हो जाती हो। आहा...हा... ! है न ऐसा रोग ? मुम्बई में नहीं, कहीं अन्यत्र होगा ? एक जगह गये थे। उसे रोग इतना था कि मुँह में पानी पड़े तो निकल जाये। एक जगह गये थे कहीं, बहुत देशों में (प्रदेशों में) घूमे हैं। आहा...हा... ! पानी पचे नहीं, पानी पड़े वहाँ उल्टी हो जाये। हो, ऐसे संयोग (होवे) तो वह तो संयोगी चीज है, वह तेरे स्वरूप में कहाँ आ गयी है ? स्वरूप से तो वह चीज भिन्न रही हुई है। आहा...हा... !

ऐसे संयोगों में भी आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। ऐसे समय में भी अन्तर्मुखदृष्टि करे और संयोग का लक्ष्य छोड़ दे (तो) शान्ति और समकित होता है। आहा...हा... ! सातवें नरक के नारकी को होता है न; उसकी बातें बापू ! कठिन। क्या कहलाता है ? रत्नकरण्डश्रावकाचार में प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि उस नरक के एक क्षण का दुःख, भाई ! तूने सुना नहीं है। तूने वेदन किया है परन्तु खबर नहीं है। एक क्षण का दुःख करोड़ों जीभों और करोड़ों भव में भी नहीं कहा जा सकता। ऐसा दुःख तूने वेदन किया है, बापू ! एक क्षण का, ऐसा-ऐसा तो लाखों, करोड़ों वर्ष और अरबों वर्ष और सागरोपम। आहा...हा... ! वे दिन कैसे गये होंगे ? भाई ! वहाँ नरक में एक क्षण की पीड़ा इतनी कि करोड़ों जीभों और करोड़ों भव में नहीं कही जा सके। इतना दुःख है। यहाँ तो जरा सा आँख में कुछ हुआ और अमुक हुआ (होवे तो) हाय... हाय... हाय... ! करता है।

भाई ! चाहे जैसे संयोग हो तो भी तेरा तत्त्व अन्दर भिन्न है। उस पर तू दृष्टि कर सकता है और उससे तुझे शान्ति होती है। ये संयोग तुझे रोकते नहीं हैं। समझ में आया ? आहा...हा... ! अब अकेले रहे, कुँवारे रहे, विवाह नहीं किया, बालक नहीं, कोई दवा-दारू करनेवाला नहीं। स्त्री होवे तो नंगे-भूखे सम्हाले, वस्त्र ढँके, अरे... सुन न ! तेरी मूर्खायी का प्रदर्शन करता है। आहा...हा... ! ये चाहे जैसे संयोग हों प्रभु ! परन्तु तू तो अन्दर आनन्द का नाथ भरा है न अन्दर ! आहा...हा.. ! उस पर नजर कर, अन्तर्मुख देख, तुझे

www.vitragvani.com

शान्ति होगी। संयोग तुझे बाधक नहीं। आहा...हा... ! यह बातें कैसे जँचे ? बाहर का चतुर का पुत्र हो गया हो और अब उसे ऐसी बात (कैसे जँचे)। आहा...हा... ! भाई ! सच्ची समझ कोई अलग प्रकार है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिसे शान्ति कहते हैं, वह कोई अलौकिक चीज है। उस शान्ति से तो तू भरा हुआ है; इसलिए अशान्ति के संयोग के लाख, करोड़ संयोग हों, वहाँ से लक्ष्य को बदल और अन्दर में जा तो तुझे शान्ति होगी। ऐसे संयोगों में शान्ति न मिले-ऐसा है नहीं। आहा...हा... ! तेरा हाजरा हजूर (विद्यमान / मौजूद) तत्त्व पड़ा है, वह हाजिर है। संयोगों में भी नजर करे तो वह तत्त्व अन्दर हाजिर है। आहा...हा... ! वह दूर नहीं हो गया है। आहा...हा... ! यह क्या कहते हैं ये ?

चाहे जैसे संयोग में आत्मा अपनी शान्ति.... अपनी शान्ति अर्थात् रागरहित दशा, स्वभाव में भरी हुई है, वह प्रगट कर सकता है। संयोग, संयोग में रहा; संयोग तुझे बाधक नहीं, तू संयोग को स्पर्शता भी नहीं। माना है कि अरे..रे ! मुझे यह हुआ और मुझे यह हुआ। शरीर में जहाँ आठ डिग्री बुखार आवे वहाँ... आहा..हा... (करता है)। इस संयोग में-शरीर में आठ डिग्री का बुखार होने पर भी, यदि अन्दर में जाये तो तुझे शान्ति मिलेगी। ये संयोग रोकेंगे नहीं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ शुक्ल-१४, बुधवार, दिनाङ्क १९-०७-१९७८
वचनामृत-११७-११९ प्रवचन-४२

निरालम्ब चलना, वह वस्तु का स्वभाव है। तू किसी के आश्रय बिना चैतन्य में चला जा। आत्मा सदा अकेला ही है, आप स्वयंभू है। मुनियों के मन की गति निरालम्ब है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की निरालम्बी चाल प्रगट हुई, उसे कोई रोकनेवाला नहीं है॥११७॥

११६ बोल हुए हैं। नहीं? अब ११७। **निरालम्ब चलना, वह वस्तु का स्वभाव है।** आहा...हा...! कहते हैं कि जो यह वस्तु है प्रभु, उसे कोई अवलम्बन हो तो वह प्राप्त हो—ऐसा है नहीं। यह वस्तु निरालम्बन-किसी के अवलम्बन के कारण की इसे जरूरत नहीं कि भाई! राग की मन्दता ऐसी हो तो उसका-आत्मा का अवलम्बन हो सके-ऐसा है नहीं। आहा...हा...! स्वयं आत्मा का-इसका स्वभाव ही ऐसा है कि राग के कारण या यहाँ धर्म की पर्याय-कार्य हो, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं। वैसे ही इसमें भाव नाम का एक गुण है कि जिसे पकड़ने पर इसकी पर्याय, निर्मल गुण के कारण होती है; उसे पर कारण की कोई आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! तथा वह वस्तु ऐसी है, उसमें-आत्मा में एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण है। उस गुण के कारण इसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि परिणति पर्याय में उत्पन्न (होने में) कोई परकारण हो तो उत्पन्न हो—ऐसी चीज़ नहीं है। आहा...हा...!

निरालम्ब चलना... अर्थात् पर के अवलम्बन बिना सीधा चैतन्यस्वरूप का सीधा अवलम्बन लेने पर, पर के अवलम्बन बिना चलना, वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा...हा...! कठिन काम जगत् को। वस्तु का-आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है। उसका

www.vitragvani.com

स्वरूप और स्वभाव ऐसा है कि कोई परनिमित्त-देव-गुरु मिले तो प्राप्त हो—ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : देशनालब्धि प्रगट तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नहीं होता। वह तो होती है परन्तु उसके अवलम्बन से आत्मा का अवलम्बन नहीं हो सकता। आहा...हा... ! देशनालब्धि सुने, उसका ज्ञान भी पर्याय में स्वयं के कारण होता है, तथापि उस ज्ञान के अवलम्बन से अन्तर की दृष्टि हो—ऐसा उस वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहा...हा... ! कठिन बातें बहुत, बापू ! इसलिए धर्म तो अभी बाहर में मान और सम्मान में मर गया। आहा...हा... ! अन्तर की चीज़ को चलने, अन्तर में चलने के लिये अर्थात् अन्तर में अवलम्बन लेकर परिणमन करने के लिये... आहा...हा... ! कोई भी देव-गुरु और शास्त्र की श्रद्धा करे तो आत्मा का अवलम्बन हो—ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। ऐसा है।

मुमुक्षु : व्यवहार होवे तो निश्चय होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार होवे तो यह तो ये चलता है, व्यवहार राग की मन्दता की क्रिया होवे तो आत्मा का अवलम्बन प्रगट होता है—ऐसा आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? कठिन बात, बापू ! वस्तु ही ऐसी है कि उसके कार्य के लिये किसी बाह्य कारण के अवलम्बन की उसे आवश्यकता नहीं है—ऐसी वह निरालम्बन वस्तु है। आहा...हा... !

चैतन्य द्रव्य पड़ा है, प्रभु ! अनन्त गुण का रूप है, उसमें गुण का ही ऐसा कार्य है। भाव नाम का गुण कहो, अकार्यकारण नाम का गुण कहो, उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण कहो, यह तो उसके गुण का ऐसा स्वभाव है कि वह पर के अवलम्बन बिना उसका-सम्यग्दर्शन का उत्पाद होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा स्वरूप है। निरालम्बन चलना अर्थात् अन्दर परिणमन करना। आहा...हा... ! वही वस्तु का स्वभाव है। छहों द्रव्यों का ऐसा है परन्तु यह तो अभी आत्मा की (बात है)। आहा...हा... !

तू किसी के आश्रय बिना... आहा...हा... ! भाई ! ऐसी कुछ क्रिया की, बाहर का त्याग किया, इतनी जरा राग की मन्दता की सहायता मिली तो आत्मा को अन्दर सम्यग्दर्शन

www.vitragvani.com

हो, ऐसी यह वस्तु ही नहीं है। आहा...हा... ! एकान्त वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! इसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र में निरालम्बनरूप से परिणमन करने में स्व का अवलम्बन हो परन्तु पर के अवलम्बन बिना परिणमित होना, यह इसका स्वरूप है। आहा...हा... ! कठिन काम बहुत, बापू! अनन्त काल बीता परन्तु कहीं... कहीं... कहीं... कहीं... अटक-अटककर रूक गया। आहा...हा... !

मुमुक्षु : तत्त्वविचारवाला ही सम्यगदर्शन का अधिकारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अधिकारी तो योग्यता से बात की। उस प्रकार का तत्त्व का ज्ञान, ऐसा कहते हैं, वास्तविक तत्त्व का ज्ञान, तो यह आवलम्बी तत्त्व है, उसका ज्ञान। आत्मा, तत्त्वज्ञान कहा न? तो तत्त्व जो आत्मा है, उसका ज्ञान। अर्थात् आत्मा कैसा है? कि पर के अवलम्बन बिना काम कर सके, ऐसा यह आत्मा है। इसका नाम तत्त्वज्ञान है। आहा...हा... ! कठिन काम। दुनिया अनन्त काल से (भटकती है)। भगवान पूर्णानन्द पर के अवलम्बनरहित और स्व का अवलम्बन ले, उसमें पर की बिल्कुल जरूरत नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात जँचना कठिन। आहा...हा... !

तू किसी के आश्रय बिना.... निरालम्बन की व्याख्या की। कोई राग की मन्दता और व्यवहार की मन्दता और देव-गुरु-शास्त्र की महिमा आयी, ऐसा राग और ऐसे राग के **आश्रय बिना चैतन्य में चला जा**। आहा...हा... ! भगवान आनन्द का धाम—सुखधाम प्रभु, इस पर के आश्रय बिना अन्दर में चला जा। आहा...हा... ! चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज्य होता है, छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं, छियानवें करोड़ सैनिक होते हैं, छियानवें करोड़ गाँव होते हैं, परन्तु कहते हैं कि वे हैं, इसलिए उनके अवलम्बन से अन्दर में जा सकते हैं-ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! उनका आश्रय छोड़कर; उनका तो आश्रय छोड़कर, परन्तु सच्चे देव-गुरु और धर्म, शास्त्र का भी आश्रय छोड़कर... क्योंकि इसका स्वरूप ही आश्रय बिना का होता है, पर के अवलम्बन के बिना स्वरूप प्रगटे—ऐसा ही इसका स्वरूप है। आहा...हा... ! समझ में आया?

तू किसी के आश्रय बिना...आहा...हा... ! अरे! भगवान की वाणी मिल गयी तो हमें अन्दर में जाना हो न! वीतराग की वाणी सुने बिना किस प्रकार जाया जाता? ऐसा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

स्वरूप है ही नहीं। आहा...हा...! **किसी के आश्रय बिना चैतन्य में चला जा।** पर का आलम्बन अर्थात् लक्ष्य छोड़कर। आहा...हा...! पर का अवलम्बन—बहुत राग मन्द किया, बहुत उपवास किये, आहार-पानी में कम आहार (लिया)... अभी ज्ञानसागर कहता था, कम आहार करते हैं, यह कहते हैं। वह क्षुल्लक हुआ है। श्रद्धा एकदम विपरीत। यहाँ दो-तीन बार आ गया था। लड़का... अभी क्षुल्लक हो गया है। वहाँ 'कुरावड़' में आया था। थोड़ा आहार करते हैं, मन्द करते हैं, इसमें से समकित प्राप्त होगा। हम अवश्य इस प्रकार से समकित प्राप्त करेंगे—ऐसा कहता था बेचारा। सुनने का... जरा-सा ऐसा बाहर त्याग हुआ और उसका लोगों को अभिमान चढ़ जाता है कि हम दूसरों की अपेक्षा कुछ हैं।

मुमुक्षु : कुछ हैं यह बात तो सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री - दूसरों की अपेक्षा (कुछ) है, यह अभिमान है, यह सच्चा है। आहा...हा...! वह यहाँ आया, तब ठीक था, छोटा लड़का था, भाषण किया था। अंग्रेजी पढ़ा हुआ था, अंग्रेजी में ही बात करता है। लंगोटी छोड़ी तो अभी प्याला फट गया है (अर्थात् अभिमान चढ़ गया है)। हमने इतना त्याग किया, इतना-इतना सहन करते हैं और तुम कहते हो कि इससे धर्म नहीं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि तू किसी के अवलम्बन बिना; आश्रय कहो या अवलम्बन कहो। **चैतन्य में चला जा।** भगवान निधान-आनन्द का निधान पड़ा है न प्रभु! पर के अवलम्बन और आश्रय बिना भगवान चैतन्यबिम्ब पड़ा है, वहाँ चला जा, जा न! आहा...हा...! अभी तो यह बात सुनना मुश्किल हो गया है। आहा...हा...!

आत्मा सदा अकेला ही है... तीसरा बोल लिया। क्यों निरालम्बन है? और अकेला चला जा-क्यों? कि **आत्मा सदा अकेला ही है...** राग के सम्बन्धरहित, पूर्णानन्द का नाथ स्वयं अकेला ही स्वयं है। उसे दोकला-दूसरे के-अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। आहा...हा...! अकेला ही है प्रभु! अकेले को दूसरे-बेकले की-दूसरे का आश्रय लेने जाए तो बिगड़ेगा। 'एकड़े एक और बिगड़े दो।' दूसरे का आश्रय लेने जाएगा तो तेरा बिगाड़ होगा। आहा...हा...! तीन लोक का नाथ ऐसा कहे, मेरी श्रद्धा तू

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करेगा तो भी तेरी चैतन्य की गति बिगड़ेगी। आहा...हा...! **'परदव्वादो दुग्गई'**— मोक्षपाहुड़ में १६ वीं गाथा है। मैं परद्रव्य हूँ, प्रभु ऐसा कहते हैं। मेरे प्रति तेरा लक्ष्य जाएगा तो तेरी दुर्गति होगी। दुर्गति अर्थात्? चैतन्य की जो परिणति है, वह मेरे आश्रय से नहीं होगी; राग होगा। राग, वह तो चैतन्य की गति नहीं है।

आत्मा सदा अकेला ही है... तीनों काल प्रभु अकेला है। जो दोकला है ही नहीं। राग का उसे सम्बन्ध है ही नहीं। आहा...हा...! **सर्वे सम्बन्धः निषेधः** आता है न? समयसार कलश २००। **सर्वे सम्बन्धः निषेधः** सम्बन्धरहित स्वयं असंग प्रभु है। उसे पर के संग के अवलम्बन से असंग में जाया जा सके—ऐसी वह चीज़ ही नहीं। कठिन पड़े, क्या हो? अभी तो प्रवाह ऐसा चला है। आहा...हा...! बाहर का यह छोड़ो और यह छोड़ों और यह त्याग करो, इसका करो, क्योंकि आत्मा निवृत्तस्वरूप है; इसलिए जितनी बाहर की निवृत्ति लोगे, उतना वहाँ अन्दर प्राप्त होगा। आहा...हा...!

वेदान्त में ऐसा कहते हैं—'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं।' इसका अर्थ ऐसा नहीं कि (कुछ नहीं है)। मैं जागकर देखूँ तो चैतन्य निरालम्बी तत्त्व है, उसमें जगत है नहीं। चैतन्य को देखने से जिसमें पर्याय भी दिखती नहीं, अभेद को देखने से पर्याय का भेद भी जहाँ आता नहीं, तो जगत तो कहाँ है? किन्तु जगत इसमें (आत्मा में) नहीं, परन्तु जगत, जगत में है, इस बात को वेदान्त भूल जाता है। समझ में आया? जगत, परमेश्वर, देव-गुरु-शास्त्र, निगोद के जीव, छह द्रव्य दूसरे हैं, परन्तु स्वयं पर के अवलम्बन से स्वयं अपने स्वरूप में जा सके—ऐसा इसका स्वरूप है ही नहीं। आहा...हा...!

अभी ये स्थानकवासी ऐसा कहते हैं कि तुम मूर्ति अवलम्बन लेते हो, परन्तु इस अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। यह किसकी अपेक्षा से बात है? यह तो निश्चय का भान (हुआ), स्वावलम्बी हुआ, फिर उसमें स्थिर नहीं रह सकता, तब शुभभाव आता है, तब प्रतिमा और भगवान के दर्शन का निमित्त कहने में आता है। उस अवलम्बन को उत्थापित करे तो भी मिथ्यादृष्टि है और उसे अवलम्बन से आत्मा में होता है—ऐसा माने तो वह भी अज्ञानी है। अरे...! ऐसी बातें हैं।

आत्मा सदा अकेला ही है। तीनों काल स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में अकेला

www.vitragvani.com

ही है। आहाहा! **स्वयं स्वयंभू है**। स्वयंभू है। स्व से-अपने से स्वयं है। उसकी पर्याय भी स्वयं स्वयं से है, उसका द्रव्य भी स्वयं स्वयं से है, उसका गुण भी स्वयं स्वयं से है और उसकी धर्म की पर्याय भी स्वयं स्वयं से है। आहा...हा...! थोड़े शब्दों में बहुत रखा है। **स्वयं स्वयंभू है**। स्वयं है। 'भू' अर्थात् है। स्वयं है; स्वयं, स्वयं से है। आहा...हा...! उसे धर्म की पर्याय प्रगट करने में स्वयं, स्वयं से है। पर के अवलम्बन और आश्रय से धर्म की पर्याय प्रगट हो—ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। आहा...हा...! लोगों को कठिन लगता है। यह हमने स्त्री छोड़ी, लड़के छोड़े, कुटुम्ब छोड़ा, धन्धा छोड़ा, कोट-पेन्ट पहिनते थे, वह हमने वस्त्र पूरा बदला, फिर भी इसमें कोई लाभ नहीं होगा? परन्तु तूने जड़ को कब ग्रहण किया था, वह तूने छोड़ा? आहा...हा...!

त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति तो इसका गुण है। रजकण का त्याग और रजकण का ग्रहण से तो रहित तेरा स्वभाव है। आहा...हा...! उसे मैं इसे ग्रहूँ और इस वस्तु को मैं छोड़ूँ—यह वस्तु के स्वरूप में नहीं और तूने माना (तो यह) भ्रम है। आहा...हा...! समझ में आया?

स्वयं, स्वयं, स्वयंभू—स्वयं, स्वयं स्वयं से है। आहा...हा...! द्रव्य स्वयं, स्वयं स्वयं से है तो द्रव्य का अवलम्बन लेने से जो दशा हो, वह भी स्वयं, स्वयं से हुई है। पर के अवलम्बन और पर के आश्रय का कोई सहारा मिला; देशना मिली, उसका कोई सहारा मिला तो स्वयं स्वयंभू हैं—ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : उसके बिना होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना ही होता है, इसके (आत्मा के) बिना नहीं होता। आत्मा स्वयं भगवान है, इसके बिना पर्याय नहीं होती। ऐसी बात है। आहा...हा...! यह तो कोई ऐसा कहते हैं कि ये तो ऊँचे नम्बर की बातें हैं। अरे! अभी यह तो एकड़े की बिन्दी की बात है। आहा...हा...! अभी तो सम्यग्दर्शन पाने के लिये पर के किसी अवलम्बन की जरूरत नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुनियों के मन की गति निरालम्बन है। आहा...हा...! मुनियों की दशा। मन की गति अर्थात् उनका परिणमन निरालम्बन है। यह राग-व्यवहार आया; इसलिए यहाँ

www.vitragvani.com

परिणति शुद्ध हुई – ऐसा नहीं है। उन्हें व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार है तो यह मुनिपने की शुद्धपरिणति हुई है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **मुनियों के मन की गति...** यह तो इन्होंने अन्तर आत्मा पकड़ा है। अनाकुल आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, सत् है, स्वयं से है। उसकी धर्मपर्याय करने के लिये भी उसका मन और ज्ञान की परिणति निरालम्बन है; पर के अवलम्बनवाली है नहीं। आहा...हा...!

वहाँ ऐसा आता है कि जिसे निश्चय है, उसे उसके साथ में व्यवहार है। उस व्यवहार से जो भ्रष्ट है, वह भी निश्चय से भ्रष्ट है। ऐसा नियमसार में आता है न? परन्तु वह दूसरी बात है। आहा...हा...! उसे भूमिका प्रमाण में राग की मन्दता, अनुभवसहित-स्व के अवलम्बनसहित, पर के अवलम्बनरहित—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे राग आता है। उस भूमिका के प्रमाण में वह राग आता है। उससे यदि भ्रष्ट होगा और तीव्र राग होगा तो व्यवहार से भ्रष्ट है; और व्यवहार से भ्रष्ट है, वह निश्चय से भ्रष्ट है; परन्तु इससे व्यवहार से भ्रष्ट (होवे इसलिए) उस राग का बराबर काम आता है, इसलिए उसका निश्चय टिकता है—ऐसा नहीं है। क्या कहा यह?

एक ओर कहा है—नियमसार में आता है, भाई! आता है न? दोनों से भ्रष्ट है। जिसका व्यवहार भ्रष्ट है, उसका तो निश्चय भ्रष्ट है ही। आहा...हा...! परन्तु इससे उसका ऐसा अर्थ नहीं कि व्यवहार है, इसलिए उसे निश्चय है। यह तो उसकी भूमिका के प्रमाण में निरावलम्बी तत्त्व का आलम्बन लिया है; उसमें से धर्म / आनन्द की दशा प्रगट हुई है, परन्तु अपूर्ण है; इसलिए उस भूमिका के योग्य राग की मन्दता का व्यवहार होता है और उस प्रकार का व्यवहार न होवे तथा उससे भ्रष्ट हो जाए, तब तो वह निश्चय से भी भ्रष्ट हो जाता है, परन्तु इससे व्यवहार गया, इसलिए भ्रष्ट होता है और व्यवहार था, इसलिए रहता है—ऐसा नहीं है। आहा...हा...! उसकी भूमिकाप्रमाण राग का व्यवहार हो ही नहीं तो, उसका आलम्बन जो स्व का है, वह आलम्बन उसे नहीं है। आहा...हा...! जिसे आलम्बन आया है, उसे उस भूमिकाप्रमाण में राग की मन्दता का भाव होता है, बस! परन्तु उसके अवलम्बन से यह निश्चय रहा है—ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

तब वहाँ ऐसा कहा है न कि निश्चयवाले को भी जो व्यवहार ऐसा होता है; वह

www.vitragvani.com

व्यवहार नहीं होवे तो वह भ्रष्ट है। व्यवहार आवश्यक है न? आहा...हा...! वह तो उसके प्रमाण में जो राग की मन्दता है, उतनी स्थिति उसे न हो और उग्र (तीव्र) रागादि हों, तब तो वह मूल वस्तु की स्थिति से भ्रष्ट हो गया; किन्तु वह राग की मन्दता थी, इसलिए यहाँ निश्चय आलम्बन रहा-ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अरे...अरे...! ऐसी अटपटी बातें हैं। वहाँ दो आवश्यक कहे हैं न? व्यवहार से भ्रष्ट है। निश्चय से भ्रष्ट है, वह तो भ्रष्ट है ही, परन्तु व्यवहार से भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आता है न! आवश्यक में आता है, होता है, परन्तु इससे उसका अर्थ यह कि उसकी भूमिकाप्रमाण स्व के अवलम्बन से दशा प्रगटी है तो उसमें निमित्तरूप से राग की मन्दता उसके योग्य वहाँ होती है। उसके योग्य वैसा न हो, और उससे भ्रष्ट हो जाए तो निश्चय से भ्रष्ट है और व्यवहार से भ्रष्ट है। दो प्रकार के आवश्यक का वर्णन चला है न? आहा...हा...! परन्तु इससे वह व्यवहार था, इसलिए यहाँ निश्चय रहा है—ऐसा नहीं है और व्यवहार-भ्रष्ट हुआ, इसलिए निश्चय से भ्रष्ट हुआ—वह तो उसकी भूमिकाप्रमाण में निरालम्बन में वीतरागीदशा चाहिए, उसके प्रमाण में उसे राग की मन्दता होवे, वह नहीं तो स्व का अवलम्बन छूट गया। समझ में आया? आहा...हा...! भारी अटपटी बात! स्याद्वादमार्ग है। वहाँ वे (व्यवहार के पक्षवाले) जोर देते हैं, देखो! यहाँ कहा है।

यहाँ तो कहते हैं, मुनियों के ज्ञान की परिणति निरालम्बन है। मन की परिणति का यह अर्थ है। ज्ञान की दशा निरालम्बन है। आहा...हा...! जिन्हें ये अट्ठाईस मूलगुण हैं, इसलिए यह ज्ञान की परिणति छठवें (गुणस्थान) के योग्य है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! कितना समझना इसमें? एकदम अनजानी बातें, भाई! तूने इस मार्ग को देखा नहीं। आहा...हा...! **मुनियों के मन की गति निरालम्बन है।** आहा...हा...! उनके ज्ञान की, आनन्द की दशा को कोई व्यवहार और निमित्त के आलम्बन की अपेक्षा है ही नहीं। आहा...हा...!

यह तो नियमसार में दूसरी गाथा में कहा न? 'परम निरपेक्ष है।' सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

www.vitragvani.com

चारित्र जो आत्मा के स्वभाव का परिणमन—निश्चय सम्यग्दर्शन, जो स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ; निश्चय सम्यग्ज्ञान, जो स्वद्रव्य का हुआ; चारित्र, स्वरूप में रमणता—यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परमनिरपेक्ष है। जिसे निमित्त और भेद की अपेक्षा भी नहीं। यह नियमसार की दूसरी गाथा। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निरालम्बन चाल प्रगट हुई.... देखा? यही आया लो! जिसे अन्तर में, वस्तु जो त्रिकाली सत् है, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यक्चारित्र हुआ... है? आहा...हा...! **निरालम्बन चाल प्रगट हुई...** उन्हें तो निरालम्बन चाल प्रगट हुई। व्यवहार की अपेक्षा रखकर निरालम्बन अवस्था प्रगट हुई है—ऐसा नहीं। समझ में आया इसमें? सन्त तो उसे कहते हैं कि जिन्हें अखण्डानन्द प्रभु के अनुभव का स्व के आश्रय से दर्शन, स्व के आश्रय से ज्ञान—स्व का ज्ञान (हुआ है); शास्त्रज्ञान या दूसरे का नहीं; और स्व स्वरूप में रमणता—ऐसी जो तीन दशा... आहा...हा...! **यह निरालम्बन चाल प्रगट हुई, उसे कोई रोकनेवाला नहीं**। आहा...हा...! कर्म का ऐसा उदय आ जाए और इससे भ्रष्ट हो जाए — ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

जो त्रिकाली भगवान आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे अब कोई रोक सके (-ऐसा नहीं है)। द्रव्य का अभाव होवे तो इस पर्याय का अभाव हो। अत: द्रव्य का अभाव तो त्रिकाल होता नहीं तो उसके आश्रय से हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, हों! आहा...हा...! **उसे कोई रोकनेवाला नहीं है**। आहा...हा...!

कभी शास्त्र में ऐसा आता है (कि) नय से भ्रष्ट होता है। परन्तु यह तो स्वयं स्वयं का आलम्बन छोड़ता है, इसलिए भ्रष्ट हुआ है। कोई परचीज ने इसे भ्रष्ट किया है-ऐसा नहीं। वहाँ शास्त्र में 'नय' शब्द पड़ा है, परन्तु नय अर्थात् शुद्ध। शुद्धस्वरूप का आलम्बन छोड़ा, वह नय से भ्रष्ट हुआ, परन्तु वह स्वयं अपने कारण से आलम्बन छोड़ा, इसलिए भ्रष्ट हुआ। समझ में आया? पर का आलम्बन नहीं रहा, इसलिए भ्रष्ट हुआ—ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वीतरागमार्ग अलौकिक है। अरे! वीतरागमार्ग अर्थात् तेरा मार्ग अन्दर।

भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का आलम्बन होकर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे रोकनेवाली कोई चीज़ जगत में है नहीं। आहा...हा...! द्रव्य को कौन रोके?

www.vitragvani.com

वैसे (ही) द्रव्य के आश्रय से हुई पर्याय को कौन रोके? —ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बापू! यह तो वीतरागमार्ग, सर्वज्ञ जिनेश्वर (का मार्ग), यह कोई साधारण बात है? आहा...हा...! बाहर से यह मान बैठे—सामायिक की और यह प्रौषध किये और यह प्रतिक्रमण किया और मिच्छामि दुक्कडम्। हो गया धर्म! ऐसा तो अनन्त बार किया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,'—मुनि—नग्न दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ। हज़ारों रानियाँ छोड़ी। नग्नदशा, वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं, परन्तु स्व का अवलम्बन नहीं लिया। पर के अवलम्बन की जितनी क्रिया है, उसमें इसकी चुस्त हो, पंच महाव्रत आदि अतिचाररहित हो। आहा...हा...! तथापि वस्तु जो निरालम्बन है, उसका आलम्बन नहीं लिया। समझ में आया? दर्शन-ज्ञान-चारित्र को रोकनेवाला कोई नहीं। ओ..हो...हो...! ऐसा है। पाँच लाईन है पाँच। पाँच हैं न? इसमें इतना भरा है। कहा न?

वह है न वहाँ बाहुबलीजी में यति है न एक? कैसा? क्या कहलाता है? भट्टारक, भट्टारक है। वह युवक। वहाँ गये थे तो आया था। व्याख्यान में भी आया था। यह पुस्तक देखी तो कहा—बस! मुझे दो। 'मलकापुर' के भाई थे, गये? 'खण्डवा' रहते हैं। उनके पास देखा तो कहा—मुझे दो। लोगों को यह सुनकर, पढ़कर कुछ माहात्म्य आता है, इसमें कुछ है। आहा...हा...! यह तो लाखों शास्त्रों का निचोड़ है। समझ में आया? लाखों शास्त्रों का स्व का आश्रय कराना है। ठीक है? आहा...हा...! लाख और करोड़ शास्त्र चाहे जो हों, उन्हें स्व चैतन्य प्रभु का आश्रय; कि जिसके आश्रय के लिये दूसरे के आश्रय की आवश्यकता नहीं। इन चारों अनुयोग और बारह अंग में यह कहना है। वह यहाँ कहा। आहा...हा....!

जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। भव्य जीव को निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मा का ध्यान करे, उसे शुद्धता प्राप्त हो॥११८॥

११८, **जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है**। जैसा आश्रय ले, वैसा कार्य होता है। आहा...हा...! द्रव्य का आश्रय ले—कारण दिया, वैसा कार्य होता है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

प्रभु ! स्वयं पर के कार्य–कारण रहित इसका गुण है। इसमें अकार्यकारण नाम की शक्ति है। अपने स्वभाव में राग की मन्दता या निमित्त की अपेक्षा रहकर धर्म की पर्याय हो, ऐसा इसमें गुण नहीं है तथा राग और राग का कार्य आत्मा करे—ऐसा कोई इसमें गुण नहीं है। व्यवहार करे, आत्मा यह दया, दान के राग का व्यवहार करे, ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अकार्यकारणशक्ति में चौदहवाँ बोल है न ? सैंतालीस शक्ति है न ? आहा...हा... !

जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। राग के आलम्बन का कारण दे तो राग होता है। आहा...हा... ! और स्व के आलम्बन का कारण दे तो उसे निर्दोष कार्य होता है। कारणपरमात्मा में जो दृष्टि दे... आहा...हा... ! उसे कार्य हुए बिना नहीं रहता। जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। राग का कारण दे तो उसका कार्य राग और ज़हर होता है–विकार होता है। आहा...हा... ! निर्विकारी चैतन्य कारणपरमात्मा, उसका जो कारण दे... आहा...हा... ! ऐसे कारणपरमात्मा को जो ज़ोर से स्वीकार करे, मन से करे या ज़ोर से करे, वैसा जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। यह क्या कहा ?

वस्तु जो है कारणपरमात्मा शुद्ध चैतन्य, उसका मन्द आश्रय करे तो वह कार्य उतना होता है। विशेष आश्रय करे तो विशेष कार्य होता है। जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। आहा...हा... ! यह ऐसा नहीं कि जैसा व्यवहारकारण दे, वैसा यहाँ कार्य होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? कार्य के लिये जैसा कारण दे, अर्थात् कारणपरमात्मा का जितना आश्रय ले, उतने प्रमाण में कार्य होता है। आहा...हा... !

भव्य जीव को निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से.... आहा...हा... ! भव्य अर्थात् लायक जीव को। अभव्य को तो होता नहीं। भव्य जीव को; और सिद्ध होने के बाद तो भव्यपना रहता नहीं। वहाँ तो भव्य और अभव्य रहित सिद्ध है। यह तो भव्य अर्थात् जिसे मोक्षमार्ग होने की लायकात है। ऐसी लायकातवाले जीव को **निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से.....** आहा...हा... ! प्रभु परमात्मा निष्कलंक है, जिसमें कलंक नहीं, मैल नहीं, राग नहीं। आहा...हा... ! जिसमें भगवान के स्मरणरूपी विकल्प भी नहीं, परमात्मा का स्मरण करना—'णमो अरिहंताणं'—ऐसा जो विकल्प भी जिसमें नहीं। है ?

www.vitragvani.com

नहीं तो वह विकल्प है, वह कलंक है। आहा...हा...! ऐसा काम है।

भव्य जीव को निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से.... जो कलंकरहित, रागरहित भगवान पूर्ण आत्मा, उसका ध्यान करने से, उसे ध्यान की दशा में ध्येय बनाने से **मोक्षपद की प्राप्ति होती है।** आहा...हा...! है? **निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।** राग और पुण्य-व्यवहार तो कलंक है, मैल है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह भी मैल है। आहा...हा...! निष्कलंक परमात्मस्वरूप पवित्र का पिण्ड प्रभु का जो ध्यान करे, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष, वह निष्कलंक निर्मलदशा (है)। इस निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से... निष्कलंक अर्थात् मैलरहित निर्मल मोक्षदशा प्रगट होती है। आहा...हा...!

निष्कलंक परमात्मा का ध्यान करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है... अर्थात्? निष्कलंक परमात्मा स्वयं ही मोक्षस्वरूप है, उसका स्वभाव, मोक्षस्वभाव ही है। उसका ध्यान करने से पर्याय में, पूर्ण परमात्मा को पर्याय में ध्यान में लेने से... आहा...हा...! मुक्तस्वरूप (आत्मा) है, उसका ध्यान करने से पर्याय में मुक्त पर्याय होती है। आहा...हा...! यह तो पुण्य-पाप में नहीं आता? यह बन्ध है, वह तो बन्धतत्त्व है, उसमें से बन्ध... और यह तो मोक्ष है, उसमें से मोक्ष होता है। आहा...हा...! क्या कहा? कि मोक्ष की प्राप्ति तो निष्कलंक प्रभु, व्यवहार के रागरहित, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु—उसका ध्यान करने से... आहा...हा...! उसे दृष्टि में ध्येय बनाने से **मोक्षपद की प्राप्ति होती है...** उसकी जो शक्ति और स्वभाव है, उसका ध्यान करने से उस स्वभाव की पूर्ण निर्मलदशा—ऐसा जो मोक्ष, उसकी प्राप्ति होती है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस परमात्मा का ध्यान, त्रिकाली। त्रिकाली वस्तु का ध्यान, वह मोक्ष का कारण है। व्यवहाररत्नत्रय, बीच में आवे, वह मोक्ष का कारण नहीं; वह बन्ध का कारण है। आता अवश्य है, पूर्ण वीतराग न हो तब तक (आता है), परन्तु है बन्ध का कारण। ज्ञानी को, हों! अज्ञानी की तो बात क्या करनी? आहा...हा...! जहाँ पूर्ण आश्रय नहीं, वहाँ निर्बल दशा है, उसमें राग होता है, परन्तु यह राग है, वह बन्ध का कारण है।

www.vitragvani.com

समकिती को, मुनि को भी राग आता है, वह बन्ध का कारण है-जगपंथ है। आहा...हा...! तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव होकर, निरालम्बन आत्मा को पकड़कर जो निरालम्बनदशा व्यवहार की अपेक्षारहित की हुई, ऐसी दशा के लिये व्यवहार के आलम्बन की उसे आवश्यकता नहीं। उसका (स्वरूप का) ध्यान करने से शुद्ध होता है। त्रिकाली का—शुद्ध का ध्यान करने से पर्याय में शुद्धता होती है। राग का ध्यान करने से राग होता है; अरागी परमात्मा का ध्यान करने से परमात्मदशा होती है। आहा...हा...! सिद्धान्त तो बहुत संक्षिप्त है, परन्तु भाव बहुत कठोर है।

शुद्धात्मा का ध्यान करे, उसे शुद्धता प्राप्त हो। क्या कहा? आहा...हा...! जो कोई शुद्धात्मा का ध्यान करे... परन्तु उसके ज्ञान और श्रद्धा में, पूर्ण शुद्ध है और पूर्ण परमात्मा है—ऐसी बात उसे जँचना चाहिए। पर्याय में रहा तो भी, पर्याय द्रव्य को नहीं छूती तो भी, उस पर्याय में यह महा आत्मा-महा प्रभु परमात्मस्वरूप ही है—ऐसा इसकी पर्याय में निष्कलंक परमात्मा-आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया? आहा...हा...! **शुद्धात्मा का ध्यान करे...** भगवान का-तीर्थंकर का-केवली का ध्यान करे, तब तो विकल्प होता है, राग होता है।

'समाधिशतक' में दो गाथायें ली हैं कि परमात्मा का ध्यान करे, ऐसा मैं हूँ—ऐसा करके (ध्यान करे), उसका कल्याण होता है। परन्तु उस ध्यान का अर्थ—वे है ऐसा मैं, ऐसा करे उसे होता है और दूसरे का जैसे वृक्ष... वृक्ष रगड़कर, वृक्ष-वृक्ष रगड़कर अग्नि होती है; उसे कोई पर की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार आत्मा, आत्मा के एकाग्रता के घर्षण से मोक्ष होता है, उसे पर के आलम्बन की आवश्यकता नहीं है। समाधिशतक में दो गाथायें हैं। आहा...हा...! क्या अपेक्षा है यह? वह तो इसमें नहीं कहा? **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जचत्तेहिं** (प्रवचनसार-गाथा ८०) जो कोई अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने। अर्थात्? वे तो पर हैं, निमित्त हैं, परन्तु वे जैसे हैं, वैसा स्वयं है—ऐसा जिसने अपने आत्मा के साथ मिलान किया। गुण और भेद निकालकर, पर्याय भेद निकालकर, जिसने अकेले अभेद की दृष्टि की, उसने अरिहन्त को जाना तो आत्मा को जाना—ऐसा कहने में आता है। अरिहन्त का ज्ञान, वह तो निमित्त

www.vitragvani.com

का, पर का है। कोई पर के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान होता है-ऐसा नहीं, परन्तु वहाँ ऐसी बात ली है कि इस जगत में जिन्हें केवलज्ञान की पर्याय है-ऐसे परमात्मा हैं; ऐसे अस्तित्व का जिसे श्रद्धा-ज्ञान हुआ है, वह अपने आत्मा के साथ मिलाने जाता है, उनका लक्ष्य छोड़कर। आहा...हा...! मेरा द्रव्य भी उनके जैसा; मेरे गुण भी उनके जैसे; मेरी पर्याय उनके जितनी नहीं, इसलिए वह स्वयं द्रव्य की ओर ढ़लता है। आहा...हा...! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें! फिर 'सोनगढ़' का निश्चयाभास कहे, वे बेचारे कहें। क्या हो? भाई! यह मार्ग तो यह है।

बाहर की ऐसी क्रिया और ऐसे, आहा...हा...! व्रत लो, प्रतिमा धारण करो, ग्यारहवीं लो और दस लो, ग्यारह लो, नौ लो। एक व्यक्ति यहाँ कहता था, आठ प्रतिमावाला था। यहाँ नहीं, राजकोट। यहाँ भी आया था। राजकोट, चुनीभाई के घर में (वह कहे-) आठ प्रतिमा ली है, परन्तु अभी हम ग्यारह लेंगे तो हमारा सब ठीक (होगा)। हमें आहार-पानी का आमन्त्रण दे। आठ प्रतिमावाले को इतना मान नहीं देते। ग्यारह लेंगे तो क्षुल्लक होंगे तो हम बराबर त्यागी हैं, इसलिए उसे आहार चाहिए, उसके घर में, उसके लिये आहार का आमन्त्रण दे। आहा...हा...! ऐसे अभिप्राय से तो क्षुल्लकपना (धारण) करे। आहा...हा...! उसका नाम भूल गये। 'धनजीलाल!' वह तो राजकोट में था। 'चन्दुभाई' के यहाँ आहार करने गये थे न? यहाँ आया था। आठ प्रतिमा है, तब तक हमें कोई लोग गिनती में नहीं गिनते। अब ग्यारह प्रतिमायें लूँगा। आहा...हा...! थोड़ी लंगोटी और कपड़ा पहने (तब कहे) त्यागी है। पधारो, पधारो महाराज, हमारे यहाँ आहार करने। अर र र! भिखारीपना है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे जगत की कुछ पड़ी ही नहीं। दुनिया माने, न माने; सत्कार दे, न दे। स्वयं अपने गुण के सत्कार में पड़ा है। आहा...हा...! 'लहि भव्यता मोटूँ मान, अभव्य त्रिभुवन अपमान'—परमात्मा कहे कि हम जैसा है वैसा जानकर (कहते हैं कि) इसे आत्मा का आश्रय है; इसलिए धर्मी है—ऐसा परमात्मा कहें, अब इसे किसका मान चाहिए? और 'लहि अभव्यता'—परमात्मा ऐसा कहे कि यह तो द्रव्य के आश्रय रहित धर्मी मानता है, यह अज्ञानी है। ऐसा वीतराग की आज्ञा में आवे, अब उसे अपमान

www.vitragvani.com

चाहिए है किसका ? उसे सबका अपमान आ गया। आहा..हा... ! समझ में आया ? लो ! **शुद्धात्मा का ध्यान करे, उसे शुद्धता प्राप्त हो।**

गुरु की वाणी से जिसका हृदय बिंध गया है और जिसे आत्मा की लगन लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता। उसे एक परमात्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं ॥११९॥

११९, गुरु की वाणी से जिसका हृदय बिंध गया है.... वाणी कैसी होती है गुरु की ? कि अभेद का आश्रय लेने के लिये वाणी होती है। वीतरागता प्रगट हो—ऐसी उनकी वाणी होती है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : निमित्त का बखान आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बखान कहाँ आया है ? उनका उपदेश कैसा होता है ? कि वह तो वीतरागता का उपदेश होता है; और वीतरागता का उपदेश जिसने सुना, उसका हृदय बिंध जाता है, स्वयं से। आहा...हा... ! समझ में आया ? वाणी से हृदय बिंध गया। देखा ? सुनकर जिसने अन्दर में राग से भेद किया है। क्योंकि गुरु ने सुनाया है यह कि राग से तेरी चीज़ भिन्न है, तू वीतरागस्वरूप है और वीतरागता, वीतरागस्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है—ऐसा गुरु की वाणी में था। उससे जिसका हृदय बिंध गया है। आहा...हा... ! राग, वह मैं नहीं; राग से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसा जिसका हृदय बिंध गया है। आहा...हा... ! बिंध गया है। है न ?

और जिसे आत्मा की लगन लगी है,.... आहा...हा... ! उसका रस चढ़ा है। आहा...हा... ! आत्मा को राग से भिन्न जानकर, और कहा था, वैसा उसने किया, तो राग से भिन्न करने को कहा था और स्वभाव का आश्रय लेकर वीतरागता कर-ऐसा कहा था। ऐसा जिसने किया, उसे आत्मा का रस लगा। आहा...हा... ! जिसे आनन्दरस लगा, वह रस अब छूटेगा नहीं। आहा...हा... ! यह आता है न ?

www.vitragvani.com

'जिनराज सुजस सुन्यो में, काहू के कहे कबहु न छूटे,
जिनराज सुजस सुन्यो में, जिनराज लगन लागी।'

लगन लगी मेरे नाथ की जिसे अन्दर। आहा...हा...! जिनराज वीतरागस्वरूप पूर्ण, ऐसा जिसे माहात्म्य आया। 'जिनराज सुजस' ऐसा परमात्मा है—ऐसा जिसने सुना और जिसे उसमें लगन लगी। 'जिनराज सुजस सुन्यो में काऊ के कहे कबहु न छूटे, लोकलाज सब डारी' दुनिया क्या कहेगी? कैसा मानेगी? यह दरकार छोड़ दी है। आहा...हा...! 'जैसे अमली अमल करत उसमें' अफीम पीते हैं न? अफीम पीवे और अफीम चढ़े जब अन्दर से, चढ़ा... चढ़ा... चढ़ा... ऐसा कहे और जो अफीम पीवे और कहे उतर गया, ऐसा कहे तो....

मुमुक्षु : उतर गया होवे तो छींक खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छींक खाये। वहाँ (संवत्) १९७१ में देखा था। वहाँ 'विबड़ा!' अरे...रे...!

यहाँ तो कहते हैं कि चढ़ा अन्दर पावर आत्मा का। आहा...हा...! भेद पाड़कर। और गुरु का—ज्ञानी का वचन ही यह होता है। राग से भेद पाड़कर स्वभाव का अभेद (अनुभव) कर। यही वाणी शास्त्र की, वीतराग की और सन्तों की होती है। उसमें—आत्मावलोकन में आता है, नहीं? वीतरागपना मुहु, मुहु गुरु बारम्बार वीतरागपने का उपदेश देते हैं—ऐसा आत्मावलोकन में आता है। आहा...हा...!

यह तो उपदेश में राग करो और यह करो और यह करो और... इससे होगा—यह उपदेश ही गुरु का नहीं है, ज्ञानी का नहीं है; अज्ञानी का उपदेश है। आहा...हा...! वहाँ तो इन्होंने यह लिया है। आहा...हा...! मुहु, मुहु—बारम्बार-धर्मात्मा सन्त वीतरागपने का उपदेश देते हैं। 'आत्मावलोकन' में गाथा है। वीतरागपने की दशा प्रगट कर। इसका अर्थ कि स्व का आश्रय ले तो वीतरागदशा होगी। जो स्व के आश्रय की बात करते हैं। चार अनुयोग और गुरु की वाणी में यह है। ऐसा सुनकर जो स्व-आश्रय करके राग से भिन्न-हृदय बिंध गया है। आहा...हा...!

और जिसे आत्मा की लगन लगी है,.... आहा...हा...! आत्मा ज्ञायक, आत्मा

www.vitragvani.com

ज्ञायक, आनन्द का धाम प्रभु! आहा...हा...! जिसे अन्दर से दुनिया की सब उपाधि छूट गयी है। मान और सम्मान... आहा...हा...! **जिसे आत्मा की लगन लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता**। अन्यत्र चित्त, चित्त नहीं लगता, ऐसा। आहा...हा...! जिसे आत्मा का रस लगा... आहा...हा...! **उसका चित्त कहीं अन्यत्र राग में या प्रेम में नहीं लगता**। आहा...हा...! जिसने शक्कर का स्वाद चखा, उसे अन्यत्र कहीं मिठास नहीं लगती। आहा...हा...! इसी तरह भगवान आत्मा की लगन लगी, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ—ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता प्रगट हुई, उसे लीनता जगी। आहा...हा...! यह लगन लगी। **उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता**। आहा...हा...! व्यवहार आवे, तथापि वहाँ चित्त एकाग्र नहीं होता। आहा...हा...! उससे भेदज्ञान करके ज्ञान को राग से भिन्न रखता है। धर्मी (को) राग आवे, उसे राग से भिन्न करके ज्ञान की धारा को राग से भिन्न रखता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

उसे एक परमात्मा ही चाहिये,... साधकदशा चाहिए-यह बात भी नहीं। व्यवहार चाहिए या मान चाहिए—यह तो नहीं, परन्तु साधकदशा भी अपूर्ण है। उसे परमात्मा / पूर्णदशा ही चाहिए। बस! आहा...हा...! समझ में आया? **एक परमात्मा ही चाहिए...** परमस्वरूप की पूर्ण प्राप्ति एक ही चाहिए। यह परमात्मा द्रव्य है, उसे चाहिए है और उसे चाहिए उसकी वर्तमान में एक परमात्मदशा ही प्रगट हो—यही काम है, कहते हैं।

दूसरा कुछ नहीं चाहिए। दुनिया माने, न माने, सम्मान दे... आहा...हा...! भाई! इनके धर्म के गुण प्रमाण इन्हें मान देना चाहिए तो इन्हें ठीक पड़े - ऐसा इसे है नहीं। आहा...हा...! हमारी पदवी-प्रमाण ये लोग मान नहीं देते—ऐसा मान का अर्थी धर्मी नहीं होता। आहा...हा...! **दूसरा कुछ नहीं चाहिए**।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

अषाढ़ शुक्ल-१५, गुरुवार, दिनाङ्क २०-०७-१९७८
वचनामृत-१२०-१२१ प्रवचन-४३ *

पंच परमेष्ठी का ध्यान करता है, परन्तु ठेठ तल में से शान्ति आना चाहिए, वह नहीं आती। अनेक फल-फूलों से मनोहर वृक्ष के समान अनन्त गुणनिधि आत्मा अद्‌भुत है, उसके आश्रय में रमने से सच्ची शान्ति प्रगट होती है ॥१२०॥

.....और अनन्त का दुःख पर्याय में राग की क्रियाओं में आवे परन्तु इससे अनन्त आनन्द का नाथ घिसावट किया है और घट गया है और कम हुआ है। उसमें (ऐसा नहीं है) आहा...हा... ! ऐसा का ऐसा रहा, स्वभाव विराजता है। समझ में आया ? ऐसा आत्मा। आहा...हा... !

मुमुक्षु : एकदम अन्दर न जाये तो विश्राम स्थान पंच परमेष्ठी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्रामस्थान आत्मा है। वे हमारे कहते, वे भाई नहीं ? इन्दौरवाले, छोटालाल, छोटालाल ब्रह्मचारी। पहले जरा ठीक था, फिर बदल गया था। यहाँ आकर ठिकाने आया था। इन्दौर में उदासीन आश्रम में ब्रह्मचारी थे। बड़े वृद्ध पुराने थे, यहाँ रहे। वे यहाँ से जाने के बाद ऐसा कहते थे, व्यवहार में आवे तो जरा इसे विश्राम मिले और फिर शान्ति में जाया जाये। उदासीन आश्रम में क्रियाकाण्ड है न ? इन्दौर। सब ऐसे क्रियाकाण्डी इकट्ठे हुए हों। यहाँ की बात बैठी थी, फिर उसे आश्रम में जीमने नहीं देते थे। बाहर जीमों, तुम्हारी दृष्टि दूसरी है... आश्रम में सब थे। अभी बाबूलालजी है, वे दृष्टि की बात करते हैं।

* इस प्रवचन का १० मिनिट का अंश आवाज की अस्पष्टता के कारण नहीं लिया गया है।

www.vitragvani.com

पहले तो दृष्टि की बात ही नहीं थी और यह क्रिया करे, व्रत पाले, प्रतिमा धारे और यह धारे। उसका भोजन बन्द किया, फिर वापस मिल गया। फिर वापस भिन्न पड़ गया। यहाँ आया। आहा...हा...! ये बात कहीं (नहीं)। रोटियों के लिये तुम मिल गये? आहा...हा...! वे ऐसा कहते थे... ऐसी शैली का एक पत्र भी श्रीमद् में है। इस ओर एक पत्र है। पहले जरा शुभ में आते हैं, एकदम पहला रूखा लगे, इसलिए शुभ... परन्तु यह तो शुभ आता है, वह तो अशुभ से बचने के लिये आता है परन्तु शुभ स्वयं दुःख और आकुलता ही है। आहा...हा...! ऐसी बातें कठिन पड़े। वहाँ ऐसा लिखा 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन' साधन-फाधन व्यवहार का निमित्त में यह तो कथन है। आहा...हा...! ये तो बीच में उसे व्यवहार से निमित्त कहा जाता है। परन्तु जब उसे छोड़कर निश्चय प्राप्त करे तो व्यवहार साधन का आरोप दिया जाता है। आरोप दिया जाता है। आहा...हा...! अरे! प्रभु! ऐसा मार्ग है। भाई! अरे! अनन्त काल से चार गति में चौरासी के अवतार में भटकता है।

(यहाँ) कहते हैं, अरे रे! भाई! **अनेक फल-फूलों से...** आम का वृक्ष हो, आम का। आम का। ऐसे जमे हुए आम (हो) आहा...हा..! हम वहाँ उतरे थे न? कलकत्ता, रतनलालजी (के यहाँ उतरे थे)। बाबूलालजी! वहाँ साथ में आम का वृक्ष था, वह आठ-दस वर्ष से फलता नहीं और हम वहाँ उतरनेवाले थे और ऐसा फला, ऐसा फला... मकान है। ऐसे हरे-हरे आम, हजारों आम लटकते। वे लोग ऐसा कुछ कहते थे, महाराज का यहाँ आना हुआ तो दस वर्ष से आम नहीं फलता था, अब आम फला। सब बातें हैं। वह तो उस समय में वह होना था, वह हुआ है। बड़े आम हरे, वह तो कोई तोड़े नहीं।

मुमुक्षु : निमित्तपना तो अवश्य है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्तपने का अर्थ कि निमित्त कुछ नहीं करता, इसका अर्थ निमित्त। निमित्त से कुछ नहीं होता, तो निमित्त कहलाता है। निमित्त से होवे तो वह तो उपादान में चला गया। ऐई..! ऐसी बातें हैं बापू! ... रहे थे, वहाँ तक रखा था। बड़े-बड़े आम ऐसे लटकते थे।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, अनेक फल और फूल.... आम के फूल आते हैं, देखा है? आम के वृक्ष को। अकेले फूल ही लगते हैं, अकेले फूल फलें, फूल-फूल फलें, इतने दिखें और उस फूल में से फिर फल होता है। इसी प्रकार **अनेक फल-फूलों से**

www.vitragvani.com

मनोहर वृक्ष.... वृक्ष-समान प्रभु आत्मा... आहा...हा... ! अनन्त गुणनिधि आत्मा, अनन्त गुण का सागर, अनन्त गुण का निधान, अनन्त गुण की खान, ऐसा आत्मा। **अद्भुत है...** आहा..हा... ! ऐसा आत्मा अद्भुत है। आहा...हा... ! वह वस्तु, बापू ! आत्मा अर्थात् क्या ? आहा...हा... ! परमात्मस्वरूप ही साक्षात् उसका स्वभाव है। अद्भुत चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसे पंच परमेष्ठी के स्मरण से भी जिसकी शान्ति नहीं मिलती। उसके (-आत्मा के) स्मरणमात्र से, उसे ध्येय बनाकर अन्दर एकाग्र होने पर शान्ति झरे - ऐसा वह वृक्ष है। आहा...हा... ! कठिन लगे, क्या हो ?

तब यह कहा था, खलबलाहट (हुई थी)। (संवत्) १९८५ में। मुँहपत्ती थी। मुँहपत्ती... शंका न पड़े। फिर बदला तो शंका पड़ी। अरे ! यह तो छोड़ दिया। आहा...हा... ! यह तो हमारा धर्म ही बदल दिया। बापू ! वह धर्म है ही नहीं, भाई ! तुझे पता नहीं। आहा...हा... ! स्थानकवासी और श्वेताम्बर में निश्चय से जैनधर्म का स्वरूप ही नहीं है। आहा...हा... ! मार्ग ऐसा है, भाई ! तुझे कठिन लगे, बापू ! क्या हो ? ऐई ! शिवलालभाई ! कपूरभाई ! ये सब स्थानकवासी के सेठ हैं, थे। आहा ! क्यों ? गुणवन्तभाई ! (तुम्हारे) पिता स्थानकवासी में प्रमुख थे न ? क्या तुम्हारे बड़े भाई ? घेवरचन्दभाई, आहा... ! अरे ! यह बात है कहाँ ? प्रभु !

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की सीधी वाणी यह है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... ! बहिन के वचन है, वे भगवान की वाणी है, इनके घर का कुछ नहीं है। समझ में आया ? यह दिव्यध्वनि है। आहा...हा... ! भाई ! तू अनन्त-अनन्त, फल-फूल से जैसे भरा हुआ वृक्ष हो, वैसे अनन्त-अनन्त गुण के फल पकें, उसकी तू एक सागर निधि निधान है। ऐसा अद्भुत आत्मा है। तेरे गीत सर्वज्ञ भी पूरे नहीं कर सकते।

यह प्रश्न हुआ था, भाई ! बहिन में आया है न ? चैतन्य प्रभु को जान सके, परन्तु भगवान भी कह सकें नहीं, ऐसा आता है न ? पीछे आता है। उसमें प्रश्न हुआ था। कन्हैयालाल, मन्दसौर (को), ऐसा कैसे ? भगवान तो सब जानते हैं। भाई ! सब जानते हैं, ठीक है, परन्तु एक अपेक्षा से वाणी में अमुक मर्यादा की... आवे, इस अपेक्षा से बात है। ऐसे तो पाँचवीं गाथा में कहा, सब जानते हैं। कितने ही सामान्य धर्म हैं, वे सीधे कहे और कितने ही अनुमान से भी पूरा बताया, ऐसा कहा, परन्तु फिर भी 'गोम्मटसार' में तो

www.vitragvani.com

ऐसा भी आता है, जैसे सर्वज्ञ ने देखा, वैसा वाणी में (आया)। वाणी जड़ है-अजीव है, इसलिए चैतन्य की जाति का अनुभव आया, केवलज्ञान हुआ, लो न! आहा...हा...! परन्तु वाणी तो जड़ है, जड़ में कितनी ताकत है कि वह स्वरूप की बात करे? अमुक बात करे। आहा...हा...! ऐसा जो तीन लोक का नाथ अन्दर चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, कल्पवृक्ष अन्दर प्रभु है, तुझसे बड़ा कोई अरिहन्त और सिद्ध भी नहीं है। अरिहन्त और सिद्ध भी एक पर्याय है और तू तो ऐसी अनन्त पर्यायों का सागर है। यह भगवान भी अनन्त गुण का सागर है। आहा...हा...! परन्तु अपने ऊपर यह बात बैठना भारी कठिन (पड़े)। ऐसा आत्मा है। इसे कुछ-कुछ अवलम्बन चाहिए है, तो हो। यहाँ तो वस्तु स्वयं निरालम्बन है। वस्तु आलम्बन रहित है। उसे कुछ आलम्बन होवे, भगवान का होवे, प्रतिमा का होवे, पूजा का होवे, ऐसे साधन हों, शास्त्र का साधन हो तो कुछ आलम्बन हो... परन्तु ये आलम्बन उसे चाहिए ही नहीं। आहा...हा...! वह तो निरालम्बी—पर से भिन्न चीज़ है। जिसके अनुभव के लिये पर के राग की और निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं। आहा...हा...! अब जिसमें अपेक्षा नहीं, उसमें सर्वस्व मान बैठे। आहा...! छब्बीस लाख में मन्दिर बनाया, इसलिए मानो इसमें से धर्म होगा, ऐसा हो गया; तो फिर यह सब किया किसलिए? देखरेख तो ये रामजीभाई रखते थे। व्याख्यान में से बाहर निकलकर सबको पूछते थे। मैं ऐसे अन्दर से देखता था। पूछते, कैसे ऐसा...? ध्यान तो ये रखते थे। इसलिए हुआ है? वह तो उसकी परमाणु की पर्याय का उत्पन्न होने का काल था, उस काल में वह हुआ है। कोई उसका कर्ता है, कारीगर कर्ता है या प्रमुख कर्ता है या वजुभाई वहाँ ध्यान रखते थे, इसलिए कर्ता हैं (-ऐसा है नहीं।) आहा...हा...! ऐसी बातें, भारी कठिन।

अरे! इसने चैतन्यद्रव्य चमत्कारी महाचमत्कार, ऐसा चमत्कार कि अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त गुनों तो भी उसके अनन्त गुण का माप न आवे, इतने गुण हैं। क्या है यह? प्रभु! आहा...हा...! अनन्त गुण को अनन्तगुने गुणों और उसे अनन्तगुने गुणों, वह वर्गराशि कहलाती है। जैसे २५ है न? २५ को एक बार २५ से गुणा करो, फिर जो भाव आया, उसे भी वापस उतने से गुणा करो, ऐसे २५ बार ले जाओ, तब उसका वर्ग पूरा होता है। यहाँ अनन्त गुण हैं, उन्हें अनन्त बार गुणा करो, ऐसे अनन्त को अनन्त, अनन्त को अनन्त, अनन्त को अनन्त गुणा करो। आहा...हा...! शास्त्र में यह

www.vitragvani.com

लेख है। आहा...हा... ! उसका पार नहीं आता, प्रभु ! इतने तो धर्म और गुण की ताकतवाला तू तत्त्व है, भाई ! उसके सामने देखना नहीं, उसका आदर करना नहीं, उसका आश्रय लेना नहीं... बाहर की सब धमाधम... आहा...हा... ! और मानो हमने कुछ धर्म किया। आहा...हा... !

यहाँ यह कहते हैं, **उसके आश्रय में रमने से सच्ची शान्ति प्रगट होती है।** आहा...हा... ! भगवान सर्वज्ञशक्तिवाला तत्त्व, अनन्त आनन्द और पूर्णानन्द आदि पूर्ण स्वभाव का भण्डार (है)। आहा...हा... ! जैसे अनेक फल और फूल से मनोहर वृक्ष जैसे समृद्ध दिखता है, वैसा यह भगवान आत्मा अन्दर गुण और गुण की शक्ति, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप, आहाहा ! ऐसा भरपूर फूल, फले-फल और फूल जैसा वह वृक्ष है। ऐसे चैतन्य के आश्रय में रमने से, उसके आश्रय में रमने से (सच्ची शान्ति प्रगट होती है।) आहा...हा... ! सब बात छोड़कर, यह वस्तु है, उसे जानकर, उसमें रमने से शान्ति प्रगटे, उसे सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन हो, उसे शान्ति आती है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

संक्षिप्त शब्द, परन्तु बहुत भरा है। अभी तो लोग पढ़ेंगे, विचारेंगे। धीरे-धीरे एक बार, दो बार देखेंगे, तब इसकी महिमा का पता पड़ेगा कि इसमें कितना भरा है ! आहा...हा... ! १२० बोल (पूरा) हुआ।

आचार्यदेव करुणा करके जीव को जगाते हैं — जाग रे! भाई, जाग। तुझे निद्रा में दिशा नहीं सूझती। तू अपनी भूल से ही भटका है। तू स्वतन्त्र द्रव्य है; भूल करने में भी स्वतन्त्र है। तू परिभ्रमण के समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं। तू अन्दर गहराई में उतरकर देख, असली तत्त्व को पहिचान। तेरा दुःख टलेगा, तू परम सुखी होगा ॥१२१॥

१२१, **आचार्यदेव करुणा करके जीव को जगाते हैं...** जागती ज्योत चैतन्य है, उसे जगाते हैं। आहा... !

मुमुक्षु : जागती को जगाते हैं ?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : जागती ज्योत ही है। वह अन्धी ज्योत नहीं है। आहा...हा...! दीपक का प्रकाश या सूर्य का प्रकाश, प्रकाश को नहीं जानता। यह तो जागती ज्योत, जिसके प्रकाश को जानने की... नियमसार में तो कह दिया है न? उपयोग में। स्व-पर को जानने का शक्ति का स्वभाव इसका त्रिकाल है। इसका गुण ही त्रिकाल स्व-पर जानने का -पूर्ण जानने का है। आहा...हा...! उपयोग में लिया है न? आहा! वहाँ तो ज्ञान को स्वभाव गुण कहा है। इसके अतिरिक्त चार को विभाव कहा है और फिर वहीं का वहीं आगे जाते केवलज्ञान को आवरणवाला (कहा है), क्योंकि उसमें कर्म के निमित्त का अभाव अर्थात् अपेक्षा थी न? इससे उसे आवरणवाला कहा है। त्रिकाल वस्तु की अपेक्षा से... आहा...हा...!

वस्तु जो त्रिकाली आनन्द चैतन्य-चमत्कार का सागर प्रभु, उसे आवरण है और आवरण का अभाव है—यह एक भी उसमें नहीं है। आहा...हा...! केवलज्ञान को भी आवरणवाला कहा है। आहा...हा...! समझ में आया? इस अपेक्षा से, हों! दूसरे ज्ञान में (कर्म का सद्भाव) निमित्त है और इसमें निमित्त का अभाव है, इतनी अपेक्षा आयी न? और वस्तु तो निरावरण निरपेक्ष है। वस्तु स्वयं निरपेक्ष है; इसलिए उसकी पर्याय भी वास्तव में तो निरपेक्ष है, परन्तु उस पर्याय में इतनी अपेक्षा आ गयी; इसलिए उसे आवरणवाला कहा। जिसे स्वाभाविकज्ञान केवलज्ञान कहा, जिसे मोक्षमार्ग में जो ज्ञान का अंश-उघाड़ है, वह केवलज्ञान को प्राप्त करेगा, वह स्वभाव है इसलिए, आगे जाकर।

मोक्षमार्गप्रकाशक में है न? मतिज्ञान का भी अंश है न? वह स्वभाव है; और एक तरफ केवलज्ञान को आवरणवाला कहा। आहा...हा...! किस अपेक्षा से? केवल (ज्ञान की) पर्याय होती है और पर्याय में कर्म के निमित्त की अभाव की अपेक्षा आती है, परन्तु वस्तु को कोई अभाव-सद्भाव की अपेक्षा है नहीं। ऐसा परम स्वभावभाव भगवान... आहा...हा...! त्रिकाल ऐसा का ऐसा चैतन्य के चमत्कार से भरपूर प्रभु,... आहा...हा...! उसे जगाते हैं। अरे! जाग रे, भाई जाग! जागती ज्योत जाग! उसे जगा! आहा...हा...! दूसरा सब बाह्य में तूने अनन्त बार बहुत किया। शुभभाव और अशुभभाव तो किया, अनन्त बार किया, बापू! आहा! जाग रे... जाग! है?

तुझे निद्रा में दिशा नहीं सूझती। आहा...हा...! तेरे अज्ञान में तुझे तेरी दिशा नहीं

www.vitragvani.com

सूझती। तेरे अज्ञान के कारण, 'मैं कौन हूँ?'—इसके भान बिना नींद में सो रहा है। उसमें तेरी दिशा क्या चीज़ है-वह सूझती नहीं। आहा...हा...! **निद्रा में दिशा नहीं सूझती।** अर्थात् अन्तर में जाना और वहाँ से निर्मलदशा प्रगट होगी—यह दिशा तुझे नहीं सूझती। आहा...हा...! अन्य में-अन्यमत में भी कहते हैं न? 'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं, नींद में अटपटे खेल दिखते।' ये तो वेदान्त के वचन हैं। अकेला चैतन्य ही है, दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा। (वे मानते हैं, किन्तु) ऐसा नहीं है। चैतन्य भी एक समय की पर्याय में छह द्रव्यों को जानने की ताकतवाला है। छह द्रव्य को न माने तो एक समय की पर्याय की ताकत इतनी है, उसे नहीं माना। आहा...हा...! समझ में आया?

आत्मा की पर्याय / अवस्था में... चाहे तो श्रुतज्ञान की पर्याय हो, परन्तु उस पर्याय में छह द्रव्य को जानने की ताकत है। छह द्रव्य, छह द्रव्य के अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें— उन्हें यह एक समय की पर्याय जानने की ताकतवाली है। आहा...हा...! यह पर्याय इतनी है। इन छह द्रव्यों को जो नहीं मानता, वह छह द्रव्यों को जानने की योग्यतावाली पर्याय को भी नहीं मानता, तो द्रव्य को तो मानता नहीं। आहा...हा...! एक समय की पर्याय जो है, उसकी ताकत तो छह द्रव्य को जानने की है।

वहाँ 'समयसार' १७-१८ (गाथा में) तो ऐसा कहा है कि यह ज्ञान की जो पर्याय है, वह तो स्वद्रव्य को जानती ही है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, वह पर्याय का स्वभाव है; इसलिए स्व-परप्रकाशवाली पर्याय स्व को जानती ही है। समझ में आया? कठिन बातें, बापू! आहा...हा...! ऐसी बात जैनदर्शन में है। जैनदर्शन में तो क्रिया करो, सामायिक करो, प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो, यह करो और यह करो... अरे! कहाँ बापू! सामायिक कैसी और प्रतिक्रमण कैसा? आहा...हा...!

निद्रा में तेरी चैतन्य की शक्ति और उसके सामर्थ्य का तुझे पता नहीं। आहा...हा...! **निद्रा में...** है न? **दिशा नहीं सूझती। तू अपनी भूल से ही भटका है।** तुझे किसी कर्म ने भटकाया है—यह बात तीन काल में नहीं है। आहा...हा...! दर्शनमोह के कर्म से आत्मा में भ्रान्ति होती है, इसलिए कर्म के कारण भ्रान्ति हुई और भटका (-ऐसा नहीं।) तूने स्वयं भ्रान्ति खड़ी की है। आहा...हा...! 'कर्म बिचारै कौन भूल मेरी अधिकाई'—भजन में—

www.vitragvani.com

स्तवन में आता है—चन्द्रप्रभ प्रभु की भक्ति में। यह सब वहाँ २१ वर्ष पहले (संवत्) २०१३ की साल में वर्णी जी के समक्ष कहा था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसकी बात को... वहाँ होता है न? वह तो सीधे ऐसा कहे—ज्ञानावरणीय कर्म है, वह ज्ञान को रोकता है। सर्वथा नहीं रोकता, निमित्त कुछ नहीं करता—तो यह बात बने नहीं। ज्ञानावरणीय क्यों कहा? ये तो निमित्त के व्यवहार के कथन हैं। किसी परद्रव्य के कारण परद्रव्य में कुछ रुकावट हो (-ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...! तेरी भूल तूने तुझसे ही की है, कर्म के कारण नहीं। आहा...हा...!

श्रीमद् भी कहते हैं न? तू तेरी भूल से भटका है। उस भूल को तूने किया है, तेरी है। 'बोटाद' में कमरे के ऊपर यह शब्द है। ऐसे पाटा है, उस ओर में, 'तेरी भूल से तू भटका है। तेरी भूल इतनी कि स्व को भूल गया और पर को माना—पर को अपना माना—यह तेरी भूल है।' वहाँ पाटा है। 'बोटाद' में ऊपर—कमरे के ऊपर है। आहा...हा...! मन्दिर है न मन्दिर? बोटाद में मन्दिर है, साथ में स्वाध्याय मन्दिर है, उसमें यह है। तू तेरी भूल से भटका। तेरी भूल यह कि पर को अपना माना और स्व को भूला, यह तेरी भूल। शरीर मेरा, राग मेरा, स्त्री मेरी, परिवार मेरा, धन्धा मेरा, दया-दान के भाव हों, वे मेरे... ये स्वरूप की वस्तु है? आहा...हा...! पर को अपना माना, यह तेरी भूल तुझसे है—ऐसा सन्त कहते हैं—ऐसा लिखा है। आहा...हा...! यहाँ तो यह भूल (कहें तो कहते हैं), नहीं, नहीं; कर्म का कुछ टका तो चाहिए।

चर्चा चली थी। जब सेठ इन्दौर से पहली बार (संवत्) २००५ की साल में आये थे, हुकमीचन्दजी २९ वर्ष हुए। (संवत्) २००५ की साल। तब राजकुमार नहीं आये थे, महिलायें साथ में थी, पण्डित थे जीवन्धर। चर्चा चली कि कुछ तो निमित्त का टका (प्रतिशत) है। पचास प्रतिशत रखे इसका और पचास प्रतिशत रखो आत्मा का—ऐसा कहते थे। हमारे दामोदर सेठ थे, 'दामनगर' के गृहस्थ थे। उस दिन—साठ वर्ष पहले दस लाख रुपये (थे)। वे कहते कि तुम इक्यावन प्रतिशत रखो पुरुषार्थ के, उनपचास प्रतिशत रखो कर्म के। आत्मा में भूल होती है, उसमें इक्यावन टका कहा जाए? क्या कहा जाए? प्रतिशत—इक्यावन टका/प्रतिशत जीव की भूल रखो और ४९ प्रतिशत कर्म का रखो—

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वे ऐसा कहते थे। (संवत्) १९७६ की साल की बातें हैं। कहा—एक भी प्रतिशत नहीं। जीव भूल करता है, उसमें एक भी प्रतिशत पर का नहीं। बड़ी खलबलाहट हो गयी। (संवत्) १९७१ की साल से। तिरेसठ वर्ष हुए—साठ और तीन। उस दिन से ऐसा चलता है। आत्मा भूल करे, उसमें कर्म का बिल्कुल एक अंश नहीं। स्वयं स्वतन्त्र अपने को भूलकर भूल करता है। कर्म है न, यह ज्ञानावरणीय ? ये सब निमित्त की बातें हैं। दूसरी चीज़ हैं, वह हो। उसने भूल करायी है ? उससे भूल हुई है ? इस भूल का कर्ता वह है ? तू पर्याय में भूल की रचना करे और तू कर्म के सिर डाले, यह जिन की (जिनदेव की) आज्ञा में ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। यह वहाँ उस दिन 'ईसरी' में कहा था। यह जँचे नहीं। तीनों सम्प्रदाय में कर्म का ऐसा लाकड़ा (विपरीतता) घुस गया है। कर्म के कारण ऐसा होता है। ज्ञानावरणीय का तीव्र उदय होवे तो ज्ञान हीन होता है, ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होवे तो ज्ञान का उघाड़ होता है, कर्म के कारण होता है। सब बात एकदम झूठी है। आहा...हा... ! वह यहाँ कहते हैं।

तू अपनी भूल से ही.... एकान्त कहा। भूल से 'ही' भटका है, दूसरा कोई कारण नहीं। नहीं, इसका अर्थ कि पर से नहीं। आहा...हा... ! **तू स्वतन्त्र द्रव्य है...** विपरीतता करने में भी स्वतन्त्र है, सुलटाई करने में भी स्वतन्त्र है। तुझे पर की-निमित्त की कोई अपेक्षा है ही नहीं। उस दिन वहाँ (संवत्) २०१३ की साल में यही कहा था, विकार करे... वहाँ दूसरे किसी कारक की अपेक्षा है ही नहीं। 'पंचास्तिकाय' की ६२ वीं गाथा। वर्णीजी और सब विद्वान बैठे थे।... तुम थे न ? फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे, वे इन्दौरवाले बंशीधरजी थे। सब थे (संवत्) २०१३ की साल, पहली बार सम्मेदशिखर की यात्रा को गये थे। सागरवाले सेठ आये थे भगवानदास शोभालाल। कहा, आत्मा कुछ भी भूल करे, उसमें पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं। यह पंचास्तिकाय की ६२ वीं गाथा देखो। और कर्म जो कर्मरूप से बँधे, उसमें आत्मा की कोई अपेक्षा नहीं। उसकी पर्याय उससे होती है। देखो, यह गाथा। बहुतों को नहीं जँचा, वर्णीजी को नहीं जँचा। एक फूलचन्दजी को जँचा। फूलचन्दजी कहे—निश्चय से विकार का करनेवाला आत्मा स्वयं अपना है, पर से नहीं—ऐसा स्वामीजी कहते हैं। बात ऐसी ही है, कहा। फूलचन्दजी ने (कहा)। आहा...हा... !

यहाँ यह कहते हैं कि **तू स्वतन्त्र द्रव्य है; भूल करने में भी स्वतन्त्र है।** भूल

www.vitragvani.com

किसी के कारण होती है—ऐसा है नहीं। आहा...हा...! यहाँ शान्तिसागर आये थे न? साधु आये थे, शान्तिसागर आये थे। वे भी बोले थे। (संवत्) १९९७ की साल, मन्दिर बनता था, तब आये थे। वे बोले थे, व्याख्यान में बोले थे। लोगों को कठिनाई पड़े ऐसा (बोले थे)। वे कहते थे कि देखो! हम ये वस्त्र छोड़कर बैठे हैं, परन्तु कर्म हटे तो अन्दर होवे न? नहीं तो कहाँ से आये? ऐसा बोलते थे। सब सुनते थे। यहाँ नहीं? भाई! तुमने सुना है? शान्तिसागर। तुम नहीं थे? १९९७ की साल। वजुभाई नहीं थे? दूसरे भटकने में होंगे। यहाँ बात हुई थी। भाई को पता है रामजीभाई को। उनने व्याख्यान में कहा, शान्तिसागर ने। हों! नरम व्यक्ति थे। हम यह वस्त्र छोड़कर बैठे, नग्न हुए परन्तु कर्म हटे तो यहाँ लाभ होवे न? इसके बिना किस प्रकार लाभ होगा? कहो! क्या हो? बापू! भाई! भूल भी तुझसे हुई है, कर्म से नहीं। परद्रव्य बेचारा क्या करे? आहा...हा...!

तू तेरी भूल से ही भटका है। है? आहा...हा...! **तू अपनी भूल से ही भटका है। तू स्वतन्त्र द्रव्य है; भूल करने में भी स्वतन्त्र है। तू परिभ्रमण के समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है**। आहा...हा...! यह मिथ्यात्व की भूल ऐसी की है कि 'मैं नहीं हूँ'—ऐसी भी मिथ्यात्व की भूल की। वह भूल करने में भी तू स्वतन्त्र है। ऐसा किया तो भी, वस्तु तो शुद्ध है, वह है। आहा...हा...! वस्तु में उस कारण से अशुद्धता आयी नहीं। आहा...हा...! है? **भूल करने में भी तू स्वतन्त्र है। तू परिभ्रमण के समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है।** आहा...हा...! नरक के, निगोद के भव किये, प्रभु! परन्तु अन्दर तेरी वस्तु तो शुद्ध ही रही है। त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य-चमत्कार से भरा हुआ भगवान तो पवित्रता से भरा है। आहा...हा...! ....अभी दोष करना है और बात डालनी है कर्म के ऊपर! अब वह कब (छूटेगा)? स्वयं स्वतन्त्ररूप से दोष करता हो तो स्वयं मिटा सकता है, परन्तु कर्म के कारण होता हो तो कर्म छूटे, तब दोष मिटे; इसलिए आत्मा के हाथ में तो रहा नहीं। आहा...हा...!

'प्रवचनसार' १८९ गाथा में तो यहाँ तक कहा है —निश्चय / शुद्धनय से तू भूल का करनेवाला है-ऐसा कहा है। शुद्धनय से, निश्चयनय से। तुझमें जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष की भूल हुई है, वह शुद्धनय से (तेरी है)। शुद्ध अर्थात् पर की अपेक्षा नहीं और तुझसे वह भूल हुई है। आहा...हा...! और कर्म के निमित्त से कहना, वह तो अशुद्धनय का विषय

www.vitragvani.com

है। आहा...हा... ! अशुद्धनिश्चय। भाई! आहा...हा... ! लोगों को कहाँ पड़ी है ? ऊपर कौन क्या कहता है ? कैसे भटकना पड़ता है ? यह कहाँ पता है ? सिर पर बैठा हो और बाहर में कुछ प्रतिष्ठावाला हो और त्यागी हो, वस्त्र बदलकर बैठा हो, जय नारायण... जय नारायण... चला। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं, उस परिभ्रमण के समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। आहा...हा... ! अनन्त काल से निगोद में से निकला नहीं था। निगोद, यह इसका पीहर स्थान है। शास्त्र में लेख है। जैसे कन्या पहले पीहर में बड़ी होती है न ? पीहर या क्या कहते हैं ? माँ-बाप को (श्रोता : पीहर) वैसे शास्त्र में लेख हैं कि पहला स्थान निगोद में अनन्त काल रहा, वह इसका पीहर स्थान है। फिर मनुष्य और पशु हुआ। अनन्त काल... अनन्त काल निगोद में रहा। आहा...हा... ! वहाँ भी तू शुद्ध है। वस्तु तो शुद्ध ही है, तू चाहे जितने समय भटका। नित्य निगोद के अनन्त जीव अभी कितने ही तो त्रस हुए नहीं, लट हुए नहीं, चींटी हुए नहीं, मनुष्य तो कहाँ से होंगे ? ऐसे अनन्त जीव अभी तक पड़े हैं, परन्तु फिर भी उनका द्रव्य तो शुद्ध ही है। अरे रे!

द्रव्य अर्थात् वस्तु जो है-स्वयंसिद्ध जो चीज़ है, उसे क्या अन्तर होवे ? आहा...हा... ! यह तो पर्याय की अपेक्षा से बात है। वस्तु है, वह त्रिकाली एकरूप आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आहा... ! भले उसने पर्याय में अनन्त दुःख भोगा, तथापि आनन्द की पर्याय में-शक्ति में हीनता नहीं हुई। आनन्द की शक्ति में कमी नहीं आयी, न्यूनता नहीं हुई। इतने अनन्त दुःख निगोद के भोगे और सातवें नरक के दुःख, बापू! जिसके क्षण के दुःख... करोड़ों जीभ और करोड़ों भव से न कहे जा सकें। ऐसे-ऐसे तैंतीस सागर, ऐसे अनन्त सागर, अनन्त-अनन्त भव किये परन्तु प्रभु! तू तो शुद्ध है। परिभ्रमण के काल के समय भी तू शुद्ध है। यह परिभ्रमण पर्याय में है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अलौकिक बातें हैं, बापू! और दिगम्बर धर्म अर्थात् तो कोई अलौकिक चैतन्य चमत्कारी वस्तु बतानेवाला। यह कोई पक्ष नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है, वैसा जाना, वैसा कहा, वैसा पालन किया। आहा...हा... !

उसमें आया है न ? कहाँ गये नेमचन्दभाई ? है। उसमें—'यशोविजय' के स्तवन में आया है न ? प्रमत्त-अप्रमत्त शब्द आया है। अप्रमत्त शब्द श्वेताम्बर के पैंतालीस सूत्रों

www.vitragvani.com

में नहीं है। यह प्रमत्त-अप्रमत्त छठवीं गाथा में है। समयसार पढ़ा होगा। जिसे बात ख्याल में आ गयी, यह सब बड़ा अन्तर है। 'यशोविजय' बड़े उपाध्याय हो गये हैं... महामहोपाध्याय। फिर उन्हें ख्याल आया, फिर कुछ बोले थे कि हम साधु नहीं हैं। हम तो संवेगी हैं। साधु को प्राप्त करने के अभिलाषी, ऐसा बोले थे। श्वेताम्बर में एक सेठ थे। उनने तो ऐसा कहा था कि... मकान में रहते थे बात कुछ ऐसी करने लगे। एकान्त में कहा कि बाहर निकलना नहीं... क्योंकि उनके ख्याल में कुछ आ गया। प्रमत्त-अप्रमत्त मुनिपने की बात ही श्वेताम्बर में कहीं नहीं है।

यहाँ तो छठवीं गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त (आया)। एक क्षण में प्रमत्त-अप्रमत्त दो आवे। प्रमत्त-अप्रमत्त, प्रमत्त-अप्रमत्त, तथापि मैं वह नहीं; मैं तो ज्ञायक त्रिकाल हूँ। आहा...हा...! ये शब्द उनके बत्तीस, पैंतालीस की टीका में भी नहीं है? टीकायें भी करोड़ों देखी है न, सब देखी हैं। आहा...हा...! यह उनने डाला है। कुछ ख्याल में आ गया है। बात तो यह सब... परन्तु अब जाना कहाँ? वाड़ा कैसे छोड़ा जाए? वाड़ा के सेठ (ऐसा कहे)... निकलना नहीं। आहा...हा...!

मेरे लिये ऐसा होता था। इन्हें कुछ कहना नहीं, हों! वरना अभी वाड़ा (सम्प्रदाय) छोड़ देंगे। इनके विरुद्ध का जो कहते हो, इन्हें कुछ बोलना नहीं। क्षण में मुँहपत्ती छोड़ देंगे। भाई! मुँहपत्ती में आ गये, इसलिए साधु होकर आ गये? यहाँ तो हम सत्य पाने निकले हैं। हम कोई मुँहपत्ती बाँधने या रखने निकले हैं? दामोदर सेठ... बड़े गृहस्थ। साठ वर्ष पहले दस लाख (थे)। चालीस हजार की आमदनी। एक गाँव घर में (था)। घोड़ा (था) एक घोड़ा, घोड़ी ऐसा नहीं, बहुत घोड़ा और बहुत घोड़ियाँ। वे जाने अवश्य कि यह सब क्या कहते हैं? मेरे सामने कहेंगे तो ये अभी छोड़ देंगे। हम यहाँ आ गये, इसलिए बँध गये हैं—ऐसा नहीं है। ऐसा स्वतन्त्र द्रव्य है।

भूल करने में भी स्वतन्त्र है। तू परिभ्रमण के समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं। आहा...हा...! है? **तू अन्दर गहराई में उतरकर देख,...** तू अन्दर गहरा उतरकर देख। **असली तत्त्व को पहिचान। तेरा दुःख टलेगा, तू परम सुखी होगा।**

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ कृष्ण-१, शुक्रवार, दिनाङ्क २१-०७-१९७८
वचनामृत-१२१-१२३ प्रवचन-४४

आचार्यदेव करुणा करके जीव को जगाते हैं.... थोड़ा आ गया है। **जाग रे! भाई, जाग। तुझे निद्रा में दिशा नहीं सूझती।** जैसे नींद में दिशा नहीं सूझती, वैसे इस अज्ञान में तुझे दिशा नहीं सूझती। **तू अपनी भूल से ही भटका है। तू स्वतन्त्र द्रव्य है; भूल करने में भी स्वतन्त्र है। तू परिभ्रमण के समय भी....** यह शब्द कल हिन्दी में देखा था। रखडपट्टी अर्थात् परिभ्रमण के समय। तुम्हारी भाषा। रखड़पट्टी अर्थात् परिभ्रमण के समय। कहा, यह भाषा हिन्दी क्या है इसमें? आहा...हा...! तू परिभ्रमण के समय भी, नरक और निगोद के परिभ्रमण के समय भी, **शुद्ध पदार्थ रहा है।** आहा...हा...! यह तो शुद्धचिद् आनन्दघन शुद्ध ही रहा है। चाहे तो नरक और निगोद की दशा में अनन्त बार रहा, परिभ्रमण के भव में, वस्तु तो है वह है, शुद्ध है। आहा...हा...! समझ में आया? क्या कहा?

सन्त-आचार्य, जगत को जगाते हैं कि जाग। तूने अनन्त काल में अनन्त भव किये और अनन्त परिभ्रमण में अनन्त-अनन्त भव किये, प्रभु! परन्तु तेरी चीज़ जो है, वह तो त्रिकाल आनन्दकन्द और शुद्ध रही है। कैसे जँचे? बात अभी चलती नहीं। आहा...हा...! ये तेरे शुभाशुभभाव तुझे अनन्त बार किये, उस समय भी वस्तु तो शुद्धरूप ही रही है। आहा...हा...! ये शुभ और अशुभभाव अनन्त बार किये; पाप के भाव अनन्त बार किये, वैसे दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव भी अनन्त बार किये हैं; ये कोई नयी चीज़ नहीं है। आहा...हा...! वास्तव में तो ये शुभ-अशुभभाव, भव है। भगवान अन्दर शुद्ध चैतन्य भिन्न है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर ने जो आत्मा को देखा, वह स्वयं को देखा, ऐसा नहीं परन्तु दूसरे के आत्मा को देखा, वह अत्यन्त आनन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यघन देखा है। आहा...हा...! तेरे परिभ्रमण के मिथ्याभ्रम में भी... आहा...हा...! मैं आत्मा नहीं—ऐसी मान्यता के काल में भी, वह मान्यता द्रव्य में नहीं है। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह? नास्तिक था कि मैं हूँ नहीं—ऐसे काल में भी, तेरे द्रव्य में उस नास्तिकता की पर्याय अन्दर में नहीं थी। आहा...हा...! वह तो शुद्ध चैतन्यघन प्रभु तू तो है। आहा...हा...! है? **यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं।** परमेश्वर, तीर्थंकरदेव और मुनि—दिगम्बर सन्त ऐसा कहते हैं, हम तुझे कोई महिमावन्त पदार्थ अन्दर है, उसे हम तुझे बतला रहे हैं, प्रभु! आहा...हा...! वहाँ तू नज़र कर, तुझे चैतन्य की प्रतीति और चैतन्य की प्राप्ति होगी। आहा...हा...! तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। इसके बिना लाख तेरे उपाय दूसरे कर तो इस सम्यग्दर्शन-धर्म की शुरुआत नहीं होगी। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। सम्प्रदाय में तो मिले ऐसा नहीं है। यह तो बाहर में करो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, तप करो... यह सब तो राग की क्रियायें हैं। आहा...हा...! यह राग की क्रिया भी अनन्त बार की है। आहा...हा...! तथापि यह वस्तु है, वह शुद्धस्वरूप से टली नहीं है, यह घिस नहीं गयी है; यह तो शुद्ध चैतन्यघन... आहा...! यह कैसे जँचे? बापू!

सर्वज्ञ जिनेश्वर ने तो ऐसा कहा कि तुझे परिभ्रमण के काल में शुभ-अशुभभाव अनन्त बार हुए, तथापि तू तो अन्दर शुद्ध है। आहा..हा...! ऐसी कोई महिमावन्त वस्तु तुझे बतला रहे हैं। आहा...हा...! कठिन काम, भाई! **तू अन्दर गहराई में उतरकर देख,....** अन्दर तल में आनन्द का नाथ भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर वह स्वयं है। आहा...हा...! उसे इन पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर अन्दर गहरा उतर। आहा...हा...! कहो कपूरभाई! यह सब सुना था वहाँ कलकत्ता में? आहा...हा...! बापू! मार्ग कोई अलग है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं प्रभु! तू परिभ्रमण में अनन्त काल में तूने साधुपना भी अनन्त बार लिया परन्तु यह क्रिया, महाव्रत, और पंच महाव्रत के परिणाम (थे), वे तो राग और आस्रव है। आहा...हा...! उस समय भी तू तो-वस्तु तो शुद्ध ही है वहाँ। ऐसी कोई महिमावन्त वस्तु तुझे बतला रहे हैं, कहते हैं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

तू अन्दर गहराई में उतरकर देख,... गहरा उतरकर अर्थात्? इन शुभ और अशुभभाव में से हटकर, आनन्द का नाथ प्रभु अन्तर सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप प्रभु है। आत्मा अन्दर सिद्धस्वरूप है। आहा...हा...!

'सिद्ध समान सदा पद मेरौ' आता है? 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरौ।' आहा...हा...! अन्तर सिद्धस्वरूपी प्रभु है। तेरी मलिनदशा के काल में भी वस्तु तो सिद्धस्वरूप ही है। आहा...हा...! कैसे जँचे? कभी अभ्यास नहीं होता, सुनने को नहीं मिलता। यह तो बाहर में यह करो और वह करो, यह करो और वह करो। आहा...हा...! करने की क्रिया के कर्ता में तो मरण है। शुद्ध चैतन्य का इसमें अनादर है। आहा...हा...! कठिन बातें बापू! आचार्य और सन्त ऐसा कहते हैं, तुझे हम गहरा उतरने को कहते हैं, भाई! अन्दर में जा, जहाँ भगवत्स्वरूप, सिद्धस्वरूप बिराजता है। आहा...हा...! कैसे गले उतरे? आहा...हा...!

पर की दया पालने का भाव भी राग है और उसमें स्वरूप की हिंसा है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहा...हा...! आहा...हा...! क्योंकि राग के पीछे अन्दर प्रभु शुद्ध सिद्धस्वरूपी बिराजता है। उसका तुम्हें अनादर करके राग का आदर किया। पर की दया पाल नहीं सकता, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, परन्तु पालने का भाव हुआ, वह भी शुद्ध द्रव्य से भिन्न जाति है। आहा...हा...! सूरजमलजी! ऐसी बातें हैं। पहचानते हो इन्हें? पाटनी के भाई, नेमीचन्द, नेमीचन्द पाटनी। आहा...हा...!

यहाँ प्रभु! ऐसा कहते हैं कि जहाँ प्रभु सच्चिदानन्द ध्रुव... जो तेरी क्रीड़ायें हैं, वे सब वर्तमान पर्यायें / दशा में है, शुभ और अशुभ भावना भावो, उस रूप चैतन्यद्रव्य तो कभी हुआ नहीं। ऐसा गहरा उतरकर अन्दर देख। आहा...हा...! अन्तर में तत्त्व पड़ा है वहाँ, अन्तर्मुख देख। आहा...हा...!

असली तत्त्व को पहिचान। असली चैतन्यतत्त्व, ज्ञायकतत्त्व भगवान जिनेश्वर ने कहा वह, हों! अन्यमत सब कहते हैं, उनने जाना नहीं। जिनेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने, जिन्होंने आत्मा अन्दर है, ऐसा कहा वह तो शुद्ध चिदानन्द, सिद्धस्वरूपी उसे पहिचान, उसके बिना तेरा जन्म-मरण नहीं मिटेगा, प्रभु! आहा...हा...! आहा...हा...!

www.vitragvani.com

चौरासी के अवतार में यह दु:खी है। ये करोड़ोंपति, अरबोंपति बेचारे भिखारी, रंक हैं, दु:खी हैं। आहा...हा...! इनके राग की क्रीड़ाओं में मसल गये हैं। अन्तर चैतन्य भिन्न है, उसका इसे भान नहीं है। आहा...हा...!

देव-स्वर्ग के सुखों की कल्पना में भी भगवान आत्मा उस काल में भी भिन्न रहा है। आहा...हा...! उस कल्पना में सुख है, स्वर्ग में (सुख है)-ऐसी मान्यता है, वह मिथ्याभ्रम है। सुख तो प्रभु! अन्दर में आनन्द अन्दर में है। आहा...हा...! जैसे हिरण की नाभि में कस्तूरी है परन्तु हिरण को उस कस्तूरी की कीमत नहीं है; वैसे यह भगवान आत्मा इन दया, दान के, राग के विकल्प के पीछे अन्दर (है)। जैसे उस मृग के अन्दर में कस्तूरी है, वैसे इस राग के पीछे भगवान शुद्धचिद्घन है। अरे! कैसे (जँचे)?

आनन्दघन अमृत का सागर है, प्रभु! आहा...हा...! स्वयंभूरमण समुद्र तो असंख्य योजन में है और जिसके तल में रत्न पड़े हैं, वहाँ रेत नहीं है। भगवान के ज्ञान में अन्तिम स्वयंभू द्वीप है। असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र है, उसमें यह बीच का जम्बूद्वीप है। अन्तिम स्वयंभू असंख्य योजन में विस्तृत है। पूरे द्वीप और समुद्र में से यह एक ही समुद्र समस्त द्वीप समुद्र की चौड़ाई से तीन योजन चौड़ा अधिक है। क्या कहा? अरे! किसे पता है? अन्तिम समुद्र है, यह इसकी ओर के असंख्य द्वीप समुद्र जो हैं, उनकी जो चौड़ाई है, उनसे अन्तिम समुद्र तीन योजन अधिक चौड़ा है, इन सबकी चौड़ाई की अपेक्षा। उसमें नीचे रत्न पड़े हैं, प्रभु! कहते हैं कि वहाँ रेत नहीं है।

अत: यह स्वयंभू भगवान चैतन्यप्रभु... आहा...हा...! जिसे पुण्य और पाप के विकल्प के राग के पीछे भगवान अनन्त चैतन्यरत्न से भरपूर भगवान है, भाई! तुझे पता नहीं। आहा...हा...! तू चैतन्य रत्नाकर है। आहा...हा..! उसे अन्दर देख। तूने कभी बाहर से नजर छोड़कर अन्दर में (नजर) की नहीं है, बाहर में ही बाहर में भ्रमण—यह किया और यह किया और यह किया, धन्धा किया और व्यापार किया, स्त्री को सम्हाला और बच्चे को सम्हाला... यह पापभाव; और दया की, दान किया, व्रत किया, भक्ति की, पूजा की, और यात्रा की, यह सब पुण्य-पाप; दोनों विकारभाव है। आहा...हा...! उन्हें छोड़कर अन्दर निर्विकारी प्रभु है। सर्वज्ञ ने देखा है। श्रीमद् में ऐसा आता है न? 'सर्व जीव है सिद्धसम'—आत्मसिद्धि। 'सर्व जीव है सिद्धसम जो समझे वे होय' जो कुछ करे तो हो-

www.vitragvani.com

ऐसा नहीं; समझे तो हो। आहा...हा... ! यह यहाँ कहते हैं, **तू अन्दर गहराई में उतरकर देख, असली तत्त्व को पहिचान। तेरा दुःख टलेगा,....** आहा...हा... ! और **तू परम सुखी होगा।** आहा...हा... ! क्योंकि आनन्दस्वरूप है प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रूप जिसका स्वरूपवान है। आहा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द। यह इन्द्रिय के सुख की कल्पना तो ज़हर है। पाँचों इन्द्रिय के विकल्प की कल्पना—भोग में मुझे अच्छा लगता है, पैसा करोड़, दो करोड़ की आमदनी हो तो मुझे ठीक पड़ता है, यह राग तो ज़हर है। आहा...हा... ! वह तो ज़हर का प्याला पीता है। भगवान आत्मा इस ज़हर के प्याले से भिन्न अन्दर है। अरे ! ऐसी बात कैसे जँचे ?

तेरा अन्तर देख, तेरी दुःख की दशा जो विकार की-पुण्य-पाप की है, वह मिटेगी और उसके स्थान में तुझे सुख की दशा प्रगट होगी। आहा...हा... ! इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। कल उतावल से थोड़ा-सा हुआ था।

तू आत्मा में जा तो तेरा भटकना मिट जाएगा। जिसे आत्मा में जाना हो, वह आत्मा का आधार लेता है॥१२२॥

१२२, **तू आत्मा में जा तो तेरा भटकना मिट जाएगा।** आहा...हा... ! भगवान आत्मा अनन्त चैतन्य के रत्न के गुण से भरपूर, अतीन्द्रिय आनन्द से भरा हुआ, लबालब भरा हुआ पदार्थ है, भाई ! तुझे पता नहीं। आहा...हा... ! **तू आत्मा में जा....** ऐसा जो प्रभु है, वहाँ तू अन्दर जा। आहा...हा... ! 'पर से खस, आत्मा में बस, इतना संक्षिप्त टच, यह तेरे लिये बस।' यह वीतराग की वाणी है। आहा...हा... ! आहा...हा... ! यह पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव भी राग हैं, दुःख है, अकुलता है, बापू ! तुझे पता नहीं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग तो पाप ही है और दुःख ही है... आहा...हा... ! परन्तु दया, दान, भक्ति-देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का भाव-(भी आकुलता है) । बापू ! कठिन पड़े ऐसा है, भाई ! आहा...हा... ! प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख तू देखेगा तो तुझे राग होगा। तेरे सन्मुख तू देख, जहाँ अनन्त आनन्द से भरपूर प्रभु है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

तू आत्मा में जा.... आहा...हा... ! देव-गुरु और शास्त्र; सर्वज्ञ परमेश्वर देव, गुरु निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त और सर्वज्ञ की वाणी, उसकी श्रद्धा और उसकी सन्मुखता में भी राग है। वहाँ आत्मा को लाभ जरा भी नहीं, नुकसान है। आहा...हा... ! अन्तर्दृष्टि होने पर भी, भाव आवे परन्तु वह भाव है, वह दुःखरूप है – ऐसी बात है। इसलिए **तू आत्मा में जा....** बाहर में भटकने के विकल्प में रूका है। आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है प्रभु ! जिनमार्ग ऐसा कोई सूक्ष्म है। आहा...हा... ! यह तो बहुत बार कहा जाता है, नहीं ?

घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,
मत-मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

अपनी मान्यता के मत में पागल हो गया, पागल। जिनस्वरूपी भगवान बिराजता है, अन्दर वीतराग मूर्ति है। वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागता आयेगी कहाँ से ? आहा...हा... ! कहीं बाहर से आती है ? सर्वज्ञ और परमेश्वर वीतराग केवली हुए, वह अनन्त वीतरागता और अनन्त ज्ञान-आनन्द आदि दशा आयी कहाँ से ? आहा...हा... ! भाई ! तू वीतरागस्वरूप जिनस्वरूपी ही है। ऐसे जिनस्वरूप में अन्दर जाने से तुझे वीतरागी सम्यग्दर्शन होगा, वीतरागी ज्ञान होगा और वीतरागी स्वरूप की रमणता होगी। आहा...हा... ! तेरा भटकना मिट जायेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! है ? **तू आत्मा में जा....** लाईनें तो दो इतनी है परन्तु.... यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी राग है और दुःख है। आहा...हा.. ! कठिन बात। भगवान की-त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की भक्ति... भगवान कहते हैं कि हम तो तुझसे भिन्न परद्रव्य हैं। इसलिए तेरे द्रव्य को चूककर हम परद्रव्य (ऐसे) हमारे पर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही होगा। आहा...हा... ! मोक्षपाहुड़ की सोलहवीं गाथा में ऐसा कहा है कि **परदव्वादो दुग्गई** हम तेरी अपेक्षा से परद्रव्य हैं। हमारे प्रति लक्ष्य जायेगा और भक्ति का भाव (आवे), वह चैतन्य की दुर्गति है। कठिन काम। भाव होता है, आता है, ज्ञानी को भी राग होता है परन्तु है तो दुःखरूप। आहा...हा... !

तू आत्मा में जा.... अरे ! यह बात कैसे जँचे ? एक तो बाहर में स्त्री, पुत्र और धन्धे में पूरे दिन उलझकर पड़ा है बेचारा। बाईस घण्टे, तेईस घण्टे तो वहाँ पाप में। यह धन्धा और यह स्त्री और पुत्र को खिलाना, भोग लिया और... अर..र ! पाप में, पाप में पड़ा है।

www.vitragvani.com

उसमें घण्टे भर सुनने को मिले तो वे सुनानेवाले ऐसे इसका घण्टा लूट लेते हैं। तुम हमारी भक्ति करो, व्रत पालन करो तो कल्याण हो जायेगा। इसका बेचारे का घण्टा लुट जाता है। बाबूलालजी ! आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि **तू आत्मा में जा....** मेरे सन्मुख देखना छोड़ दे, परमात्मा कहते हैं। आहा...हा... ! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में (ऐसा आया है)।

प्रभु बिराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में तो सीमन्धर प्रभु बिराजते हैं, मौजूद हैं, वाणी है, समवसरण है। आहा...हा... ! विहरमान तीर्थंकर बिराजते हैं। आहा...हा... ! उनकी वाणी में... कुन्दकुन्द आचार्य आठ दिन गये थे (वहाँ से) सुनकर, आकर शास्त्र बनाये। आहा...हा... ! उस शास्त्र में ऐसा कहा, भाई ! तू तुझे देख न ! आहा...हा... ! तू कोई चीज़ है या नहीं ? और तू कोई वस्तु है तो वस्तु का कोई स्वभाव, जैसे वस्तु शाश्वत् है तो उसका स्वभाव भी कोई शाश्वत् है या नहीं ? यह तूने देखा है कभी ? विचार किया है ? आहा...हा... ! आहा...हा... !

प्रभु आत्मा, वह चीज़ है, वह टिकता ध्रुव स्थायी अविनाशी तत्त्व है और उसके साथ रहे हुए ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त गुण भी साथ में रहे हुए अविनाशी हैं। आहा...हा... ! ऐसे आत्मा में जा। इस 'जा' का अर्थ इस पर्याय को वहाँ झुका, ऐसा। द्रव्य-गुण तो हैं वे हैं परन्तु वर्तमान पर्याय है, वहाँ ले जा। तो वह तुझे निश्चित-सिद्ध हो गया—द्रव्य-गुण और पर्याय। परन्तु द्रव्य-गुण और पर्याय भी अभी तो सुने न हो। आहा...हा... ! जो यह तो अभी जैन परमेश्वर की इकाई है। द्रव्य और गुण त्रिकाली ध्रुव आनन्दकन्द है। अब तेरी वर्तमान दशा जो बहिर्मुख है, उसे अन्तर में ले जा, तो द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और तेरी पर्याय भी शुद्ध होगी। आहा...हा... ! और बहिर्मुख रखेगा तो तेरी पर्याय अशुद्ध होगी। आहा...हा... ! ऐसा है।

लोगों को सुनने नहीं मिलता। बेचारे क्या करें ? ऐसी की ऐसी जिन्दगी (चली जाती है)। सिर पर मृत्यु के नगाड़े बजते हैं। आहा ! देह छूटने का अवसर तो आनेवाला है। हैं ? वह क्षण आयेगा ऐसा कि अनजाना एकदम आयेगा। आहा...हा... ! उससे पहले यह तत्त्व क्या है ? यह समझ में नहीं लिया (तो) यह अवतार सब ढोर जैसा अवतार है।

www.vitragvani.com

भले बाहर से करोड़पति और अरबपति हो। आहा...हा...! छोटाभाई! क्या होगा यह सब? दुनिया से बहुत अन्तर परन्तु यह तो... दुनिया तो जानते हैं न बापू! आहा...हा...! यहाँ तो शरीर को ८९ वर्ष हुए। शरीर को ८९ (हुए); बहुत सब जाना और बहुत देखा है। प्रत्येक सम्प्रदाय को देखा है, बापू! यह चीज़, बापू! दूसरी है, भाई! आहा...हा...! किसी ने कहीं व्रत में जोड़ दिया और किसी ने तप में जोड़ दिया और किसी ने भक्ति में जोड़ दिया, यह सब एक ही प्रकार है।

मुमुक्षु : आप किसमें जोड़ोगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! तू आत्मा में जुड़ जा। ऐसे राग में जुड़ गया है (वहाँ से पराङ्मुख होकर), यहाँ जुड़ जा, बापू! अपूर्व बात है प्रभु! अनन्त काल में एक सैकेण्ड भी कभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और उसका विषय क्या है?-इसने जाना नहीं। आहा...हा...!

तू आत्मा में जा.... परन्तु आत्मा कौन है, यह जानेगा, महिमा आयेगी तो जायेगा न? नहीं तो बाहर की महिमा में तो अनादि से पड़ा है। परिभ्रमण (तो करता ही है)। आहा...हा...! आहा...हा...! **तेरा भटकना मिट जाएगा।** अथडाऊ समझे? परिभ्रमण। यह गुजराती भाषा सादी है। **जिसे आत्मा में जाना हो, वह आत्मा का आधार लेता है।** आहा...हा...! जिसे आत्मा में जाना है, वह आत्मा का आधार ले। पर के आधार से अन्दर में नहीं जाया जाता। देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति के भाव से भी अन्दर में नहीं जाया जाता (क्योंकि) वह राग है। आहा...हा...! समझ में आया?

जिसे आत्मा में जाना हो.... वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा, शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द में जिसे जाना है। **वह आत्मा का आधार लेता है।** जिसमें जाना है, उसका आधार ले, उसके आश्रय में जा। आहा...हा...! कोई भी विकल्प है, भक्ति का या नाम स्मरण के राग की वृत्ति होती है, उसके आधार से अन्दर में नहीं जाया जाता। अरे! प्रभु! ऐसी बातें हैं। बहुत अन्तर, भाई! बहुत फेरफार।

एक तो ऐसा लगे कि यह क्या है? यह क्या है? ऐसा यह क्या? धर्म का स्वरूप ऐसा होगा? पहले तो सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, लो! धूल में भी

www.vitragvani.com

नहीं। सामायिक कहाँ थी तुझे ? होगी ? ऐ ई! छोटाभाई! आत्मा कौन है ? कैसी चीज़ है ? यह अनुभव में, दृष्टि में आयी नहीं और सामायिक तो अन्दर समता का, वीतरागता का लाभ, (वह सामायिक है)। वीतरागी जिनस्वरूपी आत्मा है—ऐसा जिसे अनुभव हो, वह बाहर से हटकर अन्दर में जाये, फिर स्वरूप में स्थिर हो, तब उसे सामायिक होती है, समता होती है। आहा...हा...! यह तो सब पहाड़े का एकड़ा है। आहा...हा...! कठिन काम, भाई! परमेश्वर और वह भी जिनेश्वर के अतिरिक्त यह पंथ / मार्ग ऐसा अन्यत्र कहीं है नहीं।

वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने त्रिकाल जाना, देखा; ऐसा जाननेवाला किसी दूसरे पंथ में है भी नहीं। समझ में आया ? आहा...हा...! ऐसे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की आज्ञा और हुकम है, प्रभु! तू तुझमें जा न! आहा...हा...! आहा...हा...! तेरा भटकना मिट जायेगा क्योंकि आत्मा में भटकने का और भटकने का भाव आत्मा में है ही नहीं। आहा...हा...! भटकने का भाव जो राग है। आहा...हा...! (वह आत्मा में नहीं)।

मुनि जो सच्चे सन्त आत्मध्यानी-ज्ञानी होते हैं, उन्हें अन्तर आनन्द की मोहर-छाप —अन्तर आनन्द का वेदन उग्र होता है; ऐसे जीव को भी जो महाव्रत का राग आवे... आहा...हा...! तो वहाँ तो प्रभु कहते हैं कि वह जगपंथ है। वह शुभराग है, वह संसारपंथ है। समयसार नाटक में मोक्ष अधिकार में ४० वाँ बोल है। समझ में आया ? नहीं आया ? समयसार नाटक नहीं लगता ? जगपंथ। आहा...हा...! गजब बात बापू! समयसार नाटक। ये कुन्दकुन्दाचार्य कथित पाठों का अर्थ किया अमृतचन्द्राचार्य ने, उसमें से निकाला समयसार नाटक, उसमें से कलश बनाये, वे यह कलश हैं, इनमें से बनाया समयसार नाटक। आहा...हा...! वहाँ ऐसा कहा कि भगवान कहते हैं कि मेरी भक्ति का भाव तुझे आता है, वह जगपंथ है, भव का भाव है। आहा...हा...! अरे! दुनिया बाहर की बात में और प्रेम में उलझ गयी है।

मुमुक्षु : मज़ा बहुत आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं आता, अज्ञानी मान बैठा है। आहा...हा...! भक्ति में नगाड़ा बजे और ढोल ऐसे... क्या कहलाता है तबला, तबला, तबला और हाथ

www.vitragvani.com

में वह... यह अभी वे हरे कृष्ण-हरे कृष्ण नहीं करते ? अमेरिकावाले मुम्बई में बाबा होकर आते हैं। हरे कृष्ण-हरे कृष्ण (करते हुए) ऐसा बजाते हैं। कहाँ हरे कृष्ण कौन है ?

हरि कौन ? और कृष्ण कौन ? आहा...हा... ! हरि तो आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित वह हरि, जो अज्ञान को-राग-द्वेष को हरे, वह हरि और कृष्ण-कर्म को कृष करे, वह कृष्ण। विकार को कस डाले और मिटावे, वह कृष्ण-आत्मा है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : उस कृष्ण भगवान की जय क्यों नहीं बोलते ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे (कृष्ण) समकिती ज्ञानी थे। आहा...हा... ! आत्मज्ञानी। सूक्ष्म बात है बापू ! आहा...हा... ! वे तो आत्मा में थे परन्तु ज़रा अस्थिरता थी, वे उसमें नहीं थे। ये बातें बहुत कठिन हैं। सम्यग्दृष्टि जीव तो आत्मा के ज्ञानस्वरूप में होता है। यह राग आवे उसमें वह नहीं होता; उसका तो वह जाननेवाला रहता है। ऐसी बातें। भाई ! जिसे राग से भेदज्ञान की धारा सदा बहती है, शुरुआत धर्मी को। परन्तु राग का विकल्प जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का आता है, उससे भी भेदज्ञान की धारा भिन्न वर्तती है और यह राग है, वह कर्मधारा है। वह धर्मधारा नहीं। आहा...हा... ! इतना अधिक फेरफार, बापू ! मार्ग तो ऐसा है भाई ! अपूर्व-जिसने पूर्व में कभी किया नहीं, पूर्व में कभी चैतन्य कौन है, उसे इसने देखा-जाना नहीं। बाहर की सिरपच्ची करके पड़ा, ज़िन्दगी व्यतीत की। आहा...हा... !

आज दिव्यध्वनि का दिन है। भगवान महावीर परमात्मा को वैशाख शुक्ल दसवीं को केवलज्ञान हुआ था, वाणी नहीं निकली और उस वाणी को सुननेवाले पात्र भी वहाँ नहीं थे। वह छयासठ दिन में आज—वैशाख शुक्ल दसवीं से छयासठ दिन—में इन्द्र, (गौतम) जो वेद के ज्ञाता थे, उन्हें ले आये।

मुमुक्षु : किसी जैन को क्यों नहीं लाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी योग्यता जबरदस्त थी न ! गणधर होने की योग्यता थी। इन्द्र जिसे लावे, वह कौन होगा ? आहा...हा... ! वे गौतम, जो वेद को माननेवाले, वैसे प्रकृति शान्त, कषाय मन्द बहुत, महिमा की। उन्हें बुलाया। जहाँ आये समवसरण में... आहा...हा... ! जहाँ अन्दर गये, वहाँ मान गल गया। मानस्तम्भ होता है। भगवान बिराजते

www.vitragvani.com

हैं वहाँ तीर्थंकर के समवसरण में मानस्तम्भ होता है, चारों और चार (होते हैं)। अलौकिक रत्न के (बने हुए होते हैं।) जैसे यह है न, वैसे रत्न के होते हैं। उसमें भगवान की प्रतिमा होती है, उसे देखकर उनका मान गल गया। ओहो...हो...!

आज भगवान की वाणी आयी, सुनी... आहा...हा...! सबेरे बहुत कहा था। अन्तर्मुहूर्त में जिन्होंने बारह अंग की रचना की, वह दिन यह है।

'मुख ओंकार ध्वनि सुनी, मुख ओंकार ध्वनि सुनी, अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारै' वह आज का दिन है। आहा...हा...! तीन लोक के नाथ महावीर परमात्मा को केवलज्ञान हुआ, तथापि वाणी बन्द (थी)। श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि वाणी निकली। झूठ बात है। भगवान की वाणी निकले और सुननेवाले न हों-ऐसा होता ही नहीं। समझ में आया? क्योंकि वाणी के कर्म जो पूर्व में बँधे थे, तब आत्मा के अनुभव में विकल्प ऐसा आया कि अरे! जगत जीव ऐसा समझे। उसमें पुण्य बँध गया है, उस बन्ध में ही वाणी में ऐसे भाव निकले कि समझनेवाले होते ही हैं। समझ में आया?

श्वेताम्बर में स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दोनों में ऐसा आता है कि केवल (ज्ञान) हुआ और तुरन्त वाणी निकली परन्तु गणधर नहीं थे, वे अभाविया पुरुष... वे सब कल्पित बातें हैं। यह तो सर्वज्ञ की कहीं हुई बात है। केवल (ज्ञान) हुआ (पश्चात्) छियासठ दिन तक वाणी नहीं निकली, वह आज छियासठवाँ दिन है। गौतम को-गणधर को जहाँ लाये, वहाँ वाणी निकली, ॐध्वनि खिरी। वह 'मुख ओंकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारै' वे चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना गणधर ने इस दिन की थी। आहा...हा...! उसका यह अंश है-समयसार। उसमें से कहे हुए यह बहिन के वचन का सार है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! कठिन पड़ता है।

जिसे आत्मा में जाना हो, वह आत्मा का आधार लेता है। अर्थात् क्या कहते हैं? जिसे आत्मा में दृष्टि करनी है, उसे देव-गुरु का भी आधार नहीं लेना चाहिए, उनकी भक्ति के राग का भी आधार नहीं लेना चाहिए तथा राग को जाननेवाली वर्तमान दशा का भी आधार नहीं लेना चाहिए; अन्दर में जानेवाले को आत्मा का आधार लेना चाहिए,

www.vitragvani.com

त्रिकाली ज्ञायकभाव का आधार लेना चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया? **जिसे आत्मा में जाना हो, वह आत्मा का आधार लेता है।** आहा...हा...! थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीरता भरी है। जिसे आत्मा में जाना है, वह आधार तो आत्मा का ले। उसमें जाना, वह आधार राग का और निमित्त का ले तो अन्दर जायेगा कहाँ से? आहा...हा...!

'प्रभु का मारग है सूरों का ए कायर का वहाँ काम नहीं।' आहा...हा...! वीर का मार्ग शूरवीर का है। आहा...हा...! 'वीर्यतेति पैरते इतिवीर्य' जिसकी वीर्यदशा-वर्तमान अन्दर में जाये, वह वीर्य, द्रव्य का आधार लेता है। आहा...हा...! उस वीर्य-पर्याय को द्रव्य का आधार होता है, उसे आधार अपनी पर्याय का भी नहीं, राग का भी नहीं, निमित्त का नहीं। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप ही है, ऐसी स्थिति ही है और वह जिनेश्वरदेव के सिवाय कहीं सत्य बात है ही नहीं। अभी तो सम्प्रदाय में भी गड़बड़ उठी है। आहा...हा...! अन्य को जैनमार्ग बनाकर बैठे हैं। आहा...हा...! राग में धर्म मनाते हैं, उन्होंने तो अन्य में जैनधर्म मनाया है। आहा...हा...! इस भक्ति में भी परमात्मा या देव-गुरु की भक्ति में धर्म मनावे, वह भी राग में मनवाया, वह जैनधर्म नहीं। आहा...हा...! १२२ हुआ, १२२ बोल (पूरा हुआ)। इसमें ४३२ बोल हैं। 'बहिनश्री के वचनामृत' में ४३२ बोल हैं, एक-एक बोल अमूल्य है परन्तु समझने के लिये तैयारी चाहिए, बापू! क्या हो? आहा...हा...!

चैतन्यरूपी आकाश की रम्यता सदाकाल जयवन्त है। जगत के आकाश में चन्द्रमा और तारामण्डल की रम्यता होती है, चैतन्य-आकाश में अनेक गुणों की रम्यता है। वह रम्यता कोई और ही प्रकार की है। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करने से वह रम्यता ज्ञात होती है। स्वानुभूति की रम्यता भी कोई और ही है, अनुपम है॥१२३॥

१२३ **चैतन्यरूपी आकाश की रम्यता सदाकाल जयवन्त है।** भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु, ऐसे आकाश की रम्यता। चैतन्यरूपी आकाश। आहा...हा...! उसकी रम्यता **सदाकाल जयवन्त है।** आहा...हा...! यह तो आनन्द की रम्यता से भरपूर भगवान

www.vitragvani.com

अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु आत्मा है। सदा जयवन्त वर्तता है। आहा...हा...! त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, पर्याय में नहीं आता, वह सदा वर्तता है, सदा वर्तता है। आहा...हा...! समझ में आया? चैतन्यरूपी आकाश। यह आकाश नहीं, इस आकाश में तो चन्द्र और सूर्य और यह है। यह तो चैतन्यरूपी आकाश अन्दर। आहा...हा...! जिसकी रम्यता सदाकाल, जिसके आनन्द की रमणता, ज्ञान की रमणता अर्थात् शक्ति सदाकाल जयवन्त वर्तती है। आहा...हा...!

जगत के आकाश में.... इस जगत का आकाश है (वह), उसमें **चन्द्रमा और तारामण्डल की रम्यता होती है,...** चन्द्र है न, आहा...हा...! सूर्य और तारामण्डल की रम्यता होती है। **चैतन्य-आकाश में अनेक गुणों की रम्यता है।** जगत के आकाश में चन्द्र और तारा आदि की रम्यता दिखती है। तारा जगमग-जगमग (होते हैं) छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारा हैं। एक चन्द्रमा के सामने... समझ में आया? छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़कोड़ी तारा हैं। छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी। अर्थात् एक करोड़ नहीं परन्तु कोड़ाकोड़ी। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग की वाणी में यह आया है कि एक चन्द्र और एक सूर्य-चन्द्र के साथ में छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे हैं। जगमग-जगमग, ज्योति।

इसी प्रकार इस **चैतन्य-आकाश में...** है न? **अनेक गुणों की रम्यता है।** उसमें जैसे तारों की रम्यता है, वहाँ तो संख्या है। छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर (कोड़ाकोड़ी) संख्या है। यहाँ अनन्त गुणों की रम्यता अन्दर है, बापू! आहा...हा...! 'स्वयं ज्योति सुखधाम' यह तो आनन्द का धाम और स्वयं ज्योति है। तुझे प्राप्त करने के लिये किसी के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है, ऐसा तू निरालम्बन तत्त्व है। कल सबेरे बताया था भाई को, नहीं? वहाँ कलश बताया था। वहाँ पाँच आगम हैं न उसमें? समयसार, प्रवचनसार, यह पौने चार लाख अक्षर हैं। उनमें यह शब्द है। नियमसार, निरालम्ब। प्रभु! निरालम्बी अन्दर तत्त्व है। आहा...हा...! उसे किसी राग और निमित्त का अवलम्बन है ही नहीं। आहा...हा...! कैसे जँचे?

मुमुक्षु : स्वयं बैठावे तो बैठे।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; बराबर बैठे, क्यों न बैठे? परन्तु इस ओर का झुकाव ही जहाँ नहीं। आहा...हा...!

चैतन्य-आकाश में अनेक गुणों की रम्यता है। उसमें तारामण्डल था। **वह रम्यता कोई और ही प्रकार की है।** आहा...हा...! वस्तु में अनन्त गुणों की रम्यता, रमणता, चमत्कार कोई अलग ही प्रकार का है। आहा...हा...! ऐसा चैतन्य लोक अन्दर, भगवान सर्वज्ञ ने कहा जो आत्मा, उस चैतन्य लोक में अनन्त गुणों की रम्यता भरी है, अनन्त गुणों का आनन्द भरा है। आहा...हा...! अरे!

वह रम्यता कोई और ही प्रकार की है। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करने से वह रम्यता ज्ञात होती है। क्या कहा? जैसे तारे हैं परन्तु आँख खोलकर देखे तो दिखें न? रात्रि में मनुष्य हो रहा हो और एक ही दरवाजा हो और रजाई तानकर सो रहा हो, आँख बन्द हो, आँख बन्द हो, उसे सबेरे आठ बजे हों, सूर्य (उदय) हो तो खपरैल पीले दिखते हैं न? सोने जैसे पीले (दिखते हैं)। उसे कहते हैं ए.. जाग, जाग, खपरैल सोने जैसे हुए। परन्तु एक तो कमरा बन्द, ओढ़े हैं बड़े तीन (गोदड़े) और आँखें बन्द हैं। आहा...हा...! इसी प्रकार जिसे मिथ्याश्रद्धा है, मिथ्याज्ञान है कि राग से धर्म होता है, ऐसा मिथ्याज्ञान है, वह कमरे में सो रहा है अन्दर, उसे भान नहीं है, उससे कहते हैं कि जाग... जाग... परन्तु तीन पट्ट अन्धेरा, ऊपर ओढ़ा हुआ, अन्दर आँखें बन्द और बाहर दरवाजा एक। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करने से...** यह क्या कहा? अनन्त रम्यता अन्दर वस्तु होने पर भी, जब अन्तर में जाकर सम्यग्दर्शन में रम्यता, स्वसंवेदन-स्व का स्वयं से आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन, आनन्द का वेदन प्रत्यक्ष। आहा...हा...! स्वसंवेदन प्रत्यक्ष—स्व अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, का सम-प्रत्यक्ष, वेदन प्रत्यक्ष—ऐसा ज्ञान प्रगट होने से, उस सम्यग्दर्शन के काल में ऐसा ज्ञान प्रगट होने से। आहा...हा...! **वह रम्यता ज्ञात होती है।** वह आत्मा के अनन्त गुण की रम्यता (ज्ञात होती है)।

जैसे आकाश में अकेले ताराओं की रम्यता आँख खोलकर देखे तो दिखती है। आहा...हा...! उसी प्रकार भगवान अनन्त गुण की रम्यता, वह स्वसंवेदन अपना ज्ञान अपने से वेदन में आवे, ऐसे प्रत्यक्ष वेदन से ज्ञात होने योग्य है। आहा...हा...! समझ में

www.vitragvani.com

आया ? पर से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। विकल्प से ज्ञात हो-ऐसा नहीं है। पर से तो ज्ञात हो—ऐसा नहीं परन्तु पर के लक्ष्य से हुआ राग, उससे भी ज्ञात हो-ऐसा नहीं है। राग, आत्मा का स्वरूप है नहीं। वह तो विकार है, विभाव है। आहा...हा...! अमृत के सागर से उल्टा राग जहर है। आहा...हा...! उसके द्वारा आत्मा की रम्यता ज्ञात नहीं होती। उससे भिन्न पड़कर आत्मा को स्व, अर्थात् अपने से; संवेदन प्रत्यक्ष, अर्थात् राग की अपेक्षा भी जहाँ नहीं, मन की अपेक्षा नहीं; जिसे देव-गुरु और शास्त्र की अपेक्षा नहीं। अरे! देव-गुरु को शास्त्र को सुनकर जो ज्ञान हुआ, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं है क्योंकि देव-गुरु और शास्त्र को सुना और जो ज्ञान हुआ, वह तो परलक्ष्यी हुआ। ऐसी सब बात है। हुआ है ज्ञान अपनी पर्याय से अपने में; देव-गुरु-शास्त्र-वाणी तो निमित्त है परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह परालम्बी है, वह परतन्त्र ज्ञान है; वह स्वतन्त्र ज्ञान नहीं। अरे! ऐसी बाते हैं। वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष, जिसे पर की कोई अपेक्षा ही नहीं है। आहा...हा...!

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का स्व से, आनन्द के वेदन से, प्रत्यक्ष से उस आत्मा की रम्यता ज्ञात होती है। आहा...हा...! अरे! अनन्त काल गया भटकते हुए, कहीं न कहीं अटकने के साधनों में पड़ा है। कहीं न कहीं अटकने के अनन्त साधन, उनमें कहीं न कहीं अटककर मिथ्यात्व में पड़ा है। छूटने का साधन एक-स्व का आधार लेना, वह है। आहा...हा...! सूरजमलजी! ऐसी वस्तु है। आहा...हा...!

प्रभु की रम्यता... आकाश के ताराओं की रम्यता आँख खोले तो ज्ञात हो; उसी प्रकार आत्मा की रम्यता स्व-संवेदन प्रत्यक्ष करे तो ज्ञात हो। आहा...हा...! अन्दर सम्यग्ज्ञान की आँख / नेत्र उघाड़े। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। कोई कहता है कि यह किस प्रकार का धर्म ? ऐसा यह वीतरागमार्ग होगा ऐसा ? यह घण्टा भर होने आया, लो! परन्तु यह व्रत पालना और दया पालना और भक्ति (करना ऐसा) तो कुछ आया नहीं। अमुक का आया, उसे निषेध किया। आहा...हा...! वह तो राग है, उससे कहीं आत्मा ज्ञात हो-ऐसा नहीं है। आहा....हा...!

प्रभु! तेरी बलिहारी, नाथ! तू कौन है ? तुझे तेरी खबर नहीं, भाई! तेरी प्रभुता की पूर्णता... आहा...हा...! परमात्मा ने जानी, वह वाणी में भी पूर्ण नहीं कह सके। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

उस स्व रम्यता से, स्वसंवेदन रम्यता से ज्ञात हो-ऐसा है। यह अनन्त गुण से भरपूर चैतन्य चमत्कार आत्मा, वह इसके स्व-अनुभव के, आनन्द के वेदन से और ज्ञान में प्रत्यक्ष होने से पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं, ऐसे स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से ज्ञात हो-ऐसा है। आहा...हा...! अर्थात् सम्यग्दर्शन में, सम्यग्दर्शन के काल में (ज्ञात हो, ऐसा है)। यह सम्यग्दर्शन तो प्रतीति है परन्तु प्रतीति के काल में स्वसंवेदनज्ञान हुआ है, उससे ज्ञात होता है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी बात। है?

स्वानुभूति की रम्यता भी कोई और ही है,... क्या कहा? उसकी रम्यता स्वसंवेदन से ज्ञात होती है परन्तु वह स्वानुभूति-स्वसंवेदन की रम्यता भी कोई अलग ही प्रकार की है। स्वसंवेदन से त्रिकाल वस्तु की रम्यता ज्ञात होती है परन्तु यहाँ तो स्वानुभव जो हुआ-प्रत्यक्ष वेदन हुआ, उसकी भी कोई अलग ही रम्यता है। आहा...हा...! जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसकी भी अचिन्त्यता है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहा...हा...! ऐसी अनुभूति की भी कोई अलग जाति है। **अनुपम है**। उसे भी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ कृष्ण-२, शनिवार, दिनाङ्क २२-०७-१९७८
वचनामृत-१२४-१२६ प्रवचन-४५

शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाने में गुरु के अनुभवपूर्वक निकले हुए वचन, रामबाण जैसे हैं, उनसे मोह भाग जाता है और शुद्धात्मतत्त्व का प्रकाश होता है॥१२४॥

वचनामृत का १२४ वाँ बोल। १२३ हो गये हैं। **शुद्ध आत्मा का स्वरूप....** सूक्ष्म बात, बापू! अभ्यास नहीं न! अन्दर आत्मा जो वस्तुरूप से है, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है।

मुमुक्षु : ज्ञात क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें नजर कहाँ करता है? नजर सब यह दया, दान, व्रत, भक्ति, यह पुण्य-पाप संसार, वहाँ इसकी नज़रें अनादि से भटकने की है। आहा...हा...! विद्यमान चीज़ है, उसे यह देखता नहीं और जो इसमें नहीं, उसे देखकर वहाँ अटक गया है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का स्वरूप....** पहला अर्थात् शुद्ध आत्मा का स्वरूप-वह क्या? कि यह आत्मा, पुण्य और पाप के विकल्प जो राग हैं, उनसे चीज़— वस्तु भगवान आत्मा भिन्न है। आहा...हा...! वह स्वयं स्वरूप से अन्तर में सच्चिदानन्द -स्वभावी वस्तु है, भाई! इसे पता नहीं। जिसमें अनन्त... अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का

www.vitragvani.com

भण्डार है। आहा...हा...! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द और गुण, अर्थात् शक्तियाँ, स्वभाव उनका यह बड़ा गोदाम है। यह गुण का गोदाम है। परन्तु किसे पता? कभी सन्मुख देखा नहीं। आहा...हा...! गोदाम होता है न? गोदाम। यह मुम्बई में नहीं बड़े-बड़े गोदाम? वह क्या कहलाता है तुम्हारे? केसर। केसर के डिब्बे। एक बार देखा था। बहुत वर्ष पहले मुम्बई माल लेने जाते तब। बड़े केसर के डिब्बे, बड़ा गोदाम। उस समय तो एक रुपये का रुपया भर था। उस समय, ६० वर्ष पहले की बात है। अब तो कहते हैं बहुत महँगी हो गयी। कोई कल कहता था। १०० रुपये की रुपये-भर केसर। कोई कुछ कहता था। अपने को कुछ (पता नहीं।) उस समय बड़े गोदाम भरे हों, हों!

इसी प्रकार यह आत्मा... बापू! तुझे पता नहीं भाई! यह आत्मा जिसे कहते हैं, उसमें तो अनन्त गुण का वह गोदाम है। आहा...हा...! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त निर्मलता, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता—ऐसी तो अनन्त-अनन्त शक्ति कहो या गुण कहो या स्वभाव कहो, उन गुणों का गोदाम है, प्रभु। इसे गुण शोधना हो तो वहाँ मिले, ऐसा है। आहा...हा...! यह अनन्त-अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। बेहद बातें हैं, बापू! यह स्वयं सिद्ध चीज़, जिसमें बेहद आनन्द आदि शक्तियों का वह सागर है। आहा...हा...!

अनन्त-अनन्त ज्ञान आदि परमात्मा को प्रगट होते हैं। परमात्मा उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अनन्त ज्ञान प्रगट हो, जिन्हें अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द प्रगट हो; जिनके शरीर में वस्त्र का टुकड़ा भी न हो, नग्न शरीर हो। अन्तर में त्रिकाली आनन्द और ज्ञानदशा हो। आहा...हा...! जिन्हें क्षुधा और तृषा या आहार-पानी न हो। आहा...हा...! ऐसी शरीरसहित दशा में आत्मा, परमात्मा हो सकता है। आहा...हा...! अरे! दुनिया कहीं की कहीं परिभ्रमण में भटकती है। ऐसा जो गुण का धाम, वह शुद्ध आत्मा; पर्याय में-अवस्था में अशुद्धता है, उसकी हालत में-दशा में; परन्तु वह कहीं वस्तु में नहीं है। आहा...हा...!

उस शुद्ध आत्मा के स्वरूप को **बतलाने में गुरु के अनुभवपूर्वक निकले हुए...** धर्मात्मा / ज्ञानी के वचन ऐसे होते हैं, कहते हैं। आहा...हा...! वह आनन्द का धाम, उसके अनुभवपूर्वक जो वचन निकले होते हैं... आहा...हा...! **वे रामबाण जैसे हैं,...** जैसे राम

www.vitragvani.com

का छोड़ा गया बाण फिरता नहीं है, वैसे धर्मात्मा के वचन डाले फिरते नहीं। आहा...हा...! कठिन बात बहुत। यह धर्म दुनिया कहीं मानकर बैठी बेचारी। एक तो मानो संसार के पाप के कारण निवृत्त नहीं। धन्धा, स्त्री, पुत्र, परिवार को सँभालने, खेत सँभालने... आहा...हा...! लड़की हो, उसका विवाह करना; लड़का हो, उसे अच्छी जगह लगाना, पाप अकेला, अधर्म। आहा...हा...! और उसमें से इसकी दुर्गति होनेवाली।

मुमुक्षु : अब हमें करना क्या, यह कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही तो यह कहते हैं, यह करना छोड़कर और दया, दान, व्रत के परिणाम भी करने हैं-ऐसा छोड़कर, क्योंकि वस्तु में ये पुण्य-पाप के भाव है ही नहीं। वह तो दशा में अनादि से विकारीदशा उत्पन्न की है, वस्तु में नहीं। आहा...हा...! जैसे निर्मल स्फटिक है। तुमने तो निर्मल स्फटिक देखा नहीं होगा? हमने तो देखा है, वहाँ जामनगर में। पहले जब (संवत्) २०९० की साल में गये थे न? व्याख्यान चलता था, तब सब बड़े-बड़े लोग (आते थे)। वहाँ का एक दीवान है 'महेरवान' करके पारसी है, वह भी व्याख्यान में आता था। यहाँ परिवर्तन करने से पहले की बात है। वहाँ एक बड़ा डॉक्टर था, अभी मुम्बई में है। प्राणजीवन डॉक्टर है।

मुमुक्षु : अभी तो मुम्बई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी मुम्बई है। वह तो आता है न, किसी समय आता है एकाधबार। कहाँ पड़ी है? सब दुनिया की हा... हो... हा... हो... माने हुए सम्बन्ध, कोई कमाने में दो-पाँच लाख मिले वर्ष में तो हो गया... प्रसन्न-प्रसन्न और मर गया। नरक में जानेवाले हैं सब। आहा...हा...! ढोर में अवतार होनेवाले हैं सबके। भाई! धर्म का मार्ग कोई अलग है। यह पाप के कारण निवृत्त (नहीं होता), अभी पुण्य का भी ठिकाना नहीं कि देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं? इसे पढ़ना, इसे विचार करना—ऐसा समय दिन के चार घण्टे, पाँच घण्टे निकाले तो इसे पुण्य भी बँधे; धर्म तो नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! इतनी बातें सब (कठोर)। इतना भी समय नहीं मिलता, पुण्य करने का समय भी नहीं मिलता, धर्म तो कहीं रहा।

यहाँ कहते हैं कि धर्म तो गुरु उसे कहते हैं-शुद्धस्वरूप का शुद्धस्वरूप में अनुभव

www.vitragvani.com

कर, त्रिकाली भगवान परमात्मस्वरूप अन्दर है। जो कुछ परमात्मा दशा में होते हैं, वह अन्दर में शक्ति है, स्वभाव है, उसमें से होते हैं। इसलिए परमात्मस्वरूप तेरा है-ऐसे गुरु के, धर्मात्मा के वचन है। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह? परन्तु यह दिखता है कि मनुष्य है, बनिया है या ढोर है या ये बाहर के... और फिर आत्मा ऐसा-ऐसा कहाँ से निकाला? बापू! तुझे पता नहीं, भाई! यह आत्मा तो भगवानस्वरूप आनन्द का नाथ है। यह तो शुद्ध चैतन्यघन है। वस्तु है न? तत्त्व है न? यह मौजूदगी, अस्तिधारक एक चीज़ है या नहीं? तो यह अस्तिधारक चीज़ है, इसका नित्यपना है या नहीं? और नित्यपना है तो नित्यपने में स्वभाव क्या है? आहा...हा...! इसे समय ही कहाँ रहता है! आहा...हा...!

इस नित्यपने में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द - ऐसे अनन्त गुण भरे हैं। इसकी वर्तमान दशा में इसे भान नहीं। वर्तमान दशा में तो पुण्य और पापभाव करके चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहा...हा...! यह पाप करे तो नरक में जाये या पशु में जाये, पशु हो। बहुत से बनिये तो पशु होनेवाले हैं। क्यों? धर्म-आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसका सम्यग्दर्शन तो है नहीं। आहा...हा...! कठोर बात है, भाई! और सत्समागम में प्रतिदिन चार घण्टे, पाँच घण्टे वाँचन, श्रवण, मनन चाहिए, तब तो पुण्य भी हो, तब तो यह मनुष्यपना भी प्राप्त करे या स्वर्ग में जाये परन्तु वह भी नहीं है। आहा...हा...! बहुत से तो माँस और शराब तो... बनिये तो नहीं खाते, इसलिए वे नरक में तो नहीं जायेंगे। समझ में आया? आहा...हा...! परन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मूर्च्छा, कषाय के भाव-विकल्प किया करते हैं, यह किया और यह किया और यह किया। चैतन्य के स्वभाव से विरुद्ध भाव का कर्ता होकर वहाँ अटके हैं, ऐसे मरकर बहुत से तो ढोर में जायेंगे। आहा...हा...! कठिन काम, बापू! कहा नहीं था? हमारे घर का, हमारे भाई थे न? भागीदार, कुँवरजीभाई, बुआ के लड़के, अभी है न दुकान बड़ी है। उस दुकान में मैं था और मेरी दुकान थी न। पालेज, भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज है न? दुकान है न? वहाँ हमारे पिताजी की दुकान थी। मैं वहाँ (बैठता था), पाँच वर्ष तो मैंने दुकान चलायी है, सत्रह वर्ष की उम्र से बाईस-पाँच वर्ष पाप में। आहा...हा...! वे बुआ के लड़के हमारे भागीदार थे। तीन लड़के हैं। अभी तो पैसा है, ३५-४० लाख रुपये हैं। ३५-४० लाख रुपये हैं, ३-४ लाख की अभी आमदनी है। उनके पिता थे, बहुत ममता धन्धा... धन्धा... धन्धा... धन्धा...

www.vitragvani.com

धन्धा... एक बार मुझसे कहा गया। मैं तो पहले से छोटी उम्र से भगत कहलाता था। एक बार मुझसे (कहा गया), दो दुकान थी, तीस लोग थे, एक रसोई में जीमते थे।

एक बार कुँवरजीभाई को कहा गया, मेरी उम्र उस समय बीस वर्ष की। (संवत्) १९६६ के साल की बात है। ६६ की साल, बीस वर्ष की उम्र। ६८ वर्ष हुए। उस समय मैंने कहा... मैं तो पहले से भगत (कहलाता था) अन्दर पूर्व के संस्कार थे न। भाई! मुझे ऐसा लगता है... दुकान पर बैठे थे, मेरे बड़े भाई दुकान पर बैठे थे परन्तु वह तो उनकी प्रकृति सरल थी और तृष्णा कम थी और ये तो दुकान की ऐसे हो...हा... हो...हा... हा... मानो क्या किया और क्या हमने कर डाला?

याद रखो, कुँवरजीभाई! देखो! अपने माँस और दारू खाते (पीते) नहीं हैं; इसलिए तुम नरक में तो नहीं जाओगे, ध्यान रखो, कहा, यह ६८ वर्ष पहले की बात है। बीस वर्ष की उम्र... परन्तु तुम देव में जाओ, यह तुम्हारे लक्षण मुझे नहीं दिखते। इसी तरह तुम मनुष्य होओ, यह भी मुझे लक्षण नहीं दिखते—ऐसा मैंने कहा। दुकान पर बैठे थे, पैढ़ी पर बैठे थे। मात्र तुम्हारे लिये एक पशु की गति होगी—ऐसा मुझे लगता है। ढोर में जानेवाले हो तुम, याद रखो। इस दुकान में कमाया और ये पैसे इकट्ठे किये और दूसरों की अपेक्षा... रामजीभाई के सामने ऐसा बहुत कहते, ऐसा कि दूसरे की दुकान नष्ट हो गयी परन्तु मेरी दुकान ठीक रही और मैंने ऐसा किया और वैसा किया, सेठ कहलाते थे। कितनी बार पूछते? रामजीभाई पूछे कि सेठ कितनी बार कहे? हजार बार कहे? कि नहीं, नहीं, पाँच सौ बार कहे। ऐसे के ऐसे अक्ल के खाँ!

पुण्य था, दो-दो लाख की वर्ष की आमदनी थी। दो-दो लाख की दुकान की आमदनी, पैदाश। कहा याद रखो यह तुम चाहे जैसी स्थिति मानते हो परन्तु तुम्हारी गति पशु की है, ढोर की गति है। नहीं तुम्हें नरक, अपने माँस खाते नहीं इसलिए; नहीं तुम देव होनेवाले, नहीं तुम मनुष्य। इसके लक्षण तुम्हारे पास नहीं हैं और अन्त में हुआ ऐसा, सन्निपात हो गया। ऐसा किया और मैंने ऐसा किया और मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया... सन्निपात हो गया। लड़के चतुर हैं, तीन लड़के हैं। बापू! महाराज कहते थे ऐसा हो गया।

यह बहुतों को जिस प्रकार का चिन्तवन हो, उस प्रकार के स्वप्न आते हैं और उस

www.vitragvani.com

प्रकार का झुकाव, ऐसा किया और मैंने उसका किया और धन्धा किया और पच्चीस लाख रुपये एकत्रित किये, पचास लाख किये और करोड़ किये, अरब किये। उसमें तेरे तूने कहाँ किये हैं? वह तो जड़-धूल है। आहा...हा...! वह तो धूल आनेवाली हो तो आती है और धूल न आनेवाली हो तो नहीं आती। आहा...हा...! उसके बदले हमने कमाये और हमने किया, यह सब अभिमान मिथ्याभ्रम है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि शुद्ध आत्मा जो ऐसे राग से भी रहित है। आहा...हा...! दया, दान और व्रत के विकल्प से भी रहित है, ऐसा प्रभु अन्दर आनन्द का नाथ बिराजमान है। ऐसे स्वरूप को बतलानेवाले **गुरु के अनुभवपूर्वक निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं, उनसे मोह भाग जाता है...** आहा...हा...! शुद्ध आनन्द का नाथ इसे बतावे और यदि इसकी नज़र वहाँ जाये (तो) मोह का नाश होता है। भ्रम और मिथ्यात्व जो भ्रम है, उसका नाश हो जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी बात है। डोलता है अनादि से, बापू! इस विकार-पुण्य और पाप में। यह कर सकता है, पर का कुछ नहीं कर सकता। आत्मा एक पन्ना भी नहीं फिरा सकता। एक तिनके के दो टुकड़े करने हों तो वह आत्मा नहीं कर सकता क्योंकि वे जड़ परवस्तु है। आहा...हा...! करे क्या? शुभ और अशुभ परिणाम / भाव। यह कर्ता होकर करे और मिथ्यात्वभाव सेवन करे (और) दुर्गति और चार गति में भटके। आहा...हा...! बाहर में लोग मान दे। लाख, दो लाख दिये हों, पाँच लाख (दिये हों) तो। आहा...हा...!

अभी गये थे न मद्रास! वहाँ एक बड़ा हॉस्पीटल है। मद्रास में बड़ा क्या कहलाता है? यह तुम्हारा हॉस्पीटल बड़ा है। उसमें एक नानालाल भट्ट करके ब्राह्मण है, उसने उसमें छह लाख रुपये दिये हैं। वहाँ मद्रास में अभी गये थे न, खून बतलाना था न? डॉक्टर ने कहा कि पन्द्रह दिन में खून बतलाना, खून खून। इसलिए उस डॉक्टर का पता पड़ा। छह लाख जिसने दिये। महाराज! हमारे हॉस्पीटल में... हॉस्पीटल तो किसी का (था) परन्तु छह लाख दिये थे, इसलिए मुझे वहाँ बतलाना था। यहाँ से खून लेते हैं न? पन्द्रह दिन में खून लेते हैं, पन्द्रह दिन में खून लेंगे, फिर वहाँ खून की जाँच करेंगे। इसलिए वह स्वयं साथ में आया, बेचारा गया और देखा। छह लाख रुपये इसमें दिये हैं। कहा, परन्तु इसमें छह लाख धूल क्या है परन्तु?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : कितने लोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। व्यक्ति नरम है। ऐसे दिखाव बहुत नरम है। ऐसे देखो तो ब्राह्मण है। जिसका लड़का बहुत पैसा कमाता है। छह-छह लाख रुपये एक-एक हॉस्पीटल को दी, तथापि ऐसी वस्तु की खबर नहीं, धर्म की तो कहाँ किसे पड़ी है? आहा...हा...! तथा मद्रास का गवर्नर है न अभी? पटवारी। उसने कहा महाराज! हमारे गवर्नर हॉल में पधारो, हमें स्वागत करना है। पटवारी है न? क्या नाम? प्रभुदास है न! बहुत नरम व्यक्ति है। गये थे वहाँ भी, उसके पूरा बड़ा वन है। जो राजभवन है, गवर्नर का हॉल है, उसके पास चारों ओर बड़ा (बड़ा वन है)। तेरह सौ तो हिरण हैं, हिरण, खरगोश, सियार, रखे हैं। कोई मार नहीं सकता, कोई शिकार नहीं कर सकता। इसलिए वह मानो यह सब करते हैं। धूल भी इसमें धर्म नहीं है, कहा। यह तो राग की मन्दता कदाचित हो तो शुभभाव / पुण्य (होता है)। इसमें कहीं यह सब हुए, इसलिए धर्म है और तिर जायेगा, यह कुछ है नहीं। थोड़ी बात हुई थी, अमुक सीधी तो नहीं की परन्तु आढ़े से की थी, सुनता था, नरम था। गवर्नर हॉल में ले गया था। बीस मिनिट बैठे थे, बीस मिनिट परन्तु यह सब बाहर की होली... ऐसे तेरह सौ हिरण पाले और खरगोश पाले और सियार पाले। बड़ा वन है, बड़ा राजभवन का महल है, गवर्नर है न? बापू! ये सब क्रियाएँ पर की हैं। आहा...हा...! इसमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव हो तो वह पापानुबन्धी पुण्य—मिथ्यात्व / भ्रान्ति सहित का पुण्य—है। आहा...हा...! बेचारे लोग तो चिल्लाने लग जायें।

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव तो ऐसा बताता है उसे, प्रभु! तूने पुण्य और पाप के भाव का कर्ता, वह तू नहीं। पर का कर्ता तो नहीं क्योंकि तेरा स्वरूप तो शुद्ध ज्ञानघन है, वह जानने-देखनेवाला है। वह ज्ञाता प्रज्ञाचक्षु ब्रह्म-आनन्द ब्रह्म है। आहा...हा...! प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप प्रभु है। प्रज्ञा, अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म, अर्थात् आनन्द। अरे! कहाँ इसने कभी (दरकार की है)। भटकाऊ को यह कौन चीज़ है, उसका पता नहीं होता। यह बताते हुए उसे... आहा...हा...! मोह भाग जाता है - ऐसे स्वरूप के अन्दर दृष्टि होने से (मोह भाग जाता है)।

शुद्धस्वरूप से प्रभु बिराजमान हैं—ऐसा गुरु इसे बताते हैं और यह यदि उस

www.vitragvani.com

शुद्धस्वरूप में दृष्टि करे तो मिथ्यारूपी भ्रान्ति का वहाँ नाश हो जाता है। दूसरे प्रकार से-भ्रान्ति का नाश होने का उपाय एक भी है नहीं कि बहुत व्रत पालना और बहुत ब्रह्मचर्य शरीर से पालना, इसलिए भ्रान्ति मिटे-ऐसा है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

और शुद्धात्मतत्त्व का प्रकाश होता है। आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यप्रकाश की मूर्ति प्रभु! यह सूर्य का प्रकाश तो जड़ है। इस जड़ को प्रकाशित करनेवाला चैतन्यप्रकाश अन्दर है। इस चैतन्य के नूर का पूर जहाँ भरा है। आहा...हा...! परन्तु कहाँ देखना इसे? ऐसे आत्मा का अन्तर दर्शन करने से, ऐसे आत्मा की समीप में जाने से भ्रान्ति का नाश होता है और शुद्धात्मप्रकाश पर्याय में प्रगट होता है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी धर्म की बात बहुत सूक्ष्म है, बापू! यह तो करो भगवान की पूजा और फिर मन्दिर बनाओ और बड़ा रथ निकालो तो धर्म (हो जायेगा)। धूल भी धर्म नहीं, मर जा न वहाँ। वह सब बाहर की क्रिया का कर्ता होकर... आहा...हा...! भ्रमणा का सेवन करता है और उस भ्रमणा के फलरूप से यह चार गति में भटकनेवाला है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, वह मोह भाग जाता है। भाग जाता है—ऐसा लिखा, अर्थात्? शुद्ध चैतन्यस्वरूप जो गुरु ने कहा, ऐसा यदि इसने अन्दर में देखा और जाना तो मोह तो झट टूट जाता है, एकताबुद्धि तो भाग जाती है। आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वरूप में एकत्व होने पर राग की एकता का जो मिथ्यात्वभाव (वह) तो वहाँ टूट जाता है। आहा...हा...! ऐसी बात!

और शुद्धात्मतत्त्व का प्रकाश होता है। शुद्धात्मतत्त्व का (प्रकाश)। पहले राग का-अन्धकार का प्रकाश था। उसके बदले शुद्धात्मतत्त्व की दृष्टि हुई तो शुद्धात्मतत्त्व जैसा है, उसका प्रकाश पर्याय में आता है। उसकी दशा में आनन्द और शान्ति आती है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। परन्तु इसका कोई साधन होगा या नहीं? दूसरा कोई हल्का? यह तो कठिन साधन है। यही साधन है; बाकी दूसरे साधन व्यर्थ हैं। समझ में आया? आहा...हा...! १२४ (बोल पूरा) हुआ।

www.vitragvani.com

आत्मा न्यारे देश में निवास करनेवाला है; पुद्गल का या वाणी का देश उसका नहीं है। चैतन्य चैतन्य में ही निवास करनेवाला है। गुरु उसे ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं। उस लक्षण द्वारा अन्तर में जाकर आत्मा को ढूँढ़ ले ॥१२५॥

१२५, **आत्मा न्यारे देश में निवास करनेवाला है;...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान में बसनेवाला है। वह कहीं वाणी और शरीर में बसनेवाला नहीं है। आहा...हा...! यह वाणी है और यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है। इसमें आत्मा नहीं, इन परमाणुओं में आत्मा नहीं। परमाणु अलग है। इसके ज्ञान और आनन्द के देश में (आत्मा) बसता है। आहा..हा...!

आत्मा न्यारे देश में निवास करनेवाला है; पुद्गल का या वाणी का देश उसका नहीं है। आहा...हा...! जो वाणी बोली जाती है, वह आत्मा की नहीं है। आहा...हा...! इस आत्मा का देश, वाणी नहीं है; आत्मा का क्षेत्र, वाणी नहीं है; यह शरीर, आत्मा का क्षेत्र नहीं है। आहा...हा...! यह तो मिट्टी-धूल है। वाणी-आवाज भी जड़ और धूल है। यह आवाज उठती है, वह तो वाणी जड़ है। आहा...हा...! कान से सुनाई देता है न? उसमें भी उतारता है, वह जड़ उतरता है या आत्मा? बहुत सूक्ष्म!

भगवान आत्मा का देश, अर्थात् क्षेत्र, उसका धाम शुद्धचैतन्यधाम है वह तो। इस वाणी और शरीर में, देश में, क्षेत्र में इसके भाव में वह नहीं आता। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! पुद्गल का; अर्थात् शरीर, कर्म, पैसा, मकान, बड़ा बँगला, पच्चीस -पच्चीस लाख का बड़ा बंगला... सत्तर लाख का है न? अपने भाई थे। मुम्बई में, हमारे पालेज के पास आमोद है न? आमोद के भाई हैं। रमणीकभाई! सत्तर लाख का एक मकान, वहाँ उतरे थे। हिम्मतभाई को पता होगा, दादर। वर्षगाँठ नहीं? उस दिन, किस वर्ष? ८७वीं जयंती। वह सत्तर लाख का तो उन्हें एक मकान है। सत्तर लाख का, उसमें उतरे थे। बहुत नरम व्यक्ति है, बहुत पैसेवाला है। पाँच, छह करोड़ रुपये हैं। पाँच, छह

www.vitragvani.com

करोड़ रुपये हैं। सत्तर लाख का मकान है। कहा-बँगला है यह सब, इसमें ममता करेगा तो यहाँ से छूटना कठिन पड़ेगा, बापू! समुद्र के किनारे है। आये थे वहाँ? आये थे। आमोद है पालेज के पास। आमोद के हैं। नरम व्यक्ति है, उनकी माँ को बहुत प्रेम है। वृद्ध है, वहाँ जाते हैं तो सब नियमित व्याख्यान में आते हैं। वह भी क्या? धूल।

यहाँ अपने वे भाई नहीं? शान्तिलाल खुशाल, गोवा, दो अरब चालीस करोड़। सुना है? पाणासणवाले। शान्तिलाल खुशाल अपने दशाश्रीमाली बनिया है। गोवा, गोवा में। उसके पास दो अरब चालीस करोड़, दो अरब चालीस करोड़। अभी डेढ़ वर्ष पहले ६१ वर्ष की उम्र में मुम्बई में मर गया। उसकी बहू को हेमरेज हुआ था, हेमरेज। असाध्य (हो गयी)। उसकी दवा के लिये आया था, वहाँ गोवा में चालीस लाख का मकान है। साठ लाख के तीन मकान हैं। दस-दस लाख के दो और चालीस लाख का एक—ऐसे तीन मकान हैं। अपना बड़ा दशाश्रीमाली बनिया है। स्थानकवासी था परन्तु अम्बाजी को मानता था। कुछ भी ठिकाने बिना का। अम्बाजी। आहा...हा...! वह एक क्षण में भाई! मुम्बई, उसकी बहू की दवा के लिये आया था। थोड़े दिन पश्चात् रात्रि में डेढ़ बजे खड़ा हुआ, (कहा) मुझे दुखता है। बस! डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर जहाँ आया, पहले रवाना। उसके दो अरब और चालीस करोड़ धूल में भी काम नहीं आये और भटकने गया, भटकने। आहा...हा...! दो अरब, दो अरब किसे कहते हैं? दो सौ करोड़, दो सौ चालीस करोड़। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं वहाँ, कंकर है सब। आहा...हा...!

प्रभु! तुझमें तो अनन्त चैतन्य के रत्न, चेतन में भरे हैं। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वह तो अनन्त रत्न भरे हैं, भाई! तुझे पता नहीं। ऐसे रत्न की तुझे कीमत नहीं और इस बाहर की धूल की तुझे कीमत है। ये सब चौरासी के अवतार में भटकने के रास्ते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

यह **पुद्गल का या वाणी का देश उसका नहीं है**। क्या कहा यह? यह वाणी और यह शरीर, इस आत्मा का नहीं है और आत्मा के कारण नहीं है। यह वाणी निकलती

www.vitragvani.com

है, वह आत्मा के कारण नहीं। अन्दर भाषा के जड़ परमाणु हैं, उनके कारण वाणी छूटती है। कुछ खबर नहीं होती। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

अमृतचन्द्राचार्य मुनि ने नहीं कहा ? समयसार की संस्कृत टीका बनायी, आहा...हा... ! हिन्दुस्तान में अभी भरतक्षेत्र में ऐसी टीका नहीं है, ऐसा अमृत का सागर उछाला है। समयसार की टीका आत्मख्याति। तीन हजार श्लोक, ऐसी टीका वह ऐसी टीका ! दिगम्बर सन्त मुनि, आनन्द के सागर के उछाला मारते हुए। वे जब टीका पूर्ण हुई तब बोले, इस टीका के वाणी के शब्दों को मैंने नहीं किया, हों ! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, इस वाणी में कहाँ से आऊँ कि इस वाणी को करूँ ? आहा...हा... ! शास्त्र समयसार की टीका। समयसार अर्थात् ? भरतक्षेत्र के शास्त्र का भूप ! आहा...हा... ! उसकी टीका तीन हजार श्लोक में। ऐसी टीका अभी अन्य में तो नहीं परन्तु दिगम्बर में ऐसे दूसरे श्लोक में ऐसी टीका नहीं। ऐसी टीका पूर्ण हुई तो कहते हैं कि यह शब्दों की रचना मेरी नहीं है। भाई ! यह तो जड़ ने की है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : बड़े पुरुष तो ऐसा ही कहते हैं न !

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वस्तु का स्वरूप है-ऐसा कहते हैं। वाणी, आत्मा कर ही नहीं सकता। वह तो जड़ वाणी है। आहा...हा... ! पक्षघात हो, तब शरीर हिला नहीं सकता। पक्षघात होता है न ? आहा...हा... ! अभी-अभी आज कुछ सुना है, हमारे मनसुख की बहू को पक्षघात हुआ है। कहते हैं भाई ! पालेज में। कल सुना था और आज भी कहा। कुँवरजीभाई का मनसुख, उसकी बहू को। कुछ बैठी होंगी रसोई में, एकदम पक्षघात (हुआ)। कहो, अब कल ही सुना था। पन्द्रह दिन पहले हुआ है। फिर बड़ोदरा ले गये, अभी कुछ ठीक है। आहा...हा... ! अब शरीर में रहने पर भी पक्षघात हो अर्थात् जड़ का एक अलग घात हो, वह इसे हिला सकता ही नहीं, व्यर्थ में ही जीवते भी नहीं हिला सकता। वह हिलता है शरीर के कारण, यह शरीर हिलता है। जब पक्षघात हो जाता है, तब जड़ की पर्याय जड़ में उस प्रकार की चलने की नहीं होती। आत्मा अन्दर बहुत प्रेरणा करे तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह परपदार्थ है। आहा...हा... ! उस परपदार्थ में आत्मा उसके देश में है नहीं। आहा...हा... ! है ?

www.vitragvani.com

चैतन्य, चैतन्य में ही निवास करनेवाला है। चैतन्य प्रभु जानने-देखनेवाला स्वभाव भगवान आत्मा का... आहा...हा... ! वह चैतन्य, चैतन्य में ही रहनेवाला है। वह तो जानना-देखना ऐसा प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप, उसमें वह प्रभु आत्मा रहा हुआ है। आहा...हा... ! यह, हों! अभी भी। यह वकील सब कोर्ट में कानून निकालते होंगे। रामजीभाई नहीं कहते थे? जज को बड़े कानून बताते थे, बहुत गुणगान होते थे। सब गप्प है। कौन वाणी को करे? बापू! तुझे पता नहीं। वाणी तो जड़ के परमाणु की दशा पुद्गल / जड़ की है। इस शरीर में हिलना-चलना, वह जड़ की दशा है। यह होंठ हिले, वह जड़ के कारण और जड़ से है; आत्मा से नहीं। अरे! इसे कहाँ भान है? आहा...हा... ! क्यों? कि चैतन्यस्वरूप जो भगवान तो चैतन्यस्वरूप में है, वह कहीं राग में भी नहीं आता और शरीर तथा पुद्गल में तो आता नहीं। आहा...हा... ! ऐसा बैठना (कठिन पड़ता है)।

यह बाहर की चमक, श्मशान में जैसे फासफूस होती है न? क्या कहलाता है फोरफरस? श्मशान में वे हड्डियाँ होती हैं न? हड्डियाँ। चमक... चमक... चमक... होती है। लड़कों को जाने नहीं देते। (ऐसा कहते हैं) वहाँ भूत हो। वह हो तो हड्डियों की चमक। श्मशान में हड्डियाँ होती हैं न? वह (मुर्दा) जल गया हो और हड्डियाँ पड़ी हों। चमक होती है, चमक। फोरफरस। हम छोटी उम्र के थे तो दूर (रखें), वहाँ नहीं जाना। क्या है? देखो! चमक होती है, वह भूत है। भूत नहीं, वह तो हड्डियों की चमक है।

इसी प्रकार यह सब शरीर, वाणी, मन, मकान यह हड्डियों की फासफूस है। उसमें आत्मा नहीं और वह आत्मा ने किया नहीं। आहा...हा... ! कठिन काम बहुत! रूपवान शरीर हो और सोने के गहने, हीरे यहाँ टाँगे हों और लटकते हों, यहाँ हीरा लगाया और यहाँ गले में डाला हो। मुर्दे का श्रृंगार किया हो। और उस समय ऐसा होगा कि आहा...हा... ! यह विवाह करे, तब कितने ही हाथ में भी वह रखते हैं, ऐसे पंजा में और सर्वत्र (पहनते हैं)। देखते हैं, ऐसे दिखता है न। आहा...हा... ! चमड़े के ढ़के ऊपर से। ऐसे ऊपर गहने (पहनावे)। यह नहीं दिखता। सोना होता है सोना का। राजाओं को रत्न का होता है, अकेले रत्न भरे हुए। आहा...हा... ! वह तो मिट्टी और धूल है, प्रभु! उसमें वह आत्मा का नहीं और आत्मा वहाँ आया भी नहीं। आत्मा ने उसकी रचना की भी नहीं, वह तो जड़ की-मिट्टी / धूल की रचना है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यह यहाँ कहते हैं **चैतन्य चैतन्य में ही निवास करनेवाला है। गुरु उसे ज्ञानलक्षण द्वारा...** आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? उसे जाननेवाला यह है, वह आत्मा। जिसमें ज्ञात होता है, वह ज्ञान में ज्ञात होता है। वह ज्ञान, सो आत्मा। राग और पुण्य और शरीर-वाणी वह आत्मा नहीं। आहा...हा... ! जिसकी सत्ता में, जिसके अस्तित्व में यह शरीर, वाणी, मकान दिखाई देता है, ज्ञात होता है, उस ज्ञान की सत्ता, वह आत्मा है। आहा...हा... ! कभी कहीं विचार नहीं किया। अन्दर यह कौन चीज़ है अन्दर ? जिसके अस्तित्व में, प्रभु के अस्तित्व में तो यह सब ज्ञात होता है। यह सब ज्ञात होता है—ऐसा कहना वह व्यवहार है। उस सम्बन्धी का जो अपना ज्ञान है, वह प्रकाशित होता है। चैतन्य, चैतन्य में रहा हुआ है। चैतन्य, प्रकाश की चीज़ में (ज्ञेय में) गया नहीं है कि उसे प्रकाशित करे। आहा...हा... ! है ?

उसे ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं। प्रभु ! तू कौन है ? तेरा लक्षण क्या ? आहा...हा... ! अर्थात् लक्षण क्या ? कि यह जाननेवाला जानने में आता है और जो, जो ज्ञान जानता है न ? यह ज्ञान, वह आत्मा। राग और पुण्य-पाप के भाव कुछ जानते नहीं, वे तो अन्धे हैं। इसी प्रकार यह शरीर अन्धा है। शरीर को शरीर का पता है कि मैं शरीर हूँ ? इसे पता है ? इसे पता है कि मैं अँगुली हूँ ? यह तो मिट्टी है। आहा...हा... ! जिसकी सत्ता में, चैतन्य की सत्ता में चैतन्य वहाँ रहा है, उसकी सत्ता में जो यह ज्ञात होता है, वह जाननेवाला वह ज्ञान, वह तेरा स्वरूप है। बाकी यह ज्ञात होता है वह (तू) नहीं और राग भी तेरा स्वरूप नहीं। पुण्य और पाप के भाव को जाननेवाला स्वरूप, वह तेरा है। वह स्वरूप—रागादि तेरा स्वरूप नहीं है। आहा...हा... ! अब इसे कहीं निवृत्ति नहीं मिलती। आहा...हा... !

उस लक्षण द्वारा अन्तर में जाकर आत्मा को ढूँढ़ ले। जानने में जो आता है, जिसमें ज्ञात होता है, वह ज्ञान। यह ज्ञान, वह आत्मा। इस ओर रागादि, शरीर, वह आत्मा नहीं। आहा...हा... ! **ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं। उस लक्षण द्वारा अन्तर में जाकर...** अन्दर जाकर। जो ज्ञान बाहर को देखने में रूका हुआ है, उस ज्ञान को अन्दर (ले) जाकर। अरे ! अरे ! अब ऐसी बातें। ऐसा धर्म किस प्रकार का होगा यह ? बापू ! तुझे धर्म का पता नहीं। धर्म कोई अलौकिक-अपूर्व है। अनन्त काल गया परन्तु एक सेकेण्ड भी धर्म क्या है ?—किया (तो) नहीं परन्तु जाना भी नहीं कि धर्म कैसा होता है ? आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यह भगवान आत्मा चैतन्य-चैतन्य में रहा है, इसलिए वह ज्ञान के लक्षण द्वारा ज्ञात होता है। इस ज्ञान द्वारा जानता है, वह आत्मा। ऐसे ज्ञान को अन्तर में ले जाकर आत्मा को पहचान, आत्मा का ज्ञान कर, तुझे आनन्द होगा। तेरा दु:ख मिटेगा और आनन्द होगा। आहा...हा... ! जो स्वयं ज्योति सुखधाम। स्वयं चैतन्यज्योति है, उसका कोई कर्ता नहीं है। (जो) है, उसे करे कौन ? और नहीं है, उसे करे कौन ? सत् है, जो त्रिकाली है—ऐसा जो स्वयं सत्स्वरूप चैतन्य... आहा...हा... ! उसके ज्ञान द्वारा उसे पहचान ले। वह दया, दान और व्रत के परिणाम से नहीं पहचाना जाता। वे तो विकार हैं, इसमें नहीं। आहा...हा... ! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है।

धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। स्त्री, पुत्र, धन्धा, दुकान, उसमें लड़के अच्छे पके, पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख की आमदनीवाले, उसमें आठ-आठ लड़के होते हैं न, देखो ! यह तो मैं चौड़ा और गली सकरी हो जाये इसे। आहा...हा... ! यह चौड़ा हुआ है भटकने में। आहा...हा... ! भटकने में जायेगा। आहा...हा... ! जहाँ जिस योनि में भटकेगा, वहाँ कोई इसका सगा नहीं है, वहाँ कोई इसका परिचित क्षेत्र नहीं है, वहाँ इसका परिचित कोई भाव नहीं है। आहा...हा... ! ऐसे अनजाने क्षेत्र में जाकर अवतरित होगा, जिसने आत्मा को जाना नहीं वह। आहा...हा... ! क्या कहा ?

उस लक्षण द्वारा... जाननहार... जाननहार... जाननहार... जानता है। उस ज्ञान के लक्षण द्वारा लक्ष्य / आत्मा को अन्दर से ढूँढ़ ले। आहा...हा... ! यह जानना है, वह आत्मा; जाननेवाला है वह आत्मा—ऐसे जाननेवाले को अन्दर में जाकर ढूँढ़ ले। आहा...हा... ! है ? **आत्मा को ढूँढ़ ले**। आहा...हा... ! तब तुझे धर्म होगा और तब तेरे जन्म-मरण मिटेंगे। आहा...हा... ! उसमें मुम्बई जैसी (नगरी) और उपाधि का पार नहीं होता। मोहमयीनगरी। बापू ! कहते हैं न कि आठ से आठ बजे तक जाना, फिर भले छह हजार और आठ हजार का वेतन महीने (मिलता हो)। आहा...हा... ! उपाधि। श्रीमद् ने मोहमयीनगरी कही है न ? मोहमयीनगरी। मोटर धूँ... धूँ... करती हो और कितने करोड़पति, कितने पैसेवाले, बड़े राजा वहाँ रहते हैं न ? राजापना गया, इसलिए बहुत राजा मुम्बई में रहते हैं। आहा...हा... ! बड़ी मोटरें और... आहा...हा... ! बाहर की चमक और भभक, उसमें वह उलझ गया है।

www.vitragvani.com

अन्दर के चैतन्य की चमक—जो रत्न चैतन्य के चैतन्य के रत्न के प्रकाश की चमक अन्दर क्या है... आहा...हा... ! वह देखने को कहीं निवृत्त नहीं हुआ। समझ में आया ? उसे ढूँढ़ ले, प्रभु ! आहा...हा... ! तू बड़ा है प्रभु ! इस ज्ञान के लक्षण द्वारा तेरा लक्ष्य तू ढूँढ़ सकेगा-ऐसा अन्दर तू है। आहा...हा... ! शब्द थोड़े परन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं। समझ में आया ? १२५ (बोल पूरा हुआ)।

पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है। जिसे लगन लगी हो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। अन्तर से ऊब जाये, थकान लगे, सचमुच की थकान लगे, तो पीछे मुड़े बिना न रहे ॥१२६॥

१२६, **पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है।** क्या कहते हैं ? अकेले सत्य सिद्धान्त हैं। वर्तमान दशा में रागादि होते हैं और जो वर्तमान दशा है, पर्याय-हालत (है), उसके ऊपर दृष्टि है, (उसे) छोड़ दे। है ? **पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर...** वर्तमान जो प्रवर्तित दशा है, विचार की हलचल हो रही है—ऐसी पर्याय के ऊपर / अवस्था से दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा... ! अब इसे अभी तो स्त्री, पुत्र, और पैसे, मकान में से दृष्टि छोड़ना कठिन पड़ता है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तुझमें दो भाव हैं—एक त्रिकाली भाव है और एक वर्तमान बदलती दशारूप भाव है-पर्याय। जैसे सोना है, उस सोने का कायमपना—सोने का पीलापन, चिकनाई, वजनरूप से कायम है। सोना वह तत्त्व है और उसका पीलापन, वजन वे उसकी शक्तियाँ कायम हैं और उसमें कुण्डल, कड़ा, अंगूठी हो, वह उसकी अवस्थायें / हालत है। वह पर्याय-हालत कहलाती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा सोने के समान त्रिकाल द्रव्य है और उसमें आनन्द, ज्ञान आदि शक्तियाँ हैं। जैसे सोने में पीलापन चिकनाई है; वैसे शक्तियाँ भी त्रिकाल है। उनकी वर्तमान दशा में; जैसे उस सोने में से कड़ा और अंगूठी बनाते हैं; वैसे वर्तमान दशा में पर्याय में पलटता है, राग करे, द्वेष करे, ज्ञान की

www.vitragvani.com

पर्याय हीनाधिक करे। आहा...हा...! उस सब पर्याय के ऊपर तेरी दृष्टि अनादि की है। तुझे हित करना हो तो उसे छोड़ दे। यह तो कोई बात है। आहा...हा...!

भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर और सर्वज्ञ के प्रति तू लक्ष्य छोड़ दे। वे पर हैं परन्तु उनकी श्रद्धा का राग है, उससे लक्ष्य छोड़ दे। उसे तो छोड़ दे परन्तु उस राग को जाननेवाली जो दशा, वर्तमान में राग है-ऐसा जानती है, उस पर्याय के ऊपर की दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा...!

द्रव्य पर दृष्टि लगाये... द्रव्य पर दृष्टि दे। द, द तीन आये। उस पर्याय पर आये प, प दो आये एक साथ में। **पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर....** द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली चिद् नित्य धातु, चैतन्यवस्तु त्रिकाली। उस **द्रव्य पर दृष्टि लगाये...** यह कोई बातों से हो जाये—ऐसा नहीं है बापू! आहा...हा...! ये क्रियाकाण्ड करे—दया, दान और व्रत के-इसलिए वहाँ दृष्टि हो जाये (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! जो राग और दया के भाव को ही करता हूँ, यह भाव ही मिथ्याभ्रम है, अज्ञान है। आहा...हा...! परन्तु उस दया के भाव को जाननेवाली जो वर्तमान दशा है कि यह राग है, उस पर्याय के ऊपर दृष्टि है, उसे छोड़ दे, क्योंकि वह अंश है; वस्तु त्रिकाली ध्रुव है। आहा...हा...!

परम सत् साहेब अन्दर परमात्मस्वरूप बिराजमान है। तुझे तेरी ऋद्धि, सिद्धि कैसे वृद्धि को प्राप्त हो? इसका पता नहीं है। जहाँ ऋद्धि पड़ी है, वहाँ जा। अरे! यह किस प्रकार की यह बात? पर्याय-वर्तमान दशा के ऊपर की, वहीं तेरी अनादि की दृष्टि है। उस एक समय की पर्याय के पीछे, पास में ध्रुव तत्त्व स्वयं है, शाश्वत् रहनेवाली स्वयं चीज़ है। उस पर्याय के ऊपर की दृष्टि छोड़कर शाश्वत् रहनेवाली जो चीज़ है, वहाँ दृष्टि दे। आहा...हा...! भाषा तो बहुत संक्षिप्त परन्तु भाव (बहुत गम्भीर) बापू! आहा...हा...! अरे! इसे सत्य सुनने को नहीं मिलता, यह विचारे कब और अन्तर में जाये कब? यह जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है।

यहाँ तो (कहते हैं), **पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर...** शरीर मेरा और कर्म मेरा, पिता मेरा और पुत्र मेरा, मकान मेरा और पैसा मेरा, यह बात तो कहीं रह गयी। यह तो सब तेरी बड़ी भ्रमणा है, उसे तो छोड़ दे परन्तु तेरे स्वरूप की दृष्टि करना हो, त्रिकाली

www.vitragvani.com

की अर्थात् ध्रुव की अर्थात् नित्य रहनेवाला तत्त्व प्रभु, उसकी जो अनित्य वर्तमान दशा है, उस अनित्य की दृष्टि छोड़कर नित्य पर दृष्टि कर तो तुझे आत्मज्ञान होगा। आहा...हा... ! तो यह आत्मा कितना और कैसा है, तब तुझे उसका ज्ञान होगा। अरे ! सब अनजान जैसी बातें लगे। पहला तो भगवान का भजन करना और करताल लेकर ऐसे बस ! जय नारायण... जय नारायण...। धूल में भी नहीं वहाँ। यह आत्मा वहाँ है नहीं और उस क्रियाकाण्ड में आत्मा आता भी नहीं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी चैतन्य अन्दर विराजमान है। आहा...हा... !

अभी ऐसा सुनते हैं... आहा...हा... ! प्रतिक्षण ऐसा हो गया है न, पक्षघात हुआ, कोई कैंसर में मर गया और... आहा...हा... ! अरे रे ! ऐसे अवतार तो प्रभु ! अनन्त बार किये हैं। इस अवतार का मूलकारण मिथ्याभ्रम, मिथ्यात्व कारण है और यह मिथ्यात्व कारण क्यों है ? कि इसके वर्तमान अंश में पूरा आत्मा नहीं है, उसमें इसने आत्मा की दृष्टि की है, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व अर्थात् झूठी दृष्टि है। क्यों ? जो सत् त्रिकाली प्रभु है, त्रिकाली सत्स्वरूप है, उस पर दृष्टि नहीं, वह तो असत् है। त्रिकाली सत् है, उस पर दृष्टि दे तो दृष्टि सत् है और वह वस्तु सत् है। आहा...हा... ! शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा तो कहीं रह गया। वह तो तुझमें है नहीं और तूने किये नहीं और तेरे कारण आये भी नहीं। आहा...हा... ! परन्तु तेरे कारण तुझमें जो पर्याय हुई है... आहा...हा... ! और तेरे कारण जो वर्तमान दशा तूने की है। उसका तो (पर का तो) किया नहीं और तू करता भी नहीं और तुझमें है भी नहीं। आहा...हा... !

तू एक चीज़ है, अनादि अनन्त नित्यानन्द अविनाशी प्रभु ! आहा...हा... ! वह आत्मा छेदाये नहीं, भेदाये नहीं, अविनाशी ऐसा तत्त्व / चीज़ है। उस चीज़ को तूने (देखा नहीं)। वर्तमान पर्याय उसने की है। इसने की है और इसमें वर्तमान दशा है, इसकी दृष्टि छोड़ दे। तुझमें जो वस्तु नहीं, उसकी तो दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा... ! ...भाई ! नहीं आये न ? अभी शरीर ठीक नहीं होगा। शरीर का ऐसा ठिकाना है। आहा...हा... ! क्या कहा ? प्रभु !

तेरी जो बड़ी ध्रुव प्रभुता है, उसकी दृष्टि तूने नहीं की परन्तु वर्तमान उसकी हालत / क्षणिक दशा है, उस पर तेरी लीनता है और उसे तूने अपना माना है। पर को (अपना) माना, वह तो फिर बड़ा भ्रम है। आहा...हा... ! परन्तु तेरी वर्तमान दशा है, वह तेरी की हुई तथा तेरी है। दशा, हों ! जानने की-देखने की पर्याय जो अंश है, वह तेरी की हुई है, तुझमें

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है, तेरे द्रव्य की वह अवस्था / अंश है; उस अंश पर दृष्टि तो अनादि की है, वहाँ से कभी अंशी / त्रिकाल पर तेरी दृष्टि आयी नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अन्तिम विकल्प.... एक ही उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह एक ही उपाय है। अन्तर्दृष्टि करना। विकल्प-फिकल्प तोड़ना भी नहीं न। कठिन काम है भाई! वस्तु जो सत् प्रभु त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व है, उसकी वर्तमान दशा उसकी की हुई है। वह की हुई और उसकी दशा में है, उसकी दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप है। यह शरीर, वाणी, और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मकान, पैसा तो कहीं रहा, वे कहाँ तुझमें थे ? तेरी दशा में वे नहीं, तेरे नहीं और तेरे कारण आये नहीं, तेरे कारण रहे नहीं, और जाये तब तेरे कारण नहीं जाते; उनके कारण से जायेंगे परन्तु तेरे कारण हुई तेरी वर्तमान दशा है। आहा...हा... ! गजब बात करते हैं। हीराभाई ! शिवलालभाई ! इसे पति-पत्नी दो हैं, (दूसरा) कोई नहीं परन्तु अभी धन्धा करता है अन्दर।

मुमुक्षु : किसी को स्त्री-पुत्र (नहीं है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि तुझमें जो चीज़ नहीं, उसके ऊपर की दृष्टि (छोड़ दे)। (पर का तो) तू करता भी नहीं और वह तो तुझमें है ही नहीं परन्तु तुझमें तेरी दशा है। वर्तमान वस्तु त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु है परन्तु उसकी वर्तमान अवस्था में अल्पज्ञपने की जो दशा है, हालत है, वह है इसकी, इसकी की हुई और इसमें है। इसमें (अर्थात्) दशा में, हों ! वस्तु में नहीं। उसके ऊपर की दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा... ! और **द्रव्य पर दृष्टि लगाये...** वस्तु जो सत्साहेब प्रभु त्रिकाल है, वहाँ दृष्टि दे। **तो मार्ग मिलता ही है।** तो उसे मार्ग मिलता ही है। आहा...हा... ! बहुत अलौकिक बात है, संक्षिप्त है।

शरीर, वाणी में तो आत्मा है ही नहीं और वे कोई आत्मा ने किये नहीं परन्तु आत्मा ने राग किया है, वह कर्तापना भी छोड़ दे। यह यहाँ बात नहीं परन्तु उसकी जो राग को जाननेवाली पर्याय है... आहा...हा... ! वर्तमान पलटती दशा है, इतना अंश तुझमें है, परन्तु उसके ऊपर की दृष्टि छोड़ दे। क्योंकि उसमें पूरा आत्मा नहीं आया। सुमनभाई !

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अषाढ़ कृष्ण-४, रविवार, दिनाङ्क २३-०७-१९७८
वचनामृत-१२६-१२७ प्रवचन-४६

वचनामृत, १२६ बोल। अभी एक लाईन चली है न?

पर्याय के ऊपर से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है। सूक्ष्म भाषा है। आत्मा वस्तु है, वह अनन्त गुणात्मक वस्तु है। अनन्त गुणस्वरूप ध्रुव और उसकी अवस्था बदलती है। पर्याय में अवस्था का बदलना होता है। ये दो (अंश) हैं। उसमें अनादि काल की दृष्टि, द्रव्यस्वभाव के ऊपर का अभाव है, इससे इसकी पर्याय के ऊपर दृष्टि है, ऐसा कहा। रात्रि को बात हुई थी, नहीं? यहाँ हुई नहीं हो व्याख्यान में? '**पर्यायमूढ़ा हि परसमया**'-ऐसा कहा है। प्रवचनसार की ९३ वीं गाथा है, ज्ञेय अधिकार की पहली गाथा है। ज्ञेय अर्थात् छह द्रव्य। अब, उनमें छह द्रव्य में अपने यहाँ आत्मा ज्ञेय (रूप से) लें तो उसके भी अन्दर दो प्रकार हैं। तीन प्रकार लिये हैं। द्रव्य जो कायम रहता है, वह और द्रव्य, वह गुणात्मक-गुणस्वरूप है तथा उसकी वर्तमान पर्याय है। तीन बातें ली हैं, तीन (गाथा)। अभी द्रव्य-गुण-पर्याय (का पता नहीं होता)।

अपना स्वरूप जो द्रव्य है, वह त्रिकाली शक्ति का धारक है और गुण हैं, वे शक्तियाँ; तथा गुण-स्वभाव है और उनकी अवस्था। पर्याय बदलती है। ऐसे तीन कहकर, वहाँ चौथे पद में ऐसा कहा **पर्यायमूढ़ा हि परसमया**। एक समय की पर्याय; अनन्त गुण की भले अनन्त हो, परन्तु एक समय की अवधि जितनी पर्याय है। इसे त्रिकाली वस्तु है, वस्तु है त्रिकाली। उसे वास्तव में तो त्रिकाली द्रव्य को ही स्वकाल कहा है; एक समय की पर्याय को परकाल कहा है। ऐसी बातें सूक्ष्म बहुत, बापू! २५२ कलश, २५२ कलश है न? यह 'कलश टीका।' आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यह वस्तु जो त्रिकाल है, अनन्त गुणात्मक वस्तु त्रिकाल है, उसे स्वकाल कहा है और एक समय की अवस्था है, उसकी उसमें है, उसे परकाल कहा है, क्योंकि इसकी दृष्टि वहाँ से छुड़ानी है। एक समय की अवस्था है, वे अवस्थायें अनन्त हैं। है एक समय, परन्तु अवस्थायें अनन्त हैं, परन्तु अनन्त हैं, वे भी एक समय की अवधिवाली है। इससे पर्याय में जो मूढ़ है, उसे अनात्मा कहा है, परसमय कहा है। आहा...हा... !

श्वेताम्बर में 'यशोविजय' एक (साधु) हो गये हैं। उन्हें भी इसमें शंका पड़ गयी। उन्होंने इस चौथे पद की टीका की है। यहाँ का पढ़ा तो सही, लोगों ने दिगम्बरों का पढ़ा है, परन्तु उन्होंने टीका की (कि) पर्यायमूढ़ (पर)समय होवे, तब तो पर्यायरहित द्रव्य हो; वह तो वेदान्त हो जाएगा। ऐसी टीका की है। ऐसा नहीं, भाई! यहाँ तो पर्यय है तो सही, परन्तु उस पर ही अकेली जिसकी दृष्टि है, (वह पर्यायमूढ़ है)। फिर उसमें (उन्होंने) टीका में तो परमाणु द्विपट्टी और त्रिपट्टी और द्रव्य-पर्याय ऐसी लम्बी बात की है, परन्तु मूल तो ऐसा है। आहा...हा... !

यहाँ वस्तु है, सहज स्वरूप प्रभु! यहाँ तो आत्मा के ऊपर लेने की बात है। वह त्रिकाल अनन्त-अनन्त शक्ति का संग्रहालय वस्तु एक (है) और उसकी अवस्थायें बदले, दशायें बदले अर्थात् पर्याय बदले; बदलती अवस्थाओं की अवधि एक समय की है और शाश्वत् रहने की अवधि त्रिकाल है। आहा...हा... ! इसलिए यहाँ कहते हैं कि पर्याय के ऊपर जिसकी दृष्टि है, अर्थात् भले आगे जाकर ये राग को और संयोग का माने अन्दर, तो उसे पर्याय कहे, परन्तु मूल तो पर्याय अर्थात् द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल है, उसके ऊपर अनादि की दृष्टि नहीं है। इससे उसे पर्यायमूढ़ कहकर, पर्यय में दृष्टि है; इसलिए मूढ़ है-ऐसा कहा है। आहा...हा... ! क्यों? जो इसकी चीज़ में नहीं—शरीर, वाणी, कर्म, ये तो इसमें नहीं। वास्तव में तो राग-द्वेष, दया-दान के विकल्प हैं, वे भी वास्तव में तो वस्तु में नहीं। अब यह पर्याय है उसमें, और उस पर्याय का षट्कारकरूप से परिणमन पर्याय स्वतन्त्र करती है। अरे रे! क्या कहा यह? चाहे तो विकृत अवस्था षट्कारकरूप से परिणमो या चाहे तो निर्विकल्प अर्थात् निर्मलपर्यायरूप षट्कारकरूप परिणमो, परन्तु वह पर्याय स्वयं, कर्ता स्वयं, पर्याय का कर्ता पर्याय; पर्याय का कार्य पर्याय; पर्याय का साधन

www.vitragvani.com

पर्याय; पर्याय ने पर्याय करके रखी; पर्याय से पर्याय हुई; पर्याय के आधार से पर्याय हुई-ऐसे छह बोल हैं। आहा...हा... ! वह एक समय की पर्याय स्वयं है उसमें; और वह पर्याय ने पर्याय की है। यह पर तो की हुई वस्तु है ही नहीं इसमें। समझ में आया ? आहा...हा... !

पर का तो संयोग है, इसलिए वह परद्रव्य को तो चुम्बन नहीं करता। चुम्बन नहीं करता अर्थात् ? (समयसार) तीसरी गाथा। एक द्रव्य अपने गुण-पर्यायों को चुम्बन करता है; चुम्बन करता है, अर्थात् स्पर्श करता है परन्तु परद्रव्य के गुण-पर्याय को एक द्रव्य चुम्बन नहीं करता, छूता नहीं, स्पर्श नहीं करता; इसलिए उसकी बात तो निकाल दी परन्तु इसकी पर्याय में है, उस गुण-पर्याय को द्रव्य चुम्बन करता है। है तो पर्याय, पर्याय को चुम्बन करती है परन्तु वह पर्याय का अंश है, वह क्षणिक है; उस पर दृष्टि है, उसे छोड़ दे। आहा...हा... ! कठिन काम है प्रभु ! और द्रव्य पर दृष्टि दे।

पर के प्रति दृष्टि है, वह बात तो निकाल डाली। एक समय की पर्याय इसमें है पर्याय में पर्याय; और वह पर्याय भी स्वतन्त्ररूप से स्वयं स्वयं से हुई है। वह कोई पर के कारण हुई है—ऐसा तो नहीं परन्तु द्रव्य-गुण के कारण हुई है—ऐसा भी नहीं। आहा...हा... ! ऐसी एक समय की जो पर्याय / अवस्था है, उसकी दृष्टि अनादि की है, वह छोड़ दे। ऐसा है।

पर्याय के ऊपर से दृष्टि... पर्याय की अर्थात् पर्याय के ऊपर की। ऊपर की अर्थात् पर्याय की अपेक्षा की जो दृष्टि है, वह छोड़ दे। ऐसा काम बहुत कठिन। आहा...हा... ! यदि तुझे कल्याण करना हो, आत्मा का हित करना हो, सुख के पंथ में, आनन्द के पंथ में तुझे जाना हो तो पर्यायदृष्टि है, वह दुःख पंथ है; आहा...हा... ! इससे वह दृष्टि छोड़ दे। शब्द भले थोड़े हैं परन्तु गम्भीरता का पार नहीं होता। आहा...हा... !

पर्याय के ऊपर से दृष्टि... पर्याय के ऊपर की अर्थात् ? पर्याय के ऊपर की। पर्याय पर है—ऐसा यहाँ अभी नहीं। आहा...हा... ! भाषा तो यह है सादी गुजराती में है। आहा...हा... ! शरीर, वाणी, कर्म, का तो अस्तित्व ही भिन्न है परन्तु पर्याय का अस्तित्व इसके प्रमाण का विषय जो द्रव्य और पर्याय उसमें है वह पर्याय, परन्तु उसके ऊपर की दृष्टि है, वह (छोड़ दे) क्योंकि वह तो अंश है और अंश में पूरा तत्त्व नहीं आता और पूरा

www.vitragvani.com

तत्त्व जो अंश है, वह एक समय की पर्याय ऐसी है तो अनन्त एक समय में भी उस एक समय की एक पर्याय ज्ञान की, ऐसी अनन्त पर्यायों का समुदाय तो वह ज्ञान है। एक श्रद्धा की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का समुदाय अन्दर श्रद्धा-समकित-त्रिकाली श्रद्धा है। चारित्र की त्रिकाली स्थिरता पर्याय जो वर्तमान पर्याय से त्रिकाली उन सब पर्यायों का पिण्ड वह अन्दर चारित्र है। आनन्द की वर्तमान अवस्था और पूर्व की दु:ख अवस्था इन सब अवस्थाओं का पिण्ड वह आनन्द है।

दु:ख की अवस्था और आनन्द की अवस्था जो पर्याय में है, उस अनादि-अनन्त पर्याय का पिण्ड वह आनन्द है। दु:ख की अवस्था का अर्थ दु:ख की अवस्था थी तब थी, पश्चात् उसमें गयी तब दु:ख अवस्था नहीं रही परन्तु अन्दर योग्यता रह गयी। वह योग्यता अर्थात् ? है तो अन्दर पारिणामिकभाव। सूक्ष्म बात है भाई! आहा...हा...! सुख, उसका अन्दर सुखरूप परिणमन हो गया है। आहा...हा...! उसे यहाँ पर्यायबुद्धि को छोड़कर जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, जो सबेरे कहा था, वह भूतार्थ सत्य है और पर्याय असत्य है। वह यह भूतार्थ। यह इसे (पर्यायदृष्टि) छोड़कर द्रव्य पर दृष्टि दे, वह तेरे पुरुषार्थ का काम है-ऐसा कहते हैं। दृष्टि (द्रव्य) पर दे, वह तेरे वीर्य का काम है। कोई कर्म मार्ग दे और वह कुछ है-ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

तो मार्ग मिलता ही है। जिसे ज्ञायकभाव त्रिकाली ध्रुव। त्रिकाली का अर्थ कायम रहनेवाला, वह तो अपेक्षा है परन्तु वर्तमान में जो ध्रुव है, एकाकार है, उस पर दृष्टि देने से मार्ग मिलता ही है। आहा...हा...! उस द्रव्य पर दृष्टि देने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा ही, सम्यग्ज्ञान होगा ही और स्वरूप की दृष्टि देने से स्वरूप में स्थिरता का अंश भी साथ में होता ही है। इसलिए द्रव्य (पर) दृष्टि देने से तुझे मार्ग मिलेगा ही। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो मोक्षमार्ग, वह द्रव्यदृष्टि देने से मार्ग मिलता ही है-ऐसी बातें हैं। मार्ग है तो पर्याय है। समझ में आया ? मार्ग मिलता ही है, वह तो पर्याय है। ऐसी बातें हैं।

एक ओर पर्यायदृष्टि छुड़ाना और द्रव्यदृष्टि की, तब मोक्षमार्ग की पर्याय उसे प्रगट होती ही है। ऐसा कहा न ? **मार्ग मिलता ही है**। मार्ग तो-मोक्ष का मार्ग है, वह तो पर्याय है। समझ में आया ? यह संक्षिप्त में इसमें बहुत सरस भरा है!! द्रव्यदृष्टि दे। तो दृष्टि दे, दृष्टि

www.vitragvani.com

तो पर्याय है। पर्याय में पर्यायपने की जो दृष्टि थी, उसे छोड़कर पर्याय जो दृष्टि है, उस पर्याय को द्रव्य पर रख तो इससे तुझे वस्तु की दृष्टि होने से, वस्तु का ज्ञान होने से, वस्तु में स्थिरता होने से वह मोक्षमार्ग तुझे द्रव्यदृष्टि होने से मिलता ही है। आहा...हा...! कहो, हीराभाई! ऐसी बातें हैं। आहा...हा...!

जिसे लगन लगी हो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! जिसे इस ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव की लगन जिसे लगी हो। समझ में आया? त्रिकाली चिदानन्द, नित्यानन्द प्रभु, जो निश्चय आत्मा है। पर्याय है, वह तो व्यवहार आत्मा है। आहा...हा...! और वस्तु जो त्रिकाल है, वह निश्चय आत्मा है। तो व्यवहार आत्मा की दृष्टि छोड़कर त्रिकाल पर दृष्टि देने से मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यवहार प्रगट होगा। वह मोक्षमार्ग, व्यवहार है। पर्याय है न? आहा...हा...! समझ में आवे वैसा समझना, बापू! यह तो गम्भीरता का पार नहीं होता। वीतराग का मार्ग एक-एक पर्याय और एक-एक गुण की बात करते हुए, गजब बात है!

दृष्टि दे अर्थात् पर्याय ऐसी दृष्टि, पर्याय को द्रव्य पर दृष्टि दे। आहा...हा...! **तो मार्ग मिलता ही है।** अर्थात् मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट होती ही है। समझ में आया? **जिसे लगन लगी हो उसे...** आहा...हा...! ज्ञायक, चैतन्य, चैतन्यस्वरूप शाश्वत् की जिसे लगन लगी है, वह **पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं।** वह अन्तर्मुख हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! समझ में आया? जिसे ज्ञायक वास्तविक तत्त्व पूर्ण की जिसे दृष्टि हुई, ऐसी जिसे लगन लगी, वह पुरुषार्थ स्वसम्मुख किये बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! कारखाने में यह नहीं है कहीं। यह है कारखाने में? भाई को कहता हूँ। कारखाने में नहीं है कहीं। यह कारखाना अलग है। आहा...हा...! क्या बात!! परद्रव्य और परद्रव्य-गुण और पर्याय की बात छोड़ दी क्योंकि उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो स्वतन्त्र हैं। वह कर नहीं सकता, वह बाद में आयेगा परन्तु वह इसमें नहीं, इसलिए फिर प्रश्न क्या? अब इसमें है पर्याय और इसमें है ध्रुव, उसकी बात चलती है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ बड़ा कारखाना है। आहा...हा...! बड़ा बनिया सेठ है।

www.vitragvani.com

उसमें नौकर है। जामनगर का बनिया है, साढ़े तीन करोड़ रुपये की आमदनी है। एक वर्ष की ऊपज-आमदनी! क्या कहा? साढ़े तीन करोड़ रुपये की एक वर्ष की आमदनी, उसके सेठ को, हों! उसमें वह नौकर है ऐसा कहना है। अभी तो बढ़ाना चाहता है, नहीं? ऐसा सुना था। धन्धा आगे बढ़ायेंगे। साढ़े तीन करोड़ रुपये की आमदनी है, इससे अधिक आमदनी हो। साढ़े तीन करोड़ रुपये एक वर्ष की पैदाश। पैदाश समझे न? आमदनी। उसमें यह नौकर है। आहा...हा...! कहाँ रुपये? यहाँ तो कहते हैं कि वह रुपये तुझमें है नहीं। इसलिए तू उन्हें मेरे मान, यह तो तेरी मान्यता झूठी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अत्यन्त झूठी वस्तु। आहा...हा...! परन्तु तुझमें एक समय की पर्याय है, उसे तू माने तो भी झूठी दृष्टि है, कहते हैं। आहा...हा...! पैसा, शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, देश जो आत्मा में है ही नहीं और वे उनमें हैं, उन्हें मेरा (निज) मानना, वह तो फिर बड़ा भ्रम है। आहा...हा...! परन्तु यहाँ तो पर्याय इसमें है.. आहा...हा...! परन्तु एक है बड़ा यहाँ रह जाता है अन्दर। इसलिए पर्याय है तो भी ऐसे अंश पर दृष्टि रखने से स्वयं त्रिकाली है, उसका अनादर होता है। आहा...हा...! इसलिए एक बार तू पर्याय की दृष्टि छोड़। छोड़ (कहा) तो उपदेश में क्या कहना? क्योंकि इसे पुरुषार्थ, पर्याय को द्रव्यसन्मुख ढालना है, इसलिए वह पर्यायदृष्टि छोड़ अर्थात् वह छूट जाती है। यह दृष्टि जहाँ द्रव्य पर गयी तो पर्यायदृष्टि छूट जाती है। पर्यायदृष्टि रहती नहीं परन्तु इसे समझाने में क्या कहना? पर्यायदृष्टि छोड़। पर्यायदृष्टि छोड़ (कहा तो) द्रव्यदृष्टि हुए बिना पर्यायदृष्टि छूटेगी? समझ में आया? काम ऐसा बहुत अटपटा है, बापू! वीतराग का मार्ग एक-एक शब्द और एक-एक भाव में गम्भीरता का पार नहीं होता। आहा...हा...!

जिसे लगन लगी हो, उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। उसका वीर्य, स्वरूप की तरफ ढले बिना रहता नहीं, कहते हैं। जिसकी रुचि, 'रुचि अनुयायी वीर्य', रुचि अनुयायी वीर्य। यदि ज्ञायक की रुचि हो तो वीर्य वहाँ हुए बिना रहता ही नहीं। जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसका पुरुषार्थ किये बिना रहता नहीं। इस प्रकार द्रव्यस्वभाव की आवश्यकता ज्ञात हो तो उस ओर का पुरुषार्थ किये बिना रहता ही नहीं। अब ऐसी बातें

www.vitragvani.com

हैं। लोग अकेले बाहर के अंक-पहाड़े (बाह्य क्रियायें) सीखे हों और धर्म मान बैठे हों, (उन्हें) यह कठिन पड़ता है। बापू! क्या हो? आहा...हा...!

अन्तर से ऊब जाये,... किससे? वर्तमान पर्याय और राग की बुद्धि से ऊब जाये, थकान.. थकान लगे। ऊब जाये **थकान लगे,...** एक अंश परलक्ष्य है, उसकी थकान लगे कि अर..र..! यह तो दुःख है। आहा...हा...! **सचमुच की थकान लगे,...** क्योंकि पर्याय पर दृष्टि है, वहाँ कषायभाव हुए बिना रहता ही नहीं, मिथ्यात्वभाव हुए बिना (रहता नहीं) और मिथ्यात्वभाव, वह महा दुःख है। आहा...हा...! दुःख कोई प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दुःख है, यह तो निमित्त से कथन है। आहा...हा...! जो एक समय की पर्याय को अपनी मानकर वहाँ खड़ा है, वह मिथ्यादृष्टि दुःखरूप है। वह मिथ्यादृष्टि स्वयं दुःखरूप है। उससे (जो) थका हो, आहा...हा...! है? आहा...हा..! वास्तव में थकान लगी हो, आहा..हा...! **तो पीछे मुड़े बिना न रहे**। वह पर्यायबुद्धि से वापस मुड़े बिना नहीं रहे। समझ में आया?

चेतनरूप अनूप अमूरत,
सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग,
कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ग्यानकला उपजी अब मोहि,
कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग,
वेगि मिटै भववास बसेरौ॥११॥

इस घट में बस। आहा...हा...! और जिसकी पर्यायबुद्धि... यह सर्वविशुद्ध में आता है।

स्वारथ के साचे परमारथ के साचे चित्त,
साचे साचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं।
काहू के विरुद्धि नाहि परजाय-बुद्धि नाहि,

समयसार नाटक है। हैं कलश समयसार नाटक के।

काहू के विरुद्धि नाहि परजाय-बुद्धि नाहि,
आतमगवेषी न गृहस्थ है न जती हैं॥
सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमैं प्रगट सदा,
अंतर की लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्त के उदास रहैं जगत सौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥७॥

लो! यह तो हिन्दी आया तुम्हारा। समयसार नाटक। कक्षा चलेगी, तब हिन्दी (प्रवचन) होंगे। क्योंकि वहाँ से हिन्दी लोग बहुत आयेंगे। श्रावण शुक्ल १२, ९ और ११ बीस दिन रहे न? बारह, बारह, बारह, और ग्यारह, तेईस दिन रहे। आज तो तीज है न? बारह दिन ये और ग्यारह दिन (वे) अर्थात् तेईस दिन बाद (हिन्दी चलेगा)। एक-दो दिन पहले तो लोग आ जायेंगे। तब, शिक्षण-शिविर में तो हिन्दी होगा।

सचमुच की थकान लगे,... अर्थात् जिसे पर्यायदृष्टि से दुःख लगे, वह अन्तर के झुकाव में गये बिना नहीं रहता और वापस मुड़े बिना नहीं रहता। देखा? उस दुःख में से वापस मुड़े बिना नहीं रहता और जहाँ सुख का सागर भगवान है, वहाँ दृष्टि दिये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! गजब! शर्त भी गजब! समझ में आया? १२६ (बोल पूरा हुआ)।

कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता। विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग तो कहाँ से तेरे होंगे?॥१२७॥

१२७, **कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता।** सब कक्का-चार। **कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता।** चार कक्का आये न? **कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता।** यह तो बीच में 'क' आ गया। यह तो पहले (चार कक्का आये) 'नहीं सकता'

www.vitragvani.com

इसमें 'क' बीच में आ गया। आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? एक आत्मा, एक रजकण का भी कुछ नहीं कर सकता। आत्मा इस आँख की पलक बदल सके, यह कुछ नहीं कर सकता। आत्मा हाथ को ऐसे हिला सके, यह कुछ नहीं कर सकता। खाते समय दाल पड़ी हो, शाक पड़ी हो... क्या कहलाता है ? भूल जाते हैं। चटनी ? चटनी, ऐसे हाथ उठाकर रोटी को दाल में डूबोकर (खाये), वह कोई क्रिया कर नहीं सकता- ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर नहीं सकता। मानता है (कि मैं कर सकता हूँ)। करे (क्या) ? वह तो होता है वहाँ। जड़ की अवस्था उस काल में उसका-जड़ का जन्मक्षण-उत्पत्ति का काल है, वह जड़ से होता है। आहा...हा... ! ऐसे अंगुली होना और रोटी के टुकड़े, टुकड़े होना, वह समय वह पर्याय होने का उसका स्वकाल है। आत्मा से तीन काल में नहीं होता। आहा...हा... !

मुमुक्षु : मुर्दा खा सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा भी खाता नहीं और जीवता भी खाता नहीं। जीवता खाता हूँ—ऐसा माने परन्तु खा नहीं सकता; वह क्रिया तो जड़ की है। आहा...हा... ! बहुत कठिन काम। इन्दौर में पण्डितों ने एकत्रित होकर एक बार ऐसा (निश्चित) किया कि परद्रव्य का कर्ता न माने वह दिगम्बर नहीं। यहाँ का विरोध करने के लिये। इन्दौर में एक बार पचास पण्डित एकत्रित हुए, भाषण दिये। आहा..हा... !

यहाँ कहते हैं **कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता**। समयसार का २०० गाथा का श्लोक-कलश है न ? कोई किसी के साथ सम्बन्ध ही नहीं, सम्बन्ध किसका ? प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय में स्वकाल से परिणम रहा है, वहाँ उसे पर के साथ सम्बन्ध क्या है ? आहा...हा... ! वह वाणी कर सके, होंठ हिला सके, तिनके के दो टुकड़े कर सके, यह तीन काल में नहीं। त्रणखला समझते हो ? तिनका, तिनका। वह तो उसके कारण उसमें उसकी पर्याय से होता है। आहा...हा... !

दाँत हिलावे, यह दाँत ऐसे (हो), वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। उस दाँत के हिलने की पर्याय का जड़ का उस काल में उत्पत्ति काल है। ऐसे होता है, दाँत ऐसे होता

www.vitragvani.com

है। चबाकर खाना, पेट में दाँत नहीं ऐसा कहते हैं न ? चबाकर खाना, मसलकर नहीं, पहले ऐसे मसले पहले मसले और फिर चबाये परन्तु यह चोल सकता नहीं और चबा सकता नहीं। खा सकता नहीं, यह तो पहले ही कहा। यह तो खाने की क्रिया से पहले ऐसे मसलना (होता है) साग आदि कठोर हो तो (ऐसे चोले) आहा...हा... ! यह भ्रम जो अनादि का (चल रहा है) अपने स्वरूप की द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त पर के द्रव्य-गुण-पर्याय में उसकी पर्याय को कुछ कर नहीं सकता। आहा...हा... ! शरीर में आत्मा न हो तो यह गर्दन ऐसे न रहे, लो ! आत्मा निकले (तब) नहीं होता ? आत्मा निकल जाये तो शरीर ऐसा नहीं रहता, ऐसा नहीं रहता। परन्तु वह आत्मा के कारण यह सिर—ऐसा नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। अरे रे !

तेरापंथी का एक साधु था, तेरापंथी का आचार्य, हों ! उसे बहुत तेज बुखार आया, उसमें व्याख्यान देने बैठे, बुखार में, हों ! उसमें बराबर समय जहाँ ऐसा आया तो गर्दन (ऐसे ढल गयी)। व्याख्यान देते हुए देह छूट गयी। तेरापंथी है न ? यह तुलसी, लाडनूँ, लाडनूँ का, तुम्हारे वहाँ का है न ? लाडनूँ, वहाँ का है। अभी (लोए) निकाल डालना चाहता है। णमो लोए सव्वसाहूणं है न ? वह कहता है लोए निकाल डालो। आहा...हा... ! कुकर्म (करता है) लोक में एक जगह नहीं परन्तु अरिहन्त भी किसी स्थान में कहीं होते हैं, किसी स्थान में कहीं होते हैं और आचार्य, उपाध्याय, साधु भी किसी स्थान में कहीं होते हैं और कोई कहीं होते हैं; इसलिए लोक—ऐसा कहा है। लोक का अर्थ कोई दूसरो अन्यमती के साधु मिल जाते हैं, इसलिए लोक में कहा है ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

तब और एक सुशीलकुमार स्थानकवासी है, वह कहता है कि सव्व साहूणं कहा है, उसका अर्थ सभी साधु इसमें आते हैं। जैन हो या अन्य हो। अरे ! सुन न भाई ! ऐसे के ऐसे खीचड़ा करनेवाले। वह अमेरिका गया था, विरोध हुआ था। तथापि उसकी सहायता करनेवाले मिल गये। मुँहपत्ती सहित, हों ! विलायत-अमेरिका (गया था), वापस आ गया था। आहा...हा... ! वह कहता है कि सव्व शब्द जो पड़ा है, णमो लोए सव्वसाहूणं आता है न ? वास्तव में तो णमो लोए सव्वसाहूणं पाँचों पद में है, वह तो अन्तिम अन्त दीपक है; इसलिए शास्त्र में पाठ है कि णमो लोए सव्वसाहूणं जो है, वह पहले पद में भी ले लेना।

www.vitragvani.com

णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। तदुपरान्त धवल शास्त्र में तीसरी बात है कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। त्रिकालवर्ती! इसी प्रकार णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती अरिहंताणं—ऐसा पद है, बापू! यह तो अनादि मन्त्र है। यह एक शब्द वापस बदले—ऐसा नहीं हो सकता और णमो लोए सव्व साहूणं, यह शब्द मिलकर तो पैंतीस अक्षर होते हैं। णमो अरिहंताणं में भले वहाँ लोए शब्द पहले नहीं बोलते। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। ये अक्षर पैतीस होते हैं। यह द्रव्यसंग्रह में गाथा है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का द्रव्यसंग्रह। णमोकार मन्त्र के पैंतीस अक्षर हैं—ऐसा पाठ है, मूल गाथा है। अब पैंतीस अक्षर मूल के हैं, इसलिए लोए निकाल डालना? तैतीस अक्षर करना है? ऐसे के ऐसे पके, कौन जाने, क्या काल (आया है)? समझ में आया?

यहाँ तो णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, आहा...हा...! यह पहला जो बोला जाता है, वह यह बोला जाता है। णमोकार मन्त्र बोलने से पहले बोलते हैं न अन्दर? वह णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं (बोला जाता है)। आहा...हा...! भूतकाल में, वर्तमान में और भविष्य में जो जीव तीर्थंकर या अरिहन्त अन्य होनेवाले हैं, वे भले अरिहन्त का जीव अभी नरक और निगोद में हो परन्तु भविष्य में होनेवाले हैं, उन्हें भी वर्तमान णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं (बोलकर नमस्कार किया जाता है)। ए...ई.. वह कहता है-लोए निकाल डालो। वह कहता है सर्व का अर्थ सब साधु शामिल हैं—ऐसा करना। ऐसे के ऐसे। दिगम्बर सन्त अनुभवी आत्मज्ञानी और उनमें तीन कषाय के अभाव के आनन्द की मोहरछाप (लगी है)। जिनकी नग्नदशा, वस्त्र का टुकड़ा न हो, इसके अतिरिक्त साधु कोई साधु नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी होवे तो अकेला द्रव्यलिंगी (हो) और भाव न हो तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। भाव हो, उसे द्रव्यलिंग ऐसा होता ही है। जिसे अन्तर में आनन्द का ऊफान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में से अन्दर अकेला आनन्द का कन्द अन्दर जाग उठा

www.vitragvani.com

है, वह अतीन्द्रिय आनन्द, दर्शन, ज्ञान और चारित्र जो द्रव्य का, वह प्रगट हुआ-ऐसे जीव को भावलिंग जिसे प्रगट हुआ है, उसे द्रव्यलिंग ही होता है, नग्नपना ही होता है। उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प व्यवहार से आये बिना नहीं रहते। नग्नपना न हो और वस्त्रसहित हो, उसे भावलिंग प्रगट हो—ऐसा कभी नहीं होता। इससे द्रव्यलिंग है तो उससे भावलिंग है—ऐसा भी नहीं। अरे... अरे! ऐसी बातें समझ में आया?

यह प्रश्न एक बार उठा था। चाँदमलजी उदयपुर में थे। नहीं? उदयपुर आश्रम, आश्रम में थे। उदयपुर चाँदमलजी थे। पुराने (थे) यहाँ आये थे। यहाँ तो हमें ४३ वर्ष हो गये न! वे कहते कि जब भगवान की दीक्षा होती है, तब वस्त्र उतारते हैं या नहीं? वे वस्त्र उतारने (की क्रिया) कर सकते हैं या नहीं? कहा, नहीं। विकल्प आता है परन्तु उतरने की क्रिया है, वह जड़ की जड़ से होती है। आत्मा वह वस्त्र ऐसे उतारे—ऐसा नहीं हो सकता। चाँदमलजी थे, उदयपुर। कोई नहीं उदयपुरवाला? तुम उदयपुर के। उस ओर पीछे आश्रम है, वहाँ थे। वृद्ध थे, यहाँ आये थे। उस मकान में थे। यह तो चार वर्ष हुए। उस मकान में थे, वे कहते-परन्तु वस्त्र उतारना, वह तो उतारे जा सकते हैं। मुनि, तीर्थंकर भी वस्त्र उतारते हैं। कहा, यह बात मिथ्या है। वस्त्र उतारने की क्रिया आत्मा कर सके — (ऐसा नहीं है)। यह **कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता**। आहा...हा...! और मुनि को वस्त्र उतरे बिना रहते नहीं, तथापि वह वस्त्र को उतारने की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता है। ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं उतार सकता, व्यवहार से उतार सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक बोलने का कथन है न! बापू! ऐसा कहा जाता है कि इसने वस्त्र उतारे। यह तो कथन है। पाँचवीं गाथा में नहीं आया? उसमें अपने पाँचवें कलश में (आ गया है)। व्यवहारनय अर्थात् कथनमात्र। उसमें नहीं अपने पाँचवाँ श्लोक है न? पाँचवाँ श्लोक, नहीं? व्यवहारनय... वहाँ है। व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। वह तो कथन है। आहा...हा...! उन्होंने अर्थ ही यह किया है। ऐसी टीका जगन्मोहनलालजी नहीं कर सके।

यह राजमल तो जैनधर्म के मर्मी थे। आहा...हा...! यह कथन में ऐसा आता है।

www.vitragvani.com

सन्त वस्त्र उतारते हैं, नग्नपना धारण करते हैं। यह नग्नपना जड़ का धारण करना, वह क्रिया आत्मा की है ही नहीं। यह वस्त्ररहित (होने की) जड़ की क्रिया, वह तो परमाणु की-उसकी क्रिया है; वह आत्मा की क्रिया है ही नहीं। आहा...हा...! तथापि भावलिंगी को नग्नपना हुए बिना रहता ही नहीं। अरे! ऐसी बातें हैं। आहा...हा...! यह तो अनादि का जैनदर्शन का मार्ग यह है। इन श्वेताम्बर ने जो वस्त्रसहित मुनिपना मनाया है, वह जैनदर्शन की पद्धति ही नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो वस्त्र उतर जाते हैं, परन्तु वस्त्र उतारे, वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहा...हा...!

सर्वविशुद्ध अधिकार में तो ऐसा भी आता है। प्रभु! मुझे द्रव्यलिंग धारण कराओ, पंच महाव्रत दो। फिर गुरु कहते हैं, लो! यह दिया, ऐसा भी आता है। वह तो व्यवहारनय का कथन है। शब्द शास्त्र के देखने जाये और किस नय का कथन है? (समझे नहीं)। किस नय का कथन है? प्रत्येक शास्त्र की एक-एक गाथा में शब्दार्थ, नयार्थ, आगमार्थ, मतार्थ और भावार्थ—ऐसे पाँच पद से एक-एक गाथा का अर्थ होना चाहिए। आहा...हा...! है न? समयसार में है, नियमसार में है, द्रव्यसंग्रह में है। आहा..हा...! सब जगह डाला है। एक शास्त्र की एक गाथा, उसका शब्दार्थ होना चाहिए, पश्चात् यह मतार्थ होना चाहिए कि अन्यमत इसमें क्या मानता है और आगमार्थ (अर्थात्) जैन स्वयं (क्या मानते हैं), वह होना चाहिए और यह नय व्यवहार है या निश्चय है, ऐसा होना चाहिए। आहा..हा...! और फिर उसका तात्पर्य-भावार्थ होना चाहिए परन्तु यह कहते हैं इसका तात्पर्य क्या? ऐसे एक-एक गाथा में पाँच-पाँच बोल को उतारना ऐसा शास्त्रपाठ है। ऐई... है न यह प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ सबमें पाठ में है। आहा...हा...! बापू! यह तो गहन मार्ग, भाई!

प्रभु! तू कौन और कितना? आहा...हा...! यह अनन्त शक्तिवाला अवश्य परन्तु यह पर की क्रिया कर सके—ऐसी शक्ति इसमें नहीं है। पर की क्रिया करने के लिये पंगु है। अपनी पर्याय को करने के लिये सामर्थ्यवाला है। पर की क्रिया के लिये एक अँगुली हिलाना, वह भी पंगु है, आत्मा उसे नहीं कर सकता। आहा...हा...! पर की दया पालन कर सके, वह आत्मा नहीं। पर की दया का भाव / राग आवे... समझ में आया? उसे कर

www.vitragvani.com

सकता हूँ—ऐसा मानना, वह ज्ञानस्वरूप को लांछन है, लांछन है। भगवान निर्दोष आत्मा, ज्ञानस्वरूपी ज्ञान; वह ज्ञान, विकृत अवस्था को करे किस प्रकार? विकृत अवस्था करने जाता है तो ज्ञान, अज्ञान हो जाता है। जाननेवाला नहीं रहता। आहा...हा...! ऐसा बहुत कठिन काम है। जैन सम्प्रदाय में-दिगम्बर में पड़े हुए को भी पता नहीं होता। वाड़ा में पड़े हैं उन्हें। ऐसा सत्य प्रभु का! आहा...!

कोई किसी का... (अर्थात्) दूसरे का। **कुछ...** जरा भी **कर नहीं सकता।** कुछ (अर्थात्) किंचित् भी-जरा भी कर नहीं सकता। आहा...हा...! ऐसा कफ जो (आवे), उसे (निकालने की) क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहा...हा...! नाक में से निकालता है न? वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। कफ अ.. हम... करके बाहर निकाल फेंके, वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। **कोई...** अर्थात् कोई भी पदार्थ, **किसी का...** अर्थात् दूसरे का **कुछ...** अर्थात् थोड़ा भी, किंचित् भी **नहीं कर सकता।** आहा...हा...! यह सब करते हैं न? सब बड़े-बड़े व्यापार और यह... रतिभाई! यह सब बड़े सेठ... बड़े क्या कहलाते हैं? कारखाना। क्या कहा?

मुमुक्षु : उद्योगपति।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्योगपति। लो, वे शान्तिसागर... कैसा शान्ति...? साहू शान्ति, साहू उद्योगपति! परन्तु उद्योग कौन करता है? सुन तो सही! पर का उद्योग। कारखाना लेना और एक-एक कारखाने में बड़ी आमदनी और कितने ही कारखाने हैं। दिल्ली, कलकत्ता? कलकत्ता। अब यहाँ हुआ। कलकत्ता में हमें ले गये थे, उनका लड़का अशोक है। तीन (कारखाने में) ले गये थे। फिर कहा, अब नहीं। बड़े कारखाने करोड़ों के। आहा...हा...! वे उद्योगपति कहलाते हैं। जड़ की क्रिया के बढ़ानेवाले, उसके स्वामी, मालिक, उसके-धूल के पति।

यहाँ कहते हैं पर्याय का करे, वह भी वास्तव में तो निर्मलपर्याय का करे, वह इसका वस्तु का स्वरूप है। विकार करे वह भी इसके वस्तु की स्थिति नहीं। होता है उसकी पर्याय में, अज्ञानभाव से करता वह है। समझ में आया? आहा...हा...! क्योंकि ज्ञान चैतन्यज्योति प्रभु, वह तो जानने-देखने का कार्य करे। यह अन्धा राग, जिसमें चैतन्य का अंश नहीं, उसे

www.vitragvani.com

चैतन्य सामान्य त्रिकालीस्वभाव उस अन्धकार को, प्रकाश कैसे करे ? आहा...हा... ! तो फिर दूसरे का कुछ करे, सेवा करे, देश की सेवा करता है, अमुक तो यह सेवा करता है, जिन्दगी ६०-७० की हो गयी, अब निवृत्ति से सेवा (करता है) वैद्य है, डॉक्टर है, अमुक सेवायें करता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सेवा गृह का धर्म। धूल का भी धर्म नहीं। आहा...हा... !

विभाव भी तेरे नहीं हैं... दूसरे की तो क्या बात करना ? कहते हैं। तेरे अतिरिक्त दूसरा तत्त्व (है, उसका) कुछ भी नहीं कर सकता। अब आगे जाकर (कहते हैं), **विभाव भी तेरे नहीं हैं...** वे भी कोई हैं-पर है। आहा...हा... ! पुण्य और पाप का भाव, दया, दान भक्ति का भाव, वह विभाव है; वह विभाव भी तेरा नहीं। **तो बाह्य संयोग तो कहाँ से तेरे होंगे ?** तो यह शरीर, वाणी, मन, कर्म और स्त्री, पुत्र तो कहाँ से तेरे आये ? कहते हैं। आहा...हा... ! तेरे स्वरूप में तो विभाव भी नहीं.. आहा...हा... ! और विभाव तेरा नहीं। कृत्रिम पुण्य और दया, दान, व्रत का विकल्प भी विभाव है। वह त्रिकाली आनन्द के नाथ स्वभाव का नहीं तो फिर बाहर की संयोगी चीजें तेरी कहाँ से होगी ? आहा...हा... !

विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग... यह तो संयोग है। वह विभाव संयोगीभाव है। संयोगीभाव है, वह भी तेरा नहीं तो संयोगी चीज है वह तो तेरी कहाँ से हुई ? यह मेरा पुत्र और यह मेरी स्त्री, यह मेरी अर्धांगिनी... आहा...हा... ! यह मेरी घरवाली है, परन्तु घर तेरा कहाँ था, वह घरवाली आयी ?

मुमुक्षु : स्त्री हो तो कहती है कि मेरा घरवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहती है, मेरे पतिदेव हैं—ऐसा कहती है। मीठी भाषा। मेरे पतिदेव हैं, सब पता है न ! मीठी भाषा से बोले तो ऐसा बोले, हमारे पतिदेव हैं। पति है-ऐसा न कहे, पतिदेव हैं। हो गया पतिदेव इसका ? आहा...हा... ! सब जगत का सुना है और सब पता तो है न !

यहाँ कहते हैं **विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग तो कहाँ से तेरे होंगे ?** जो

www.vitragvani.com

विकृत तेरी दशा में होता है, वह भी जहाँ वस्तु का नहीं... आहा...हा... ! पुण्य और पाप के भाव भी जहाँ तेरे नहीं तो अजीव और दूसरे जीव तेरे किस प्रकार होंगे ? भाई ! आहा...हा... ! तुझमें होनेवाली विकृत अवस्था का विभाव भी जहाँ तेरे स्वभाव और स्वरूप का नहीं तो जो चीज़ अत्यन्त पृथक् है, जिसके प्रदेश और क्षेत्र अत्यन्त भिन्न हैं, वे संयोगी चीजें तेरी कहाँ से होगी ? आहा...हा... ! कठिन काम। स्त्री तो हमारी है, यह हमारे पुत्र हैं, कमाऊ है, कर्मी है—ऐसा करके अपने को मान मानता है कि ऐसे हमारे लड़के भाग्यवान ! लड़के दो-दो लाख की आमदनी महीने में करते हैं, अफ्रीका में ऐसी दुकानें की हैं और... क्या है परन्तु तुझे यह ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य। पूनमचन्दभाई कहते थे, पूनमचन्द। मलूकचन्दभाई के पुत्र हैं न ? बड़े पाँच करोड़ रुपये हैं। मुम्बई। यह अपने चन्दुभाई के पिता से बड़े भाई के पुत्र हैं न ? पूनमचन्द ! उसके चार लड़के हैं। पूनमचन्द मुम्बई में, बड़े... बनाते हैं। पाँच करोड़ रुपये हैं। चन्दुभाई से छोटे हैं, उनके बड़े पिता के पुत्र हैं, वे एक बार बात करते (थे), अहमदाबाद में बात होती थी, उनके पिता भी बैठे थे। ये सब बातें परन्तु बापू ने पैसा... क्या कहा भाई ने ? पैसे का स्वाद बापू ने चखा कहाँ है तो इन्हें पता पड़े ? क्योंकि तब पचास-साठ हजार रुपये, तीस-चालीस हजार इनके पिता के पास (होंगे), अभी पाँच करोड़, छह करोड़ मुम्बई में। आहा...हा... ! और उससे छोटा एक है, स्विटजरलैंड, उसके पास चार करोड़ हैं।

मुमुक्षु : वह बड़ा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बड़ा है, यह छोटा है। वह बड़ा है, वहाँ उसे पुत्र नहीं, एक ही पुत्री, विवाह कर दिया फिर भी ममता का पार नहीं, वहाँ बड़े बंगले और बाग, चार करोड़ रुपये, एक पुत्री, विवाह कर दिया, एक भी पुत्र नहीं है। मेरा... मेरा... मेरा... बंगला, धूल में भी नहीं, बंगला किसका और बाग किसका ? आहा...हा... ! जहाँ विभाव तेरा नहीं, वहाँ संयोगी चीज तेरी कहाँ से आयी ? कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! गजब काम कठिन। सबके साथ रहना और साथ मेरे हैं—ऐसा मानना नहीं।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : छहों द्रव्य साथ में रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्य एक जगह होते हैं, भले हों। क्या है परन्तु? यहाँ यह आकाश का एक प्रदेश है। उसमें धर्मास्ति का प्रदेश है, अधर्मास्ति का प्रदेश है, काल का है, अनन्त जीवों के असंख्य प्रदेश हैं, अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध हैं, यहाँ एक आकाश के प्रदेश में, एक आकाश का प्रदेश, हों! ऐसे दूसरे, तीसरे ऐसे असंख्य प्रदेश लोक के हैं। अलोक के अनन्त (प्रदेश हैं)। एक-एक प्रदेश में एक धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश है, तथापि उसे और इसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वहाँ अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है, तथापि उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। एक काल का एक अणु है, इसलिए उसे कोई सम्बन्ध नहीं है और उस काल में वहाँ अनन्त जीवों के असंख्य प्रदेश हैं, अनन्त जीव के असंख्य प्रदेश हैं। एक जीव एक प्रदेश में नहीं रह सकता। एक प्रदेश में एक जीव का असंख्यातवाँ भाग रह सकता है। इसी प्रकार पूरा जीव एक प्रदेश में नहीं रह सकता और एक प्रदेश में एक जीव का असंख्यातवाँ भाग (रहता है), ऐसे अनन्त जीव के असंख्य भाग के अनन्त प्रदेश रह सकते हैं। इतनी तो जीव की महिमा है कि एक प्रदेश में पूरा नहीं रह सकता। असंख्य प्रदेश रहने को चाहिए। ऐसा एक जीव का असंख्यातवाँ भाग आकाश के एक प्रदेश में है। ऐसे अनन्त जीवों को असंख्यातवाँ भाग, ऐसे अनन्त प्रदेश, एक प्रदेश पर है परन्तु एक प्रदेश में एक जीव के असंख्य प्रदेश एक साथ नहीं रह सकते। आहा...हा...! अरे.. अरे! ऐसी बातें हैं और साथ होने पर भी एक-दूसरे को कोई सम्बन्ध नहीं है। लेना न देना। समझ में आया?

मुमुक्षु : रहते हैं इतना सम्बन्ध तो है?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहते हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र में; आकाश के क्षेत्र में रहते हैं। यह कहना व्यवहार है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ कृष्ण-५, सोमवार, दिनाङ्क २४-०७-१९७८
वचनामृत-१२८-१२९ प्रवचन-४७

आत्मा तो ज्ञाता है। आत्मा की ज्ञातृत्वधारा को कोई रोक नहीं सकता। भले रोग आये या उपसर्ग आये, आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। उपसर्ग आया तो पांडवों ने अन्तर में लीनता की, तीन ने तो केवलज्ञान प्रगट किया। अटके तो अपने से अटकता है, कोई अटकाता नहीं है ॥१२८॥

१२७ है न? १२७ हो गया, १२८

आत्मा तो ज्ञाता है। क्योंकि उसका ज्ञायक स्वभाव है। वह कोई राग को करे या पर को करे-ऐसा उसका स्वरूप नहीं। इसलिए यहाँ जिसने आत्मा को जाना है, उस जाननेवाले ने जाना क्या? कि आत्मा त्रिकाल ज्ञाता / ज्ञायक है। उसका स्वभाव वर्णन किया है न? 'समयसार नाटक'—'समता, रमता, उर्ध्वता, ज्ञायकता सुखभास' उसमें 'सुखभास' में सुख-दुःख लिया है। यहाँ ऐसा नहीं लेना है। 'ज्ञायकता, चैतन्यता, वेदकता, चैतन्यता—यह सब जीव विलास।' अर्थात् जिसकी अस्ति में, 'यह चीज़ क्या है'—ऐसा ज्ञात होता है; जिसकी विद्यमानता में, विद्यमानपने में प्रत्येक प्रसंग में जिसका ज्ञान करनेवाला है, वह ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य है। शरीर, वाणी, मन, रागादि को 'यह है'—ऐसा जाननेवाला विद्यमान तत्त्व तो ज्ञायक है। समझ में आया?

जिसकी अस्ति / विद्यमानता के बिना, यह राग है, शरीर है—ऐसा जाने कौन? जाननेवाले की अस्ति की विद्यमानता में (ज्ञात होता है)। ऊर्ध्वता का अर्थ लिया है,

www.vitragvani.com

'समयसार नाटक' में साधारण अर्थ किया है-ऊर्ध्वतास्वभाव। परन्तु वह तो एक समय की, वह अलग बात है, परन्तु यह तो शाश्वत् इसका ऊर्ध्वतास्वभाव है। प्रत्येक प्रसंग में स्वयं की जाननेवाले की अस्ति न हो तो यह है, यह है, यह है (-ऐसा) जाना किसने? आहा...हा...! राग हुआ, परन्तु वह राग है—ऐसा जाना किसने? वह जाननेवाला मुख्य वहाँ है। ज्ञायकता, चैतन्यता का विलास / स्वभाव मुख्य है। आहा...हा...! यह जाननेवाला है, वह कोई भी प्रसंग हो तो उस प्रसंग में वह है—ऐसी विद्यमानता तो ज्ञान की है। ज्ञान की अस्ति के बिना, 'यह है'—ऐसा जाने कौन? यह प्रकाश है, यह प्रकाश है, उसकी अस्ति में यह ज्ञान की अस्ति न हो तो 'यह प्रकाश है'—ऐसा जाना किसने? समझ में आया? आहा...हा...!

प्रत्येक प्रसंग में जाननेवाले की मुख्य अस्ति ऊर्ध्वता उसकी ही है। चाहे तो शरीर की क्रिया हो, धन्धे की क्रिया हो परन्तु 'यह है'—ऐसा किसकी विद्यमानता में ज्ञात हुआ? आहा...हा...! यह तो ज्ञायकस्वभाव की विद्यमानता में 'यह है'—ऐसा ज्ञात हुआ। आहा...हा...! यह ज्ञात हुआ, वह मेरी चीज़ है-ऐसा नहीं; ज्ञात हुई है तो वह ज्ञान की दशा। यह शरीर है, अन्दर राग है, कान से नाम सुना, कर्म है, परन्तु वह कर्म है—ऐसा इसने जानने की विद्यमानता में इसने जाना न? यह कर्म है, उस कर्म को तो ज्ञान नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। जिसकी मुख्यता में, ऊर्ध्वता में जाननेवाले की विद्यमानता न होवे तो 'यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है'—यह किसकी सत्ता में? पर की सत्ता में या स्व की सत्ता में? ऐसी बातें हैं।

प्रथम ही यह तो सम्यग्दर्शन होने पर इसे (ऐसा अनुभव होता है कि) जाननेवाला ही मैं हूँ; बाकी कोई चीज़ मेरी नहीं। आहा...हा...! राग—दया, दान, व्रत का राग आवे, परन्तु उसका यह जाननेवाला मैं हूँ कि यह है—ऐसा जाननेवाला तो जाननेवाले की विद्यमानता बताता है। राग है, उसकी अस्ति राग नहीं बताता; राग की अस्ति, ज्ञान की अस्ति को बताती है कि यह राग है। समझ में आया? ऐसी बात प्रथम यह है। प्रथम सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ अशुभ को टालना और शुभ में आना, फिर होता है, यह वस्तु हो सकती ही नहीं, वह तो अज्ञानी है। मिथ्यात्वभाव महा अशुभ के पाप में तो पड़ा है। दृष्टि

www.vitragvani.com

राग पर है, पुण्य पर है, क्रियाकाण्ड पर है। आहा...हा...! यह जाननेवाला ज्ञायक है, जिसकी अस्ति बिना दूसरी चीज़ की अस्ति की, अस्ति की खबर नहीं पड़ती। जिसकी जानने की अस्ति बिना, दूसरी यह चीज़ अस्तिवाली है, इसकी भी खबर नहीं पड़ती। आहा...हा...!

इसलिए **आत्मा तो...** यह ऊर्ध्वता है न, भाई! समता, रमता, ऊर्ध्वता—इसके दो अर्थ किये हैं। समयसार नाटक में ऐसा कहा है, ऊर्ध्व स्वभाव। जो... परन्तु वह एक समय नहीं; शाश्वत् उसका स्वभाव ले तो ऊर्ध्वता यह है। श्रीमद् ने यह अर्थ किया है। शाश्वत् उसका स्वभाव। विद्यमानता में, जिसकी अस्ति में, विद्यमानता में-जिसकी मौजूदगी में, ज्ञान की मौजूदगी में यह जानने में आया कि यह राग है, दया का ही परिणाम है। ये परिणाम कहीं जानते नहीं। इन परिणामों को जाननेवाला इनसे भिन्न है। इस भिन्न की अस्ति में-ज्ञान की अस्ति न हो तो राग है—ऐसा जाना किसने? आहा...हा...! समझ में आया?

यह शरीर की युवा अवस्था है, वृद्ध अवस्था है, परन्तु इस अवस्था की स्थिति में ज्ञान की मुख्यता न हो तो यह वृद्धावस्था है—ऐसा जाना किसने? समझ में आया? शरीर में रोग की अवस्था है, परन्तु रोग की अवस्था है, यह ज्ञान की विद्यमानता बिना 'यह है'—ऐसा जाना किसने? आहा...हा...! इस जाननेवाले में रोग और शरीर की अवस्था नहीं। ऐसी बातें हैं।

आत्मा तो ज्ञाता है न! आत्मा की ज्ञातृत्वधारा को कोई रोक नहीं सकता। क्या कहा? ज्ञायकता जो इसका स्वभाव है, उसका जहाँ अन्तरभान हुआ, ऐसी ज्ञायक की धारा को कोई रोक सके—ऐसी जगत में ताकत नहीं है। आहा...हा...! जाननेवाला जागकर उठा (कि) मैं तो एक ज्ञायक चैतन्यतत्त्व हूँ; चेतन, वह चैतन्यस्वरूप ही है। चेतन, चैतन्यस्वरूप है। आहा...हा...! ऐसा जहाँ अनुभव में आया, ऐसी ज्ञाताधारा को कोई रोक नहीं सकता। आहा...हा...!

भले रोग आवे... है? परन्तु रोग अर्थात्? वह तो जड़ की दशा है। यह रोग है, वह तो जड़ की दशा है। उसमें—आत्मा में कहाँ ऐसी दशा आयी? आत्मा तो उस रोग के काल में भी जिसकी ऊर्ध्वता मुख्य है, उसमें ज्ञान से इसने जाना कि है वह। वह है, उसमें मिलकर नहीं जाना। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी बातें कहाँ अब लोगों को धन्धे

www.vitragvani.com

के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। स्त्री-पुत्र और परिवार... अभी 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में पढ़ने में आया था। पृष्ठ खोला, उसमें यह आया था कि दुनिया का बहुभाग तो पाप की परिणति में जाता है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में ऐसा आया था, उसमें है। कौन जाने पढ़ते हुए निकला। यहाँ तो अपने बहुत बार कहते हैं। मैं तो वहाँ वह देखना चाहता था। ऐसा कि शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जिसका प्रयोजन दूसरा है, वह ज्ञान भी अज्ञान है। आहा...हा...! जिसका ज्ञान हुआ, उसका प्रयोजन तो ज्ञातारूप रहना, वह उसका प्रयोजन है। इसके बदले, ज्ञान हुआ उसे बाहर की प्रशंसा और महिमा की धारा में ले जाना... आहा...हा...! वह ज्ञान ही नहीं। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हो न! आहा...हा...! क्या कहते हैं यह बात? समझ में आया? है न उसमें? तीसरे अध्याय में है। उसमें निकला था। यह मोक्षमार्गप्रकाशक है न? ८९ पृष्ठ पर था, वह निकला तब, हों! आहा...हा...!

सत्य जाने, तथापि ज्ञान है ऐसा स्वरूप है-ऐसा बराबर जाने, तथापि उस द्वारा अपना अयथार्थ प्रयोजन साधे (अर्थात्) मान का या महिमा का (प्रयोजन साधे) आहा...हा...! समझ में आया? अयथार्थ प्रयोजन साधता है; इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। आहा...हा...! समझ में आया? सच्चा ज्ञान बराबर होने पर भी अप्रयोजन है, प्रयोजन यथार्थ नहीं, वह मान और महिमा दुनिया माने और सभा प्रसन्न हो और इससे स्वयं भी प्रसन्न होता है कि मुझे कुछ आता है, दुनिया में मेरी बात बाहर आयी, इसलिए मैं कुछ बड़ा हूँ... ऐसी बात है। वह मिथ्याज्ञान है। आहा...हा...!

चौथे भाग (अध्याय) में है न? चौथा भाग है न? मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के (अधिकार में) है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत लिखा है, टोडरमलजी ने बहुत स्पष्टीकरण किया है। बहुत बनाया है। ओहो...हो...! उनकी बुद्धि और उनका क्षयोपशम...! छह महीने तक तो उनकी माँ ने सब्जी में नमक नहीं डाला, उसका पता नहीं था, इतनी एकाग्रता से बनाया। जहाँ बनाने का (ग्रन्थ रचना का कार्य) पूर्ण हुआ, तब कहा, माँ! इसमें-शाक नमक नहीं है न! भाई! छह महीने से नहीं डालती परन्तु तू तेरी रचना की एकाग्रता में (होने से) तुझे कुछ लक्ष्य नहीं था।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा नहीं हुआ।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ नहीं परन्तु बनाते थे न इतना। बनाते थे, उसमें... आहा...हा...! जितना हुआ उतने में भी उन्हें लक्ष्य, यह सब्जी खारी है या नहीं—इसका पता नहीं, इतनी तल्लीनता सत्य को प्रसिद्ध करने की, दिखने की, जानने की। आहा...हा...! वहाँ तो वे ऐसा कहते हैं—अज्ञानी में भेदाभेद का विपर्यास होता है या स्वरूप विपर्यास होता है; कुछ का कुछ अन्दर कारण विपर्यास होता है परन्तु कहते हैं, कदाचित् वह न हो और सत्य हो परन्तु अप्रयोजन-अयथार्थ प्रयोजन को साधे.. आहा...हा...!

मुमुक्षु : तो वह ज्ञान मिथ्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्या ज्ञान है। आहा...हा...! जो ज्ञान, स्वरूप में रहकर आनन्द को साधे... आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को लेने के लिये जिसने ज्ञान किया है। प्रयोजन तो यह है न? आहा...हा...! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं। अभी तो दिगम्बर साधु भी बाहर में क्रियाकाण्ड में (पड़े हैं)। वह क्रियाकाण्ड भी नौवें ग्रैवेयक गया, वैसा कहाँ है? आहा...हा..! आहा...हा...!

जाननहार को **आत्मा की ज्ञातृत्वधारा को कोई रोक नहीं सकता। भले रोग आये...** रोग आवे, वह तो जड़ की दशा है। शरीर है, वह तो वेदना की मूर्ति है। प्रभु तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है। आहा...हा...! **भले रोग आये या उपसर्ग आये,...** आहा...हा...! जहाँ बैठा हो, वहाँ ऊपर से दीवार गिरे, खड़ा हो और दीवार, दीवार (गिरे), सर्प आकर काटे, बिच्छु आकर काटे, कोई ऊपर से पत्थर मारे, दीवार के सहारे बैठा हो और दीवार तो आड़ी हो... भींत भींत समझे न? दीवार, दीवार के पीछे रहकर मनुष्य (या) कोई साधु बैठा हो (तो) पत्थर मारे... आहा...हा...!

आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। रोग आवे और उपसर्ग आवे तो आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। आहा...हा...! ऐसी बात है। आहा...हा...! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! प्रथम सम्यग्दर्शन की ही बात कठिन है। फिर तो स्वरूप में रमणता / चारित्र तो उसे आता ही है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूपाचरण तो साथ में होता ही है। आहा...हा...! और उसके बिना तो चाहे जितने परीषह सहन करे, उपसर्ग सहन करे परन्तु ज्ञाताधारा जानने में नहीं आयी, वहाँ आगे उसे राग से भिन्न / भेदज्ञान नहीं हुआ।

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! राग और उपसर्ग आवे, वह तो जड़ की दशा है। वह कहीं आत्मा रोगवाला हो जाये या उपसर्गवाला हो जाये—ऐसा नहीं है। आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। ऐसी बातें हैं।

उपसर्ग आया तो पांडवों ने.... शत्रुंजय। पाँच पाण्डव सहोदर थे। एक माता के गर्भ से उत्पन्न हुए कुन्ती (माता) के (राजकुमार) धर्म राजा, भीम, अर्जुन, सहदेव और नकुल राजकुमार, महायोद्धा। आहा...हा... ! वे ऐसे मुनिपने में आनन्दस्वरूप में... आहा...हा... ! केलि करते हैं ! यह शत्रुंजय ! ध्यान में ऐसे खड़े हैं। दुर्योधन का भानेज आकर (कहता है) 'राज चाहिए न तुम्हें ? यह लो राज देते हैं।' अर..र.. ! गजब है न ! अरे, प्रभु ! यह तो ध्यान में, आनन्द में बैठे हैं ! लोहे के तमतमाते कड़े बनाकर (पहनाते हैं) अरे ! कोई मनुष्य भी नहीं होता ? यह शत्रुंजय तो यह रहा परन्तु ऐसे समय ऐसा होता ही है, कोई होता ही नहीं। आहा...हा... !

उन पाँचों को लोहे के तमतमाते कड़े पहनाये, लोहे के हार गरम करके पहनाये, लोहे का मुकुट गरम करके पहनाया... आहा...हा... ! पैर में लोहे के कड़े गरम करके डाल दिये परन्तु ज्ञानधारा है, उसे कोई रोकने में समर्थ नहीं है। जिसने ज्ञायकभाव का अनुभव किया, मैं तो चैतन्य हूँ और वह भी मैं अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वरूप हूँ; मुझमें यह दुःख और उपसर्ग मेरी चीज़ में है ही नहीं। आहा...हा... ! ऐसे सन्तों को या समकिती को कहते हैं...

पांडवों ने अन्तर में लीनता की, तीन ने तो केवलज्ञान प्रगट किया। आहा...हा... ! उस कड़े को छूता ही नहीं, चूमता ही नहीं। आहा..हा... ! उससे भिन्नरूप से रहा हुआ ज्ञान, उसके आनन्द को वेदता भगवान, आहा...हा... ! वह तो अन्दर में केवलज्ञान को प्राप्त हुए ! ऐसे-ऐसे लोहे के... राजकुमार, आहा...हा... ! महायोद्धा !

एक बार योद्धाओं की बड़ी सभी एकत्रित हुई थी, फिर महिमा करते... करते... करते... बड़ी सभा उस समय यादवों की थी। सब योद्धा एकत्रित हुए। महिमा करते-करते अन्त में महिमा आयी पाण्डवों की, पाण्डव योद्धा हैं, महायोद्धा हैं। तो एक व्यक्ति फिर ऐसा बोला, वहाँ नेमिनाथ भगवान बैठे थे, अभी दीक्षा नहीं ली थी। नेमिनाथ भगवान।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भाई! तुम पाण्डवों को (महायोद्धा) कहते हो परन्तु भगवान नेमिनाथ की बलशक्ति, योद्धा की शक्ति अनन्त है। प्रभु बोलते नहीं, बैठे थे। राजकुमार है न! आहा...हा...!

उसमें फिर किसी ने कहा कि लो! अपने परीक्षा करते हैं। भगवान ने दो पैर नीचे रखे। पैर को पकड़े और खड़े पैर को आड़ा पैर करने जाये तो पैर आड़ा हुआ नहीं। बड़े योद्धा पैर को ऊँचा करने के लिये लग गये। तथापि भगवान को कहीं उसका अभिमान नहीं। इतना विकल्प आया कि भाई! तब योद्धा कहते हैं, तुम परीक्षा करो। आहा...हा...! उस पैर को ऐसा हिलाने को पैर नीचे रखा है, वहाँ ऐसे हटाने को योद्धा लगे परन्तु यह तो शरीर के अनन्त बल की बात है, हों! आत्मा की तो क्या बात करना! आहा...हा...! उस बल को जाननेवाली भी ज्ञानधारा है, वह बल मेरा है—ऐसा ज्ञानधारा नहीं मानती। आहा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं कि **उपसर्ग आया तो...** तीन पाण्डव तो बस ध्यान में लवलीन! राजकुमार (थे)। यही क्षेत्र रहा, यहाँ से चौदह मील है। वहाँ ऊपर विराजते हैं। क्योंकि वहाँ से मोक्ष पधारे हैं न? मोक्ष पधारे, (वहीं से) सीधे ही होते हैं न! जहाँ से मोक्ष होता है, वहाँ ऊपर सीधे होते हैं, आड़े-तिरछे नहीं होते, वहाँ से सीधे जाते हैं। शत्रुंजय गये, वहाँ शत्रुंजय के ऊपर ही ऊपर सिद्धरूप से विराजते हैं, समश्रेणी से जाते हैं न! देह छूटकर ऐसे (समश्रेणी से जाते हैं)। ऊर्ध्वस्वभाव है। जिस जगह यहाँ स्थान है, वह स्थान, उस स्थल में ही वहाँ भगवान है। आहा...हा...! यात्रा का कारण यह है।

एक बार पहला-पहला वहाँ मुम्बई (में) प्रश्न हुआ। (संवत्) २०१३ के साल, पहली-पहली बार निकले न? सम्मेदशिखर की (यात्रा को) निकलने की तैयारी। मोटर में कभी बैठे नहीं थे। एक ने प्रश्न किया, स्थानकवासी था। 'वरवाला' वाला ऐसा कहे महाराज! ये यात्रा क्या है? देख भाई! यात्रा का हेतु ऐसा है कि जिस स्थल से स्वयं सिद्ध हुए, उस स्थल में जाने पर ऊपर सिद्ध हैं—ऐसी स्मृति के लिये यात्रा है। था स्थानकवासी, 'वरवाला' वाला। बापू! यह वस्तु होती है, तथापि वह भाव शुभ है। स्मृति में सिद्ध को स्मरण करे, तथापि वह शुभ है; धर्म नहीं, परन्तु वीतराग नहीं है, उसे ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता, तथापि वह धर्म का कारण है-ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात! तथापि आता है, वहाँ जाते हैं—ऐसे ऊपर अनन्त सिद्ध विराजते हैं, केवलज्ञानी के टोला (समूह)

www.vitragvani.com

विराजमान हैं। आहा...हा... ! टोला समझे ? जूथ, जत्था ! केवलज्ञानी का जत्था ऊपर विराजमान है। इसके स्मरण में यह लाते हैं। हेतु यह है। यह स्मरण है, वह शुभराग; वह धर्म नहीं, क्योंकि उसे परद्रव्य के प्रति लक्ष्य गया न ? आहा...हा... ! परन्तु ये पाण्डव कोई यात्रा के लिये वहाँ नहीं गये थे। वे तो भगवान का मोक्ष सुना, इसलिए फिर भगवान के पास जाने को निकले थे, वहाँ पालीताना में सुना कि भगवान मोक्ष पधारे हैं, तो ऊपर चढ़ गये, ध्यान में बैठ गये। तीन जनों ने तो उपसर्ग के काल में केवलज्ञान उत्पन्न किया। भले ही उस समय उपसर्ग न हो, छूट जाये। अन्दर (उपसर्ग का) लक्ष्य नहीं। आहा...हा... ! और दो जनें थे तो सन्त, आत्मज्ञानी, अनुभवी, अन्तर प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की मोहर-छापवाले सन्त थे। वे कोई द्रव्यलिंगी अकेले नग्न या पंच महाव्रत ऐसे नहीं थे परन्तु उन्हें ऐसा एक जरा विकल्प आया। आहा...हा... ! एक तो सहोदर भाई और साधर्मी तथा बड़े धर्मराजा, भीम, अर्जुन। सहदेव और नकुल को (विकल्प आया) क्यों ? अरे ! ऐसे तमतमाता (लोहा पहनाया तो) भाई को कैसे होगा ? ऐसा एक विकल्प आया, (वह विकल्प) था तो शुभ (परन्तु) केवलज्ञान अटक गया। आहा...हा... !

देखो ! यह विकल्प है, वह संसार है। ज्ञानी को भी विकल्प है, वह संसार है। आहा...हा... ! है ? जिनवाणी में ऐसा व्यवहार आया है कि यात्रा करे, आहार हो परन्तु वह भाव है, वह संसार है। गजब बात है बापू ! यह विकल्प आया वहाँ उन्हें दो भव हो गये। सर्वार्थसिद्धि में गये, तैंतीस सागर तो वहाँ रहेंगे और अन्त में मनुष्यभव में भी तुरन्त तो कहीं केवल (ज्ञान) नहीं पायेंगे। आठ वर्ष पहले तो पायेंगे नहीं ? माता के गर्भ में नौ महीने, सवा नौ महीने रहेंगे। आहा...हा... ! देखो, एक शुभभाव आया, उसका फल इतना ! लोग उस शुभ की महिमा करते हैं। शुभ करते हैं, वह ठीक करते हैं। (वे लोग) मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। आहा...हा... !

जरा एक विकल्प आया, वहाँ आगे सर्वार्थसिद्धि में रहना पड़ा, तैंतीस सागर ! एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम, दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम ! एक पल्य के असंख्यात भाग में असंख्य अरब वर्ष। एक शुभराग ऐसा (आया कि) भाई को-मुनिराज को कैसे होगा ? आहा...हा... ! और वहाँ से सवा नौ महीने माता के गर्भ में (रहना पड़ेगा) और आठ

www.vitragvani.com

वर्ष पहले तो केवल (ज्ञान) पायेंगे नहीं। फिर तो अभी पाँच-दस-पच्चीस-पचास वर्ष पश्चात् (केवलज्ञान पायेंगे)। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, ज्ञानी को उपसर्ग और परीषह होवे परन्तु उनका लक्ष्य वहाँ नहीं है। समझ में आया? तीन ने तो केवल (ज्ञान) प्रगट किया। **अटके तो अपने से अटकता है,...** यह विकल्प किया तो अटका, अपने से अटका। यह कोई कर्म ने अटकाया है (—ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! दो भव करने थे, इसलिए कर्म ने उन्हें विकल्प उठाया है-ऐसा नहीं है। अपनी पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण (विकल्प हुआ है), भान है तथापि; कर्ता नहीं होने पर भी; कर्ता नहीं शुभभाव का, होता है, उसे जानते हैं परन्तु इतना हुआ, उनके दो भव बढ़ गये। अटक कर गये। आहा...हा...! मार्ग अलग, बापू! आहा...हा...! यह तो वीर का काम है, कायर का काम नहीं।

अटके तो अपने से अटकता है, कोई अटकाता नहीं है। कर्म-वर्म इसे अटकाता नहीं। आहा...हा...! अभी सब ऐसा ही कहते हैं, हमारे ज्ञान-बहुत क्षयोपशम चाहिए, क्यों हमारे नहीं होता? (क्योंकि) कर्म रोकता है। एक व्यक्ति एकदम पकड़ सके ऐसा उघाड़ (होता है) और एक व्यक्ति पकड़ नहीं सकता, यह सब कर्म के बिना है? ऐई..! कर्म नहीं? कर्म नहीं? कर्म है तो कर्म में रहा; उसके कारण यहाँ ज्ञान की क्षयोपशम दशा कम है-ऐसा नहीं। आहा...हा...! और ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होता है तो यहाँ ज्ञान विशेष बढ़ता है-ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह ज्ञान की विशेष दशा या हीन दशा का कर्ता स्वतन्त्र जीव है। अपनी पर्याय का कर्ता वास्तव में तो पर्याय स्वयं है। आहा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं कि (दो पाण्डव) अटके तो अटके। कोई उन्हें अटकाता नहीं। कर्म ने उन्हें-दो पाण्डवों को विकल्प कराया-ऐसा नहीं है। क्या उन्हें मोक्ष नहीं जाना था? —ऐसा कहे परन्तु वह उदय आया, इसलिए राग हुआ-ऐसा नहीं है। वह पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण राग आया है। आहा...हा...! ऐसी बात है। बहुत अन्तर।

यह बड़ी चर्चा हुई थी न उस दिन? २१ वर्ष पहले, वर्णी जी के साथ बड़ी चर्चा हुई थी। फिर पुस्तक प्रकाशित हुई है। उस चर्चा की हजारों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। है इसमें? कहीं होगा अवश्य। वह भाई था न? कौन? उसने प्रश्न किया। मैं वहाँ से उठ गया

www.vitragvani.com

और कलकत्ता गया था। वहाँ से सम्मेदशिखर से पहले तो जमशेदपुर गये थे। पीछे से प्रश्न किया और उसका पत्र लिखाया, पुस्तक लिखायी। समझ में आया? इसमें कहीं होगा अवश्य। इसमें है। बड़ी पुस्तक हजारों छपायी है।

ऐसा कि कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की हीनाधिकदशा है, वह स्वयं से होती है, ज्ञानावरणीय से नहीं – ऐसा पूछा। ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं। समझ में आया? इसमें कहीं होगा अवश्य, कौन जाने किसमें होगा? प्लास्टिक नहीं लाये होंगे, नहीं लाये होंगे, आहा...हा...! वह प्लास्टिक है, न उसमें है, प्लास्टिक का नहीं वह? उसमें है। यह तो अभी नया प्रकाशित हुआ है।

रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर ने वर्णीजी को प्रश्न किया। ज्ञान में जो कमी हुई, जीव का स्वभाव तो केवलज्ञान है और वर्तमान में जो हमारी संसारी अवस्था में जितने भी जीव हैं, उनके ज्ञान में जो कमी हुई, वह क्या कर्म के उदय के वजह से कमी हुई? या बिना कर्म के उदय के वजह से हुई? वर्णीजी (जवाब देते हैं) इनमें दोनों कारण हैं। कर्म का उदय कारण है, उपादान कारण आत्मा है। वह तो ज्ञानावरणीय कर्म का इस प्रकार का क्षयोपशम है, तब तारतम्य भाव से आत्मा का ज्ञान आदि विकास होता है। आहा...हा...!

पीछे लिया है—कानजीस्वामी यह कहते हैं, महाराज! ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता। यह छपाकर पूछा है। यह नयी प्रकाशित हुई है, उसमें है। यह पुरानी है, उसमें कहीं अन्यत्र होगा। अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी होती है। कमीवेशी ऐसी भाषा है। इसमें कमीवेशी चाहिए। ज्ञान कम और अधिक स्वयं के कारण होता है। कमीवेशी होती है। महाराज! ज्ञान में कमी होती है, वह अपनी वजह से होती है, अपनी योग्यता से होती है।

कानजीस्वामी यह कहते हैं, ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता। महाराज! क्या यह सब ठीक है? क्षुल्लक वर्णीजी जवाब (देते हैं) यह ठीक है! आप ही समझ लो, कैसे ठीक है? यह ठीक नहीं है। कोई भी कहे चाहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी भी कहे तो भी ठीक नहीं। आहा...हा...! निकला फिर, हों! यह क्या है? नियमसार, जीव अधिकार, नियमसार। ऐसी चर्चा वर्णीजी के साथ में (हुई थी), अब वर्णीजी बेचारे कितने... क्षयोपशम था! यह समयसार की पूरी टीका कण्ठस्थ थी परन्तु दृष्टि में अन्तर था।

www.vitragvani.com

ज्ञानावरणीय कुछ नहीं करता ? नहीं; ज्ञानावरणीय करता है, उसके कारण ज्ञान की हीन दशा है। दो कारण किस प्रकार (होंगे) ? यह तो निमित्त का निरूपण / कथन है; उपादान स्वयं से होता है। आहा...हा... !

स्वयं ज्ञान की हीन और अधिक दशा अपनी योग्यता से करता है; कर्म तो निमित्तमात्र है। कर्म क्या करे ? 'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई' यह कहा था, उस दिन वहाँ २१ वर्ष पहले। वर्णीजी बैठे थे, सब पण्डित थे। 'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई' कर्म कहाँ आये ? ज्ञान की हीनदशा, विपरीतश्रद्धा करनेवाला तो मैं हूँ, किसी कर्म के कारण होती है, यह बात बिल्कुल झूठ है। कर्म कर्ता और यह कार्य होता है, यह बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं। यह अटका तो स्वयं से अटका, कोई अटकाता नहीं। आहा...हा... ! बहुत फेरफार था, बहुत। अभी तीनों सम्प्रदाय में—स्थानकवासी, श्वेताम्बर तो कर्म के कारण मानते ही हैं क्योंकि वे तो पंथ भ्रष्ट होकर निकले हैं परन्तु यह तो सनातन वस्तु है। यह तो अनादि का वीतरागमार्ग है, इसमें भी यह स्थिति खड़ी हुई। आहा...हा... ! कर्म कौन ? कर्म परद्रव्य है। परद्रव्य को आत्मा चुम्बन नहीं करता, स्पर्श भी नहीं करता, छूता भी नहीं और कर्म ज्ञानावरणीय अर्थात् वह शब्द आता है न ज्ञानावरणीय ? परन्तु वह तो व्यवहार का कथन है। ज्ञान स्वयं से हीन स्वयं करे तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहा जाता है। ऐसी स्वतन्त्र वस्तु है। द्रव्य स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र, पर्याय स्वतन्त्र। आहा...हा... ! परन्तु बड़ी भूल थी, बड़ी भूल। आहा...हा... !

मुमुक्षु : निमित्त कारण क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आरोपित कहा न, एक, दूसरा आरोपित कारण कहा न। जिनवाणी में व्यवहार... सबेरे नहीं कहा ? जिनवाणी में व्यवहार आया है, निमित्त है—ऐसा आया है परन्तु वह अन्दर में कुछ करता है—ऐसा मानना, वह तो संसार है। गोम्मटसार में तो ऐसा ही आता है-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, लो ! ज्ञान को आवरण करे, वह ज्ञानावरणीय। कौन आवरण ? परद्रव्य उसे आवरण करे ? इसके दो अर्थ हैं-भावघाती आत्मा और द्रव्यघाती कर्म। भावघात स्वयं अपने से करे तो द्रव्यघाती को निमित्त कहने

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

में आता है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। परन्तु कहाँ ऐसी पड़ी हो ! सब चलता था। बाहर का त्याग देखे, क्षुल्लकपना, फिर समयसार का प्रचार अधिक उनसे हुआ है, उसके पहले कोई था नहीं, भले इस प्रकार की उनकी लाईन (थी), इसलिए लोगों को ऐसा बहुत हो गया। वस्तुस्थिति तो ऐसी है, बापू ! उस समय वहाँ कहा था। कर्म, जीव का बिल्कुल नहीं करता, कहा।

छहों द्रव्यों की प्रत्येक समय की जो पर्याय है, वह षट्कारक के परिणमन से स्वयं से होती है। पंचास्तिकाय की ६२ वीं गाथा बतायी थी, देखो ! सब पण्डित बैठे थे। फूलचन्दजी ने स्वीकार किया। फूलचन्दजी। निश्चय से विकार का कर्ता परिणाम है, विकार की दशा कर्ता-कर्म परिणाम है, उसे कर्म करे या पर कारक उसे करे, यह बात है नहीं। देखो ! संस्कृत टीका। पंचास्तिकाय ज्ञेय अधिकार है। ज्ञेय की पर्याय का स्वतन्त्रपना है, परज्ञेय उसे रोके या टाले तो, ऐसा क्षयोपशम हो—ऐसा ज्ञेय की पर्याय का स्वरूप ही नहीं है। ज्ञेय अधिकार है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह बात हमारे (संवत्) १९७१ से आयी थी। ६३ वर्ष हुए, ६३। लाठी में (संवत्) १९७१, बड़ा विवाद चला था। १९७० में दीक्षा (ली थी)। कहा-कर्म, आत्मा का बिल्कुल नहीं करता। विकार स्वयं अपने से करता है, कर्म बिल्कुल नहीं और पुरुषार्थ से-विपरीत पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से मिटाता है। पर का उसमें अधिकार है नहीं; वह चीज़ तो निमित्तमात्र है। निमित्त है अवश्य परन्तु निमित्त पर में कुछ करे (—ऐसा नहीं है।) यह तो कैलाशचन्दजी ने अभी स्वीकार किया है। पहले चर्चा चली थी, उससे विरुद्ध है, परन्तु स्वीकार किया। वर्णीजी को भी क्रमबद्ध उस समय स्वीकार नहीं था। क्रमबद्ध अवश्य परन्तु इसके बाद यही हो—ऐसा नहीं। कहा, एक के बाद जो होनेवाली है, वही होती है, उसका नाम क्रमबद्ध है। पण्डितों ने और वर्णीजी ने उस समय यह नहीं माना था। अब स्वीकार किया है। जैन सन्देश। कैलाशचन्दजी। क्रमबद्ध यथार्थ है और सोनगढ़वाले निमित्त भी मानते हैं परन्तु निमित्त से होता है—ऐसा नहीं मानते। यह ठीक है, दो बात अभी बाहर आयी है। ठीक है। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, कोई कुछ इसे करता है, रोकता है, उपसर्ग देकर रोकता है—ऐसा

www.vitragvani.com

नहीं है। आहा...हा...! पंचास्तिकाय में तो ऐसा आया नहीं? विषय थोड़ा करते हैं, वही उसे तीव्र विषय होने में प्रतिबद्ध है—ऐसा पाठ है। ज्ञान विषय थोड़े को करता है, वही बहुत के विषय को प्रतिबद्ध स्वयं करता है। पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसका प्रतिबद्ध थोड़ा विषय करता है, वह उसका कारण स्वयं का है। आहा...हा...! समझ में आया? **कोई अटकाता नहीं है।** आहा...हा...!

समयसार तीसरी गाथा में तो ऐसा कहा कि प्रत्येक द्रव्य—जो छह द्रव्य हैं, वे छह द्रव्य स्वयं अपने गुण और पर्याय को चुम्बन करते हैं, छूते हैं परन्तु परद्रव्य को तो स्पर्श ही नहीं करते। आहा...हा...! यह अंगुली इसे छूती ही नहीं। क्योंकि इसमें और इसमें दो में अभाव है। ऐसे स्पर्श कैसे करे? आहा...हा...! क्या हुआ? चेतनजी! यह अग्नि के कारण गर्म नहीं हुआ? यहाँ अग्नि पड़ी हो तो चमड़ी ऐसे गर्म होती है। पानी छू आओ तो गर्म होगा? प्रत्यक्ष दिखता है कि अग्नि हो तो गर्म होता है। भगवान इंकार करते हैं कि इस अग्नि के कारण गर्म नहीं हुआ। गर्म उसकी स्वयं की पर्याय के कारण हुआ है। आहा...हा...! ऐसा है।

भगवान की आज्ञा से बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायेगा। अनेकान्त का ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी॥१२९॥

अब कहते हैं देखो! १२९।

भगवान की आज्ञा से बाहर पाँव रखेगा... आहा...हा...! भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की एक समय की विकारी या अविकारी पर्याय स्वतन्त्र कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण से वह पर्याय होती है। उसमें कुछ भी तूने परिवर्तन किया या कर्म के कारण होता है और उसे शुभराग हुआ, इसलिए वहाँ धर्म का साधन अनुकूल पड़ा, ऐसी यदि कोई भी बात की, पाँव रखा तो भटक मरेगा। आहा...हा...! कहो, सन्तोषकुमारजी! क्या है? ठीक है? वैरागी है। पकड़ सकता है। यह बात तो, बापू! तेरे घर की है न! भाई! यह तो सीधी बात है। इसके ज्ञान में निर्णय तो करे पहले। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

भगवान की आज्ञा से बाहर पाँव रखेगा... आहा...हा... ! भगवान ऐसा कहते हैं कि पर के कारण पर में कुछ नहीं होता। उसमें यदि कुछ कहा कि पर के कारण कुछ होता है तो मर जायेगा, चार गति में भटकेगा; और व्यवहार करते (करते) धर्म होगा, भगवान ऐसा नहीं कहते। अपन शुभ करते हैं न! अशुभ टालते हैं, और शुभ करते हैं। और शुभ टलेगा, उसमें अशुभ तो टला है न! इसलिए इतना तो लाभ हुआ न! परन्तु जिसकी दृष्टि ही अभी राग करने पर है और राग से लाभ होता है, ऐसे माननेवाले मिथ्यादृष्टि को अशुभ भी नहीं टला है। मिथ्यात्व ही महा अशुभ है पहले तो। आहा...हा... !

यह तो सब कहते हैं, यह तो भगवान की आज्ञा है न! परन्तु सबेरे नहीं आया था? जिनवाणी में भी हस्तावलम्ब, सहायक, सहचर, निमित्त देखकर उसका कथन किया है। जिनवाणी में भी व्यवहार का वचन, कथन बहुत आया है परन्तु उसका फल संसार है। आहा...हा... ! यह तो व्यवहार की निरूपण / कथन की शैली है। इससे व्यवहार का कथन जिनवाणी में आया है। व्रत, तप, भक्ति और यह, यह और यह... परन्तु उसका फल, वह तो शुभराग है, उसका फल तो संसार है। समकिती को, हों! अज्ञानी को तो प्रश्न है ही नहीं। दृष्टि ही मिथ्यात्व है, राग से धर्म मानता है। आहा...हा... ! यह शुभ करते-करते हम आगे जायेंगे... आहा...हा... ! उसे तो अशुभ भी टला नहीं है। मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही महा अशुभ है अभी तो। आहा...हा... !

भगवान की आज्ञा से बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायेगा। नरक और निगोद में जायेगा, याद रखना! आहा..हा... ! कुदरत की वस्तु का स्वभाव ऐसा है। नरक और निगोद में जायेगा। आहा...हा... ! जैसे एक वस्त्र का तिलतुषमात्र धागा रखकर हम मुनि हैं ऐसा मानें, मनावे, माननेवाले को भला जाने (तो) निगोद गच्छई। निगोद में जानेवाला है। कदाचित् शुभभाव हो तो एकाध भव स्वर्ग में जाये, वहाँ से तिर्यंच होकर निगोद में जानेवाला है। आहा...हा... ! बहुत कठिन काम। इतना एक वस्त्र का टुकड़ा रखा, उसमें क्या हुआ? वस्त्र का टुकड़ा रखा, उसकी बात नहीं; रखने का जो भाव है, उस भाव में मुनिपना हो ही नहीं सकता। जिसे वस्त्र रखने का, पहनने का भाव है, उसे मुनिपना हो ही नहीं सकता। वह वस्त्र ने रोका नहीं है; उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा स्वयं माना है, उसने

www.vitragvani.com

उसे अटकाया है। आहा...हा... ! वस्त्र है तो जरा परीषह सहन होता है और शरीर को ठीक रहता है, निरोगता हो तो कुछ काम कर सकते हैं—ऐसी तेरी मान्यता है, वह भ्रम है। आहा...हा... ! सातवें नरक का नारकी, जिसे रोग का पार नहीं। जन्म से सोलह रोग, तैंतीस सागर में पानी की बूँद नहीं, बापू ! बापू ! यह तुझे क्या पता है ? भाई ! एक अनाज का कण नहीं—ऐसे तैंतीस सागर, ऐसे अनन्त सागर में वहाँ गया। अनन्त बार वहाँ गया है, भाई ! तुझे पता नहीं। वह मिथ्यात्व के कारण है। समझ में आया ?

समकित होने के बाद नरक की आयु समकिती बाँधता ही नहीं। भले युद्ध का परिणाम हो। समझ में आया ? आत्मज्ञान हुआ, वस्तु का भान / दृष्टि (होने के) पश्चात् छियानवें हजार स्त्रियों के भोग का अशुभभाव हो और युद्ध का अशुभभाव हो परन्तु (उसमें वह) आयु नहीं बाँधता। जब शुभभाव आयेगा, तब आयु बाँधेगा। आहा...हा... ! देखो तो सही ! यह क्या कहा ? कि सम्यग्दृष्टि जीव है, वह मोक्षमार्गी है। सबेरे कहा था न ? पण्डितजी ने ! सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, चक्रवर्ती का राज करता हो और छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, तथापि वह मोक्षमार्ग में है, समकिती है। राग से भिन्न पड़कर मेरा स्वरूप आनन्द है—ऐसा अनुभव है, वह मोक्षमार्ग में है और साधु दिगम्बर सन्त होकर पंच महाव्रत पालता हो, तथापि उससे कल्याण होगा—ऐसा मानता है, वह मोक्षमार्ग में नहीं है; वह संसारमार्ग में है। आहा...हा... ! यह वीतराग की आज्ञा है। इस आज्ञा के बाहर यदि पाँव रखेगा, (तो) स्वच्छन्द होकर (भटक मरेगा)। यह डराते होंगे ? भय प्राप्त कराते होंगे ? उसका स्वरूप बताते हैं। आहा...हा... !

भाई ! भगवान ने जो जाना और देखकर कहा, उसका जो व्यवहार भगवान ने कहा, उसका फल भगवान ने तो संसार कहा। आहा...हा... ! और तू उसके फल में व्यवहार में से लाभ हो—ऐसा मानेगा (तो) मर जायेगा। यह व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, शुभ में तो हम आये हैं और अशुभ से तो बचते हैं न ! ऐसा करने से फिर शुद्ध होगा, उसका क्रम ऐसा होगा। मर जायेगा, नरक-निगोद में जायेगा। आहा...हा... ! कठिन बातें हैं, बापू !

यह देह तो कितने काल रहेगी ? अमुक स्थिति रहेगी (पश्चात्) फूँ... राख होकर उड़ जायेगी और तू है, वह कहीं चला जायेगा, बापू ! विपरीत श्रद्धा और कहीं का कहीं

www.vitragvani.com

जाकर अवतार लेगा ? कहाँ निगोद और कहाँ नरक और कहाँ पशु... आहा...हा... ! भाई ! तुझे तेरी दया नहीं। तुझे तेरी दया नहीं। मेरा क्या होगा ? आहा...हा... !

वर्तमान अनुकूलता सेवन कर स्वच्छन्दता से यदि कुछ भी भगवान की आज्ञा से बाहर माना... आहा...हा... ! **डूब जायेगा। अनेकान्त का ज्ञान कर...** यह क्या कहा ? अनेकान्त का ज्ञान कर अर्थात् ? आत्मा के आश्रय से धर्म होता है, व्यवहार करने से नहीं होता-इसका नाम अनेकान्त; और निश्चय से भी होता है तथा व्यवहार से होता है, यह आज्ञा बाहर का एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहा...हा... ! मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न ? भाई ! व्यवहार के कथन आवें उन्हें तू जानना, श्रद्धना परन्तु वे छोड़ने योग्य है-ऐसा मानना। छोड़ने योग्य है। वह व्यवहार है, वह छोड़ने योग्य है। उसे आदरणीय मानने जायेगा (तो) मर जायेगा। आहा...हा... ! उभयाभासी है न ? ५६-५७ से शुरु होता है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक। व्यवहार की आज्ञा—यह व्रत, भगवान की आज्ञा है न ? परन्तु वह आज्ञा व्यवहार की है या निश्चय की ? और व्यवहार की है तो वह तो जानने (को कहा है), निमित्तादि का ज्ञान कराने को कहा है। वह आदरणीय है और उससे लाभ है; इसलिए कहा नहीं है। समझ में आया ? आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है।

अनेकान्त का ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी। अनेकान्त अर्थात् यह। मेरा मुझसे होता है, मेरा पर से नहीं होता। मेरा निश्चय मेरे द्रव्य के आश्रय से होता है, व्यवहार के आश्रय से नहीं होता—ऐसा अनेकान्त का ज्ञान रखना। यह भगवान की आज्ञा है। वह अनेकान्त ऐसा सिद्ध करता है-निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है। यहाँ कहते हैं कि निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, यह अनेकान्त है। आहा...हा... ! बात-बात में अन्तर है। अज्ञानी और ज्ञानी की मान्यता में महान अन्तर है। आहा...हा... ! **अनेकान्त का ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी।** अनेकान्त का ज्ञान कर। मेरी पर्याय मुझसे है, पर के कारण नहीं। पर की पर्याय उससे है, मेरे कारण नहीं। मेरा मुझे व्यवहार आया, इससे मुझे निश्चय को मदद मिली—ऐसा नहीं है। व्यवहार आया वह संसार का कारण, बन्ध का कारण है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं। **तो तेरी साधना यथार्थ होगी।**

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अषाढ़ कृष्ण-७, बुधवार, दिनाङ्क २६-०७-१९७८
वचनामृत-१३०-१३२ प्रवचन-४८

निजचैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमें से अनन्त रत्नों की प्राप्ति होगी। अनन्त गुणों की जो ऋद्धि प्रगट होती है, वह अपने में है ॥१३०॥

१३० बोल। १२९ हो गये। **निजचैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है,...** आहा...हा...! चक्रवर्ती जो शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे और तीर्थंकर थे। ये छह खण्ड साधे, वह तो एक विकल्प था और उसे तो उन्होंने जाना था। उसका तो ज्ञान किया है कि यह छह खण्ड आये और विकल्प हुआ, उसका ज्ञान (हुआ है)। बाकी वास्तव में तो... उसमें आता है न? 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'। चैतन्य को अखण्ड को साधा है। छह खण्ड को नहीं, परन्तु अखण्ड को (साधा है)। आहा...हा...! उसमें आता है न? द्रव्यदृष्टिप्रकाश में आता है। समकिती ज्ञानी चक्रवर्ती ने छह खण्ड साधे नहीं, उसने तो आत्मा का अखण्डपना, छह खण्ड नहीं, परन्तु अखण्डपना (साधा है)। आहा...हा...!

शुद्ध चैतन्यस्वभाव अमृतसागर से भरा हुआ... आहा...हा...! अनन्त-अनन्त आनन्द का स्वभाव जिसमें पूरा भरा है। ऐसे अनन्त गुण के अनन्त आनन्द। एक-एक गुण दूसरे गुण का रूप धारण करता है। यह क्या (कहा)? एक ज्ञानगुण है, उसमें, एक अस्तित्वगुण अलग है, ऐसे अनन्त गुण हैं, तथापि एक ज्ञानगुण, अस्तित्वगुण का रूप धारण करता है। अस्तित्वगुण उसमें नहीं जाता। अर्थात् ज्ञान है, है—ऐसा अस्तित्व ज्ञान के गुण में भी है। एक गुण दूसरे गुण में नहीं जाता। अनन्त गुण तो अनन्त रूप ही रहते

www.vitragvani.com

हैं परन्तु एक-एक गुण में दूसरे अनन्त गुणों का रूप है। अर्थात् जैसे ज्ञान है, वैसे अस्तित्व नाम का गुण भी है। अब यह अस्तित्वगुण है; इसलिए ज्ञानगुण है-ऐसा नहीं है परन्तु ज्ञानगुण 'है'—ऐसा ज्ञानगुण में भी अस्तित्व का रूप अपने स्वरूप से है। आहा...हा...! ऐसे एक-एक गुण में (अस्तित्व का रूप है)।

ज्ञान में, वस्तुत्वगुण दूसरा है, परन्तु वस्तुत्वगुण का रूप ज्ञान में है। आहा...हा...! ऐसे आनन्दगुण दूसरा है, परन्तु आनन्दगुण का रूप ज्ञान में है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा में शान्ति-शान्ति, वीतरागता, चारित्र, चारित्र-वीतरागता। वह आनन्द, सुख है। चारित्र की शान्ति जो है, उस शान्ति का चारित्रगुण है, वह भिन्न है परन्तु ज्ञान में उस शान्ति का रूप है। ज्ञान स्वयं शान्तिस्वरूप है। आहा...हा...!

इस तरह एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। गुण की संख्या अनन्त है। आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुने गुण एक जीव में हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश के प्रदेश की जो संख्या है, जिसके क्षेत्र का अन्त नहीं। आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... दसों दिशा... दसों दिशा... ऐसा अमाप और अनन्त आकाश है। उसके प्रदेशों की संख्या अनन्तगुनी है। तीन काल के समय से भी अनन्तगुनी (है)। उससे अनन्तगुने गुण एक जीव में है। ऐसा वह चैतन्य चक्रवर्ती है। आहा...हा...!

यह निजचैतन्यदेव... अपना लिया है न? स्वयं को। भगवान का भगवान के पास रहा। आहा...हा...! **निजचैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है,...** क्योंकि उसमें अनन्त गुणरत्न भरे हैं—अनन्त गुणरूप रत्न भरे हैं। आहा...हा...! जैसे चक्रवर्ती को छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव (होते हैं); इसी प्रकार इस आत्मा चक्रवर्ती में अनन्त गुण-रत्न भरे हैं। आहा...हा...! उसे तो चौदह रत्न ही होते हैं, सोलह हजार देव सेवा करते हैं। यहाँ (आत्मा में) अनन्त रत्न हैं और अनन्त दैवीशक्ति है। आहा...हा...! वह देव है। आहा...हा...! चैत्यदेव निज—यह भगवान आत्मा अपना निज चैतन्यदेव दिव्यशक्ति से भरपूर चक्रवर्ती है। आहा...हा...! ऐसे निज द्रव्य के स्वभाव में अनन्त-अनन्त गुण के रत्न भरे हैं; इसलिए उन गुण के रत्नों को वह साधता है। साधकदशा में, वे अनन्त गुण हैं, उनका साधन करता है। साधन करते-करते पूर्ण हो, तब पूर्ण रत्न प्रगट हो गये, यह कहते हैं।

www.vitragvani.com

उसमें से अनन्त रत्नों की प्राप्ति होगी। कहीं बाहर से अनन्त गुण नहीं आते। आहा...हा...! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो भगवान को चतुष्टय प्रगट हुए; वे अन्तर (स्वरूप में) थे, उसमें से आये हैं। चैतन्य के अन्दर में अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनन्त गुण हैं, उनका साधन करने से प्रगट होंगे। आहा...हा...!

भाई ने 'टोडरमलजी' ने ऐसा लिखा है न? पहले शुरुआत में (लिखा है)। निज स्वरूप के साधन द्वारा सिद्ध हुए—ऐसा लिखा है, भाई! निजस्वरूप के साधन द्वारा सिद्ध हुए हैं। टोडरमल! आहा...हा...! और मुनिपना कैसा है? उसमें लिखा है कि शुद्ध उपयोगरूपी, वह मुनिपना है। आहा...हा...! है इसमें, मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले शुरुआत में पंच परमेष्ठी का स्वरूप (लिखा है)। आहा...हा...!

शुद्ध उपयोगी (अर्थात्) समझ में आता है? यहाँ है या नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक। सन्त का स्वरूप-वर्णन करते हुए (कहते हैं)—जो गृहस्थपना छोड़कर, मुनिधर्म अंगीकार करके, निजस्वभाव साधन द्वारा चार घातिकर्मों का क्षय किया है। निजस्वभाव साधन द्वारा। आहा...हा...! टोडरमलजी ने भी ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक बनाने में एक-एक पद का अर्थ किया है, परन्तु वह कितनों को ही-बीसपंथियों को मान्य नहीं है उन्हें। अरे! यह तो तेरापंथ है, भगवान! तेरापंथ, उस पंथ की बात है। यह कोई बीसपंथी, तेरापंथी ऐसा कोई पक्ष नहीं। आहा...हा...! निजस्वरूप साधन द्वारा चार घाति का नाश किया है। आहा...हा...! है? और सिद्ध की व्याख्या करते हुए क्या कहा? कि गृहस्थ अवस्था छोड़कर, मुनिधर्म साधन द्वारा। अब मुनिधर्म अर्थात् क्या? कि विरागी होकर, समस्त परिग्रह छोड़कर शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अट्ठाईस मूलगुण अंगीकार किया, वह कोई साधुपना नहीं; वह तो राग है, विकल्प है। आहा...हा...! मुनि ऐसे होते हैं।

मुमुक्षु : पंचम काल में शुद्ध उपयोग होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो तो धर्म ही नहीं है। यही कहते हैं। मोहनलालजी कहते हैं, ऐसा कहते हैं, अभी शुद्ध उपयोग नहीं है। यह तो-शुद्ध उपयोग नहीं तो समकिती भी नहीं और धर्म भी नहीं। आहा...हा...! भाई कहते हैं, ऐसा कहते हैं। अभी शुद्ध उपयोग में ही सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा में ज्ञायक-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान के (भेद) भूलकर अभेद

www.vitragvani.com

शुद्ध उपयोग होता है, उसी में सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा... ! समझ में आया ? इसकी व्याख्या करते हुए द्रव्यसंग्रह में लिया है, द्रव्यसंग्रह में। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' यह गाथा है। द्रव्यसंग्रह। नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती। यहाँ चक्रवर्ती आया है न ? नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती ऐसा कहते हैं कि आहा...हा... ! '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' मोक्ष हेतु '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ध्यान में प्राप्त होता है-ऐसा पाठ है। वह ध्यान शुभ का है ? उसकी बात है ? बहुत सूक्ष्म बात बापू ! अभी मार्ग को लोगों ने कुचल डाला है। आहा...हा... !

'**दुविहं पि मोक्खहेउं**' '**दुविहं**' अर्थात् दो प्रकार के मोक्ष का हेतु-कारण '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' अर्थात् ? ध्यान में निश्चय से वह प्राप्त होता है। अर्थात् ? शुद्ध उपयोग होने से जो द्रव्य में शुद्ध उपयोग जाये, एकाकार होता है, तब उसमें से निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ। शुद्ध उपयोग जितना प्रगट हुआ, उतना निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ और उस समय जो अबुद्धिपूर्वक राग रहा, अभी तो ध्यान में है, उसे राग बाकी रहा, उसे व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप करके कथन किया है। आहा...हा... ! यह तो द्रव्यसंग्रह जो पाठशाला में पढ़ाते हैं, उसकी यह गाथा है। अभी श्रद्धा में भी ठिकाना नहीं होता कि यह मोक्षमार्ग कैसे होता है, इसका पता नहीं होता। आहा...हा... !

'**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ऐसा पाठ है। '**णियमा।**' अर्थात् निश्चय से। निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात् ? स्वरूप की ओर का ध्यान जहाँ शुद्ध उपयोग से लगा, वहाँ वह जो शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ, इतने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ध्यान में प्रगट हुए और उसी समय जो राग अन्दर अबुद्धिपूर्वक रहा है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहकर, ध्यान में दो प्रगट हुए— ऐसा कहा है। आहा...हा... ! यह द्रव्यसंग्रह तो पाठशाला में पढ़ाते हैं, लड़कों को पढ़ाते हैं। अरे रे ! बापू ! प्रभु का मार्ग, वह वीरों का मार्ग है; वह कायर का मार्ग नहीं है। आहा...हा... !

झाणे ध्यान में प्राप्त होता है। वह कौन सा ध्यान ? आर्तध्यान और रौद्रध्यान ? ध्यान, ध्याता, ध्यान और ध्येय का भी भेद छोड़कर, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भेद को छोड़कर... यह छहढाला में आता है, छहढाला में... आहा...हा... ! अन्तर में उपयोग जम

www.vitragvani.com

जाता है, अभेद (होता है), वह उपयोग शुद्ध उपयोग हुआ, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ; इसलिए यहाँ कहा है न? कि शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके। सन्तों ने शुद्ध उपयोग को अंगीकार किया है, शुभ उपयोग को नहीं। आहा...हा...! शुभ उपयोग तो राग है, वह जानने में ज्ञाता का ज्ञेय है, जाननेयोग्य है; आदरणीय नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात तो द्रव्यसंग्रह में है, पंचास्तिकाय में है।

प्रभु! तेरी ईश्वरता तुझमें है। तुझसे तुझे संवर-निर्जरा प्रगट होते हैं। २७ गाथा में नहीं लिया? प्रभु! आहा...हा...! प्रभु! तेरी प्रभुता तेरा एक गुण है, उस प्रभुता के कारण तेरे स्वभावसन्मुख जहाँ जाता है, तब प्रभुता के कारण प्रभुता की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रगट होते हैं, जो निश्चयमोक्षमार्ग है, वह मोक्षमार्ग अन्दर ध्याता, ध्यान और ध्येय को छोड़कर एकाकार हो वहाँ प्राप्त होता है। चैतन्य हीरा अनन्त आनन्द का सागर प्रभु ने शुद्ध उपयोग होने पर... आहा..हा...! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं और अन्दर ध्यान में राग कुछ बाकी रहता है, उस राग को व्यवहारमोक्षमार्ग आरोपित करके कहा है। वास्तव में तो वह मोक्षमार्ग है नहीं, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, उसके साथ राग की मन्दता का सहचरपना, साथपना, निमित्तपना देखकर उपचार से व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप किया है। आहा...हा...! ऐसी बातें, बापू! जैन वीतरागमार्ग और यह दिगम्बर धर्म अलौकिक है! लोक में कहीं गन्ध नहीं मिलती! परन्तु कुछ का कुछ अर्थ करके वस्तु को बिगाड़ दिया। यह स्वयं तो यहाँ मुनिपना अट्ठाईस मूलगुण लिया न? चरणानुयोग में तो ऐसा आता है... पना दो हमें, अट्ठाईस मूलगुण और नग्नपना दिया यह तो चरणानुयोग का कथन है।

तत्त्वज्ञान के कथन में तो ... आहा...हा...! शुद्ध उपयोग (आता है) पंच महाव्रत आदि के परिणाम वह शुभ उपयोग है, वह बन्ध का कारण है, तथापि जब स्वरूप में अन्दर ध्यान में आत्मा के अमृत का सागर जहाँ अनुभव में आया, उसकी पर्याय में शुद्ध उपयोग हुआ। वह शुद्ध उपयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आचरणरूप है। आहा...हा...! बापू! मार्ग ऐसा अलग-अलग प्रकार है, भाई! यह प्रभु है। उल्टा अर्थ करता है, वह है तो प्रभु बेचारा, परन्तु उसकी पर्याय में पता नहीं न! और उसका फल क्या आयेगा? बापू! भाई! समझ में आया? आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यह आत्मा... यहाँ तो आचार्य, उपाध्याय और साधु का स्वरूप, तीनों का वर्णन किया है। तीन में यह कहा है - **शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके...** तीनों। **अन्तरंग में तो उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपने को अनुभव करते हैं...** आहा...हा... ! **अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसे बने, वैसे बनती है परन्तु उसे खींच कर नहीं करते...** आहा...हा... ! **कदाचित् मन्दराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है, जिसके द्वारा इस शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं, उनमें अनुराग करते हैं...** देव-गुरु-शास्त्रादि में (अनुराग करे) परन्तु है वह राग, बन्ध का कारण। आहा...हा... ! ऐसी बात है। कहो ! यह टोडरमल गृहस्थ इस प्रकार (कहते हैं)। (अभी) अपने को नहीं जँचे, इसलिए (विद्वानों ने) निकाल दिया, परन्तु यह क्या कहते हैं यहाँ ? व्यवहार अभूतार्थ है, यह सबेरे चला न ? शुभभाव और पर्याय, वह असत्य है, क्योंकि वह त्रिकाली चीज़ नहीं है। त्रिकाली स्वरूप का उपयोग करना, उसका नाम धर्म है। आहा...हा... ! छोटाभाई ! ऐसा कहीं तुम्हारे पिता ने सुना नहीं कहीं वहाँ।

मुमुक्षु : आपके शिष्य थे, आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते होंगे परन्तु यह अभी-अभी जो स्पष्ट होता है ऐसा (तब नहीं होता था)। सब पुराने थे, बेचारे कहाँ गये होंगे ? आहा...हा... ! यह माँ-बाप ! जिसे माता कहकर बुलाया, जिसके गर्भ में नौ महीने रहे... आहा..हा... ! वह जीव कहाँ होगा ? ऐसा कभी विचार किया है ? बापू ! अरे..रे ! निराधार यह संसार, इसमें माँ-बाप, भाई वह कहाँ चले गये ? आहा...हा... ! उन्हें इस धर्म की उस समय तो खबर भी नहीं थी। आहा...हा... ! जिसका-जीव का अस्तित्व है, वह कहीं है तो सही न ? आहा...हा... ! आहा...हा... ! अरे...रे ! जिन्हें प्रिय रूप से-पितारूप से माना, मातारूप से प्रियरूप से माँ कहकर बुलाया... आहा...हा... ! उनका जीव कहाँ होगा बापू ! तूने विचार किया है ? ऐसे मनुष्यपने में तो करनेयोग्य तो यह है, यह नहीं हुआ इससे, यह कहाँ होगा ? आहा...हा... ! दुनिया की बात एक ओर रखो, बापू ! आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह भगवान आत्मा अन्तर में दृष्टि करने पर, यह स्वयं चक्रवर्ती है। इसने अपने गुण का साधन किया है। आहा...हा... ! वह साधन यह (कि) राग से पृथक् प्रज्ञाछैनी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मारकर जो राग विकल्प है—वह फिर भले पंच महाव्रत का हो परन्तु उस राग से प्रज्ञाछैनी-राग से भिन्न करके स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान की स्थिरता की, उतना धर्म है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या हो?

ये विरोध करनेवालों को भी विचारे उनके परिणाम ऐसे हुए, उनका तिरस्कार करनेयोग्य नहीं है। उन्हें पता नहीं। जिसके मार्ग की शुरुआत कैसे होती है और कहाँ से (होती है वह) पता नहीं। पता नहीं, इसलिए उसका फल, बापू! कैसा कठोर आयेगा? यह और कठोर फल आवे, ऐसे प्राणी के प्रति तिरस्कार नहीं होता। बाबूलालजी! विरोध नहीं होता। वह प्रभु है, आहा...हा...! ऐसी बात बापू! बहुत महँगी, भाई! आहा...हा...!

चैतन्य चक्रवर्ती (स्वयं है) **उसमें से अनन्त रत्नों की प्राप्ति होगी**। आहा...हा...! जो अनन्त गुण हैं, उनकी पर्याय में अनन्त गुणों की दशा तुझे प्रगट होगी, प्रभु! है वह होगी। कुएँ में हो वह हौज में (आता है) अवेढ़ा को क्या कहते हैं? हौज। कुएँ में पानी हो, वह हौज में आता है। जो अन्तर में है, वह पर्याय में आता है। आहा...हा...! परन्तु भाई! धीरज का काम है, बापू! आहा...हा...! यह कोई बाहर से त्याग कर दिया और वस्त्र बदलकर नग्न हो गया, इसलिए धर्म हुआ, उसमें अंश भी नहीं। आहा...हा...! प्रथम सम्यग्दर्शन करना चाहिए, पहले चैतन्य चक्रवर्ती को साधना चाहिए। आहा...हा...! अनन्त गुण की प्राप्ति होगी।

अनन्त गुणों की जो ऋद्धि प्रगट होती है, वह अपने में है। अनन्त गुण की ऋद्धि जो पर्याय में केवलज्ञान के काल में प्रगट होगी, वह सब शक्तियाँ तुझमें है। वह अपने में है, उसमें से प्रगट होगी; कहीं बाहर से नहीं आती। आहा...हा...! केवली अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान को पर्याय में प्राप्त हुए, वह कहाँ से आया? बापू! कहीं बाहर से आता है? पूर्व की पर्याय से भी वह नहीं आता। क्या कहा यह? जो केवलज्ञान है, पूर्व में चार ज्ञान की पर्याय साधकरूप हो, उसमें से भी केवलज्ञान की पर्याय नहीं आती। पर्याय तो द्रव्य में से आती है, क्योंकि चार ज्ञान और साधकपने की पर्याय है, उसका तो व्यय होता है, तो व्यय होता है, उसमें से उत्पाद कहाँ से होगा? आहा...हा...! समझ में आया? बापू! मार्ग अलग है, नाथ!

www.vitragvani.com

प्रभु! तू कितना बड़ा है, उसकी तूने अव्यक्तरूप से भी प्रतीति नहीं की है। आहा...हा... ! उसका इसे विश्वास नहीं आया कि यह एक महाप्रभु चैतन्य आनन्द का नाथ सागर है। आहा...हा... ! जैसे स्वयंभूरमण समुद्र के तल में रत्न भरे हैं, रेत नहीं। भगवान कहते हैं, अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र जो असंख्य योजन में है, असंख्य योजन में चौड़ा है, उसमें नीचे रेत नहीं है। यह बालू कहते हैं न? बालू, बालू, बालू नहीं; नीचे हीरा भरे हैं, रत्न भरे हैं-ऐसा पाठ है। इसी प्रकार यह स्वयंभू भगवान... आहा...हा... ! सोलहवीं गाथा में स्वयंभू कहा है, भाई! नहीं? प्रवचनसार सोलहवीं गाथा है, (उसमें) इस भगवान को स्वयंभू (कहा है) स्वयं है और प्रगट होता है वह स्वयंभू अन्दर में जितने गुण हैं, उन पर ध्यान देने से अनन्त गुण, पर्याय में प्रगट होते हैं। आहा...हा... ! **जो ऋद्धि प्रगट होती है, वह अपने में है।** जो अनन्त गुणों की पर्याय जो प्रगट होती है, वह अपने में है, उसमें से आती है।

मुमुक्षु : आबाल-गोपाल सबको?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आबाल-गोपाल की दूसरी बात है। वह तो प्रत्येक को पर्याय में द्रव्य का ज्ञान है, परन्तु उसकी दृष्टि, राग और पर्याय पर होने से (उसे ज्ञात नहीं होता)। क्योंकि ज्ञान की पर्याय है, उसका स्वभाव ही स्व-पर प्रकाशक है। ज्ञान की जो पर्याय है, अज्ञान में भी जो पर्याय है, उसका स्वभाव ही स्व-पर प्रकाशक है; इसलिए ज्ञान की पर्याय भले हीन हो, थोड़ी हो, उसमें पूरा द्रव्य, ज्ञान में ज्ञात होता है परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उस पर नहीं है; दृष्टि मात्र पर्याय और राग पर होने से, पर्याय जानती है, तथापि वह जानता नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बातें अब! इसलिए फिर सोनगढ़वाले निश्चयाभासी हैं —(ऐसा लोग कहते हैं) कहें बेचारे, उन्हें पता नहीं। बापू! निश्चय वह तो सत्य है। आहा...हा... ! भाई! इसमें तेरे हित की बातें हैं। यह कोई पक्ष की बात नहीं, यह कोई सम्प्रदाय-पक्ष नहीं।

एक समय की ज्ञान की पर्याय, एक गुण की एक पर्याय... आहा...हा... ! प्रभु! उस पर्याय का स्वभाव ही स्व-पर प्रकाशक है न! इसलिए वह पर्याय स्व को जानती और प्रकाशित करती है। आहा...हा... ! तथापि उसकी दृष्टि में पर्याय ही दिखती है, उसे राग

www.vitragvani.com

दिखता है और पर्याय ज्ञात होती है, उसके ऊपर इसकी दृष्टि नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। कठिन है परन्तु बापू! वस्तु तो यह है, प्रभु! क्या हो?

अरे! चौरासी के अवतार, आहा...हा...! कर-करके मर गया है बापू! आहा...हा...! यह वनस्पति का विचार (आता है)। अभी वनस्पति चारों ओर कितनी फली है! देखा? नीम कितना फला! वनस्पति, हरितकाय। एक-एक पत्ते में असंख्य जीव और वह भी पहला पत्ता-अंकुर फूटे तब तो अनन्त (जीव) होते हैं। आहा...हा...! उसमें स्वयं अनन्त बार था, भाई! तेरा वह पीहरस्थान था। निगोद में पहले अनन्त काल रहा, वह तेरा पीहरस्थान है। जैसे कन्या पहले पीहर में बड़ी होती है... आहा...हा...! इसी प्रकार पहले निगोद में अनन्त काल रहा था, भाई! और अभी भी इस निगोद के अनन्त जीव एक लहसुन-प्याज की टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो शरीर हैं। एक शरीर में सिद्ध की संख्या (जो) छह महीने आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं, इतना काल गया, (उसमें) कितने सिद्ध हुए? उससे अनन्त गुने जीव एक टुकड़े के एक शरीर में हैं, बापू! उसे क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। इतने क्षेत्र में भी अनन्त गुण का रत्न द्रव्य भरा है। आहा...हा...!

इस प्रकार अनन्त निगोद है और अनन्त सिद्ध है, वह मात्र ज्ञान के ज्ञेय का माप है। वे अनन्त सिद्ध हैं, इसलिए भक्ति करनेयोग्य हैं, इसलिए विकल्प आता है-ऐसा नहीं। अनन्त निगोद है, इसलिए दया पालनेयोग्य है, इसलिए अनन्त निगोद है-ऐसा नहीं। आहा...हा...! मात्र ज्ञान की पर्याय का माहात्म्य कितना है? कि जो अनन्त निगोद और अनन्त सिद्ध को ज्ञान की पर्याय जानती है, यह तो पर की अपेक्षा (से बात है)। पर्याय पर को इतनी जानती है। आहा...हा...! और वह जाननेवाली पर्याय... आहा...हा...! अपना त्रिकाली द्रव्य अनन्त रत्न से भरपूर भगवान है, उसे भी जानती है, परन्तु वहाँ दृष्टि देनी चाहिए, वहाँ यह देता नहीं; इसलिए इसे दिखता नहीं। आहा...हा...! पर्याय में इसकी दृष्टि वर्तमान पर है। भले पर्याय अर्थात् एक समय की पर्याय को पकड़ नहीं सकता परन्तु इसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर नहीं, इसलिए इस ओर में पर्याय पर है, ऐसा। आहा...हा...! इससे पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है, वह जानता नहीं, क्योंकि दृष्टि पर्याय में है। पर्याय की

www.vitragvani.com

ताकत द्रव्य को जानने की है, परन्तु दृष्टि पर्याय पर है। पर्याय में ऐसी ताकत है, ऐसा जो द्रव्य ज्ञात हुआ है, उस द्रव्य पर इसकी दृष्टि नहीं है।

ऐसा मार्ग बहुत दुर्लभ है बापू! आहा...हा...! अनन्त काल हुआ, इसने अपने चीज़ को माहात्म्य नहीं दिया। आहा...हा...! परमेष्ठी अर्थात् परम में इष्ट, परम में तिष्ठ, वह परमेष्ठी। जो पाँच परमेष्ठी हैं, वे स्वयं परम में तिष्ठ हैं। आहा...हा...! इसी प्रकार यह भगवान भी परम में तिष्ठ है। आहा...हा...! परमेष्ठी कहलाते हैं न? परमेष्ठी का एक अर्थ इष्टरूप भी है और एक परमेष्ठी अर्थात् परम में तिष्ठ है, वे परमेष्ठी हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

इसी प्रकार भगवान आत्मा...! द्रव्यसंग्रह में और दूसरी सब जगह तो कहा है न? अरिहन्त, सिद्ध के पाँच पद हैं, वे तेरे आत्मा में पड़े ही हैं। मोहनलालजी! आहा...हा...! यह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहा...हा...! जो विज्ञानघन में निमग्न हैं। अरिहन्त से लेकर वर्तमान सच्चे सन्त हों वे; वे सब विज्ञानघन में मग्न हैं। आहा...हा...! ऐसे स्वभाव से भरपूर तू है। इन पंच परमेष्ठी का भाव / स्वभाव, वह तुझमें भरा है। आहा...हा...! कैसे जँचे? कठिन है परन्तु अशक्य नहीं, प्रभु! अशक्य नहीं। यह तो अपनी चीज़ है न! आहा...हा...! परन्तु उसे सुनने को मिलती नहीं, विचारने में मिलती नहीं, तब प्रयत्न किस प्रकार करे अन्दर में? आहा...हा...! जिन्दगी चली जाती है, बापू! यह मौत के नगाड़े सिर पर बज रहे हैं, एक पल आकर खड़ा रहेगा। किस प्रकार होगा? ऐसा पल नहीं कहे। आहा...हा...! उससे पहले यह करके समझ ले, भाई! यहाँ यह कहते हैं कि वे रत्न प्रगट होंगे, वह तुझमें है। फिर १३१,

शुद्धोपयोग से बाहर मत आना; शुद्धोपयोग ही संसार से बचने का मार्ग है। शुद्धोपयोग में न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। यदि प्रतीति में फेर पड़ा तो संसार खड़ा है ॥१३१॥

शुद्धोपयोग से बाहर मत आना;... आहा...हा...! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य की जो दृष्टि हुई, उसका ज्ञान हुआ और उसमें स्वरूपाचरण हुआ, वह शुद्धोपयोग

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है, वह शुद्धोपयोग है। प्रभु! वहाँ से बाहर आयेगा तो राग होगा। आहा...हा...! **शुद्धोपयोग से बाहर मत आना;...** आहा...हा...!

शुद्धोपयोग ही संसार से बचने का मार्ग है। आहा...हा...! पहले इसकी श्रद्धा और ज्ञान में तो निर्णय करे कि मार्ग तो यह है; फिर प्रयोग करे। परन्तु अभी ज्ञान में सच्चे निर्णय का ठिकाना नहीं, वह ज्ञान अन्दर में प्रयत्न किस प्रकार करेगा? आहा...हा...! यह व्यवहार करते-करते होगा (-ऐसा जो मानता है), उसकी रुचि तो राग पर है। आहा...हा...! **शुद्धोपयोग से बाहर मत आना;...** अर्थात् वास्तव में तो शुद्धोपयोग ही मोक्ष का मार्ग है। निश्चयमोक्षमार्ग शुद्धोपयोग ही है। बाहर आया और विकल्प उत्पन्न हुआ, यह व्यवहार हो जायेगा, बन्धन का कारण (होगा)। आहा...हा...!

शुद्धोपयोग ही संसार से बचने का मार्ग है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह तो बन्ध का कारण है। आहा...हा...! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम, शास्त्र पठन का विकल्प... आहा...हा...! वह तो बन्धमार्ग है, बन्धमार्ग है। प्रभु! कठिन पड़े, भाई! आहा...हा...! इसे बाह्य साधनरूप से कहा जाता है परन्तु यदि अन्तर साधन किया हो तो इसे बाह्य साधन का आरोप दिया जाता है। आहा...हा...! शुद्धोपयोग तीन बार लिखा है। एक तो शुद्धोपयोग से बाहर आना नहीं। अन्तर में गुम हो जाने पर बाहर आयेगा नहीं, भाई! आहा...हा...! निर्विकल्प उपयोग होने पर विकल्प में आयेगा नहीं। आहा...हा...! **शुद्धोपयोग ही संसार से बचने का मार्ग है।**

शुद्धोपयोग में न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। ऐसा कि उसमें नहीं रह सके तो राग से कुछ लाभ होगा-ऐसा रखना नहीं। लाभ तो उस अन्तर में शुद्धोपयोग से ही धर्म होगा-ऐसी प्रतीति छोड़ना नहीं। उसमें यह न रह सके और बाहर आवे परन्तु प्रतीति में रखना कि शुद्धोपयोग एक ही मोक्ष का मार्ग है। बाहर आया, वह विकल्प, वह बन्ध का कारण है। आहा...हा...! यह तो वेदान्तवाले पढ़ते हैं, वे बोल उठते हैं कि ऐसी पुस्तक!! आहा...हा...! ऐसी पुस्तक कैसी निकली है! जो पढ़े साधारण मध्यस्थ व्यक्ति हो, (उसे भी ऐसा लगता है)। आहा...हा...! आग्रही को (पकड़कर) पड़े हों, उन्हें तो ऐसा लगता है कि यह तो एकान्त है, निश्चय है, एकान्त है। आहा...हा...! निश्चय अर्थात् सत्य और एकान्त अर्थात् सत्य का एकाग्र, वह निश्चयनय। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

शुद्धोपयोग में न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। अर्थात् प्रतीति में ऐसा नहीं रखना कि इस शुभ उपयोग से भी कल्याण होगा-ऐसा नहीं रखना। प्रतीति तो यह रखना कि ज्ञायक में स्थिर होना, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? (शुद्धोपयोग में) न रह सके तो भले बाहर आवे, शुभ में आवे परन्तु प्रतीति में तो इतना रखना कि शुद्धोपयोग में लीन होना, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहा...हा...! द्रव्य की दृष्टि करके जिस द्रव्य को दृष्टि में लिया, उसी द्रव्य का उपयोग—शुद्धोपयोग—ही मोक्ष का कारण है। भाषा तो सादी है परन्तु भाव बहुत गम्भीर है। आहा...हा...!

शुद्धोपयोग में न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। श्रद्धा में ऐसा रखना नहीं कि भाई! शुद्धोपयोग तो कहाँ से आवे? इसलिए व्यवहार है, वह मोक्ष का मार्ग है, व्यवहार वह मोक्ष का मार्ग है-ऐसा करना नहीं। आहा...हा...! अरे! एक बार यह पुस्तक सुने, पढ़े तो इसे ऐसा भी हो। मध्यस्थता से, मध्यस्थता से, बापू! श्रद्धा तो कर कि शुद्धोपयोग है, वही धर्म है। आहा...हा...! (बाहर) वर्षा आती है, यहाँ भी वर्षा है। आहा...हा...! यह अमृतधारा की वर्षा है। आहा...हा...! प्रभु! तेरी बात है न नाथ! आहा...! प्रभु! तू कितना बड़ा है! और ऐसा है। जितना बड़ा कहलाता है, उतना तू है। आहा...हा...! है उसकी महिमा का वर्णन चलता है, बापू! आहा...हा...! यह तू नहीं और तुझे बड़ा सिद्ध किया है—ऐसा नहीं है। आहा...हा...! इस क्षेत्र की इसे जरूरत नहीं कि बड़ा क्षेत्र इतना हो तो अनन्त ज्ञान-आनन्द रहे। आहा...हा...! इस अंगुल के असंख्य भाग में निगोद के अनन्त जीव! आहा...हा...! उसके एक-एक जीव में अनन्त आनन्द ठसाठस भरा है। वह क्षेत्र इतना बड़ा हो तो ही बड़ा गुण रहे—ऐसा कुछ नहीं है, प्रभु! यहाँ तो उसके स्वभाव के सामर्थ्य की शक्ति की आवश्यकता है, बस! आहा...हा...! यह अन्यत्र मिलना मुश्किल है, मोहनलालजी! यह तो मोहनलालजी सबेरे कहते थे न? बात तो यह है बापू! क्या कहें? आहा...हा...!

यह तो मान छोड़ देने की बातें हैं। किसका मान और किसका अपमान जगत में? आहा...हा...! प्रभु! तेरा मान तो तेरी चीज़ में जा, (तब) तुझे तेरा मान (मिला कहा जाता है)। 'लही भव्यता मोटूँ मान' तीन लोक के नाथ ऐसा कहें कि यह समकिती है और इसने

www.vitragvani.com

आत्मा को जाना है। तीन लोक के नाथ का मान आया, अब तुझे किसका मान चाहिए है? आहा...हा...! ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि यह अज्ञानी है और राग का आदर करनेवाला है; अब अपमान भगवान की ओर से हुआ, तुझे अपमान किससे लेना है? भले दुनिया तुझे माने। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! अरे! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! तेरी महिमा वाणी में भी पूरी नहीं आ सकती। आहा...हा...! आहा...हा...!

'जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।'

गोम्मटसार में है कि जैसा केवली ने जाना, उतना वाणी में नहीं आता। एक जगह, पूरा आवे, ऐसा पाँचवीं गाथा में (आया) है। वह अपेक्षा से (बात) है। और यह वाणी जड़-मिट्टी, यह परमाणु (और) भगवान आनन्द का नाथ अरूपी! उसकी बात वाणी द्वारा कराना! दुश्मन द्वारा मित्रों की महिमा कराना, बापू! वह कितना करेगा? जड़ वाणी है, वह आत्मा से नहीं उठी, परमाणु में से होती है। आहा...हा...! वह वाणी जड़, चैतन्य के स्वरूप को नहीं जानती। साथ में चैतन्य आनन्द का नाथ पड़ा है, परन्तु उस वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है; स्व-पर को जानने की शक्ति उसकी नहीं है। भगवान आत्मा की पर्याय में स्व-पर को जानने की शक्ति है, वाणी में स्व-पर को कहने की शक्ति है; जानने की नहीं। आहा...हा...! परन्तु कितना कहे वाणी द्वारा? भाई! आहा...हा...!

ऐसा जो भगवान, उसकी प्रतीति रखना। आहा...! इसमें अन्दर एकाग्रता जितनी दृष्टि है, उतना ही मोक्ष का मार्ग है। बाहर आकर शुभराग में आया, इसलिए मोक्षमार्ग यह भी है और इसे शुभ में आयेगा, इसलिए फिर आगे जाने में-शुद्ध में जाने में ठीक पड़ेगा - ऐसा मानना नहीं। घासीलालजी! ऐसा है यह। तुम्हारे अलीगढ़ में (नहीं)। कठिन बातें बापू! बहुत है। आहा...हा...! बाहर आवे तो राग होता है, वह दुःख है। आहा...हा...! धर्मी को भी, अन्दर स्थिर नहीं हो सके, तब राग-शुभभाव तो आता है परन्तु वह राग, दुःख है। आहा...हा...! ज्ञानी को वह राग है, उतना दुःख है। आनन्द तो जितना आत्मा के आश्रय से प्रगट हुआ उतना आनन्द है। आहा...हा...! इसमें बड़ा घोटाला उठा था न? दीपचन्दजी सेठिया, कि ज्ञानी को दुःख होता ही नहीं। यह बाद में बड़ी गड़बड़ उठी थी। सहन नहीं

www.vitragvani.com

कर सके, उन भाई का-निहालभाई का। द्रव्यदृष्टि, द्रव्यदृष्टि सहन नहीं कर सके। उन्हें ऐसा कि यह कौन नया जगा? बापू! कोई भी आत्मा भगवान परिपूर्ण है, जाग न! पहले सिद्ध हो तो बहुत अच्छा है, उसमें क्या है? परन्तु जरा सा फेरफार हो गया कि नहीं, ज्ञानी को दुःख नहीं होता।

ये निहालचन्द्र कहते हैं कि ज्ञानी को दुःख होता है, यह बात झूठी है और कितने ही उनके पक्ष में आ गये। यह तुम्हारे दिल्ली में ज्ञानचन्दजी और जयकुमार ये सब आना बन्द हो गये। उसमें के—सेठिया में के दो आ गये। एक वैष्णव है न? सुमेरचन्द वैष्णव और उनके बहनोई मालचन्दजी ये दो आ गये परन्तु अभी उनको आने का भाव है किन्तु पैर भारी हो जाता है - ऐसा किया। सेठिया को पीछे की स्थिति में दृष्टि में बहुत फेरफार हो गया। ज्ञानी को दुःख नहीं होता। तब ज्ञानी को दुःख न हो तो अकेला आनन्द है? अकेला आनन्द भगवान को होता है, अकेला दुःख मिथ्यादृष्टि को होता है; साधक को आनन्द और दुःख दोनों होते हैं। कहो, पण्डितजी! आहा...हा...! बापू! ऐसा नहीं खींचा जाता। यह दृष्टि का विषय जहाँ आवे, वहाँ ऐसा बोला जाता है कि धर्मी को राग नहीं और दुःख नहीं। यह तो दृष्टि के विषय के जोर में बात की गयी है परन्तु साथ में जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान तो कण-कण का ज्ञान करता है। जितना राग है, दुःख है, उपाधि है, मैल है, विभाव है, उसका वेदन मुझे दुःख का वेदन है। आहा...हा...!

सैंतालीस नय में आता है न? सैंतालीस नय नहीं? प्रवचनसार। राग का कर्ता भी मैं हूँ और राग का भोक्ता भी मैं हूँ - ऐसा गणधर भी जानते हैं। प्रवचनसार, सैंतालीस नय। ऐसा राग करने योग्य है, इसके लिये नहीं करता परन्तु हीन कमजोरी के कारण राग होता है, उस राग का परिणमन है, वह करता हूँ। परिणमूँ वह कर्ता, इतना मैं करता हूँ। ऐसा समकिती ज्ञानी गणधर मानते हैं और जितना राग है, उतना दुःख है, इसका भोक्ता भी मैं हूँ। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। कठिन काम। ठेठ से उठाकर पूरा करना, (वह) कठिन बातें, बापू! आहा...हा...!

यथार्थ रखना ही। यदि प्रतीति में फेर पड़ा तो संसार खड़ा है। कि शुभराग है, वह भी धर्म है और उससे भी धीरे-धीरे आगे जाया जा सकेगा—यदि यह प्रतीति करेगा

www.vitragvani.com

तो मर जायेगा। आहा...हा...! ऐसा है। भाषा तो सादी है, भाव तो बापू! जैसा है वैसा है, प्रभु! आहा...हा...! १३१ (बोल पूरा हुआ)।

जैसे लेंडीपीपर की घुटाई करने से चरपराहट प्रगट होती है, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव की घुटाई करने से अनन्त गुण प्रगट होते हैं॥१३२॥

१३२, **जैसे लेंडीपीपर की घुटाई करने से चरपराहट प्रगट होती है,...** लींडी पीपर-छोटी पीपर तुम्हारे कहते हैं न? रंग में काली है, अन्दर हरी है, तिखास-चरपराहट बाहर अल्प है। अन्दर चरपराहट पूरी है, सोलह आना-चौंसठ पहरी। चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया, पूरी-पूरी चरपराहट भरी है। उस **लेंडीपीपर की घुटाई करने से...** घुटाई करने से **चरपराहट प्रगट होती है,...** अन्दर चरपराहट है, वह प्रगट होती है। आहा...हा...! वह कोई घुटाई से प्रगट होती हो तो कोयले और लकड़ी घिसे। नहीं, उसमें से कहाँ से आयेगी? इसमें है। आहा...हा...!

कद में इतनी छोटी, रंग में काली, तथापि स्वभाव में चौसठ पहरी—तिखास—चरपराहट भरी है और अन्दर हरा रंग पूरा भरा है; वर्तमान भले काली हो। आहा...हा...! कद में छोटी, रंग में काली, तथापि तिखास अर्थात् चरपराहट, चौसठ पहरी अर्थात्—चौसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया—सोलह आने भरी है अन्दर। आहा...हा...! उसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। प्रत्यक्ष नहीं? चौसठ पहरी प्रगट होती है, प्रत्यक्ष यह तो दिखती है। वैद्यों को पता है। आहा...हा...!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... है? **उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव की घुटाई करने से....** ज्ञायकस्वरूप है, जाननस्वभावी प्रभु है। उस जानन-स्वभाव का घोटन-अन्तर एकाग्रता करने से। भगवान चैतन्यस्वरूप अर्थात् चैतन्य चेतन का चैतन्यस्वरूप—ऐसा जो भगवानस्वरूप, आत्मा का ज्ञायकस्वरूप; उसे दृष्टि में लेकर घोटन करना अर्थात् उस ओर की एकाग्रता करना। आहा...हा...! तो पूर्ण प्रगट होगा। ज्ञायकस्वभाव का

www.vitragvani.com

झुकाव करने से-घोलन / घोटन करने से **अनन्त गुण प्रगट होते हैं**। है, उसमें से पर्याय में अनन्त गुण आते हैं। आहा...हा... ! भाषा तो सादी है, परन्तु भाई !....

पुस्तक ठीक समय में आयी है अभी। ४३ वर्ष हुए। बाहर में लोग जरा पढ़े न! बापू! भाई! तेरे हित का मार्ग है, उसकी तू हाँ तो कर कि मार्ग यह है। आहा...हा... ! हाँ करने से हालत होगी। हाँ करने से हाँ की लत करने से हालत हो जाएगी। आहा...हा... ! परन्तु इसे (ऐसा लगता है कि) अकेला भगवान अनन्त गुण का सागर इतने क्षेत्र में! इतने अनन्त गुण का सागर! भाई! उसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव में संख्या के सामर्थ्य की जरूरत है। अनन्त स्वभाव से भरपूर भगवान। आहा...हा... !

जिसे निगोद की प्रतीति करनी है... आहा...हा... ! वह निगोद भी ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान, उसे दया पाले, इसलिए अनन्त निगोद—ऐसा नहीं। ज्ञान का माप है कि अनन्त ज्ञेय को भी वह जाने, इतना ज्ञेय का माप है। आत्मा ज्ञानप्रमाण और ज्ञान, ज्ञेयप्रमाण। इस ज्ञेय की जो संख्या अनन्त है, उसे जाननेवाला ज्ञान है। उस ज्ञान का प्रमाण अनन्त इस तरह सिद्ध होता है। पर्याय में, हों! गुण में तो (है ही)। आहा...हा... !

ज्ञान की वर्तमान पर्याय अनन्त निगोद के जीवों की प्रतीति करती है। वे इतने जीव निगोद के एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त हैं। ऐसा पूरा लोक भरा है। ऐसे अनन्त गुण का धारक एक द्रव्य; ऐसे अनन्त द्रव्य लोक में ठसाठस भरे हैं। वे लोग सर्व व्यापक, व्यापक कहते हैं—ऐसा नहीं, परन्तु सर्वक्षेत्र में पूर्ण भरे हैं। आहा...हा... ! जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ उन सिद्ध के पेट में अनन्त निगोद है। क्या कहा यह ? सिद्ध, जो असंख्य प्रदेशी, (जिन्हें) अनन्त गुण प्रगट हुए, अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं। उस क्षेत्र में उनके आत्मा का क्षेत्र है, उसमें अन्दर निगोद है, क्योंकि पूरा लोक भरा है न निगोद से ? आहा...हा... ! परन्तु उस क्षेत्र में रहे हुए निगोदिया हैं, वे अनन्त दुःख का वेदन करते हैं; सिद्ध है, वे अनन्त आनन्द का वेदन करते हैं। आहा...हा... ! ऐसी बड़ी बातें! यह बड़ा प्रभु है न, इसे जम जाए ऐसी हैं। आहा...हा... !

भाई! तेरी महिमा का पार नहीं। आहा...हा... ! इसे निःसन्देह बात में बैठ जाए, ऐसा तो तेरा स्वभाव है। नहीं, ऐसी मान्यता, वह कहीं तेरे स्वभाव में नहीं है। क्या कहा ? यह

www.vitragvani.com

अनन्त गुण और अनन्त शक्ति का रत्न है-ऐसा नहीं; यह तो रागवाला है, एक अंशवाला है—ऐसी जो प्रतीति करना, वह तो मिथ्या है। वह मिथ्याश्रद्धा कहीं स्वभाव में नहीं है। आहा...हा...! वह तो कृत्रिम खड़ी की है और सम्यक्श्रद्धा-शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह स्वभाव तो अन्दर भरा है। आहा...हा...!

प्रगट होती है, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव की घुटाई... घुटाई, अन्तरमें एकाग्रता की घुटाई। पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकस्वभाव भगवान तो शुभाशुभभावरूप कभी हुआ नहीं। यह (समयसार की) छठवीं गाथा में आ गया है। ज्ञायकस्वभाव तो ज्ञान-ज्ञानप्रकाश, ज्ञान के प्रकाश का रूप है। वे शुभाशुभभाव तो अन्धकार है, जड़ है। शुभाशुभभाव, वह तो अन्धकार / जड़ है, अचेतन है। भले वह परमाणु के रंग, गन्ध, रस, स्पर्श उनमें नहीं, परन्तु उनमें ज्ञान के प्रकाश के अंश का अभाव है; इसलिए शुभ और अशुभभाव दोनों अचेतन और जड़ हैं। ज्ञायकस्वरूप भगवान उन शुभाशुभरूप कभी नहीं हुआ। आहा...हा...! चैतन्य ज्ञायकभाव, उन शुभाशुभ जड़रूप हुआ ही नहीं। आहा...हा...! ऐसे ज्ञायक-स्वभाव का रटन, घोलन। आहा...हा...! ऐसी बातें।

बाहर से ज्यों-त्यों कर आये, बैठने लगा, उसमें ऐसा आवे। अपने सुनते थे ऐसा ही यहाँ है—अकेला निश्चय! बहुत-से ऐसे आते हैं। एक व्यक्ति कहता था—हम सुनते थे, तदनुसार यहाँ मिला, ये निश्चय की, अकेले निश्चय की ही बातें करते हैं, व्यवहार तो कहते ही नहीं। केवलज्ञान स्वयं व्यवहार नहीं? यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है, वह व्यवहार है। त्रिकाली द्रव्य, वह निश्चय है; पर्याय है, वह व्यवहार है। बापू! तुझे पता नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग है, वह व्यवहार है, क्योंकि वह पर्याय है; और त्रिकाली द्रव्य, वह निश्चय है। आहा...हा...! समझ में आया?

ज्ञायकस्वभाव की घुटाई करने से अनन्त गुण प्रगट होते हैं। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त गुणों की एक अंश व्यक्तता प्रगट होती है और केवलज्ञान के समय अनन्त गुणों की पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। इस ज्ञायकस्वभाव की घुटाई (एकाग्रता) से; दूसरे किसी उपाय से होती है—ऐसा नहीं है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ कृष्ण-८, गुरुवार, दिनाङ्क २७-०७-१९७८
वचनामृत-१३३-१३६ प्रवचन-४९

ज्ञानी चैतन्य की शोभा निहारने के लिये कुतूहल-बुद्धिवाले — आतुर होते हैं। अहो! उन परम पुरुषार्थी महाज्ञानियों की दशा कैसी होगी जो अन्दर जाने पर बाहर आते ही नहीं! धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े॥१३३॥

धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि हो, उसकी दृष्टि ज्ञायक पर होती है। ज्ञायक जो त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, अनन्त-अनन्त चैतन्य रत्नाकर, उसमें अनन्त आनन्द के सागर से भरपूर प्रभु की जिसे दृष्टि हुई है; पर्यायबुद्धि गयी है, एक अंश वर्तमान रागादि की बुद्धि मिटकर, जिसे त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप की अन्तर में-दृष्टि में निर्विकल्प स्वीकार हुआ है, उसे यहाँ समकिती और धर्म की पहली शुरुआतवाला कहा जाता है। आहा...हा...! अब यहाँ तो अधिक आगे ले जाते हैं।

ज्ञानी... आहा...हा...! **चैतन्य की शोभा निहारने...** आहा..हा...! भगवान अनन्त गुण से (शोभता है)। जैसे शरीर में रत्न के गहने पहने हों और शोभित शृंगार लगे, वैसे यह भगवान अनन्त गुण के रत्न से शोभित हैं। जिसे अनन्त गुण का अलंकार है, आहा...हा...! धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप अनुभव में आकर प्रतीति हुई है। **ज्ञानी चैतन्य की शोभा निहारने...** जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता—ऐसे अनन्त रत्नों से शोभित अलंकारिक

www.vitragvani.com

प्रभु है। आहा...हा...! धर्मी जीव उस **चैतन्य की शोभा निहारने...** है? **के लिये कुतूहल-बुद्धिवाले...** कुतूहल बुद्धि—जैसे कोई नवीन चीज देखी हो, वहाँ कुतूहलता होती है न? ऐसा कैसे? यह क्या है? इसी प्रकार अन्दर चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में और ज्ञान में पहले ज्ञात हुआ है, अनुभव में आया है; अब उसे अन्दर चैतन्य की पूर्णता को निहारने—देखने कुतूहल बुद्धिवाला (है कि) यह क्या है? आहा...हा...! है?

कुतूहल-बुद्धिवाले — आतुर होते हैं। आहा..हा...! जिसे आत्मज्ञान हुआ है और उसे आत्मज्ञान में जो आनन्द आदि अनन्त चैतन्य रत्नाकर का अनुभव हुआ है, वह अनुभव के लिये—आगे बढ़ने के लिये अनकुतूहल बुद्धि करे कि यह क्या है? यह विस्मयकारी? अमाप, अमाप जिसके गुण का माप नहीं, और एक-एक गुण की अनन्तता जिसकी शक्ति है—ऐसी कुतूहल बुद्धि से देखने को आतुर होता है। है? कुतूहल बुद्धिवाले आतुर होते हैं। आहा...हा...! क्योंकि अन्दर में से बाहर निकलना, वह शुभभाव में आना, वह भी संसार और बन्धन है। आहा...हा...! चैतन्य स्वयंभू, रत्नाकर-रत्न का आकर, समुद्र... आहा...हा...! उसे ज्ञान द्वारा देखने को अन्तर में आतुर है। कुतूहल, आतुर है। उसमें से बाहर निकलना उसे रुचता नहीं। आहा...हा...!

अहो! उन परम पुरुषार्थी महाज्ञानियों... परम पुरुषार्थी, जिसकी स्वरूप में ही अकेली रमणता जम गयी है। आहा...! अतीन्द्रिय आनन्द आदि अनन्त गुण रत्नाकर से जिसकी शोभा और अलंकार है... आहा...हा...! उसे अनुभव करने के लिये, उसे निहारने के लिये जो अन्दर महा पुरुषार्थी है। है? **परम पुरुषार्थी महाज्ञानियों की...** आहा...हा...! राजकुमार चक्रवर्ती के पुत्र हों, या चक्रवर्ती स्वयं हो, (उन्हें) आत्मज्ञान का अनुभव होता है। विशेष अन्दर जाने के लिये, निहारने के लिये वे गृहस्थाश्रम का त्याग करके वन में चले जाते हैं। आहा...हा...! वन में अन्दर आत्मा को निहारने (चले जाते हैं)। बाहर में चाहे जो सिंह की-बाघ की दहाड़ हो, घोर अन्धकार हो, जंगल में चारों ओर वृक्ष के हजारों में लिपटे हों, उसमें स्वयं अन्दर आनन्द में जाते हैं। आहा...हा...! जो निधि सम्यग्ज्ञान में और सम्यग्दर्शन में ज्ञात हुई, उसका विशेष अनुभव करने को अन्दर जाते हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

www.vitragvani.com

उन महापुरुषार्थी, **महाज्ञानियों की दशा...** आहा...हा... ! जिनका बाह्य देखना भी छूट जाता है, अन्तर देखने में जहाँ कुतूहल करके अन्दर जाते हैं... आहा...हा... ! वह कैसी दशा होगी ? उन **महाज्ञानियों की दशा कैसी होगी, जो अन्दर जाने पर बाहर आते ही नहीं!** अन्दर में आनन्दस्वरूप में गये... आहा...हा... ! जम गये अन्दर में ! जो बाहर शुभ विकल्प में भी नहीं आते। आहा...हा... ! अशुभ में तो नहीं परन्तु शुभ में भी नहीं आते। क्यों ? महाव्रत आदि के परिणाम विकल्प हैं, वे बन्ध का कारण जगपंथ है। आहा...हा... ! ऐसा जो अन्तर मोक्ष का मार्ग अन्तर में देखा है, वहाँ आगे निहारने उनकी दशा अन्दर गये सो गये। आहा...हा... !

चैतन्य के ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटि भूलकर अभेद में अन्दर लीन (होने) गये। गये सो गये। आहा...हा... ! क्या कहा यह ? जिसे आत्मा के आनन्द का रस जगा है... आहा...हा... ! उस रस की घूँट पीने... आहा...हा... ! अन्दर में जाते हैं और जाने के पश्चात् बाहर नहीं आते। आहा...हा... ! बाहर आवे, तब तो विकल्प उठते हैं। चाहे तो भगवान की भक्ति का हो या व्रत का हो या दया, दान का हो, वह विकल्प तो संसार है, भव का कारण है। आहा...हा... ! पाप के परिणाम की तो क्या बात करना ? आहा...हा... ! वह तो संसार की बड़ी बांबी है ! पाप के अशुभ परिणाम, पूरे दिन कमाना और भोग, विषय और पैसा कमाया और ब्याज कमाया और यह किया और लड़कों को सम्हाला, स्त्री को प्रसन्न रखा और.... यह सब तो अशुभराग का बड़ा सर्प का बिल है, उसमें तो ज़हरीला स्वाद है परन्तु शुभभाव में आना, वह ज़हरीला स्वाद है, कहते हैं। आहा..हा... !

अन्दर चिदानन्द आनन्दस्वरूप प्रभु ! जिसने अन्तर में, ज्ञान में देखा और जिसने आनन्द का अनुभव लिया है। आहा...हा... ! ऐसा जो धर्मी, महापुरुषार्थी, महाज्ञानी जो अन्दर में गये अन्दर में... आहा...हा... ! वे गुम हुए, वे बाहर नहीं आये। आहा...हा... ! कितने ही ऐसा कहते हैं न कि भाई ! पर की सेवा करने, भक्ति करने अथवा पर का उद्धार करने के लिये कदाचित् भव एकाध हो तो आपत्ति नहीं है। एकाध भव करना पड़े (ऐसा जो मानता है), वह तो मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! सम्यग्दृष्टि को तो बाहर के विकल्प में आना रुचता नहीं है। आहा...हा... ! यहाँ तो विशेष दशावाले लिये हैं न ? जो

www.vitragvani.com

अन्दर में जम गये हैं। निर्विकल्पपरिणति द्वारा अन्दर में जम गये हैं, उसमें से बाहर नहीं आते। आहा...हा...!

धन्य वह दिवस... यह भावना, समकित दृष्टि की ऐसी भावना होती है कि **धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े**। आहा...हा...! यह तो बाहर विकल्प में उत्साह लाना और उसके जगत में ल्हावा लेने के लिये (उत्साह करे) आहा...हा...! वह तो मिथ्यादृष्टि है। दुनिया में गिनाने को और दुनिया में अपनी महिमा लेने की... आहा...हा...! ये बातें बहुत कठिन, बापू! मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है न! मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है। वीतरागभाव को अन्दर में गुप्त रह जाये, तब होता है। आहा...हा...! समझ में आया?

मोक्षमार्ग है, वह वीतरागभाव है। वह चौथे गुणस्थान से जितना अन्दर में एकाग्र हुआ, उतनी वीतरागता आयी, उतना मोक्ष का मार्ग शुरु हुआ। आहा...हा...! और उससे आगे जाने पर अन्दर स्थिर हो गया। ऐसा स्थिर हुआ कि बाहर आया ही नहीं। आहा...हा...! और जिसे अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो जाता है। वह दशा कब हो? ऐसी समकिती को भावना होती है। उसे ऐसी भावना नहीं होती कि कोई शुभभाव करूँ और दुनिया को समझाऊँ और दुनिया समझे तो कुछ लाभ तो हो। आहा...हा...! किसे लाभ हो? भाई! आहा...हा...!

समाधिशतक में आज आया था कि मैं किसी को समझाऊँ और मैं पर से समझूँ, यह सब उन्मादता है, उन्माद है। आहा...हा...! क्योंकि यह विकल्प है। आहा...हा...! मैं दूसरे को समझाऊँ, आहा...हा...! प्रभु! ऐसा जो विकल्प है, वह उन्मादता-पागलपन है, कहते हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! और मैं पर से समझूँ-यह भी एक पागलपन है, कहते हैं। आहा...हा...! भगवान समझनेवाला प्रभु तो अन्दर पूर्ण बिराजता है न! वही स्वयं स्वयं को समझाता है और स्वयं अपना गुरु है। आहा...हा...! इस निश्चय की यहाँ बात है और पहला तो फिर व्यवहार से आरोप करे। निश्चय स्वयं जब स्व की समझ करके स्व का गुरु हो, तब पर गुरु को निमित्तरूप से व्यवहार से कहने में आता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : दो गुरु हुए। एक निश्चय गुरु और एक व्यवहार गुरु।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार अर्थात् आरोपित, यह आरोपित कथन है। जैसे निश्चय समकित है, वह आत्मा का अनुभव और अनुभव में अन्तर की प्रतीति—ऐसे निश्चय समकित के समय जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग होता है, वह व्यवहार समकित है, आरोपित है। वह तो राग है। आरोपित है। वह नहीं, उसका उसे ज्ञान / निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उसे व्यवहार समकित कहा। इसी प्रकार गुरु जो निमित्त है, उनके प्रति लक्ष्य जाता है, वह तो राग है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : सच्चा सुने बिना होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने बिना ही हो—ऐसा है, यहाँ तो कहते हैं। आवे, सुनने का आवे, शास्त्र अभ्यास भी हो, आगम अभ्यास भी हो, वस्तु है। परन्तु अभ्यास होकर भी जाना कहाँ है ? आहा...हा...! जहाँ विकल्प न उठे, ऐसी स्थिति में जाना है। आहा...हा...! वीतराग के वचन वीतरागता बताते हैं। वीतरागता बतावे, वह वीतरागता स्व के आश्रय से होती है। अत: जिसे स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, वीतरागता हुई, वह पूर्ण वीतरागता के लिये अन्दर भावना भाता है, मैं इसमें कब पूर्ण होऊँ! आहा...हा...! श्रीमद् में नहीं आता ?

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।

(श्रीमद्) गृहस्थाश्रम में थे, तथापि भावना तो ऐसी करते हैं।

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,

शरीर तो स्थिर हो किन्तु मन में क्षोभ नहीं, परन्तु वह तो जड़ है, वह स्थिर हुआ परन्तु मन में क्षोभ का विकल्प नहीं। आहा...हा...!

जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥

आहा...हा...! शरीर मेरा नहीं, मुझे चाहिए नहीं, मुझसे रहा नहीं, और जिसे चाहिए हो, वह मेरा मित्र है। सिंह आया न ? (तो कहते हैं) वह तो मित्र है। आहा...हा...! ऐसी

www.vitragvani.com

वीतरागता की भावना, समकिती भाता है। आहा...हा...! चक्रवर्ती के राजकुमार मणिरत्न की जिन्हें टाईल्स नीचे होती है, वे राजकुमार जिनके घर में सैकड़ों बड़े-बड़े राजाओं की लड़कियाँ होती हैं परन्तु उन्हें जहाँ अन्दर भान होता है और भान होकर अन्दर में जाना चाहते हैं... माता! जननी! मुझे आज्ञा दे। मैं मेरे आनन्द में जाना चाहता हूँ। आहा...हा...! वन में तो निमित्त है। मेरा नाथ ज्ञायक मुझे ज्ञात हुआ है, वह आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है। माता! आहा...हा...! हमें एक क्षण भी बाहर नहीं रुचता, माँ! यह रानियाँ और यह रत्न की टाईल्स, अरे! संगमरमर की टाईल्स और क्या कहलाती है? स्फटिक, रावण के घर में स्फटिक की फर्श थी। स्फटिक, स्फटिक की फर्श। यह क्या है?

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु मेरा, मुझे उसकी भूमिका में जाना है, जहाँ आनन्द पकता है। इसके लिये आज्ञा लेते हुए ऐसा बोलता है, माँ को कहता है-माँ! आहा...हा...! माँ! एक बार रोना हो तो रो ले, परन्तु माता! अब फिर से एक माता नहीं करेंगे। दूसरी माँ अब नहीं करेंगे, हम तो अन्दर में जाकर भव का अभाव करेंगे। आहा...हा...!

जिसे नीलमणि की फर्श और जिसके घर में रानियाँ अरबों रुपये लेकर आयी हों उसके पिता के (घर से)... आहा...हा...! यह हम नहीं, माँ! यह हम नहीं। हम जहाँ हैं, वहाँ ये नहीं और ये जहाँ है, वहाँ हम नहीं। आहा...हा...! हम तो अतीन्द्रिय आनन्द के रस के रसिया हैं। प्रभु! माता! वह रस लेने के लिये अन्दर जाते हैं। हम अकेले जंगल में (जाते हैं)। आहा...हा...! बापू! मार्ग कोई अलग है, भाई! आहा...हा...! अकेला बाहर का वनवास, ऐसा नहीं; यह तो अन्तर में आनन्द का रस लेने के लिये जाते हैं। आहा...हा...! और वापस यह वायदा करता है, माता! अब दूसरी माँ नहीं। हम इसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं। हम अन्दर में जाते हुए अब बाहर नहीं आयेंगे। आहा...हा...! वह पुरुषार्थ कितना होगा?

मुमुक्षु : चौथे काल की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे नहीं, पाँचवें काल में भावना होती है न! पाँचवें काल के समकिती की ऐसी ही भावना होती है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! कैसे शब्द हैं देखो न!

www.vitragvani.com

धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े। आहा...हा... ! उस आनन्द के अनुभव में लवलीन हो गये, वीतरागभाव में लीन हो गये। वह दिन कब आवे कि हमें वह दशा हो—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! धर्मी की यह भावना होती है। उसे मैं यह व्यापार करूँ और यह करूँ, प्रसिद्धि में आऊँ, यह तो सब मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा... ! उसका कर्ता होता है, वह मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! कठिन काम है, बापू! परन्तु उसका फल भी अनन्त आनन्द है न!! आहा...हा... ! **धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े।** आहा...हा... ! उस आनन्द में समाया वह समाया; समझा वह अन्दर में समा गया। आहा...हा... ! यह श्रीमद् में आता है। समझा वह समाया। अन्दर स्थिर हो गया। आहा...हा... ! १३३ (बोल पूरा हुआ)।

मुनि ने सर्व विभावों पर विजय पाकर प्रव्रज्यारूप साम्राज्य प्राप्त किया है। विजयपताका फहरा रही है॥१३४॥

१३४, **मुनि ने सर्व विभावों पर विजय पाकर...** आहा...हा... ! विकल्प का जितने विभाव हैं, (उन) सब विभावों के प्रति विजय प्राप्त की है। मुनि किसे कहते हैं? बापू! आहा...हा... ! जिन्होंने समस्त विभावों पर अपनी विजय प्राप्त की है। आहा...हा... ! हमारी विजय ध्वजा लहराती है, कहते हैं। आहा...हा... ! राग की अब विजय नहीं। आहा...हा... ! **मुनि ने सर्व विभावों पर विजय पाकर...** आहा...हा.. ! बापू! मुनिपना कैसा कहलाता है, (इसका) लोगों को (पता नहीं)। सब विभावों के विकल्प-शुभ के भी असंख्य विकल्प... आहा...हा... ! उनसे भी भिन्न होकर विजय प्राप्त की है। राग की जप नहीं, परन्तु मेरी उसमें विजय है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है।

मुनि ने सर्व विभावों पर विजय पाकर प्रव्रज्यारूप साम्राज्य प्राप्त किया है। प्रव्रज्या अर्थात् चारित्ररूप साम्राज्य। आहा...हा... ! **प्राप्त किया है।** एक बार जामनगर में गये थे न? जामनगर राजा है न? गुजर गये, दिग्विजय। एक बार हम वहाँ जामनगर थे। मैं उनके बँगले के समीप जंगल जाता था। जंगल बाहर दिशा (मल विसर्जन करने) जाता

www.vitragvani.com

था। डहनें पता पड़ा कि महाराज यहाँ आते हैं। उन्हें स्वयं को आँख का दर्द था, आ सकें ऐसा नहीं था, (इसलिए) कहलवाया, महाराज! मेरे बँगले के समीप आप आते हो; मेरे घर मुझे दर्शन देने आओ न! जामनगर दरबार। करोड़ रुपये की आमदनी और उनकी रानी ने तो कितने ही करोड़ इकट्ठे किये थे। ऐसी गुलाबरानी है। भाई-दरबार गुजर गये। कितने ही करोड़ रुपये इकट्ठे किये। व्यापार करती थी। परन्तु उसे पता पड़ा कि महाराज यहाँ आते हैं और राजा दर्शन करने जा सके, ऐसा नहीं है। आँख में बड़ा ऐसा बाँधा हुआ। आँख पर कुछ (बाँधा हुआ था)। गये, बेचारे ने बहुत आदर किया। ठेठ दरवाजे तक.... क्या कहलाता है तुम्हारे? रंगोली, रंगोली की। गुलाबरानी सन्मुख आयी। स्वयं खड़े रहे अन्दर। अन्दर गये, पाव घण्टे बात की। दिशा को गये थे, वहाँ पाव घण्टे (गये थे)। उस दिन तुम्हारे घर गये थे। दिशा को गये थे, वहाँ प्रात: काल की बात है। वह बाई सुनने बैठी, वे बैठे। कहा—यह साम्राज्य नहीं, करोड़ की आमदनी और बड़ा साम्राज्य—धूल भी नहीं यह साम्राज्य; यह तो भटकने का राज है। सुनते थे, बेचारे सुने। हमारे पास से क्या कुछ लेना है?

साम्राज्य तो उसे कहते हैं, अनन्त आनन्द का नाथ अन्दर, अनन्त गुण का बिराजमान जो देश अपना है, उसका साम्राज्य जीतकर अपने में रहना, वह साम्राज्य है। बेचारे ने प्रसन्नता बतायी। हमारे पास क्या कोई मक्खन तो नहीं मिले। तथापि उसने एक हजार रुपये दिये। पाव घण्टे बात की, एक हजार ज्ञान खाते दिये। हजार देते हैं। साथ में कोई था, दूसरा कोई, कोई था नहीं? तुम थे? तुम नहीं। यह तो (संवत्) २०१० की साल, चौबीस वर्ष हुए। यह धूल का साम्राज्य नहीं। करोड़ और पाँच करोड़ की आमदनी और बड़ा राजा है।

अनन्त-अनन्त यह प्रव्रज्यारूप, देखा? साम्राज्य। आहा...हा...! विभाव पर विजय प्राप्त करके जिसने वीतरागभाव की प्रव्रज्या पर जिसने अपना स्वामीपना प्रगट किया है। आहा...हा...! अपना देश जो है, उसका अधिकार ले लिया है। आहा...हा...! यह तो आगे आयेगा न? नहीं? आगे है न? १४९ पृष्ठ पर। मुनि धर्मात्मा... आहा...हा...! अपना आनन्दस्वरूप भगवान, वहाँ से बाहर निकले, विकल्प आवे (तो ऐसा लगे कि) अरे! हम कहाँ परदेश में आये? मोहनलालजी! क्या है इसमें?

www.vitragvani.com

१४९ वाँ पृष्ठ है न? है न, यह है। इसमें ४०१ (बोल है)। दूसरे में (पृष्ठ में) दो-चार का अन्तर होगा। **ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर....** है? **ज्ञानी का परिणमन....** धर्मी की दशा है... है? **विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है।** आहा...हा...! **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** आया न यहाँ? आहा...हा...! '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।**' शरीर, कुटुम्ब-परिवार, काठियावाड़ या हिन्दुस्तान या यह देश तो हमारा नहीं परन्तु.... आहा...हा...!

मुमुक्षु : उमराला?

पूज्य गुरुदेवश्री : उमराला-ठुमराला। उमराला का ॐ आया है। आहा...हा...! हमारा देश तो अन्दर चिदानन्द प्रभु, वह हमारा देश है। यह विकल्प, वह हमारा देश नहीं। यह महाव्रत का विकल्प उठा, वह हमारा देश नहीं। अरे! यह बात कहाँ? समझाने का विकल्प उठा, वह भी राग, हमारा देश नहीं। आहा...हा...! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** है? बाबूलालजी! आया? इस राग में आये, इस परदेश में कहाँ आ पड़े? आहा...हा...! लाडनूँ छोड़कर कलकत्ता (गये), वह परदेश है या नहीं? यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का जो देश है, वह स्व-देश है। उसमें से राग आवे, वह परदेश है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, बापू! यह वीतरागमार्ग है, बापू! वह हमारा देश नहीं। **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहा...हा...! **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।**

मुमुक्षु : तो आये किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमजोरी के कारण अन्दर में रह नहीं सके। पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण अन्दर में रह नहीं सके; इसलिए आये। आहा...हा...!

कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। इस शुभभाव में हमारा कोई नहीं है। आहा...हा...! यहाँ तो जहाँ-तहाँ मेरी स्त्री और मेरा पुत्र, मेरा भाई और मेरा पैसा, मेरा मकान और.... मार डाला आत्मा को। जो इसके नहीं, उन्हें (अपने) मानकर (मार डाला)।

मुमुक्षु : यह तो अजर-अमर है, मरता कहाँ है?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : है, उसका अनादर किया, यही उसका मरण है। जानने-देखनेवाला है, उसने परवस्तु मेरी मानी और स्व का ज्ञातापने का अनादर किया, यही हिंसा है। 'क्षण-क्षण भयंकर भावमरण में कहाँ चकचूर है ?' श्रीमद् में आता है। सोलह वर्ष की उम्र में (लिखते हैं)। 'क्षण-क्षण भयंकर भावमरण में' एक विकल्प उठता है, वह मेरा है, वह प्रतिक्षण भावमरण हुआ, प्रभु ! आहा...हा... ! अरे ! पर की दया का भाव / राग आवे, वह जीव की हिंसा है। ऐसी बात कठिन पड़ती है। पर की दया का भाव, वह राग है, और राग है, वह स्वरूप की हिंसा है। प्रभु ! मार्ग कठिन, बापू ! जगत से निराला है। अरे ! जगत को सुनने को मिलता नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। आहा...हा... ! पशु की तरह जिन्दगी जाती है। आहा...हा... ! फिर भले करोड़पति हो और अरबोंपति (हों, वे) सब ढोर जैसे हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्तगुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश हैं। आहा...हा... ! कहो, छोटाभाई ! थान-बान स्वदेश नहीं ऐसा कहते हैं। मोहनलालजी को लाडनूँ, तुम्हारे 'थान' आहा...हा... ! कहो सुरेन्द्रजी ! इनका आगरा। आगरा-फागरा कोई तेरा देश ही नहीं है, सुन न ! आहा...हा... ! स्वदेश तो जिसमें आनन्द-ज्ञान और शान्ति रही है—ऐसा जो परिवार बसता है, वह हमारा देश है। आहा...हा... ! धर्मी की यह दृष्टि होती है। आहा...हा... !

अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। समकिती ज्ञानी, (जिसे) आत्मा का ज्ञान हुआ है, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है, वह ऐसा कहता है कि हम अब हमारे स्वदेश में जा रहे हैं, बाहर में आना हमें रुचता नहीं है। आहा...हा... ! जहाँ रुचता है, वहाँ अब जा रहे हैं। आहा...हा... ! **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर...** हमें शीघ्रता से, उतावल से हमारे मूल वतन में जाकर। आहा...हा... ! कहो, उल्लासजी ! लाडनूँ मूल वतन है ? आहा...हा... !

मुमुक्षु : अनादि से जहाँ रहा है, वह मूल वतन नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल नहीं, वह परदेश है, परदेश में भटकता है व्यर्थ में। स्वदेश

www.vitragvani.com

में तो आनन्द और ज्ञान भरा है, वहाँ स्वदेश है। विकल्प आया, वह भी परदेश है। आहा...हा...! ऐसा वीतराग का मार्ग कठिन है, बापू! आहा...हा...! आहा...हा...!

त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर... मूल वतन यह। **आराम से बसना है। जहाँ सब हमारे हैं।** जहाँ ज्ञान है, आनन्द है, शान्ति है, स्वच्छता है, प्रभुता है। जहाँ अनन्त शक्तियों का संग्रह पड़ा है, वह हमारा देश और वे हमारे हैं। आहा...हा...!

अब ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती हैं। क्या हो? पंचम काल है। पंचम काल क्या है? यहाँ वस्तु को कहाँ अवरोधक है? आहा...हा...! वस्तु तो जलहलज्योति चैतन्य रत्नाकर प्रभु! नित्यानन्द, सहजानन्द के शृंगार से भरपूर प्रभु, पंचम काल में भी कायम वैसा ही रहा है। आहा...हा...!

नरक की नारकी में गया, उसके दुःख पर्याय में वेदन किये, तथापि वस्तु तो परमानन्द के नाथ की स्वच्छरूप से अन्दर जैसी है, वैसी पड़ी है। ऐसी चीज़ को, आँच और अवज्ञा कुछ लागू नहीं पड़ती। आहा...हा...! ऐसा जिसका चैतन्यस्वभाव है, उसकी मिठास के समक्ष जगत की सब मिठास परदेश और ज़हर जैसी लगती है। आहा...हा...!

मोक्ष अधिकार में कहा है कि धर्मी मुनि हैं, वे महाव्रत के परिणाम में आते हैं, वह विषकुंभ है, ज़हर का घड़ा है। आहा...हा...! अशुभभाव की तो क्या बात करना? परन्तु पाप के परिणाम से हटना-प्रायश्चित्त आदि जो शुभविकल्प (आवे), प्रतिमा आदि के दर्शन (करना), भगवान का स्मरण (करना)। आहा...हा...! यह राग ज़हर, विष का घड़ा है। प्रभु, वह अमृत का कुण्ड है। अन्दर अमृत का सागर / समुद्र है, तब यह पुण्य / शुभभाव वह ज़हर का घड़ा है। ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! अभी तो सब ऐसी गड़बड़ कर डाली है। बाहर में मना दिया, बस! ये व्रत किये, और तप किये, ये नग्नपना हो गया और हो गया (धर्म)! धूल में भी नहीं वहाँ। आहा...हा...! अभी वस्तु की दृष्टि हुई नहीं। वस्तु कैसी है?—वह देखकर जानी नहीं, फिर स्थिरता करना कहाँ आया इसे? देखकर जानी हो तो स्थिरता का यह स्थान है-ऐसा जाने। आहा...हा...! स्थिरता अर्थात् चारित्र। स्थिरता, रमना। यह मेरा... देखा? यहाँ ऐसा लेना। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुनि ने सर्व विभावों पर विजय पाकर प्रव्रज्यारूप साम्राज्य प्राप्त किया है। विजयपताका फहरा रही है। आहा...हा...! जिसमें वीतरागता की विजयध्वजा फहरा रही है। हमारे वीतरागभाव की हमें विजय है। राग की जय नहीं, राग का नाश है। आहा...हा...! ऐसा भाव! यह तो अभी लोक में बाहर क्रिया की और व्रत पालन किये और भक्ति की, यात्रा की भगवान की और गिरनार की और.... हो गया धर्म! धूल भी धर्म नहीं, सुन न! यह तो सब राग है, पुण्य है, वह ज़हर है। अमृत के सागर को अन्दर एक बार देख, प्रभु! तब तुझे सन्तोष होगा। आहा...हा...!

विजयपताका फहरा रही है। मुनि को तो विजयपताका फहरा रही है। आहा...हा...! ध्वजा होती है न? विजय-ध्वजा। चक्रवर्ती का राज हो, वहाँ विजय हो गया। आहा...हा...! फिर वहाँ.... पर्वत पर जाकर लिखते हैं। एक मणिरत्न होता है, उसकी हजार देव सेवा करते हैं। मैंने यह राज प्राप्त किया। पूर्व के चक्रवर्ती ने लिखा हो, उसका मिटा दें। चक्रवर्ती... पर्वत पर जाते हैं। अनन्त हो गये, वहाँ कितना लिखने का हो? और स्वयं को पता है कि मैं यह लिखता हूँ किन्तु बाद के चक्रवर्ती आयेंगे और इसे मिटा देंगे। आहा...हा...! हमने छह खण्ड का राज्य जीता है, सोलह हजार देव हमारी तैनाती में हैं। हमने चक्रवर्ती पद हाथ में लिया है-ऐसा लिखते हैं परन्तु समकिती है, यह लिखते ही उसे भाव आता है कि अरे रे! यह क्या है यह? अरे! यह सब क्या होता है यह? जहाँ हमारा देश है, उसे हमें जीतना है। यह कहाँ जीत? यह देश हमारा है? आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह किस प्रकार का धर्म है? व्रत पालना और भक्ति करना, यात्रा करना—ऐसा कहे तब तो (पता पड़े)। अब उसमें क्या है? धूल! सुन न! वह तो सब राग की—ज़हर की—पुण्य-बन्ध की क्रियायें हैं।

यहाँ तो भगवान वीतराग धर्म कहते हैं कि इस राग से भिन्न भगवान आत्मा का स्वदेश है, जहाँ अनन्त-अनन्त गुणों की बस्ती है, अनन्त-अनन्त गुण की बस्ती है, उसका तू बादशाह है। आहा..हा...! सत्य तो ऐसा है, बापू! सत्य तो ऐसी चीज़ है, कठोर है, भाई! इसके सन्मुख देखना, इसकी दृष्टि करना, वह ठीक है, यह बात अभी स्वीकार नहीं। वह तो यह करो, बस! व्रत करो, अपवास करो, साधु हो जाओ, दो, तीन, चार, पाँच, ग्यारह प्रतिमा धारण करो। धूल में भी नहीं, सब राग है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : पन्द्रह होती तो पन्द्रह करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो रामजीभाई कहते हैं न! यह तो ग्यारह क्या पन्द्रह होवे तो पन्द्रह (प्रतिमा) ले। वहाँ कहाँ इसे मेल है, सत् है या असत् है ? आहा...हा... ! अरे! भाई! प्रतिमा-फ्रतिमा वह तो विकल्प है, बापू! यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद ऐसा विकल्प आता है, परन्तु वह भी दुःखरूप है। आहा...हा... ! यह दिगम्बर धर्म, यह जैनधर्म, यह निष्कलंक परम पवित्र प्रभु आत्मा की जहाँ शोभा अन्दर देखता है तो बाहर निकलना रुचता नहीं। आहा...हा... ! मुनि को तो उसकी विजयध्वजा फहरा गयी है। आहा...हा... ! चौथे, पाँचवें, (गुणस्थान में) अभी तो राग विशेष होता है, उसे धन्धा -पानी होता है, तथापि उसे जानता है, वह कर्ता नहीं होता परन्तु वह तो जानने के योग्य ऐसा राग ही जिसे नहीं। आहा...हा... ! विजयध्वजा फहरायी, जहाँ विजय-हमारी विजय है, आस्रव की हार है। आहा...हा... ! आस्रव और राग हार गया, हम जीत गये हैं। हम हमारे आनन्द में रहते हैं, इसका नाम मुनिपना है। आहा...हा... ! **विजयपताका फहरा रही है।** १३४ (बोल पूरा हुआ)।

एक-एक दोष को ढूँढ़-ढूँढ़कर टालना नहीं पड़ता। अन्तर में दृष्टि स्थिर करे तो गुणरत्नाकर प्रगट हो और सर्व दोषों का चूरा हो जाय। आत्मा तो अनादि-अनन्त गुणों का पिण्ड है॥१३५॥

१३५, **एक-एक दोष को ढूँढ़-ढूँढ़कर टालना नहीं पड़ता।** क्या कहते हैं ? कि यह राग है, और यह शुभ है तथा यह अशुभ है और ऐसे एक-एक दोष को ढूँढ़कर टालना नहीं पड़ता। क्योंकि दोष पर दृष्टि रहे और इस दोष को टालूँ (—ऐसा करने जाये तो) इस प्रकार से दोष नहीं टल सकते। आहा...हा... ! एक-एक दोष को ढूँढ़-ढूँढ़कर, शोधकर टालना नहीं पड़ता। **अन्तर में दृष्टि स्थिर करे तो...** आहा...हा... ! अन्दर पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा में नज़र स्थिर करे **तो गुणरत्नाकर प्रगट हो... अन्तर में दृष्टि स्थिर करे तो गुणरत्नाकर प्रगट हो...** गुणरत्नाकर—गुण का, रत्न का समुद्र। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

उसकी क्या महिमा (हो) बापू! वह कहीं वचन में आ सके, ऐसी चीज़ नहीं है; अनुभवगम्य है। आहा...हा...! अरूपी, इन्द्रियग्राह्य नहीं, विकल्प से ग्राह्य नहीं। आहा...हा...! और पर्यायबुद्धि में रहकर भी ग्राह्य नहीं। आहा...हा...! ऐसा जो भगवान आत्मा चैतन्यरत्नाकर प्रगट होता है।

और सर्व दोषों का चूरा हो जाय। चूरा, है न? **सर्व दोषों का चूरा हो जाय।** चूरा हो जाय। आहा...हा...! प्रायश्चित के लिए ऐसा कि यह विकल्प इसका यह ऐसा करना पड़ता नहीं। यह अन्तर में आनन्दस्वरूप में विशेष उग्रपने जाय तब चैतन्य रत्नाकर प्रगट होता है, तब सब दोष टल जाते हैं, इसका नाम प्रायश्चित है। आहा...हा...! ऐसी बातें गजब। भाई! मार्ग-वीतराग जैन परमेश्वर त्रिलोकीनाथ का कथन तो यह है। दिव्यध्वनि -भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है। समझ में आया? आहा...हा...! अरे! पामर प्राणी को यह बात ऐसी लगती है कि यह तो सब कोई अगम्य-गम्य की निश्चय की बातें करते हैं। आहा...हा...! है तो ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अगम्य है, वह विकल्प से अगम्य है परन्तु ज्ञान से गम्य है। उसका ज्ञान करने पर वह गम्य है परन्तु किसी भी विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—ऐसे विकल्प से प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहा...हा...! अभी तो यह जहाँ करे, वहाँ हो गया धर्मी, हो गया लो! गिरनार की यात्रा एक-दो करे, सम्मेदशिखर की करे। आहा...हा...!

मुमुक्षु : शत्रुंजय की करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रुंजय की करे। कहा न, पालीताणा, गिरनार। 'एक बार वंदे जो कोई' आता है न? 'एक बार वंदे जो कोई' फिर 'ताहिं नरक पशु नहीं होई' परन्तु नरक पशु नहीं न? सम्मेदशिखर (जाकर) भगवान के दर्शन बहुत अच्छे करे, बहुत बार करता हो तो शुभभाव हो तो नरक-पशु में नहीं जाय परन्तु इससे भव का अभाव कहाँ हुआ? बाद में जायेगा। आहा...हा...! भगवान आत्मा अनन्त गुण की राशि सम्मेदशिखर स्वयं है। उस पर आरूढ़ होने से भव का अभाव हो—ऐसी वह यात्रा है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

चूरा हो जाय। ऐसा है न? भूका बोल जाए—गुजराती भाषा है न? **गुणरत्नाकर प्रगट हो और सर्व दोषों का चूरा हो जाय।** अर्थात् क्या? चूरा हो जाता है, ऐसा। नाश हो जाता है, भूको क्या? आहा...हा...! भाषा तो काठियावाड़ में बोलते हैं, भूको बोली जाय, गुजराती सादी भाषा है। **आत्मा तो अनादि-अनन्त गुणों का पिण्ड है।** आहा...हा...! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत, चिद्, और आनन्द जिसमें भरे हैं। शाश्वत् ऐसा प्रभु अन्दर... आहा...हा...! अनादि-अनन्त गुणों का पिण्ड है। आहा...हा...! उसमें राग की गन्ध नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, उसकी गन्ध जिसमें नहीं। वे सब राग हैं, विकार है। आहा...हा...! कठिन पड़े। धन्धा छोड़कर बेचारे मुश्किल से यात्रा को निकले हों, उसमें पाँच-पचास हजार या पाँच-पच्चीस, सौ, दो सौ, पाँच सौ रुपये खर्च करे, वहाँ अपने की.... आहा...हा...! धूल में भी वहाँ नहीं कुछ, सुन न! आहा...हा...! जहाँ आगे विकल्प का, राग का भी अवकाश नहीं और अन्दर प्रभु में जिसके गुण का ही अवकाश है... आहा...हा...! उसकी मिठास के समक्ष राग की मिठास जिसे छूट जाती है, आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है। **आत्मा तो अनादि-अनन्त गुणों का पिण्ड है।** आहा...हा...! अब पहले से लेंगे।

सम्यक्त्व से पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो, तथापि पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है॥१३६॥

१३६, **सम्यक्त्व से पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है,...** सम्यग्दर्शन हुआ, वह तो आत्मा का अनुभव हुआ। आत्मा आनन्दस्वरूप है, पूर्ण शुद्ध है—ऐसा दृष्टि में आकर निर्विकल्प दृष्टि होने से आनन्द का वेदन हो, वह समकित है परन्तु सम्यक्त्व से पहले भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है। यह वस्तु ऐसी है, (ऐसा) विकल्प से भी उसका निर्णय हो सकता है न! आया है न? १४३ में आया है, ७३ गाथा में आया है कि मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ (ऐसा) विकल्प से पहले निर्णय करे। यद्यपि यह यथार्थ निर्णय नहीं

www.vitragvani.com

है परन्तु यह पहले आये बिना नहीं रहता। सर्वज्ञ भगवान ने, परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, इसके अतिरिक्त जगत के दूसरे प्राणियों ने आत्मा कहा, उससे जैसा भगवान ने कहा, वैसा निर्णय करने के लिये पहले विकल्प आता है। आहा...हा...! कि यह परिपूर्ण है, अनन्त आनन्द का सागर है। मेरा क्षेत्र शरीर प्रमाण ही है, सर्व व्यापक अर्थात् ऐसे सबमें व्यापक हो जाये-ऐसा क्षेत्र नहीं है। ऐसा नय, निक्षेप और प्रमाण से पहले निर्णय करे। (समयसार की) १३ वीं गाथा में आता है। आहा...हा...! निश्चयनय से, व्यवहारनय से क्या है?-ऐसा निर्णय करे। निश्चय से अभेद है, व्यवहार से भेद और रागादि पर्याय भेद है—ऐसा निर्णय करे परन्तु वह है अभी विकल्प, परन्तु उस वस्तु का अनुभव सम्यग्दर्शन होने से पहले ऐसा विकल्प का निर्णय आता है। **विचार द्वारा निर्णय हो सकता है,...** आहा...हा...!

'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। अन्दर **'यह आत्मा'...** जानन-जानन जिसकी सत्ता है। जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह जाननेवाला आत्मा है। दूसरी चीज़ ज्ञात होती है, वह कोई आत्मा नहीं। जिसकी सत्ता में, अस्तित्व में यह ज्ञात होता है कि यह शरीर है, यह है, यह है, यह है—ऐसी सत्ता जो ज्ञानसत्ता भगवान आत्मा, उसका निर्णय विकल्प द्वारा पहले हो सकता है। आहा...हा...! यह पक्का निर्णय होता है। आहा...हा...!

(समयसार) १४४ (गाथा में) ऐसा कहा है न? पहले आगम से निर्णय करे, पश्चात् मति और श्रुत के विकल्पों को छोड़कर अनुभव करे। आता है, ७३ (गाथा में) भी आया है। समयसार। मेरा आत्मा अखण्ड पूर्ण शुद्ध चैतन्य है, उसकी पर्याय में जो कुछ षट्कारकरूप से परिणमन है, उससे भी मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। उसमें पर्याय-अवस्था का भी अभाव है। ऐसी अनुभूतिस्वरूप भगवान त्रिकाल, त्रिकाल अनुभूति, हों! पर्याय की अनुभूति नहीं, ऐसा मैं हूँ—ऐसा पहले विकल्प से रागमिश्रित मन के सम्बन्ध से ऐसा निर्णय करे। समझ में आया? आहा...हा...!

भले अभी अनुभूति नहीं हुई... अन्तर अनुभव, आनन्द के अनुभव का स्वाद आवे, वह न हुआ हो। समकित होने पर तो अनुभूति होती है। अभी सम्यग्दर्शन चौथा

www.vitragvani.com

गुणस्थान, हों ! पाँचवाँ श्रावक का और छठा मुनि का वह तो कहीं रह गया, बापू ! किसे कहना यह ? आहा...हा... ! समकित पहले भी ऐसा निर्णय होता है । **भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो, तथापि पहले विकल्पसहित निर्णय होता तो है।**

मुमुक्षु : कीमती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमती नहीं परन्तु आये बिना रहता नहीं, कहते हैं । आँगन में आने के लिये ऐसे विकल्प होते हैं । अन्दर प्रवेश करने के लिये फिर विकल्प छोड़ना । यह जवाहरात की दुकान है, अभी आँगन में खड़े-खड़े भी यह पैसा यहाँ है, ऐसा निर्णय आँगन में खड़ा हो तो अन्दर प्रवेश किये बिना करता है, फिर छोड़कर अन्दर में जाता है। आहा..हा... ! यह वास्तविक निर्णय नहीं तो भी ऐसा पहले आता है । वीतराग ने आत्मा कहा और अज्ञानी आत्मा कहते हैं, उसमें अन्तर होता है; इसलिए निर्णय करना पड़ता है। भगवान ने सर्वज्ञ केवली ने कहा हुआ आत्मा। अज्ञानी अपनी कल्पना से जो आत्मा -आत्मा की बातें करते हैं, वह नहीं। ऐसा निर्णय करने के लिये विकल्पसहित का निर्णय होता है । पश्चात् विकल्प को छोड़कर अनुभव करने का नाम सम्यग्दर्शन है ।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अषाढ़ कृष्ण-९, शुक्रवार, दिनाङ्क २८-०७-१९७८
वचनामृत-१३७-१३९ प्रवचन-५०

चैतन्यपरिणति ही जीवन है। बाह्य में तो सब अनन्त बार मिला, वह अपूर्व नहीं है, परन्तु अन्तर का पुरुषार्थ ही अपूर्व है। बाह्य में जो सर्वस्व मान लिया है, उसे पलटकर स्व में सर्वस्व मानना है॥१३७॥

वचनामृत, १३७। १३६ हो गये न? **चैतन्यपरिणति ही जीवन है।** आहा...हा...! इस जीव का जीवन। भगवान आत्मा चिदानन्द चिद्घन आत्मा की दृष्टि करके जो परिणमन हो, वह जीव का जीवन है, बापू! आहा...हा...! लोगों को एकान्त लगता है। क्या हो? दूसरा कुछ साधन होवे तो यह हो—ऐसी यह वस्तु नहीं है। आहा...हा...! यह ज्ञायक ध्रुव है। यह वर्तमान ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, यह वस्तु त्रिकाल है। ऐसा ज्ञान का पिण्ड प्रभु त्रिकाल है। आहा...हा...! इस ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि करके जो जीवन अर्थात् जीव का निर्मल परिणमन हो, वह जीव का जीवन है।

पहली जीवत्वशक्ति ली है न? आहा...हा...! भगवान आत्मा में जीवत्वशक्ति नाम का एक गुण है कि जो त्रिकाल उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त सत्ता, वीर्य आदि। है, वस्तु है; जैसी वर्तमान है, ऐसी त्रिकाल है। आहा...हा...! जो कोई चीज़ वर्तमान में ज्ञात होती है, वह चीज़ त्रिकाल वस्तु अन्दर है। आहा...हा...! उसका पहले इसे निर्णय करके निश्चय करना चाहिए। त्रिकाल द्वारा। यह पहले आ गया। १३६ में पक्का कहा है, परन्तु इस अपेक्षा से पक्का। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यह आनन्द और ज्ञायकभाव है, वह ध्रुव है; उसका अवलम्बन लेकर जो परिणति दशा होती है, वह जीव का जीवन है। आहा...हा...! बाकी सब तो व्यर्थ है। समझ में आया? **चैतन्यपरिणति...** चैतन्य वस्तु, चेतन जो स्वरूप, उसका चैतन्य जो स्वभाव, उसकी-चैतन्य की ज्ञान, आनन्द आदि की परिणति। आहा...हा...!

पूरी दुनिया से उदास होकर, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य भी विकल्प है, उसे छोड़कर; एक समय की पर्याय है, उस पर अनादि का लक्ष्य है, उसे छोड़कर; त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवधाम / स्थान, वह स्वदेश है। आहा...हा...! स्वदेश में बसना और जो जीवन में शुद्धपरिणति होना, वह जीव का जीवन है। जिसके फल में अनन्त ज्ञान और आनन्द प्रगट हो—ऐसा इस जीव का जीवन है, किन्तु लोगों को यह एकान्त लगता है। यह कुछ इसे साधन चाहिए न! यह व्रत, तप, भक्ति और ऐसे शुभभाव (चाहिए)। भाई! यह साधन नहीं, प्रभु! तुझे एकान्त लगता है। यह अनेकान्त है—स्व-पने है, पर-पने नहीं, यह अनेकान्त है। स्वपने है और परपने भी है—यह अनेकान्त है? ऐसे स्वरूप के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हो, पर्याय में जीव का जीवन घड़ा जाए, निश्चय से वह ही जीवन है और पुण्य से—दया, दान के विकल्प आवे, उसमें तो इसका अभाव है। इस जीवन में उनका अभाव है। अब यह विवाद उठा है। नहीं पहुँचा जा सकता, इससे उससे होता है—ऐसा नहीं माना जाता, भाई! तू नहीं पहुँच सकेगा, बापू! आहा...हा...!

भगवान! तेरा स्वरूप तो भगवत्स्वरूप है, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का कन्द ध्रुव है। आहा...हा...! उसमें दृष्टि देने से, उसका—ध्रुव का स्वीकार होते—जो स्वीकार होने से जो परिणति / दशा हुई, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति की दशा है, वह जीव का जीवन है, भाई! आहा...हा...! राग और संयोग के कारण जीव का जीना, वह जीव की मृत्यु है। आहा...हा...! कठिन बातें, बापू! यह चैतन्यद्रव्य वस्तु....

अब विवाद क्या उठता है? कि तुम जब ऐसा कहो तो फिर यह उपदेश देने का राग आवे और तुम दूसरे को समझाने के लिये उपदेश दो तो उससे दूसरा समझे, इसके लिए तो उपदेश देते हो, तो निमित्त से उसे लाभ होता है और समझाने के लिये राग आता है, वह राग तो खास करना पड़ता है। ऐसा नहीं प्रभु! वस्तु बहुत सूक्ष्म, बापू! भाई! आहा...हा...!

www.vitragvani.com

और टाईमसर राग आना कि आठ से नौ पढ़ना है, तीन से चार पढ़ना है, तब जो राग आना ऐसा कोई नियम है ? हाँ, क्योंकि उस समय तो राग करे तो होता है। आता है अपने आप ऐसा होवे तो तुमने टाईम कैसे बाँधा ? अरे ! प्रभु ! सुन न भाई ! आहा...हा... ! उस राग का काल होता है, तब राग आता ही है, भाई ! परन्तु राग, वह कोई जीव का जीवन नहीं है। आहा...हा... ! राग से मुझे लाभ होता है, यह तो चैतन्य का शुद्ध चैतन्य का भावप्राण का घर्षण होता है। ऐसी बात है बापू ! क्या हो ? लोग ऐसा (कहते हैं) एकान्त... एकान्त... एकान्त... बस ! यह सोनगढ़ का मत अर्थात् एकान्त मत। प्रभु ! यह क्या करता है ? भाई ! तुझे तेरे सत्य का पता नहीं, प्रभु ! आहा...हा... !

सत्य ऐसा है कि उस सत्य का जहाँ शरण लिया तो सत्य की ही परिणति वहाँ होती है। आहा...हा... ! असत्य की परिणति वहाँ उड़ जाती है। आहा...हा... ! बात कठिन लगे परन्तु प्रभु ! मार्ग तो यह है, दूसरे प्रकार से करने जायेगा तो प्रभु ! तुझे नुकसान होगा, भाई ! तेरे हित की बात है। तुझे एकान्त लगे (परन्तु) एकान्त है-सम्यक् एकान्त है। आहा...हा... ! चैतन्य भगवान अनन्त-अनन्त अनाकुल और अतीन्द्रिय रत्नों से भरपूर भगवान है। आहा...हा.. ! ऐसे जीव के जीवन को स्वभाव के आश्रय से निर्मलदशा हो, वह जीव का टिकना है। टिका तो त्रिकाल है परन्तु टिके हुए का टिकना है—ऐसा जो अनुभव में आना, वह जीव का जीवन है। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहा...हा... !

देह की स्थिति पूरी होगी, प्रभु ! तो देह तो समाप्त हो जायेगी, पश्चात् तू जायेगा कहाँ ? आहा...हा... ! यह तो नित्य है, वह कहाँ रहेगा ? प्रभु ! जिसने राग को और पुण्य को मेरा माना है—ऐसे मृत्यु के जीवन में मृत्यु में रहनेवाला है वह। आहा...हा... ! और बाहर में कहीं सुख है—ऐसी जो मान्यता, वह तो चैतन्य के आनन्द के प्राण की घिसावट कर डाली है, भाई ! आहा...हा... ! तूने आनन्द को घिस डाला है प्रभु ! पर में आनन्द है, स्त्री में, पैसे में, इज्जत में, लक्ष्मी में, मकान में... अरे ! राग की मन्दता के भाव में भी सुख है... प्रभु ! तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका जीवन तूने नहीं किया। आहा...हा... ! उसकी तो मृत्यु की। मैं आनन्द नहीं, मेरा आनन्द तो यहाँ से मिलता है, यहाँ से मिलता है। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

यहाँ कहते हैं कि **चैतन्यपरिणति ही जीवन है।** आहा...हा... ! जीव का जीवन। जीवस्वरूप से आनन्द है, उसका जीवन। स्वरूप की दृष्टि होकर जो आनन्द का और ज्ञान का परिणमन होता है, उस जीव का जीवन उसे कहा जाता है। बाकी सब जिये हैं, वे मुर्दे हैं, कहते हैं। आहा...हा... !

यह अष्टपाहुड़ में आता है। सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलते मुर्दे हैं। आहा...हा... ! बाबूलालजी ! ऐसा है, भगवान ! प्रभु ! तू बड़ा भगवान है, भाई ! वहाँ नजर करनी है। पामर चीज़ में नजर करके सुखी (मानता है परन्तु) प्रभु ! तू दुःखी है। जहाँ अनाकुल आनन्द पड़ा है, प्रभु ! तेरे स्वरूप में उस आनन्द का पिण्ड है। आहा...हा... ! उस आनन्द का ढेर है। आहा...हा... ! उसके जीव का ऐसा स्वरूप सामर्थ्य, उसे जिसने प्रतीति में और ज्ञान में लिया, उसकी परिणति ही आनन्दमय और शान्तमय हुई, वह जीव का जीवन है, भाई ! कठिन लगे, महँगा लगे, परन्तु मार्ग तो यह है। आहा..हा... ! अकेला आया, अकेला है, और अकेला जायेगा। आहा...हा... !

बाह्य में तो सब अनन्त बार मिला,.... आहा...हा... ! पैसा करोड़ों, अरबों अनन्त बार मिले; देवपद अनन्त बार मिला। आहा...हा... ! बाहर की अनुकूल सामग्री जगत् कहता है, वह अनन्त बार मिली। शरीर भी अनन्त बार सुन्दर और सर्वोत्कृष्ट तीन-तीन पल्य के आयुष्यवाला और तीन कोस की ऊँचाई ऐसा... आहा...हा... ! युगलिया में भी अनन्त बार अवतार हुआ है। तीन पल्य का आयुष्य। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। आहा...हा... !

मुमुक्षु : बाहर का किसी को मिलता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिला है-ऐसा मानता है न ? यह पैसा मिला, लड़का हुआ, स्त्री हुई। यह लड़का होशियार हुआ सुमन, पढ़ाया अमेरिका में। कहो !

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माना है न ! मानने में आया है कि यह मेरा लड़का, यह मेरी लड़की, यह मेरा मकान, यह मेरे पैसे, यह मेरी ऊगाही में से डालता हूँ। उसमें से पाँच लाख की ऊगाही है, हमेशा थोड़ा सा पाँच-पच्चीस हजार आता है, यह सब मानते हैं न ?

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! माने इसलिए कहीं इसका हो जाता है, ऐसा नहीं है। वह भ्रम है। आहा...हा... ! कहो हसमुखभाई ! आहा...हा... !

एक राग का कण भी जहाँ इसका नहीं होता। इस चैतन्यघन का राग का कण भी कैसे हो ? यह वीतराग मूर्ति प्रभु है न ! आहा...हा... ! तो बाहर का शरीर और संयोग तो इसके (कहाँ से होंगे) ? संयोग किसे कहना ? कि इसके स्वरूप में वे नहीं, उसका नाम संयोग। आहा...हा... ! उस संयोग की दृष्टि तो मान्यता में अनादि की है। संयोग इसकी चीज़ में प्रवेश नहीं कर जाते परन्तु मानता है कि यह मेरे, शरीर मेरा, निरोगी शरीर साठ-सत्तर वर्ष हुए (परन्तु) कभी रोग नहीं हुआ, सौंठ नहीं लगाई, ऐसा मेरा निरोग (शरीर है)। अरे ! मेरा (कहता है) परन्तु प्रभु ! मेरा है कहाँ ? आहा...हा... ! तेरा तो अन्दर आत्मजीवन जो है, (वह तेरा जीवन है)। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बात है। लोगों को इसमें ऐसा लगता है कि कुछ इसके साधन चाहिए न ! सीधे यह ? इस प्रकार राग से भिन्न पड़ना और ज्ञायक में मिलना, वह साधन नहीं ? आहा...हा... ! उसे साधन प्रज्ञाछैनी कहा है। आहा...हा... ! दुनिया से दूसरी बात है, भाई !

अरे ! अकेला आया, अकेला है और अकेला जायेगा। ऐसा चैतन्य भगवान अकेला रागरहित है, वह तो त्रिकाल प्रभु है। उसके सन्मुख होकर, जिसने उसका आश्रय लिया, वह उसका जीवन है। आहा...हा... ! इसके अतिरिक्त बाहर का अनन्त बार मिला, आहा...हा... ! अरबों रुपये एक मिनिट में पैदा हों, ऐसा राज्य अनन्त बार मिला, एक मिनिट में, हों !

अभी है न एक राजा ? एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी है और उसके अतिरिक्त एक दूसरा देश है, उसे एक दिन की अरब की आमदनी है। अनार्य देश है। अरब, अरब (देश)। एक दिन की एक अरब की (आमदनी)। यह क्या कहलाता है तुम्हारा ? पेट्रोल। देश छोटा परन्तु पेट्रोल के कुँए इतने निकले हैं कि एक दिन की अरब रुपये की आमदनी, हों ! पूँजी की बात नहीं, पूँजी तो बहुत। आहा...हा... ! मुसलमान, माँस खानेवाले, मरकर नरक जानेवाले। आहा...हा... ! परन्तु वर्तमान को देखनेवाले कहते हैं, कितनी सामग्री और कितना मिला है इन्हें ! बापू ! यह वस्तु नहीं, भाई ! यह चैतन्य के प्राण

www.vitragvani.com

का अभाव करके जीना है, वह तो मृत्यु है। आहा...हा... ! मेरा नाथ तो ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से शुद्ध प्राण से जीवन जीता है, वह टिकता जीवन ऐसा इसका है। उसे अन्तर स्वीकार होकर... बाहर से तो अनन्त बार मिला है, भूल जा अब उसे। आहा...हा... !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर का। ग्यारह अंग का तो नौ पूर्व हुआ, विभंग ज्ञान हुआ, सात द्वीप और सात समुद्र देखे, वह भी परलक्ष्यी है, वह वस्तु नहीं। आहा...हा... !

जहाँ प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र भरा है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर पड़ा है... आहा...हा... ! उसके सामने देखते ही इसका जीवन-परिणमन बदल जाता है। राग और निमित्त के सामने देखते ही इसका जीवन, मृत्यु जैसा है। आहा...हा... ! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... रत्नाकर का सागर, भगवान रत्न का सागर है, प्रभु ! शरीर प्रमाण है। कद, शरीर प्रमाण है और पर्याय में पुण्य-पाप का मैल दिखता है परन्तु वह चीज़ इसकी नहीं। कद इतना, तथापि अन्दर महामाहात्म्य है, यह महात्मा है। आहा...हा... ! जिसके गुण अनन्त-अनन्त हैं। आहा...हा... ! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का धाम, उसका आश्रय लेने से जो निर्मलदशा प्रगट होती है, वह जीवन है, वह जीवता जीव है। आहा...हा... ! इसके अतिरिक्त बाहर का तो अनन्त बार मिला है। है न ?

बाह्य में तो सब अनन्त बार मिला, वह अपूर्व नहीं है,... वह कोई। आहा...हा... ! अरबों रुपये मिले और स्त्री अच्छी मिली और बड़ी इज्जत मिली। आहा...हा... ! राजा की कन्या मिली; बनिया हो, उसे राजा की कन्या मिले, दीवान की लड़की मिले, इससे वह कोई नया नहीं है, बापू ! आहा...हा... ! वह तो अनन्त बार मिला है, दुःख के निमित्त हैं। **अपूर्व नहीं है, परन्तु अन्तर का पुरुषार्थ ही अपूर्व है।** आहा...हा... ! बाहर की चीज़ कोई अनुकूल मिल गयी और बड़ी इज्जत हुई, उसमें... आहा...हा... ! हिन्दुस्तान का शिरोमणि यह राजा बड़ा ऐसा है,... बापू ! ऐसा तो अनन्त बार मिला, भाई ! वह कोई अपूर्व नहीं। अपूर्व अर्थात् पूर्व में नहीं मिला—ऐसा नहीं; अनन्त बार मिला है, भाई ! तू अनादि का है न नाथ ! आहा...हा... ! अरे रे ! यह तो पर में से हट जा और स्व में बस। 'पर से खस,

www.vitragvani.com

स्व में बस, टुकूँ टच, इतना बस' आहा...हा...! परन्तु इसका भाव बहुत सूक्ष्म है बापू! भाषा भले थोड़ी है।

बाहर से स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा—वह कुछ छोड़ा नहीं; वह तो ग्रहण ही कब किया है कि छोड़े? आहा...हा...! राग और पर्यायबुद्धि को ग्रहण किया है, उसे छोड़कर द्रव्यबुद्धि और वीतरागभाव का प्रगट आश्रय लेना। आहा...हा...! वीतरागभाव जिन... 'घट-घट अन्तर जिन बसै, और घट-घट अन्तर जैन।' 'घट-घट अन्तर जिन बसै' जिन घट में (बसते हैं), घट में जिन बसते हैं, वीतरागस्वरूप है प्रभु अन्दर। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु है। वस्तु है उसकी बात है न! उसका आश्रय होने से जीवन का परिणमन बदल जाता है। आहा...हा...! और इसलिए कहा न? 'घट-घट अन्तर जिन बसै, और घट-घट अन्तर जैन।' उस जिन का आश्रय लेकर जो परिणति होती है, वह वीतरागी दशा (हो), वह जैन कहलाता है। आहा..हा...! ऐसा लोगों को कठिन लगता है। जहाँ हो वहाँ पुकार (करते हैं)। जैनदर्शन (तत्कालीन समाचार पत्रिका) में आज आया था—किसी का, एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है.... दिल्ली में कोई भाषण करता होगा, उसने कहा होगा? आहा...हा...! तुम व्याख्यान के समय बराबर यहाँ आते हो तो यह राग तुम करते हो या नहीं? अरे! भगवान! राग आवे, उस काल में आना हो, तब ही आता है, तथापि वह कोई चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु : बात अटपटी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सत्य, बापू! अटपटी तो है, प्रभु! आहा...हा...! और समझाते हैं, तब तुम्हें ऐसा नहीं होता कि हमारे से यह समझे। तो निमित्त से नहीं होता—यह तुम कहो और फिर दूसरे को वापस तुम समझाते हो। मोहनलालजी! ऐसा अटपटा है यह। भगवान! यह दूसरे समझे न समझे, वह तो उनकी योग्यता से समझे परन्तु वाणी का योग होता है, तब (वाणी) आती है। आहा...हा...! तथापि उस वाणी से वह समझता है; इसलिए वह निमित्त से समझा - ऐसा नहीं है। निमित्त का इस प्रकार से आदर करते हैं और

www.vitragvani.com

व्यवहार का इस प्रकार से, जब तुम राग करते हो या नहीं ? समझाने का राग करते हो या नहीं ? तो राग में कुछ लाभ है तो करते हो या नहीं ? आहा...हा... ! अरे भगवान ! अटपटी बात है, भाई ! कहते हैं न देवीलालजी ! अटपटी है।

मुमुक्षु : अटपटी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य, प्रभु ! तो क्या करे ? आहा... ! तेरी प्रभुता तो ज्ञायक में है, तेरी प्रभुता राग और पुण्य में नहीं, तो निमित्त में तो कहाँ तेरी प्रभुता आयी ? पैसा और स्त्री, पुत्र और धूल-धाणी।

अपूर्व नहीं है, परन्तु अन्तर का पुरुषार्थ ही अपूर्व है। आहा...हा... ! वज्र की दीवार ज्ञान और आनन्द की पड़ी है, अन्दर। आहा...हा... ! उसके सामने पर्याय को जोड़ दे। उसका स्वीकार करने से तेरी पर्याय निर्मल हो जायेगी, वह अपूर्व है। वह अन्दर का पुरुषार्थ ही अपूर्व है। आहा...हा... ! स्वभाव सागर के सन्मुख देखना, वह अन्दर का पुरुषार्थ ही अपूर्व है। आहा...हा... ! ये उद्योगपति और लोग नहीं कहते ? इनके पास कुछ नहीं था और फिर पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये हुए और अरब रुपये हुए और यह हुआ। बाहुबल से एकत्रित किये न। आहा...हा... !

मुमुक्षु : सबके ऊपर आप ऐसे चौकड़ी लगाते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौकड़ी है ही। उसमें धूल में क्या हुआ ? आहा...हा... ! रामजीभाई के पिता के पास क्या था ? फिर मकान बड़ा बनाया, फिर पैसा खर्च करने के लिये... है लाखों रुपये... पचास हजार लेकर लड़के को वापस दिया, सुमन के लड़के को अर्थात् सुमन की सासु को दे दिया। वह तो यह का यह हुआ वापस। आहा...हा... ! यह तो घर का दृष्टान्त है। दुनिया में ऐसा बनता है न, बापू ! आहा...हा... ! अरे रे ! क्या भाई ! तेरे जीवन की ज्योति, अन्दर चैतन्य जलहल ज्योति विराजती है न, प्रभु ! आहा...हा... ! उसके सन्मुख देखने से जो जीवन हो, उस जीवन को जीवन कहने में आता है, बाकी सब व्यर्थ। आहा...हा... ! यह अपूर्व पुरुषार्थ है। है न ?

बाह्य में जो सर्वस्व मान लिया है,... देखो ! बाहर में जो सर्वस्व मान लिया गया है। आहा...हा... ! उद्योगपति ! बहुत पुरुषार्थ किया, कुछ नहीं था... आहा...हा... ! और

www.vitragvani.com

प्राप्त किया, बहुत पुरुषार्थ किया। उद्योगपति! किसका? इस धन्धे का उद्योग? राग का? वह उद्योगपति? राग के धन्धे का उद्योगपति? पैसा नहीं था तो उद्योगपति ऐसा कहते हैं न? ऐ.. हसमुखभाई! वहाँ पुरुभाई के पिता के पास कहाँ था इतना सब? अभी करोड़ों रुपये, एकान्त में तो कितने करोड़ कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोग ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! किसे कहना? बापू! ये जड़ के रजकण तो जड़ में हैं, ये आत्मा के हैं नहीं और आत्मा के पास आते भी नहीं। ये आये तब ऐसा हुआ कि 'मुझे मिले' यह ममता इसके पास आयी। आहा...हा...! अब कहते हैं कि यह ममता भी अपूर्व नहीं, अनन्त बार की है। आहा...हा...!

बाह्य में जो सर्वस्व मान लिया है,... आहा...हा...! ऐसे दो, पाँच, दस लाख, करोड़-दो करोड़ धर्म में खर्च किये और धर्म में हो.. हा...हा...हा... धर्मात्मा धर्म धुरन्धर जीव! कितना संघ का भला करता है! यह तो सब बापू! अनन्त बार किया है, यह कोई नयी चीज़ नहीं। आहा..हा...! **बाह्य में जो सर्वस्व मान लिया है, उसे पलटकर स्व में सर्वस्व मानना है।** बाहर में जो राग से, पुण्य से लेकर बाहर के ढेरों साधन में सर्वस्व मान लिया गया है। सर्व-स्व—यह मानो सब मेरा है। सर्व-स्व, सर्व-स्व। यह सर्वस्व मेरा है, इसे छोड़कर—सर्व-स्व। आहा...हा...! काम तो कठिन, बापू! पूरा परिवर्तन करना है। आहा...हा...! जीवन का परिवर्तन करना है, बापू! आहा...हा...! जिसे कल्याण करना हो, उसकी बात है; बाकी तो अनन्त काल से भटका करता है। आहा...हा...!

यहाँ तो शुभभाव को भी संसार कहा। आहा...हा...! तो अशुभभाव तो बड़ा दीर्घ संसार है। आहा...हा...! मुनि के शुभभाव को भी संसार-जगपंथ कहा। आहा...हा...! जो स्वरूप में नहीं—ऐसा जो शुभभाव उत्पन्न करे, वह भी समकिती के शुभभाव को भी जगपंथ कहा, तो अज्ञानी का मिथ्यात्वभाव और राग तो तीव्र संसार है। आहा...हा...! राग से लाभ हो और राग में ठीक है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह तो महासंसार है। जबकि समकिती के, मुनि के शुभराग को भी संसार कहा तो जो अज्ञानी, राग मेरा मानता है, और लाभ मानता है—ऐसा मिथ्यात्व, वह तो महासंसार है। आहा...हा..! जिसके गर्भ में अनन्त भव पड़े हैं। आहा...हा...! ऐसा जीवत्व तो अनन्त बार किया, प्रभु! आहा...हा...!

www.vitragvani.com

दुनिया में दिखावा करके... आहा...हा... ! दिखाऊ शरीर, दिखाऊ लक्ष्मी, दिखाऊ मकान, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ का मकान किया और फर्नीचर ऐसा अन्दर (लगाया) आहा...हा... ! भाई ! वह कोई अपूर्व नहीं है। आहा...हा... ! यह सर्वस्व मान लिया गया है। यह सर्व मैं हूँ—ऐसा मानता है; उसके बदले सर्वस्व यहाँ (आत्मा में है)। आहा...हा... ! भाई ! बात तो छोटी है, शब्द थोड़े हैं परन्तु प्रभु ! उसकी बात तो सच्ची, बड़ी है। आहा...हा... ! दुनिया को एकान्त लगता है। आहा...हा... !

जब होना होगा, वह होगा; सर्वज्ञ ने देखा होगा, वह होगा परन्तु वह होगा—इसका निर्णय कौन करे ? इस ज्ञायक पर दृष्टि जाये, तब उसका निर्णय सच्चा होता है। समझ में आया ? आहा...हा... ! सर्वज्ञ ने देखा होगा, वैसा होगा परन्तु आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव ही है। उस सर्व को जानना-देखना, वही इसका त्रिकाली स्वभाव है। आहा...हा... ! ऐसे त्रिकाली स्वभाव का जहाँ स्वीकार किया, तब फिर जो होने के काल में होगा, उसका वह जाननेवाला है, जाननेवाला है; उसका कर्ता नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

सज्झाय में आता है, एक सज्झाय आती है न ? सज्झायमाला एक आती है। उसमें (आता है कि) 'होंशीडा मत होश न कीजे'—ऐसी सज्झायमाला आती है। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक-एक पुस्तक में दो सौ, ढाई सौ सज्झाय, ऐसी चार सज्झायमाला है। वह दुकान पर सब पढ़ी थी, यहाँ सब-चार पढ़ी थी, दुकान पर उस समय (संवत्) १९६५-६६-६७ के साल, दीक्षा लेने से पहले, ६८-६९ वर्ष पहले (पढ़ी थी)। दुकान पर ऐसा तो धन्धा करता था, उसमें यह आया है, एक सज्झाय 'होंशीडा मत होश न कीजे' हे होंशीडा ! इस पर में होंश न कर, भाई ! आहा...हा... ! स्त्री अच्छी रूपवान मिले और कोई दो, पाँच लाख लेकर, दस लाख, करोड़ लेकर आवे इसलिए... आहा...हा... ! अपनी कितनी इज्जत है ! और उसके पिता की एक ही पुत्री है। मर जायेगा तो बाद में अपने को सब आयेगा। अरे.. ! आहा...हा... ! क्या है तुझे यह ? आहा...हा... ! यह सब सर्वस्व माना है, प्रभु ! यह तो तूने अनन्त बार किया है, यह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहा...हा... !

सर्वस्व मान लिया है, उसे पलटकर स्व में सर्वस्व मानना है। है ? तूने यहाँ राग से लेकर पूरी दुनिया में सर्वस्व मेरा है-ऐसा माना है। ऐसी यहाँ गुलाँट खाकर आत्मा

www.vitragvani.com

अनन्त गुण का धनी स्वयं, वह मेरा सर्वस्व है (-ऐसा मानना है)। भाषा तो सादी परन्तु बापू! पुरुषार्थ बिना यह कुछ मिले, ऐसा नहीं, भाई! वह पुरुषार्थ भी स्व-सन्मुख का। आहा...हा...! 'सर्वभाव से उदासीनवृत्ति करी, मात्र देह वह संयम हेतु होय जब' आता है न? आहा...हा...! सर्व भाव से उदासीन, मात्र एक देह रहती है, संयम का हेतु / निमित्त। आहा...हा...! देह तो आयु हो, तब तक छूटती नहीं। आहा...हा...! ऐसा जो भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य की ज्योति से जलहल ज्योति, जिसमें अनन्त रत्नाकर के रत्न की चमक उठती है। अनन्त-अनन्त चैतन्य के रत्नों की जिसमें झलक, चमक उठती है, उसे देखने पर जो परिणमन होता है, वह अपूर्व है। आहा...हा...! है? वह पलटकर। पर्याय की बात है न? वस्तु तो वस्तु है। पर में सर्वस्व माना है, वही सर्वस्व अपने में मानना, वह पर्याय में है। उस स्व में सर्वस्व मानना है। १३७ (बोल पूरा हुआ)।

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेव ने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकार से समझाते हैं। पूज्य गुरुदेव के वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना। भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। 'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक' — उसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे ॥१३८॥

रुचि रखना;.... यहाँ से शुरु किया। आनन्द का नाथ भगवान है, उसकी रुचि कर पहले। पोषण, पोसाता है मुझे मेरा आत्मा; इसके अतिरिक्त मुझे पोसाता नहीं। आहा..हा..! बनियों को भी जहाँ पोसाये, वह माल लेने जाये न? तीन रुपये मण लेने जाये और यहाँ ढाई रुपये बिके, वह माल लावे? तीन रुपये मण लावे, भले सौ मण, दो सौ मण (लावे) परन्तु यहाँ साढ़े तीन चलता हो तो लावे, परन्तु तीन रुपये लावे और यहाँ ढाई में चले, वह माल लावे? पोसायेगा कुछ? आहा...हा...! ऐसे वस्तु का पोषण चाहिए। यह पोसाना चाहिए कि मैं तो पूर्णानन्द का नाथ हूँ—ऐसी इसकी रुचि का पोषण चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : दृष्टान्त समझ में आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त समझ में आया ? परन्तु यह तो सिद्धान्त की बात है न। आहा...हा... ! **रुचि रखना;...** जैसे इसका बाहर का माल का पोषाण हो तो माल ले, वैसे आत्मा का पोषाण हो तो आत्मा की रुचि करे। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग सुनने को मिलता नहीं, उसे कहाँ (जाना) ? भाई ! यह... आहा...हा... !

यह मनुष्य का अवतार... आहा...हा... ! यह आँख बन्द करके चला जायेगा, बापू ! वहाँ कोई मालिक नहीं। आहा...हा.. ! जिसकी शरण है, वह तो यहाँ पड़ा है अन्दर। बाहर शरण ढूँढ़ने जाये—अरिहन्त की शरण, सिद्ध की शरण-यह सब बाहर की बातें, बापू ! आहा...हा... ! यह मरने पर, देह की स्थिति छूटने पर, चारों ओर की पीड़ा पड़ने पर इस चैतन्य को जानकर पहचाना नहीं होगा, इसकी शरण नहीं ली होगी तो दुःख में दुःखी हो जायेगा। असाध्य होकर (देह छोड़ेगा)। बहुत पीड़ा हो, फिर असाध्य हो जाता है। आहा...हा... !

जैसे साधारण मनुष्य को घन मारे, फिर जब तक थोड़ा दुःख हो, तब तक तो ध्यान रखकर... फिर बहुत पड़े तो असाध्य हो जाता है। दुःख की पराकाष्ठा हो जाती है, तब असाध्य हो जाता है। वह असाध्य हो, उसे दुःख नहीं होता-ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! इसी प्रकार यह राग, पुण्य और इसके फल में सर्वस्व मानता है, वह असाध्य हो गया है, वह असाध्य है। आहा...हा... ! जिसे भगवान पूर्णानन्द का नाथ पोषाण में आया है, उसकी रुचि है, उसे वहाँ जीवन में ज्योति प्रगटी है। आहा...हा... ! है ?

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। यदि इसकी रुचि होगी तो वहाँ रुचि काम करेगी परन्तु यदि राग की रुचि रही तो अन्दर में नहीं जा सकेगा। प्रभु ! आहा...हा... ! फिर नाम दिया है। गुरु ने **बहुत दिया है। वे अनेक प्रकार से समझाते हैं।** इस प्रकार बहिन तो बहुमान से बात करती हैं न ! आहा...हा... ! **अनेक प्रकार से समझाते हैं। पूज्य गुरुदेव के वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना।** यह तो भगवान की वाणी है। यह सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ कहते हैं, वह यह वाणी है। आहा...हा... ! उस वाणी का विचार करना, वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। **रुचि बढ़ाते रहना।** शुद्ध चैतन्यघन की रुचि

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

विशेष दृढ़ बढ़ाते जाना। आहा...हा...! धर्म के नाम से यह इसका पहला कर्तव्य है, बाकी तो सब बातें हैं। आहा...हा...!

भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। आहा...हा...! राग से भिन्न पड़ने में तीव्र रुचि ही काम करती है। राग से भिन्न पड़ने में-भेदज्ञान में स्वभाव की रुचि ही वहाँ काम करती है। स्वभाव की रुचि हो तो राग से भिन्न पड़े। आहा...हा...! समझ में आया? **भेदज्ञान होने में...** अर्थात् विकल्प / राग उठता है, वह कोई आत्मा में नहीं। पर्याय में है, वह वस्तु में नहीं। उससे भेदज्ञान करने पर। आहा...हा...! **तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि...** अर्थात् कठोर रुचि। अन्दर आत्मा के स्वभाव का अत्यन्त ही प्रेम और रुचि है, वह भेदज्ञान के समय वह रुचि काम करती है। आहा...हा...!

'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'.... आहा...हा...! जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... अल्पज्ञ भी नहीं। राग तो नहीं परन्तु अल्पज्ञ भी नहीं। जाननेवाला... जाननेवाला... ज्ञायक त्रिकाल एकरूप रहनेवाला ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक की लगनी अन्दर लगना चाहिए। आहा...हा...! **उसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे।** आहा...हा...! यदि उसकी रुचि और पोषण त्रिकाल ज्ञायक का हो तो उसकी ओर पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! धन्धे में कितने उत्साह से काम करता है! आहा...हा...!

एक बार कहा था न? वहाँ पालेज से मुम्बई माल लेने गये थे। प्राय: (संवत्) १९६७ का साल होगा या उसके पहले एकाध वर्ष होगा। है न कोलावा? मुम्बई की कोलावा नहीं? समुद्र के किनारे, बड़े व्यापारी थे। एक बार देखने गये थे, कहा-क्या है यह सब वहाँ? एक मारवाड़ी था वह कछोटा बाँधकर दिया... लिया... दिया-ऐसा करता था। पागल जैसा दिखता था उस दिन। मुम्बई में कोलावा की बात है। मैं दुकान का माल लेने गया था। ऐसे शीघ्रता से बोलते हैं, हों! कोलावा में विलायत से आते हैं न! विलायत से तार आवे, वह फिर लिया... दिया... लिया... दिया... करे। नाटा एक था। अरे...! क्या करता है यह? पागल हो गया। समुद्र है न समीप? नहीं? वहाँ से विलायत से आवे न?

www.vitragvani.com

तो फिर इसका यह भाव है, इसका यह भाव है, यह लेने-देने का करे। पागल देख लो मारवाड़ी! कछोटा बाँधा हो न ऐसा... छोटाभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। रुपये कहाँ इसके बाप के थे? इसके आत्मा के कहाँ थे? आहा...हा...! परन्तु इतना होंश ऐसा दिखे! क्या है परन्तु इसमें? कहा। मैं भी दुकान का माल लेने गया था। (संवत्) १९६७ की बात है। अन्तिम सौ बोरी चावल लिये थे। यह चोखा (चावल का गुजराती शब्द) कहलाता है न? चावल। सौ बोरी। यह तो उस दिन की बात है। १९६७। ४०० मण चावल, अन्त में सौ मण चावल मैं लेने गया था और खजूर का थैला, यह खजूर है न? थैला आता है न? बड़ा व्यापार था न हमारे यहाँ? लेने मैं ही जाता। दुकान में हमारे भागीदार हुए, वे लेने नहीं जाते, वे दुकान पर बैठते। अपने को तो सब... आहा...हा...! क्या है परन्तु? और यहाँ जहाँ सौ बोरी चावल आये, वहाँ एक बोरी एक रुपया भाव बढ़ गया। भाव बढ़ गया, सौ रुपये तो तुरन्त आये उस दिन, यह तो १९६७ की बात है। आहा...हा...! धूल में भी कुछ नहीं वहाँ। उस समय लोग मानो कि आहा...हा...! भाव मौके से उस समय मण का चार आना बढ़ गया, भाव बढ़ गया। वहाँ से यहाँ लाये वहाँ यही भाव बढ़ गया। मूल भाव से चार आना बढ़ गया। आहा...हा...! वह भाव अन्दर आत्मा स्पष्ट सौ प्रतिशत का सोना है। पहले सौ बोरी थी न? आहा...हा...! उसे जहाँ दृष्टि में लेते हैं और उसके माल का आदर और स्वीकार करते हैं... आहा...हा...! वहाँ पर्याय में जीवन-शान्ति और आनन्द का जीवन आवे, उसका नाम जीव का जीवन कहलाता है। आहा...हा...!

यह यहाँ कहते हैं न? **'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक' — उसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे।** जिसे त्रिकाली आनन्द ज्ञायकस्वरूप रुचे, उसका पुरुषार्थ अन्तर में झुके बिना रहता ही नहीं। जिसका पोषाण है, उसके ऊपर से पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। राग और पुण्य-पाप के भाव का पोषाण है, वहाँ उसका पुरुषार्थ उत्साह-उत्साह से काम करता ही है। आहा...हा...! **पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे।** १३८ (बोल पूरा हुआ)।

www.vitragvani.com

गहराई से लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो ॥१३९॥

१३९ **गहराई से लगन लगाकर पुरुषार्थ करे....** भाषा तो बहुत मीठी, सादी है, गुजराती भाषा है। आहा...हा... ! पर्याय को गहराई में-ध्रुव में ले जाकर-ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! जिसका वह तल है। ध्रुव-ध्रुव प्रभु ! भगवान ! ऐसे गहराई में से लगन लगाकर। आहा...हा... ! वर्तमान पर्याय-अवस्था को गहराई में से अर्थात् ध्रुव की लगन लगाकर। पाताल कुँआ है भगवान। आहा...हा... ! जैसे यह पाताल कुँआ होता है न ? तोड़े वहाँ शीर निकली है। पूरा यहाँ.... में है न ? बोटाद के पास। वहाँ हम विहार करते हुए निकले थे। अठारह कोस पानी निकाले (कितना भी पानी निकाले) तो भी पानी कम नहीं होता था, पाताल में से आया है। बोटाद के पास 'जनडा' है। वैसे इस पाताल ध्रुव में से जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान की धारा आवे... आहा...हा... ! वह गहराई में से आयी है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरे अर्थात् पर्याय से अन्दर में जाना, ऐसा। ध्रुव में वह गहराई। पर्याय वर्तमान है, वह तो बाहर है। अब गहरा अर्थात् ध्रुव जो है, अमाप शक्ति का सागर, अनन्त-अनन्त रत्नाकर का बड़ा समुद्र भरा है, अनन्त-अनन्त गुण के रत्न का छलाछल समुद्र भरा है। आहा...हा... ! वहाँ दृष्टि को ले जाना-ऐसा कहते हैं। यह तो भाषा सादी और भाव तो बहुत (गहरे हैं)। आहा...हा... !

गहराई से लगन लगाकर पुरुषार्थ करे.... आहा...हा... ! **तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे**। आहा...हा... ! पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का धाम प्रभु, उसकी गहराई की, उसकी प्रतीति और लगन लगावे। आहा...हा... ! तो वह वस्तु प्राप्त हुए बिना नहीं रहे। आहा...हा... ! 'जनडा' है, वहाँ एक व्यक्ति ने कुँआ खोदा, बहुत खोदा परन्तु पानी नहीं निकला तो थक गये तो ऐसा का ऐसा रखकर चले गये, वहाँ एक बारात निकली, वर की जान / बारात। यहाँ गहरा कुँआ है तो पानी होगा। देखा नहीं और... दस-साढ़े दस बजे का टाईम। ऐसा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कि यहाँ रोटियाँ खायेंगे, कुँए में सब गाड़ियों को खड़ा किया, ऐसा देखने जाये तो पानी नहीं मिलता। अरे! उसमें ऊपर का एक पत्थर था, सब खोदा हुआ बहुत था। दस-दस मण के बीस-बीस मण के पत्थर ऊपर पड़े हुए। एक व्यक्ति ने मारा, अन्दर डाला, डालते ही नीचे के तल में थोड़ी सी आड़ थी (वह टूटने से) एकदम शीर फूट गयी। पानी-पानी हो गया। फिर पूरी बारात वहाँ 'जनडा', बोटाद के पास 'जनडा' है। उस कुँए के पास हम विहार करके चलकर निकले हैं, आहा...हा... ! इसी प्रकार यह गहरा कुँआ भगवान है।

पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। पर की ओर का पुरुषार्थ करता है तो राग और पुण्य-पाप होते हैं न ? इसी प्रकार इस ओर का पुरुषार्थ करे तो पवित्रता की चीज़ प्राप्त हुए बिना नहीं रहती। **वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे**। ऐसा कहा न, वस्तु अर्थात् आत्मा चैतन्य, अनन्त गुण का धाम, उस ओर रुचि करके पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं। आहा! जितनी पुरुषार्थ की कमजोरी है, उतना कारण दिया नहीं, इसलिए कार्य आता नहीं। थोड़ा पुरुषार्थ करे और वस्तु की प्राप्ति हो—ऐसा माने तो कारण की पूर्णता दी नहीं और कार्य कहाँ से आवे। आहा...हा... !...

अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है। आहा...हा... ! अनन्त बार जैन का दिगम्बर साधु हुआ परन्तु अन्दर की लगन नहीं। आहा...हा... ! बाहर के क्रियाकाण्ड में लवलीन, बस ! आहा...हा... ! व्रत पालन किये और अभिग्रह लिये और अभिग्रह-नियम धारण किये। भिक्षा के लिये जाये, वहाँ इस प्रकार से... आहा...हा... ! मोती का लड्डू खाती हो, बहिन का नाम मोती हो, मोतीपूर की साड़ी पहने हो, साड़ी... (हो) यह हो तो आहार लूँ, नहीं तो नहीं लूँ—ऐसे नियम भी अनन्त बार धारण किये। परन्तु वह तो सब विकल्प है। आहा...हा... ! यह गहराई में से यदि करे तो (वस्तु प्राप्त हुए बिना नही रहे)।

अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो। आहा...हा...! अन्दर पाताल में से ज्ञान प्रस्फुटित हो, निकले। आहा...हा... ! शास्त्र का पठन, वह कोई ज्ञान नहीं। आहा...हा... ! अन्दर ज्ञानस्वरूप में एकाग्र होने से जो ज्ञानधारा आवे, उसके साथ आनन्द भी आता है। वह ज्ञान और आनन्द आवे, उसे ज्ञान कहने में आता है और वह प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ कृष्ण-१०, शनिवार, दिनाङ्क २९-०७-१९७८
वचनामृत-१४०-१४१ प्रवचन-५१

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की॥१४०॥

१३९ (बोल) हो गये। अब आत्मा कायम है, उसे सरल भाषा में कहते हैं।

'है', 'है', 'है'.... है। भूतकाल में है, वर्तमान में है और भविष्य में है। है न वस्तु? **ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है, ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न?** यह 'है', 'है', 'है'—ऐसे इसकी अस्ति, मौजूदगी, 'अस्ति' ख्याल में आती है न? आहा...हा...! यह क्या कहते हैं अब? यह तो 'है', 'है', 'है'—यह तो कायम है—ऐसा ख्याल में (आता है), परन्तु वस्तु क्या? यह तो 'है', 'है', 'है' तो परमाणु भी 'है', 'है'। और परमाणु भी 'अस्ति', 'अस्ति', 'अस्ति' है। जो वर्तमान हो, वह त्रिकाल होता ही है। आहा...हा...!

कहते हैं **'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना?** वह 'है', 'है', 'है' वह 'जाननेवाला', 'जाननेवाला', 'जाननेवाला' है न? आहा...हा...! भाषा तो बहुत सादी है। 'है', 'है', 'है'। है, वह नहीं-ऐसा नहीं। अब है वह क्या? कि जाननेवाला है... जाननेवाला है...

www.vitragvani.com

जाननेवाला है। जाननेवाला है, वह जाननेवाला है। वह जाननेवाला है अर्थात् जाननेवाला था, जाननेवाला है और जाननेवाला रहेगा। वह जाननेवाला, जाननेवाला है। आहा...हा... !

वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। क्या कहा यह ? 'है', 'है', 'है'—ऐसा जो पर्याय में ख्याल आता है कि 'है', 'है', 'है' और वह ज्ञाता है... ज्ञाता है... ज्ञाता है... परन्तु वह ज्ञाता है, ज्ञाता है, वह वर्तमान पर्याय में ऐसा लगे, परन्तु वह वर्तमान पर्याय जितना तत्त्व नहीं है। आहा...हा... ! अभी भोगीभाई ने गाया न ? नहीं ? अभी गाया, भाई ! अभी भोगीभाई ने गायन गाया, सुना ? थे ? ठीक, बैठे थे। बहुत सरस बनाया। यहाँ के व्यापारी है न, मैंने कहा कवि कैसे हो गये ? अच्छा रचते हैं। ऐसा कि बहिन ने कमाल कर डाला है ! माँ ! तुम ऐसा कहाँ से लाये ? ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

यहाँ जो वस्तु है, वह आत्मा है। वह 'है', 'है', 'है'—ऐसे ख्याल में आती है। अब वह 'है' 'है' वह क्या है ? कि ज्ञाता है... ज्ञाता है... ज्ञाता है। ऐसे 'है', 'है' के ख्याल में ज्ञाता है-ऐसा ख्याल में आता है। आहा...हा... ! वह मात्र वर्तमान ज्ञाता है, इतना वह नहीं। जो वर्तमान में ज्ञाता है या वर्तमान में जो स्थिति है, वह त्रिकाल को सिद्ध करती है। वह तत्त्व त्रिकाल है। आहा...हा... ! जाननेवाला है, जानता है, वह ज्ञाता है... ज्ञाता है... ज्ञाता है... वह ज्ञाता है, उसका अस्तित्व वर्तमान में ज्ञात होता है तो जो वर्तमान में ज्ञात होता है, वह त्रिकाली है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है। मीठी भाषा है। आहा...हा... !

भगवान ! तू कौन है ? कि यह तो 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' है। आहा..हा... ! भाई ! 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' त्रिकाली है, उसकी तूने कभी श्रद्धा नहीं की। आहा...हा.. ! यह 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' वर्तमान जितना मानकर, वहाँ सन्तुष्ट हो गया। आहा...हा... ! परन्तु जो ज्ञाता है, वह वर्तमान जितना जो है, वह **मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है**। वर्तमान जो है ज्ञाता, वह वर्तमान जितना नहीं है; वह त्रिकाली ज्ञाता है। आहा...हा... !

वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्'.... अर्थात् है, वर्तमान जितना है-ऐसा नहीं है। सत् अर्थात् वर्तमान जितना सत् नहीं। वर्तमान जितना है-ऐसा नहीं। आहा...हा... ! यह 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' वर्तमान जितना है नहीं; यह त्रिकालरूप से सत् है। आहा...हा... ! इसकी

www.vitragvani.com

दृष्टि, त्रिकाल है, है उसमें जानी चाहिए। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है। भगवान आत्मा अन्दर 'है''है''है' ज्ञाता है... ज्ञाता है... ज्ञाता है.... जो वर्तमान जितना है नहीं वह 'है' 'है''है' वह वर्तमान में जो ज्ञात होता है, वह 'है''है''है', वह वर्तमान जितना नहीं, त्रिकाल है। आहा...हा...! समझ में आया? **वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** आहा...हा...! वह वर्तमान 'ज्ञाता''ज्ञाता' है, वह वर्तमान जितना नहीं। वह 'ज्ञाता''ज्ञाता''ज्ञाता' वह तत्त्व अपने को शाश्वत् त्रिकाल सत् बतला रहा है। आहा...हा...! ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... वह वर्तमान पर्याय जितना वह ज्ञायक, ज्ञायक नहीं है। वह 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' वर्तमान, उस त्रिकाली के सत् को बतला रहा है कि यह वस्तु त्रिकाल है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा उपदेश! पहला तो दया पालना और व्रत पालना एकदम सरल (था)। यह दया 'सच्ची है', बापू! तू जितना त्रिकाली है, उतना मानना, इसका नाम स्व की दया है। आहा...हा...!

वर्तमान 'ज्ञाता''ज्ञाता' वर्तमान जितना वह सत् नहीं है। वह त्रिकाली जाननहार सत् है। ऐसे त्रिकाली सत् को ज्ञान में लेना और श्रद्धा में लेना, उसका नाम पूर्ण है, उसकी दया पाली कहलाती है। 'है' - उसके जीवत्व का जीवन इतना है, इतना इसने माना, वह जीवत्व की दया पाली और जैसा है, उतना न मानकर वर्तमान जितना मानना, वह तो इसने जीव की हिंसा की। त्रिकाल सत् है—ऐसा नहीं माना। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो बालक को समझ में आये ऐसा है। चार कक्षा पढ़ा हो उसे (समझ में आये ऐसा है)। हमारे मास्टर कहते हैं, धर्मचन्द मास्टर। यह तो न पढ़ा हो तो भी इसके ख्याल में तो आता है या नहीं कि यह 'है''है''है'। यह शरीर, वाणी, मन, एक ओर निकाल डालो। जो अन्दर है, अस्ति (है) ख्याल में आता है, जिसकी अस्ति / मौजूदगी ख्याल में आती है और वह 'है', 'है', और 'है'। अर्थात् 'है' था। 'है', 'है' और भविष्य में 'है' वह वर्तमान जितना 'है', 'है' उस त्रिकाली को बतलाता है। आहा...हा...! वर्तमान पर्याय है, जानने की पर्याय है, वह जाननपर्याय त्रिकाली को बतलाती है कि मैं जाननहार त्रिकाली हूँ। आहा...हा...! अब इससे तो सादा किस प्रकार हो फिर?

यह तो ज्ञायक है। ज्ञायक कहो, ज्ञाता कहो। 'है''है''है' यह ज्ञाता 'है''है''है'

www.vitragvani.com

कहो। आहा...हा... ! यह सत् है, वह वर्तमान जितना ज्ञाता नहीं। उस त्रिकाल जाननहार का वर्तमानपना त्रिकाल को बताता है कि यह वस्तु त्रिकाल ज्ञाता है। आहा...हा... ! यह तत्त्व वर्तमान जितना नहीं। सत् है, वह वर्तमान जितना सत् नहीं। वह तत्त्व अपने को शाश्वत् सत् बतला रहा है। 'है''है''है' वह ज्ञायकभाव शाश्वत् है—ऐसा वह बतला रहा है। आहा...हा...''

मुमुक्षु : ......बाल-गोपाल सबको जानने में आ रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर दूसरी बात है। यह तो उस ज्ञान की पर्याय का स्वभाव। यहाँ तो 'है''है' इतना ख्याल में आता है या नहीं ? यह 'है''है' वह वर्तमान जितना सत् नहीं; त्रिकाल सत् है इतना। वह तो 'है' वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है कि स्व-पर को प्रकाशित करती है। स्व जानती है, पर को जानती है, वह तो जानती है। वह तो कुछ नहीं परन्तु स्व को जानती है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय स्व को जानती है, परन्तु यहाँ स्व को जानती है, वह इसे कब हो ? कि जो यह ज्ञाता... ज्ञाता वर्तमान है, वह शाश्वत् रहनेवाला ज्ञाता है। वर्तमान सत् त्रिकाली को बतलाता है। जिसका अंश वर्तमान है, वह वस्तु जिसकी नहीं, उसका वर्तमान भी नहीं होता। जो वस्तु नहीं, उसकी वर्तमान दशा नहीं होती। आहा...हा... ! परन्तु यह वस्तु है, उसकी वर्तमान दशा है तो वर्तमान दशा 'ज्ञाता' 'ज्ञाता' है, इतने में वह सत्मात्र आ नहीं जाता। वह 'ज्ञाता''ज्ञाता' सत् ज्ञात होता है, वह त्रिकाली को बतलाता है। आहा...हा... ! यह तो प्रगट अनुभव करने के समय की बात है। पहली बात तो (प्रश्न की बात तो) पर्याय में जानता है परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह तो ज्ञान की पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से अज्ञानी की पर्याय में भी भगवान वस्तु जो त्रिकाली है, वह जानता है, पर्याय जानती है। भले उसे अव्यक्तरूप से हो। व्यक्तरूप से तो कब (ज्ञात हो) ? कि वह जब अन्तर्दृष्टि पड़े, तब उसे ख्याल आता है। है तो—जानता तो है। आहा...हा... ! यहाँ है वह दूसरी बात है। यहाँ तो कोई भी चीज़ वर्तमान है—ऐसा ज्ञात होता है तो आत्मा वर्तमान ज्ञाता है, ज्ञाता है—ऐसा ज्ञात होता है, वह वर्तमान ज्ञाता है, इतना मात्र सत् नहीं, इतना मात्र वह अस्तित्व नहीं। वह वर्तमान ज्ञाता,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ज्ञाता त्रिकाल को बतलाता है कि मैं त्रिकाल ज्ञाता हूँ। आहा...हा... ! वह ध्रुव को बतलाता है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय, वह वर्तमान जितना सत् नहीं, वह त्रिकाली ध्रुव सत् है (-ऐसा बतलाती है)। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। लोग इसका प्रयत्न नहीं करते और स्वयं जो माना हो तद्नुसार मानते रहते हैं, ऐसा का ऐसा। बापू ! इसमें कोई मार्ग हाथ नहीं आता। आहा...हा... !

प्रभु ! अन्दर पूरा विराजमान है परन्तु वर्तमान में जो जाननहार जानने की अवस्था का अस्तित्व / है पना ज्ञात होता है, वह जाननहार का इतना अस्तित्व, उतना ही वह नहीं। वह तो उसका वर्तमानरूप है। वह वर्तमान सत्, त्रिकाल सत् को बताता है। समझ में आया ? आहा...हा... ! यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि है; बाकी सब व्यर्थ है। आहा...हा... !

भगवान आत्मा जाननहाररूप से वर्तमान में प्रसिद्ध है या नहीं ? जाननहार, जाननहार है। किसी भी चीज़ को जानने के प्रसंग में जिसका जाननहार मुख्य न हो, तो यह ज्ञात होता है वह किसमें (ज्ञात होता है) ? जो कुछ जाननहार है, वह जाननहार है, वह जाननहार इसे जाने, इसे जाने, इसे जाने-ऐसा कहना (ठीक है) परन्तु उस जाननहार की मुख्यता न हो तो इसे जाने—ऐसा आया कहाँ से ? आहा...हा... ! जिसकी ऊर्ध्वता प्रत्येक प्रसंग में है, जिसकी-जाननहार की ऊर्ध्वता अर्थात् मुख्यता न हो तो वह यह प्रसंग है—ऐसा जाना किसने ? आहा...हा... ! जिसका जानना ही मुख्य है, वह पर को जानते हुए भी यह जानता है इसकी सत्ता में स्वयं में। इसकी सत्ता की प्रसिद्धि है; वह पर की प्रसिद्धि नहीं और वर्तमान की जानने की प्रसिद्धि, पर की प्रसिद्धि नहीं परन्तु उस जाननहार की प्रसिद्धि वर्तमानमात्र नहीं। आहा...हा... ! अब इससे तो सरल दूसरा किस प्रकार कहें ? आहा...हा... ! अरे ! दुनिया क्रियाकाण्ड में उलझकर मर गयी है बेचारी परन्तु वस्तुस्थिति क्या है... आहा...हा... ! उसके माहात्म्य में गया नहीं।

यह वर्तमान जाननहार है; जिसका वर्तमान पर्यायपना है, वह किसी त्रिकाली चीज़ की अवस्था है, तो वह वर्तमान अवस्था उस त्रिकाली को बतलाती है। आहा...हा... ! वर्तमान जाननहार जो अस्ति है, उतना मात्र वह सत् नहीं है। जाननहार की पर्याय किसके

www.vitragvani.com

आधार से हुई ? किसके अवलम्बन से हुई ? किसके आश्रय से हुई ? वह वर्तमान पर्याय जानती है, वह त्रिकाल को बतलाती है, कि यह वस्तु त्रिकाल है। आहा...हा... ! हमारे छोटाभाई कहते हैं कि इस बार समयसार बहुत अच्छा चलता है। छोटाभाई को सुनने को बराबर रह गया न ! यह भाग्यशाली है। दिखे भले नहीं तो कुछ नहीं। आहा...हा... !

प्रभु ! तेरी वर्तमान ज्ञान की अस्ति तुझे बतलाती है या नहीं ? वर्तमान जाननहार की अस्ति-मौजूदगी ज्ञात होती है या नहीं ? किसी भी प्रसंग में जाननेवाला स्वयं न हो तो जाने किसे ? तो उस जाननेवाले की अस्ति तुझे वर्तमान में तो ज्ञात होती है। आहा...हा... ! वह जाननेवाले की अस्ति है। उतना तत्त्व पूरा नहीं। वह जाननेवाला, जाननेवाला, जाननेवाला त्रिकाल है। आहा...हा... ! वह पर्याय, ध्रुव को बतलाती है; वर्तमान, त्रिकाल को बतलानेवाला है; अनित्य है, वह नित्य को बतलानेवाला है। आहा...हा... ! समझ में आया ? मार्ग बापू ! अकेला ज्ञान का मार्ग है। कोई क्रिया यह करो और यह करो, यह इसके वस्तु के स्वरूप में नहीं है न, प्रभु ! वर्तमान में इसके स्वरूप में नहीं और त्रिकाल में तो है ही नहीं। आहा...हा... ! वर्तमान में भी यह राग को जाने, इस शरीर को जाने, इसे जाने, जाननेवाला यह है, यह है—ऐसा जाननेवाले ने जाना न ? उस जाननेवाले की वर्तमान अवस्था की अस्ति, सिद्धि करते हैं न ? और वर्तमान अवस्था (ऐसा) सिद्ध करती है कि वह जिसकी है, वह त्रिकाल है ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,.... आहा...हा... ! वर्तमान मात्र ज्ञान का अस्तित्व जो जानने में आता है, उतना तो अस्तित्व है परन्तु उस अस्तित्व का अंश अद्धर से हुआ है-ऐसा नहीं है। वह किसी त्रिकाली चीज़ को बतलाता है। आहा...हा... ! जिसका वह अंश है, वह अंश, त्रिकाल को बतलाता है। आहा...हा... ! **वह तत्त्व अपने को...** 'पोताने' समझे तुम्हारी भाषा में ? स्वयं को, स्वयं को (अर्थात्) अपने को। **त्रिकाल सत् बतला रहा है,....** आहा...हा... !

परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है !... बात यह। वर्तमान जानता है न कि यह शरीर है, यह अमुक है, अमुक है, वह कुछ जानता नहीं। शरीर जानता है कुछ ? राग जानता है कुछ ? जानता है ज्ञान कि यह राग है, यह शरीर है। यह ज्ञान की

www.vitragvani.com

वर्तमान पर्याय की प्रसिद्धि है। पर के जानने में पर के जानने की प्रसिद्धि नहीं। पर को जाननेवाली उसकी पर्याय की प्रसिद्धि है। हसमुखभाई! इसमें कहीं तुम्हारे मुम्बई में नहीं मिलता और तुम्हारे रुपये में / धूल में कहीं नहीं मिलता। आहा...हा...! इन लोगों ने तो प्रेम रखा है न! इसने उड़ा दिया। भारी विचार हो, हों! नवनीतभाई बेचारे ने लाखों रुपये डालकर किया। नाम निकाल दिया, बेच दिया सब। आहा...हा...! आहा...हा...!

जिसकी वर्तमान ज्ञान की अस्ति, पर के जानने के काल में भी अपने जानने की पर्याय की प्रसिद्धि है, वह अस्ति है; वहाँ पर अस्ति है—ऐसा नहीं। पर का अस्तित्व का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान का अस्तित्व है। आहा...हा...! उस ज्ञान का वर्तमान अस्तित्व कायमी चीज़ को बतलाता है कि मैं वर्तमान मात्र नहीं। यह ज्ञान की पर्याय पलटती-पलटती भी वर्तमान मात्र अनित्य नहीं है। वह नित्य को बतलाती है कि यह नित्य वस्तु है, उसका यह अंश है। आहा...हा...! ध्रुव चीज़ है, उसका यह अंश है। यह अंश ध्रुव को बतलाता है। आहा...हा...! ऐसी वस्तु है। बहुत गम्भीर वस्तु है, उसे बहुत सादी भाषा में (कहते हैं)। लोग-साधारण मनुष्य भी समझ सके, ऐसी सरल भाषा है। भोगीभाई ने तो अभी गाया न, कमाल कर दिया है! बात तो सच्ची है। आहा...हा...!

पहली कक्षा पढ़ा हो तो भी उसे इतना तो होता है या नहीं? इतना ख्याल में आता है कि यह जानता है, यह जानता है, यह जानता है, यह है या नहीं? तो जानती है वह वर्तमान है, वह दूसरे को जानती है, वह भी वर्तमान जानने की अवस्था है, वह पर को जानती है, इसलिए पर का अस्तित्व है—ऐसा यहाँ सिद्ध नहीं करना। पर को जानने के काल में जानने की पर्याय का अस्तित्व है न? पर के अस्तित्व का यहाँ काम नहीं। ऐसा जो ज्ञान का वर्तमान अंश, वह जिसका है, उसे वह बतलाता है कि यह ज्ञान त्रिकाल है। आहा...हा...!

परन्तु... ऐसा होने पर भी, **तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है!...** आहा...हा...! उस ज्ञान की वर्तमान पर्यायमात्र तेरा सब झुकाव है। आहा...हा...! दिगम्बर मुनि / साधु हुआ तो भी उसका वर्तमान पर्याय मात्र तक झुकाव (रहा)। दिगम्बर! पंच महाव्रत, हजारों रानियाँ छोड़कर पंच महाव्रत (पालन किये) परन्तु यह क्या उससे? वह

www.vitragvani.com

चीज़ थी ही कहाँ उसमें (कि) वह छोड़े। आहा...हा... ! उसमें जो राग की एकता थी और राग को जाननेवाला तत्त्व, राग से भिन्न है, वर्तमान में भिन्न है, इतनी भी उसकी खबर (नहीं पड़ी)। आहा...हा... ! क्योंकि जाननेवाला है, वह चैतन्य की किरण है। वह किरण है यह राग है, शरीर है, यह है—ऐसा इसका अस्तित्व ज्ञान के अस्तित्व में ज्ञात होता है तो यह अस्तित्व अंश है, वह त्रिकाली को बतलाता है। यह ज्ञान का अस्तित्व, पर का अस्तित्व नहीं बतलाता। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं, भगवान! भाई! आहा...हा... !

तेरी प्रभुता की प्रभुता तूने कभी पकड़ी नहीं, प्रभु! आहा...हा... ! पर्याय की पामरता को पकड़कर साधु हुआ तो भी इसकी रमणता वहाँ। आहा...हा... ! यह त्याग किया और यह छोड़ा और यह रखा और... आहा...हा... ! यह चलता है और यह नहीं चलता। अरे रे... ! आहा...हा... ! परन्तु पूरा आत्मा नहीं चलता, इसका पता नहीं पड़ता। मोहनलालजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! प्रभु! तू भगवान है, हों! आहा...हा... !

प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं, भाई! आहा...हा... ! तेरी पर्याय में इतनी प्रभुता है कि जिसे जानने के लिये पर के आलम्बन की आवश्यकता नहीं है, वर्तमान जानने के लिये भी पर के आलम्बन की जिसे जरूरत नहीं है। भले मन और इन्द्रिय हों परन्तु वह जानने की पर्याय कहीं मन और इन्द्रिय के कारण जानती है-ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! वह ज्ञान की पर्याय वर्तमान में यह इन्द्रियाँ और मन है—ऐसा शास्त्र से देखा, सुना तो वह तो ज्ञान की पर्याय है—ऐसा जानती है कि यह इन्द्रियाँ और मन है और इन्द्रियाँ तथा मन है; इसलिए जानने की पर्याय हुई है-ऐसा नहीं है। अत: जानने की वर्तमान पर्याय को भी जहाँ पर के अवलम्बन और अपेक्षा की जरूरत नहीं है। उस चीज़ को त्रिकाल चीज में किसी की अपेक्षा है नहीं। उसका त्रिकाली टिकना / अस्तित्व ध्रुव है... आहा...हा... ! उस पर इसने नज़र नहीं दी है। आहा...हा... !

'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। आहा...हा... ! यह अवस्था है, देखो! इस परमाणु की यह अवस्था है न ? यह अवस्था वर्तमान है तो इसका त्रिकाली तत्त्व है या नहीं ? परमाणु है या नहीं ? यह अवस्था तो बदल जाती है, परन्तु बदलती है, उसका त्रिकाली तत्त्व है या नहीं ? परमाणु त्रिकाल है। इसी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रकार इस जाननेवाले की पर्याय बदलती है, वह जाननेवाला जानता है—ऐसा यह त्रिकाली तत्त्व है या नहीं ? इस त्रिकाली का अस्तित्व है—ऐसा बताती है कि वर्तमान का अस्तित्व, इतना ही बताती है ? आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है।

यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पहली विधि यह है, यह बात है। फिर इसे चारित्र और संयम (आवे)। अन्दर स्वरूप जाना है, उसमें फिर रमे। जो जाना ही नहीं कि यह चीज़ क्या है, फिर उसमें रमना कहाँ इसे ? जो जाना है, राग और पर्याय, उसमें रमे। आहा...हा... ! इसलिए इसे चारित्र या संयम होता ही नहीं। आहा...हा... !

जो स्वरूप की पर्याय है, वह त्रिकाली का अंश है, वह अनित्य है, वह नित्य को बतलाता है। नित्य को नित्य नहीं जानता। अनित्य जो वर्तमान ज्ञान का अंश है, वह त्रिकाल को बतलाता है, नित्य को बतलाता है परन्तु अनादि से इसकी दृष्टि उस ओर नहीं। आहा...हा... ! इसने मेहनत बहुत की, परीषह सहन किये, उपसर्ग सहन किये, आहा...हा... ! चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे—ऐसा पर्यायबुद्धि की स्थिति में ऐसा इसने सहन किया। आहा...हा... !

जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। आहा..हा... ! इसकी जो यह सफेद अवस्था अभी दिखती है, देखो ! यह तो वर्तमान अवस्था है, तो वर्तमान अवस्था है तो उसका कायमी तत्त्व है या नहीं ? कायमी तत्त्व परमाणु ध्रुव है। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय वर्तमान है, उसका ध्रुवपना, ज्ञायकपना त्रिकाल है। आहा...हा... ! जो तत्त्व वर्तमान है, वह त्रिकाली होता ही है।

विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। ज्ञान की पर्याय है, अवस्था है तो कायमी चीज़ है—ऐसा विचार करने से अन्दर में जाया जाता है... आहा...हा... ! बढ़ा जाता है। शब्द बहुत थोड़े हैं परन्तु भाव तो..... आहा...हा... ! सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हैं, वे भाव हैं। आहा...हा... ! भाई ! तेरे अंश को तू मानता है परन्तु अंश किसके आधार से होता है ? वह अंश किसका है ? यह अंश किसी परमाणु का है ? राग का अंश है यह ? ज्ञान का अंश है, वह ज्ञायक त्रिकाल है, उसका अंश है। आहा...हा... ! यह अंश त्रिकाल को बतलाता है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : अनित्य क्यों कहलाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अनित्य है न ! समकित दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब अनित्य है। मोक्षमार्ग स्वयं अनित्य है। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन, वह पर्याय है। अरे ! केवलज्ञान भी अनित्य पर्याय है। एक बार चिल्ला गये थे। मथुरा गये थे न ? बहुत सभा भरी हुई थी, बहुत पण्डित बैठे हुए थे, इतना कहा गया, मैंने कहा, भाई ! केवलज्ञान भी एक नाशवान पर्याय है। उसकी एक समय की ही अवधि होती है। (यह सुनकर पण्डितों को ऐसा लगा) अरे ! यह क्या ! ? भाई ! केवलज्ञान है, वह गुण नहीं, पर्याय है और पर्याय की अवधि ही एक समय की होती है। दूसरे समय वह नाश ही होती है। भले ही वैसी दूसरी हो, दूसरी वैसी हो परन्तु वह दूसरे समय नहीं रहती। खलबलाहट हो गया था पण्डितों में, मथुरा में, परन्तु फिर कैलाशचन्द्र जी थे, (उन्होंने कहा), कि भाई ! सुनो तो सही, क्या कहते हैं ! सुनो तो सही ! अरे ! बापू ! यह कोई बिना विचारे ऐसे के ऐसे बोल जाते हैं - ऐसा नहीं है। भाई ! आहा...हा... ! यह केवलज्ञान भी नाशवान है क्योंकि इसकी एक समय की अवधि है और वस्तु त्रिकाल ध्रुव है। आहा...हा... !

इसी प्रकार यहाँ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का अंश है, वह भी अनित्य और नाशवान है, उसकी एक समय की स्थिति है, वह अनित्य है। आहा...हा... ! परन्तु वह अनित्य है, वह नित्य को बतलाता है। यह अनित्यपना किसका ? कि इस नित्य का। आहा...हा... ! अरे रे ! ऐसी बात ! वीतरागी परमात्मा, बहुत सादी भाषा से दिव्यध्वनि में तो आया था। इन्द्र और गणधर बिराजते हैं। दिव्यध्वनि में तिर्यंच के बालक हों, वे समझ जाते हैं। आहा...हा... ! तिर्यंच के बच्चे सुनने आते हैं न ! सभा में सिंह और बाघ के बच्चे सुनने आते हैं। वे तीन लोक के नाथ की वाणी सुनते हैं। भाई ! प्रभु ! उनकी भाषा में वे समझते हैं। वहाँ तो दिव्यध्वनि आती है। एक साथ में सब (आता है) परन्तु उनकी योग्यता प्रमाण वे समझते हैं। ऐसा कहते हैं, प्रभु ! कहते हैं, भाई ! तू है न ! वर्तमान है न ! जिसका वर्तमान है, वह तो त्रिकाली है। आहा...हा... ! वह वर्तमान परमाणु का है ? ज्ञान का वर्तमान-पर्याय परमाणु का है ? जड़ का है ? आहा...हा... !

जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करने से आगे

बढ़ा जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया,... पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, अनन्त बार किये हैं, वे कोई चीज़ नहीं। आहा...हा... ! वह तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। आहा...हा... ! **अनन्त काल में सब कुछ किया,...** सब कुछ किया अर्थात् क्या ? पुण्य और पाप के भाव। सब अर्थात् पर का किया-ऐसा नहीं। पर का कर ही कहाँ सकता है ? परन्तु असंख्य प्रकार के शुभभाव और असंख्य प्रकार के अशुभभाव अनन्त बार किये, वह सब किया ऐसा। धन्धा किया और स्त्री से विवाह किया और पुत्र का विवाह किया... वह तो आत्मा की क्रिया है ही कहाँ ? आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

जिसकी तरंग उठे, उसका कोई दल तो होता है न ? उस बिना तरंग कहाँ से उठी ? इसी प्रकार पर्याय की तरंग जो दिखती है, उसका कोई दल है न पूरा ध्रुव ? आहा...हा... ! भाई ! तेरी वहाँ नजर नहीं गयी। आहा...हा... ! तेरी नजर वर्तमानमात्र ज्ञान में रुक गयी और उसमें बहुत किया, ऐसा (मानकर) त्याग किया, वैराग्य किया, स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़ा, लाखों की-करोड़ों की आमदनी छोड़ी (-ऐसा माना)। क्या छोड़ा ? बापू! आहा...हा... ! कुछ छोड़ा नहीं। इसने अन्दर राग की एकताबुद्धि में, पर्यायबुद्धि में सब आत्मा पूर्णानन्द का त्याग है। आहा...हा... ! बाहर का त्याग है, वह इसमें नहीं परन्तु दृष्टि यहाँ पर्याय पर है; इस कारण त्रिकाली का त्याग है। आहा...हा... ! मैंने त्याग किया और मैंने यह किया, हम छोड़कर बैठे, बापू ! सूक्ष्म बातें हैं, भाई ! आहा...हा... ! अनन्त काल में (यह) किया नहीं, (बाकी) सब कुछ किया।

एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की। आहा...हा.. ! असंख्य प्रकार के शुभभाव, असंख्य प्रकार के अशुभभाव अनन्त बार किये परन्तु एक त्रिकाली; जिसका अंश है, वह यह ध्रुव है, इसकी नजर नहीं की। कहो, शान्तिभाई! उस समय (ऐसा जानते थे कि) यह पन्द्रह सौ का वेतन मिलता था वह छोड़ा, यह बहुत छोड़ा ऐसा है ? प्लेन में थे, प्लेन में थे। पन्द्रह सौ का वेतन (था)। दो वर्ष हुए छोड़ दिया। धन्धा छोड़ दिया। धूल का धन्धा ! यह हसमुखभाई ने तो सब बहुत किया हसमुखभाई ने यह तो एक दृष्टान्त बैठाया है। आहा...हा... ! क्या करना ? बापू! आहा...हा... ! ऐसा धन्धा और पानी का भाव, भाव, हों ! धन्धा-पानी किया नहीं। आहा...हा... ! तूने पर्याय का

www.vitragvani.com

धन्धा, राग का धन्धा किया परन्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव पर तूने नजर नहीं की। आहा...हा...! जिसका वह अंश है, ऐसा जो अंशी अन्दर है, उसमें तेरा ध्यान नहीं गया, भाई! जो करना था वह नहीं किया तूने। आहा...! है? **त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की**। १४० (बोल पूरा हुआ)। ओहो...हो..! ४० मिनिट हो गये। १४० के ४० मिनिट हो गये, लो! छोटाभाई! कहते हैं।

अज्ञानी जीव को अनादि काल से विभाव का अभ्यास है; मुनि को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है। स्वयं ने अपनी सहज दशा प्राप्त की है। उपयोग जरा भी बाहर जाय कि तुरन्त सहजरूप से अपनी ओर ढल जाता है। बाहर आना पड़े वह बोझ — उपाधि लगती है। मुनियों को अन्तर में सहज दशा — समाधि है॥१४१॥

१४१, **अज्ञानी जीव को अनादि काल से विभाव का अभ्यास है;...** यह शुभ-अशुभभाव का अभ्यास है, पर का नहीं। पर का मकान किया या स्त्री से विवाह किया और शरीर से विषयभोग किये, यह क्रिया कोई आत्मा की नहीं है। यह आत्मा कर नहीं सकता। आहा...हा...! विभाव का अभ्यास है। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध जो पुण्य और पाप ऐसा जो विभाव, उसका इसे अनादि से अभ्यास, अभ्यास है। आहा...हा...!

मुनि को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है। आहा...हा...! मुनि ने यह छोड़ा और यह रखा—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। मुनि को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है। आहा...हा...! अज्ञानी को विभाव का अभ्यास वर्तता है, पढ़ते हैं, वह अभ्यास करते हैं। आहा...हा...! **मुनि को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है**। आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन नित्य जिसकी धातु धारण कर रखी है, ऐसा स्वरूप है। आहा...हा...! जिसने चैतन्य धारण किया है-ऐसा चैतन्य; ऐसे स्वभाव का सन्तों को अभ्यास है। आहा...हा...! अज्ञानी को विभाव का अभ्यास है, सन्तों को स्वभाव का अभ्यास है। अभ्यास तो दोनों को है। समझ में

www.vitragvani.com

आया ? ऐसा कठिन पड़ता है। सुना न हो, अभी तो सब बात बदल गयी है, भाई! अरे रे! जिससे हित हो, जिससे संसार में पृथक् हो, वह बात नहीं मिलती, ऐसी बात न हो, तब तक बापू! क्या किया ? भाई! यह जन्म और मरण के, नरक और निगोद के भव के भाव (किये)। मिथ्यात्व है, वह नरक और निगोद के भाव हैं। पर्यायबुद्धि है, वह भव का-भटकने का भाव है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **मुनि को....** समकिती को क्यों नहीं लिया ? क्योंकि वह तो जघन्य अवस्था है। मुनि को स्वभाव का विशेष अभ्यास है। **मुनि को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है।** आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, वीतरागस्वरूप, शान्त... शान्त... शान्त... अकषाय स्वभाव, शान्तस्वरूप त्रिकाल का अभ्यास वर्तता है। आहा...हा...! अभ्यास तो दोनों को है-एक को विभाव का और एक को स्वभाव का। आहा...हा...!

समकिती को स्वभाव का अभ्यास है परन्तु थोड़ा है, उससे मुनि को महा (विशेष है)। आहा...हा...! जिसने अन्दर समुद्र उछाला है! सर्वांग से भरपूर आनन्द और शान्ति, यह खजाना जिसने खोल दिया है। आहा...हा...! निधान को ताला मारा था-पर्यायबुद्धि से निधान को ताला मारा था, वह स्वभावबुद्धि से खजाना खोल दिया। आहा...हा...! बापू! प्रभु! तेरे संसार के उद्धार के पंथ की बातें हैं, नाथ! यह कोई व्यक्ति के लिये बात नहीं है, वस्तु की स्थिति यह है। आहा...हा...!

मुनि को तो स्वभाव का अभ्यास वर्तता है। उन्हें पंच महाव्रत के विकल्प का अभ्यास वर्तता है - ऐसा नहीं कहा। अट्ठाईस मूलगुण का अभ्यास, वह तो राग है; वह मुनिपना है ही नहीं। आहा...हा...! राग से पृथक् हुआ स्वभाव, उस ज्ञान और आनन्द के स्वभाव का जिसे अभ्यास है। आहा...हा...! **स्वयं ने अपनी सहज दशा प्राप्त की है।** आहा...हा...! सन्तों ने स्वयं अपनी-स्वयं स्वयं की सहज दशा प्राप्त की है। आहा...हा...! जिसने आनन्द और ज्ञान, शान्ति और वीतरागता, यह स्वभाव की दशा जिसने प्राप्त की है, शक्ति और स्वभावरूप से तो था ही, परन्तु पर्याय में जिसने अभ्यास में वीतरागता और आनन्द का जिसने अभ्यास किया है। आहा...हा...! वह सहज दशा प्राप्त की है। सहज दशा है, वहाँ हठ नहीं। आहा...हा...! पूर्णानन्द के नाथ भगवान को अवलम्बन कर जो

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दशा होती है, वह सहज दशा होती है। निर्मल, वीतरागी, शान्त, मोक्ष के मार्ग की दशा, वह सहज दशा प्राप्त की है।

उपयोग जरा भी बाहर जाय.... आहा...हा...! मुनि को विकल्प जरा बाहर जाये... आहा...हा...! **कि तुरन्त सहजरूप से अपनी ओर ढल जाता है।** आहा...हा...! सातवें गुणस्थान में-अप्रमत्त में उपयोग है, उसमें से छठे में विकल्प आते हैं, फिर (वापस) अन्दर ढल जाते हैं तुरन्त सातवें में ढल जाते हैं। आहा...हा...! यह विकल्प है वह दुःखदायक है। आहा...हा....! बाहर में आने पर उन्हें रुचता नहीं परन्तु कमजोरी के कारण, पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण वह भाव आवे परन्तु वह उपयोग बाहर जाये कि तुरन्त सहजरूप से, स्वभावरूप से तुरन्त ही, हों! इस शुभ को छोड़ना और स्थिर होना— ऐसा नहीं, वह तो स्वभाव तरफ ही उनका झुकाव है। आहा...हा...!

तुरन्त सहजरूप से अपनी ओर ढल जाता है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय अमृत का सागर, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ नजर में—अनुभव में आया है, उसके स्वाद के समक्ष, बाहर निकलने पर विकल्प आया कि तुरन्त अन्दर वापस ढल जाते हैं। आहा...हा...! यह छठवें-सातवें की बात है। **बाहर आना पड़े वह बोझ — उपाधि लगती है।** उपदेश देने का विकल्प आवे, आहार ग्रहण करने का विकल्प आवे... आहा...हा...! बोझा लगता है। आहा...हा...! हल्की चीज़ में वह बोझा लगता है। भगवान अनाकुल आनन्द का रसीला, उसे राग तो आकुलता / दुःख है। आहा...हा..! बाहर में आना रुचता नहीं। आनन्द में रहा है, उसे बाहर आना रुचता नहीं परन्तु कमजोरी के कारण आ जाते हैं। तुरन्त वापस अन्दर में चले जाते हैं। आहा...हा...! देखो यह मुनिदशा! आहा...हा...!

भाई! मुनिपना तो परमेश्वर पद है। आहा...हा...! मुनि तो परमेश्वर हैं। पंच परमेष्ठी है न? पंच परमेष्ठी में वे साधु आये या नहीं? कितने ही ऐसा अर्थ करते हैं—णमो लोए सव्व साहूणं अर्थात् 'सर्व' में जैन के और अन्य के सब साधु को रखना। अरे! भगवान क्या करता है तू? प्रभु! वह सुशीलकुमार स्थानकवासी साधु है, वह अमेरिका में मुँहपत्ती सहित गया था, वापस आ गया। अरे रे! प्रभु! क्या करता है? भाई! पुण्य के कारण चमक

www.vitragvani.com

(दिखती है) भाषा करे-भाषण करे, अमेरिका में पाँच, सात, दस हजार लोग एकत्रित होते हैं, उसे अंग्रेजी नहीं आती, हिन्दी बोलता है और दूसरे अंग्रेजी कर डालते हैं। अरे! बापू! सर्व साधु नहीं। जैन के, आनन्द के अनुभवी हैं, वे सर्व साधु में आते हैं; अन्य के साधु नहीं। आहा...हा...! तब फिर यह तेरापंथी, तुलसी तुम्हारे गाँव का-लाडनूँ का है न? तुलसी लाडनूँ का है, उसने कहा 'लोए' निकाल डालना, णमो लोए सव्व साहूणं नहीं, णमो सव्व साहूणं। परन्तु लोक का अर्थ बापू! तुझे पता नहीं है।

अरिहन्त हैं, वे लोक में हैं अर्थात् अरिहन्त भिन्न-भिन्न स्थान में होते हैं; इसलिए लोक में गिनने में आया और सिद्ध को भी लोक में गिनना क्योंकि यहाँ सिद्ध होते हैं। यहाँ होते हैं तो अभी यहीं हैं और फिर वहाँ जाते हैं; इसलिए इस सब क्षेत्र में हैं, उन सिद्ध को नमस्कार करते हैं। 'लोए' का अर्थ निकाल डालना है तो तुझे क्या निकालना है? अब यह बड़े तेरापंथी के अणुव्रत के बड़े आन्दोलन निकालते हैं। अन्यमतियों को भी—मिथ्यादृष्टि को भी अणुव्रत (देते हैं)। अरे! परन्तु अभी तुझे व्रत नहीं, बापू! तुझे पता नहीं, भाई! आहा...हा...! क्या हो? अरे! मालिक बिना के ढोर हो गये हैं अभी। आहा...हा...! अपनी स्वच्छन्दता से चलते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **बाहर आना पड़े, वह बोझ...** विकल्प उठे, आहा...हा...! पाण्डवों को (दूसरे) तीन का विकल्प उठा, कैसे होगा? वहाँ बन्ध पड़ गया। आहा...हा...! दो भव बढ़ गये, बापू! मुनि की दशा तो अलौकिक है, भाई! आहा...हा...! जिसने आत्मा के अवलम्बन से आनन्द की धारा, आत्मप्रसिद्धि की है। टीका का नाम आत्मख्याति है न? यह प्रसिद्ध किया है। किसने? आनन्द, ज्ञान के स्वभाव से प्रसिद्ध किया है। राग से प्रसिद्ध किया है-ऐसा आत्मा नहीं। आहा...हा...!

चक्रवर्ती के पुत्र राजकुमार हों, स्फटिकमणि के तो जिन्हें बंगलें हों और हजारों रानियाँ, अरबोंपति राजा की लड़कियाँ हों परन्तु जब उन्हें सम्यग्दर्शन होकर अनुभव करने के लिये बढ़ने जाते हैं, आहा...हा...! माता! मुझे कहीं रुचता नहीं। मुझे जहाँ रुचता है, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। आहा...हा...! मेरा नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। आहा...हा...! वह अधूरा नहीं, हीन नहीं, अशुद्ध नहीं; पूर्णानन्द का नाथ मेरा प्रभु है। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसके आनन्द को लूटने के लिये / अनुभव करने के लिये मैं तो जाता हूँ। आहा...हा...! ऐसा मुनिपना!! बापू! मुनिपना (किसे) कहें! आहा...हा...! अरे रे! सत्य बात कहने पर इसे ऐसा हो जाता है कि न हो! हम यह सब मुनि हैं, उन्हें उत्थापित करते हैं, बापू! भाई! तेरी स्थिति कैसी है—ऐसा तुझे जानना पड़ेगा, भाई! आहा...हा...! और अनजान में ऐसे का ऐसा रहेगा तो संसार नहीं छूटेगा और निगोद के भव आयेंगे, भाई! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **बाहर आना पड़े वह बोझ — उपाधि लगती है**। आहा...हा...! **मुनियों को अन्तर में सहज दशा — समाधि है**। शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायभाव मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है न! दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह अकषायभाव है, वीतरागभाव है। है भले अनित्य पर्याय, परन्तु वह वीतरागभाव है, समाधिभाव है। समाधि अर्थात्? सम-आधि अर्थात् विषमता - पुण्य-पाप के विकल्प से छूटकर, समाधि। समाधि अर्थात् वे बाबा समाधि में चढ़ते हैं वह नहीं। जो विकल्प में से निकलकर निर्विकल्प शान्ति में पड़े हैं, उसे समाधि कहते हैं। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी के लोगस्स में भी आता है।....... यह किया है? लोगस्स किया है? नहीं किया। पहले से इसमें आये। 'समाहिवरमुत्तमं' आता है। 'समाहिवरमुत्तमं' परन्तु वह समाधि क्या? रागरहित शान्ति, आनन्द की धारा, अतीन्द्रिय आनन्द की धारा को यहाँ समाधि कहते हैं। **मुनियों को अन्तर में सहज दशा — समाधि है**। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ कृष्ण-११, रविवार, दिनाङ्क ३०-०७-१९७८
वचनामृत-१४२-१४५ प्रवचन-५२

हमेशा आत्मा को ऊर्ध्व रखना चाहिए। सच्ची जिज्ञासा हो उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता॥१४२॥

१४१ बोल चले हैं। १४२, **हमेशा (कायम) आत्मा को ऊर्ध्व रखना....** क्या कहते हैं ? कि आत्मा जो निश्चय ध्रुव है, उसकी मुख्यता कभी छोड़ना नहीं। चाहे तो जिस प्रकार के परिणाम शुभ-अशुभ हो, उस पर्याय पर लक्ष्य जाये, परन्तु ध्येय है, (वह तो) द्रव्यस्वभाव जो एक शुद्ध चैतन्य (के प्रति है) **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'** ज्ञानस्वभावी वस्तु सबसे अधिक अर्थात् भिन्न है (समयसार) ३१ गाथा में आता है न ? आहा...हा...! उसे मुख्य रखना, उसे ऊर्ध्व रखना। ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य। उसे उत्कृष्टरूप से दृष्टि में रखना। वह वस्तु है, वही ऊर्ध्व और उत्कृष्ट है। इसके अतिरिक्त कोई उत्कृष्ट चीज है नहीं। अरे! ऐसी बातें हैं। सादी भाषा में है।

हमेशा अर्थात् सदा आत्मा को दृष्टि में मुख्य रखना। आहा...हा...! इसका ध्येय द्रव्य पर हो, वह कभी हटना नहीं चाहिए। जिसे कल्याण करना (हो) और आत्मा का हित करना हो, उसकी बात है। भगवान की भक्ति आवे, व्रत का विकल्प आवे परन्तु ध्रुव द्रव्यस्वभाव है, उसकी हमेशा मुख्यता नहीं जाती। आहा...हा...! जिसकी प्रभुता में अनन्त प्रभुत्व शक्तियाँ पड़ी हैं—ऐसा जो प्रभु, उसे लक्ष्य में हमेशा रखना चाहिए-ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! किसी भी प्रसंग में आवे परन्तु यह प्रसंग इसका जो ऊर्ध्व मुख्य स्वभाव

www.vitragvani.com

भगवान (का है), इसका उसमें से लक्ष्य नहीं जाना चाहिए, इसका ध्येय वहाँ बराबर रखना चाहिए। आहा...हा... ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जितनी आत्मा... साधन...

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-फाधन कुछ है नहीं। वस्तु वह त्रिकाल ध्येय। उसमें राग से भिन्न पड़ने की निर्मलपर्याय, वह साधन। सूक्ष्म बात है, भाई ! प्रभु ! पूर्ण है, उसे मुख्य रखने से जो दशा हो, उसे मुख्य रखने से जो निर्मलदशा हो, उस निर्मलदशा को साधन कहने में आता है।

साध्य, पूर्ण केवल (ज्ञान) प्राप्त करना वह; ध्येय, पूर्ण स्वरूप है वर्तमान वह; साधन-राग से भिन्न पड़कर आत्मा को ध्येय बनावे। राग से भिन्न पड़े, वह निर्मलपर्याय साधन, साध्य और ध्येय तीनों भिन्न हैं। ऐसा मार्ग ! साध्य, ध्येय, ऊर्ध्व तो भगवान द्रव्यस्वभाव, उसकी मुख्यता तो कभी नहीं जाना चाहिए और उसकी मुख्यता होने पर राग से भिन्न पड़ी हुई दशा, उसकी मुख्यता होने पर, रागादि को गौण करने पर उसकी जो निर्मलदशा होती है, वह साधन। ध्येय त्रिकाली वस्तु और साध्य, पूर्ण परमात्मा-सिद्धदशा। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। क्या हो ?

सच्ची जिज्ञासा हो... जिसे आत्मा की सच्ची जिज्ञासा हो। ऐसे कल्पना की जिज्ञासा से (नहीं), दुनिया में दिखाने के लिये जिज्ञासा (नहीं)। कुछ जानपना करूँ तो दुनिया में प्रसिद्ध होऊँगा, मुख्य होऊँगा तो उसकी दृष्टि पर के ऊपर है। उसकी जिज्ञासा स्व के लिये तीव्र नहीं है। आहा...हा... ! **सच्ची जिज्ञासा हो, उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता।** उसे अन्तर में स्वभावसन्मुख का प्रयास ऊर्ध्वरूप से रखना-ऐसा प्रयास हुए बिना नहीं रहता। बहुत सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! आहा..हा... ! भाषा संक्षिप्त परन्तु भाव कोई (अलौकिक है)। पुस्तकें तो बहुत प्रकाशित हो गयी हैं। अभी हीराभाई लाये नहीं अपने ? हीरालाल काला, दस हजार हिन्दी पुस्तक नये प्रकाशित हुए। नये दस हजार। पाँच की कीमत। भावनगर से प्रकाशित हुए ? किसकी ओर से ? प्रकाशित हुए मुम्बई। दस हजार हिन्दी में नये प्रकाशित हुए हैं, पाँच रुपये की कीमत। तीस हजार, पैंतीस हजार, उनचालीस हजार सब होकर लगभग प्रकाशित हुए, पुस्तक, हों ! इसके अतिरिक्त वह क्या कहलाता

www.vitragvani.com

है ? ताड़पत्र, दूसरे पृष्ठ। ऐसे तो बहुत प्रकाशित हुए। कन्नड़ में प्रकाशित होते हैं। हिन्दी और गुजराती। कन्नड़ में (प्रकाशित हुए), मराठी में भी होता है। यह चीज़ बापू! ऐसी आ गयी है सहज... समझ में आया ? कि लोग जरा मध्यस्थता से पढ़े न तो उन्हें लगे कि भाई मार्ग तो यह है। एकान्त-एकान्त करते हैं न ? क्योंकि वस्तु है पूरी प्रभु से (भरपूर है)।

अनेक शक्तियों का संग्रहालय प्रभु, उसकी मुख्यता कभी नहीं जाना चाहिए। उसे कभी पर्याय में राग की मन्दता, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव (आवे तो भी) उसकी मुख्यता इसे नहीं आना चाहिए। आहा...हा...! क्योंकि वह तो बन्ध का कारण है। जिसे मुख्य रखने से, ऊर्ध्व रखने से अबन्धपरिणाम होते हैं और रागादि को मुख्य रखने से बन्ध -परिणाम होते हैं। आहा...हा...! पर की ओर के लक्ष्य में जाने से इसे बन्ध के परिणाम होते हैं। उस समय भी इसका ऊर्ध्वपना ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव वह इसके लक्ष्य में से मुख्यरूप से हो, वह जाये नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है।

सच्ची जिज्ञासा हो, उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता। जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उस ओर का पुरुषार्थ और वीर्य पूर्ण हुए बिना नहीं रहता। जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसका प्रयास हुए बिना नहीं रहता। 'रुचि अनुयायी वीर्य।' यदि ध्रुव स्वभाव की ऊर्ध्वता की रुचि हो... समझ में आया ? तो उसका वीर्य स्वभावसन्मुख ढला ही करता है। 'रुचि अनुयायी वीर्य।' आहा...हा...!

मुमुक्षु : अनुभव पहले का प्रयास कैसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में। यहाँ तो पहले हमेशा कायम रखना। यह कायम रखना, इसका ध्येय तो इसे नहीं चूकना, यह अनुभव होने के बाद की और उस समय की बात है यह तो। वस्तु है, वह दृष्टि में न आयी हो, तब तक उसे ऊर्ध्व किस प्रकार रखे ? बात तो ऐसी है। अव्यक्तरूप से उसे ऊर्ध्वरूप से रखे, ख्याल में न आया हो तो भी वह चीज़ है, उस पर मेरा वीर्य का वजन अधिक जाये—ऐसा अव्यक्तरूप से पहले होता है परन्तु वह अव्यक्तरूप से हो, उसका व्यक्तपना कब होता है ? कि जब यह पुरुषार्थ ध्येय को पकड़े, तब उसका यथार्थपना होता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। इस जगत में बाहर से... ऐई..! १४२ (बोल पूरा हुआ)।

www.vitragvani.com

स्वरूप की शोध में तन्मय होने पर, जो अनेक प्रकार के विकल्पजाल में फिरता था, वह आत्मा के सन्मुख होता है। आत्मस्वरूप का अभ्यास करने से गुणों का विकास होता है ॥१४३॥

१४३, **स्वरूप की शोध में तन्मय होने पर,....** स्वरूप अर्थात् आनन्दस्वरूप प्रभु ध्रुव में, ज्ञायकस्वरूप प्रभु, ऐसे स्वरूप में / स्वरूप की शोध में, उसकी शोध में तन्मय होने पर... सूक्ष्म बात है। शब्द थोड़े हैं, उसमें संक्षिप्त भाषा में भाव यह है। स्वरूप की शोध में अन्दर जाने पर, तन्मय होने पर, अनेक प्रकार की। तन्मय अर्थात् उसमें उस-रूप। स्वरूप की शोध में तन्मय, उसरूप, उसरूप होने पर। आहा...हा...! स्वरूप की दृष्टि होने पर जो निर्विकल्पता होती है, वह उसकी तन्मयता है। आहा...हा...! पहले यह करना है। इसके अतिरिक्त सब बात व्यर्थ है। आहा...हा...!

अनेक प्रकार के विकल्पजाल में फिरता था,... इस स्वरूप की शोध में एकाकार होने पर, अनेक प्रकार के विकल्प में फिरता था। **वह आत्मा के सन्मुख होता है।** वह विकल्प छूटकर सन्मुख होता है। बहुत कठिन काम है। है तो इसके घर की चीज़ परन्तु अभ्यास नहीं न, (इसलिए कठिन लगता है)। यह बाहर का एक तो संसार का अभ्यास, बाईस घण्टे-तेईस घण्टे पूरे दिन पाप का अभ्यास। आहा...हा...! यह कमाना, खाना और पीना और स्त्री-पुत्र, धन्धा...

मुमुक्षु : कमावे नहीं तो खाना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाता है और कौन कमाता है? जो रजकण जाने हों, वे जाते ही हैं। आहा...हा...! कल की ही बात एक बड़ी हुई। कहा न? पिस्ता का मैसूर आया, भाई! पिस्ता का मैसूर, मुझे कुछ पता नहीं, है अर्थात् साधारण होगा। यह कान्तिभाई और शान्तिभाई की ओर से पिस्ता का मैसूर (आया)। १०५ रुपये का। ७५ टुकड़े इतने। एक-एक टुकड़ा डेढ़ रुपये का, इतना टुकड़ा एक। देखो! यह विशिष्टता। पोर दिया था, वह ख्याल में था। यहाँ मैंने कहा, है यह कुछ, मोहनथाल या ऐसा होगा। क्या कहलाता है? मैसूर का टुकड़ा ऐसा जमा था। इसलिए कहा लड़कों के लिये रखो। एक-एक

www.vitragvani.com

टुकड़ा डेढ़ रुपये का। छप्पन लड़कों को एक-एक टुकड़े पर आकर दो-दो रुपये का एक-एक टुकड़ा हुआ और तदुपरान्त एक आया वह क्या कहलाता है वह ? सेब बारह आने का। इतना आया। वह एक-एक लड़के को तीन रुपये का हुआ। अब उसे जाने का था, वहाँ इसलिए किसी ने भी कहा नहीं कि क्या है। ये दाने, ये रजकण बापू! जहाँ जाने हों, वहाँ जाते हैं।

मुमुक्षु : हाथ जोड़कर बैठे रहना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ जोड़े कौन और हाथ हिलावे कौन ? हाथ हिलावे कौन और हाथ जोड़े कौन ? आहा...हा... ! जो परमाणु की चीज़ जहाँ जानेवाली है, वह जाएगी ही। तू दे तो जाए और ले तो न ली जाए - ऐसा है ही नहीं, बापू! (यह तो ऐसा है)। आहा...हा... ! और यह भी नहीं अपने कहा जाता कि भाई ! खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। नाम लिखा है वहाँ ? वहाँ नाम कहाँ था ? उसका अर्थ कि जो रजकण इसके भोजन में आनेवाले हैं, वे आयेंगे ही। इच्छा है, इसलिए आयेंगे - ऐसा नहीं; और जो रजकण नहीं आनेवाले हैं, वे नहीं ही आयेंगे, क्योंकि उनकी आने की योग्यता ही नहीं है। आहा...हा... !

चूरमा का एक ग्रास है, उसे उठाया। यह तो वे रजकण यहाँ आनेवाले हैं और अन्दर जानेवाले हैं, वे जायेंगे; और ऐसे उठाया तो भी कोई अन्दर ऐसे मक्खी (आयी) तो फू.... होगा, वह उड़ जायेगा। वे रजकण बाहर जानेवाले हैं, वे जाने हैं और अन्दर जानेवाले हैं, वे जायेंगे। वे तेरे प्रयत्न से अन्दर जाए और प्रयत्न से बाहर जाए- ऐसी बात नहीं है / ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

इसे पर के लक्ष्य में तो पहले बात छोड़ देनी चाहिए, परन्तु इसके लक्ष्य में कायम -पर्याय और राग भी लक्ष्य में कायम रहे - ऐसा नहीं है। इसके ध्येय में भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की मुख्यता, ऊर्ध्वता, उसकी शोध में जाने पर वहाँ तन्मय हो जाए। इससे बाहर के जो अनेक विकल्प होते, वे सब रुक जाए। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप है। है ?

अनेक प्रकार के विकल्पजाल में फिरता था, वह आत्मा के सन्मुख होता है। कौन ? स्वरूप की शोध में तन्मय हो वह। आहा...हा... ! ये सब मिट्टी के, धूल के रजकण-ये कैसे रहना और कैसे आये और कितने काल टिके और कब जाएं ?-वह तो

www.vitragvani.com

उनकी स्वयं की स्थिति है; उसमें आत्मा का कोई अधिकार नहीं है। आहा...हा... ! जिसमें पैसा कमाई में आवे, उसमें आत्मा का कुछ अधिकार नहीं कि भाई ! मैंने प्रयत्न किया, इसलिए पैसे आये। बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह हुआ कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लक्ष्य करे, पहले उसे शोधने जाये, फिर तन्मय हो, ऐसा। अन्तर में यह आत्मा ज्ञायक है, शुद्ध है—ऐसा लक्ष्य करे, फिर तन्मय हो। शोधने जाये-ऐसा कहा न ? इस स्वरूप की शोध में तन्मय हो। शोध में तन्मय (हो), यह वस्तु है, इसकी शोध करने पर उसमें तन्मय हो। आहा...हा... !

मुमुक्षु : शोध तो पर्याय है, तो पर्याय में तन्मय होना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय तन्मय होती है-ऐसा कहते हैं। जो पर्याय आत्मा की शोध में ही हो, शोध में तो पर्याय है परन्तु पर्याय किसे शोधती है ? द्रव्य को। आहा...हा... ! पूरी जगत से अलग जाति है, बापू ! अभी तो धर्म के नाम पर भी व्रत करो और तप करो और यह करो, इसमें से धर्म (होगा)। यह तो मिथ्यात्व का सेवन है। आहा...हा... ! जिसमें भगवान ज्ञायक मुख्यरूप से न रहे, वहाँ अत्यन्त संसार ही है। शशीभाई ! आहा...हा... !

भाई ने-सोगानी ने तो नहीं लिखा ? कि चक्रवर्ती छह खण्ड को नहीं साधता... हीराभाई ! द्रव्यदृष्टिप्रकाश में आता है। वह अखण्ड को साधता था। आहा...हा... ! उस समय भी ऐसे जाता था तो ऐसे मानो बाहर, परन्तु उस समय भी ध्येय का ऊर्ध्वपना जो ध्रुव है, उसका साधन वहाँ चूकता नहीं था। आहा...हा... ! समझ में आया ? बहुत कठिन काम, बापू ! यह तो एकदम गुलाँट खाने की बात है। अनादि से जो ऐसे पर्यायबुद्धि में है, उसे द्रव्यबुद्धि में लाना, वह कोई साधारण बात नहीं है। जानपना हो, जगत को समझाने की शक्ति भी हो, वह कोई चीज़ नहीं है। आहा...हा... ! जो पर्याय अन्तर में झुकाना है। आहा...हा... ! यही मुख्य तो पहले करना है।

मुमुक्षु : पर्याय एक समय की होती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भले एक समय की हो परन्तु इस ओर ढली है और इस ओर

www.vitragvani.com

ढालना, बस! इतनी बात है। वह पर्याय रागादि, विकारादि, संयोग आदि, निमित्त आदि की ओर झुकी है। झुकी है, यह झुकना तो आता है उसे। आहा...हा...! लोगों को कहते है न कि भाई! एक लड़के का विवाह था, फिर लड़के की बड़ी बारात चढ़ी और गृहस्थ होगा, उसका बाप विचार में बैठ गया, वहाँ तो बारात बाजार में चली गयी, स्वयं विचार में चढ़ गया। कल क्या करना? खर्च क्या करना? और यह बाँटना क्या? ए... बारात कहाँ गयी? कि चली गयी। तुम तो ध्यान में (थे)। ध्यान आता है, दूसरा भूलकर इसे ध्यान करना तो आता है परन्तु वह आर्त और रौद्रध्यान करना आता है, परन्तु करना आता है न? तो इसे यह धर्मध्यान और शुक्लध्यान इस ओर करना – ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : कठिन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है परन्तु अशक्य नहीं और मुख्य तो यह चीज़ है। इस सबमें इसमें यह कहना है। आत्मा की शोध कहो, उसे मुख्य रखना कहो। पर्याय में त्रिकाली को लक्ष्य में लेना है इसे। आहा...हा...! तब से तो इसकी–धर्म की शुरुआत होती है। इसके बिना सब व्यर्थ है। छहढाला में नहीं आता? छहढाला –

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जगदंद-फंद, नित आतम ध्याओ ॥८॥

तोरि सकल जगदंद-फंद, नित आतम ध्याओ। छहढाला में आता है न? छहढाला में। बाबूलालजी! छहढाला लड़कों सिखाते हैं परन्तु उसका सार नहीं समझते और ऐसे के ऐसे (रटा) करते हैं। आहा...हा...! लाख बात की बात नहीं परन्तु अनन्त बात की बात। **निश्चय उर लाओ;** स्वभाव की ओर का हृदय पर्याय है, उसे लाओ। आहा...हा...! **तोरि सकल जगदंद-फंद,** द्विधा को भी छोड़कर कि यह आत्मा है और यह पर्याय है, यह गुणी है और इसे गुण है–ऐसा जगत द्वंद्व जो दो फंद, आहा...हा...! छोड़कर जगत द्वंद्व-फंद, एक आतम उर ध्याओ। छहढाला, गागर में सागर भरा है। छहढाला। लड़के पाठशाला में (सीखते हैं)। वहाँ ऐसा नहीं कहा कि पहले व्यवहार करो तो करते-करते होगा। लाख बात की बात यह है–ऐसा नहीं कहा वहाँ। आहा...हा...!

मुमुक्षु : व्यवहार से निश्चय होता है न?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही नहीं। व्यवहार से होता ही कहाँ है ? वह तो निश्चय के लक्ष्य से दृष्टि हुई, उसे साधन कहने में आता है। व्यवहार से वह साधन हुआ नहीं, उस राग से भिन्न पड़ने पर, द्रव्य के लक्ष्य में जाने पर, यहाँ से भिन्न पड़ने पर, यहाँ लक्ष्य में जाने पर जो पर्याय हुई, वह पर्याय निर्मल है, वह साधन है। यह तो ऐसी बात है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का मार्ग अभी सम्प्रदाय में बिखर गया है, भाई! आहा...हा...! बाहर की हो... हा... हो...हा... व्रत किये और उपवास किये और सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, आहा...हा...! आजीवन ब्रह्मचर्य लिया परन्तु यह क्या है ? बापू! यह तो राग है। आहा...हा...! ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा में, चर अर्थात् चरना, अन्दर में चरना। उसकी शोध में जाने पर अन्दर तन्मय हो जाना, वह ब्रह्मचर्य है। अरे! भाई! यह कोई बात नहीं, बापू! आहा...हा...!

व्यवहार रागादि की दशा की दिशा पर तरफ है। क्या कहा ? राग-शुभराग या अशुभराग की जो दशा, उसकी दिशा पर तरफ है और निर्मल वीतरागी परिणति की दशा, उसकी दिशा स्वतरफ है। आहा...हा...!

वह यहाँ कहते हैं कि **वह आत्मा के सन्मुख होता है। आत्मस्वरूप का अभ्यास करने से...** आहा...हा...! यह एक अभ्यास है। चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण की राशि / पुंज है, उसका अभ्यास करने से **गुणों का विकास होता है।** अर्थात् गुण हैं, वे पर्यायरूप से-निर्मलरूप से परिणमित होते हैं। समझ में आया ? इसमें दो बात हुई कि आत्मा, वह द्रव्य हुआ; सन्मुख होती है, वह पर्याय होती है और पर्याय सन्मुख होती है, तब इस गुण का विकास पाती है। गुण का विकास पाती है, वह पर्याय। द्रव्य पर लक्ष्य है, वहाँ गुण जो द्रव्य में अनन्त हैं, उन पर ध्येय को लेकर पर्याय में गुण का विकास अर्थात् शुद्धपरिणति प्रगट हुई। अरे! ऐसी बातें हैं।

आत्मस्वरूप का अभ्यास करने से... स्वरूप का अभ्यास करने से। शास्त्र का अभ्यास करने से... आहा...हा...! ऐसा यहाँ नहीं आया। आहा...हा...! भगवान जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसके स्वरूप का अभ्यास, अन्तर्मुख होने का अभ्यास करने से आहा...हा...! (गुणों का) **विकास होता है।** वे गुण जो शक्तिरूप हैं, उनका पर्यायरूप

www.vitragvani.com

से चकचकाहट, चकचकाहट प्रकाश प्रगट होता है। आहा...हा...! स्वरूप का अभ्यास। स्वरूप किसका? आत्मा का। आत्मा का स्व-स्व स्वरूप, आत्मा का स्व-रूप ज्ञायक, चैतन्य आनन्द आदि स्वरूप का अभ्यास करने से, उस ओर ढलने से गुण शक्तिरूप हैं, उस ओर ढलने से वर्तमान पर्याय में गुण का विकास अर्थात् निर्मलपर्याय प्रगट हो, उसका नाम धर्म है। त्रिकाल धर्मी जो आत्मा और उसका त्रिकाल जो धर्म अर्थात् गुण। गुण त्रिकाल, उसका वह स्वरूप है। उस स्वरूप का अभ्यास करने से... आहा...हा...! उस गुण की शक्ति की पर्याय में व्यक्तता, चमक प्रगट होती है। उसकी पर्याय का प्रकाश (हो), उसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

अरे रे! इसने सुना भी नहीं। इसे जाना कहाँ है? भाई! आहा...हा...! और बहुत गये हैं न? परिवार के मनुष्य देखो तो माँ-बाप कहाँ गये? आहा...हा...! कहाँ थे? वस्तु का पता नहीं, कहीं के कहीं जन्में होंगे। आहा...हा...! आहा...हा...! खोट का धन्धा जो किया था, स्वरूप की सन्मुखता का धन्धा छोड़कर, संयोग और राग की सन्मुखता का धन्धा किया, वह मर गया बेचारा। आत्मा की शान्ति को उसने मार डाला और कहीं जाकर अवतार लिया। आहा...हा...!

आत्मस्वरूप का अभ्यास करने से... ये लड़के अभ्यास करते हैं न? पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठवीं... यह सब पाप का अभ्यास है। इस आत्मस्वरूप का अभ्यास करने से, इसकी ओर की लगन, रटन लगने से... आहा...हा...! गुणों की पर्याय प्रगट होती है। द्रव्य-गुण तो हैं वे हैं। आहा...हा...! **गुणों का विकास होता है।** पर्याय में उनका निर्मल प्रगटपना होता है। तथापि गुण जो हैं वे तो उतने के उतने, वैसे के वैसे ही रहते हैं। क्या कहा समझ में आया? पर्याय में गुणों का विकास हुआ, इसलिए गुण में कुछ कमी हो गयी-ऐसा नहीं है। जो शक्तिरूप स्वभाव है, उसमें से स्व-स्वरूप के अभ्यास से व्यक्तरूप दशा हुई, व्यक्त में जो अवस्था निर्मल हुई, अरे! केवलज्ञान हुआ, परन्तु उससे ज्ञानगुण में हीनता हुई या कम गुण है (-ऐसा नहीं है), वह गुण तो पूरा-पूरा है। आहा...हा...! यह क्या है वह चीज़? सब गम्भीर चीज़ है, बापू! आहा...हा...!

जैसे क्षेत्र का अन्त कहाँ है? यह तो प्रत्यक्ष नास्तिक विचारे (कि) ऐसा क्षेत्र

www.vitragvani.com

असंख्य योजन में जगत् है। फिर खाली भाग है, वह खाली आकाश है, वह आकाश कहाँ हो रहा ? क्या है यह ? आहा...हा... ! क्षेत्र का भी जहाँ साधारण तर्क में काम न करे—ऐसा उसका स्वभाव ! अन्त नहीं, अन्त नहीं परन्तु फिर... फिर... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन। अनन्त, अनन्त के ही अनन्त गुणा करके, अनन्त को अनन्त गुणा करके अनन्त योजन होता है, तो भी कहीं अन्त नहीं। क्या है यह ?

काल की आदि नहीं, भाई ! इस द्रव्य की पर्याय पहली कौन सी ? क्या गम्भीर वस्तु !! पहली (पर्याय) कौन सी ? और गुण में—अनन्त गुण हैं, उनमें पहला गुण बड़ा कौन सा ? और दूसरे गुण छोटे कौन से ? और गुण में से पर्याय प्रगट हुई, तब गुण कम हुआ ? बापू ! इस गुण की गम्भीरता भी (गजब है) ! जैसे क्षेत्र की गम्भीरता का पार नहीं मिलता, काल की गम्भीरता का पार नहीं मिलता, वैसे इसके गुण की गम्भीरता का पार नहीं मिलता। आहा...हा... !

नास्तिक एक बार क्षेत्र का विचार करे न ! मैंने एक बार कहा था, वहाँ महेरवानजी पारसी थे, जामनगर के दीवान थे। व्याख्यान में आये थे। अन्तिम दिन था न ? यहाँ इस ओर आने का परिवर्तन करने का अन्तिम (दिन)। वहाँ सब आये थे। फिर वहाँ से उठकर घुमाव है, वहाँ गये थे, उनका लड़का साथ में था और डॉक्टर का लड़का। बड़ा डॉक्टर नहीं ? प्राणजीवन डॉक्टर। ढाई हजार का वेतन था। फिर अन्त में यहाँ गये। फिर इतना बैठा था, कहा—तुम इतना विचार करो, दूसरा सब एक ओर रखो; यह जो यह क्षेत्र है यह जगत रहा असंख्य योजन में, फिर क्षेत्र, फिर क्षेत्र, कोई क्षेत्र है या नहीं ? और वह क्षेत्र कहाँ तक है ? दसों दिशाओं में अनन्त-अनन्त (क्षेत्र है), उसमें चौदह ब्रह्माण्ड तो एक राई जितना है। आहा...हा... ! दशों दिशाओं में अमाप ! कहीं क्षेत्र का माप नहीं मिलता कि अब क्षेत्र, आकाश हो रहा... ऐसे अमाप-अमाप दशों दिशा के क्षेत्र में यह चौदह ब्रह्माण्ड असंख्य योजन का है, वह तो एक राई जितना है। आहा...हा... ! यह वस्तु क्या है ? यह वस्तुस्वरूप क्या है ? क्षेत्र का क्या स्वभाव ? काल का क्या स्वभाव ? भाव का क्या स्वभाव और पर्याय का क्या स्वभाव ? यह अभ्यास इसे कहते हैं न ! आहा...हा... ! आहा...हा... ! यह १४३ (बोल पूरा हुआ)।

www.vitragvani.com

सत्य समझने में देर भले ही लगे परन्तु फल आनन्द और मुक्ति है। आत्मा में एकाग्र हो वहाँ आनन्द झरता है॥१४४॥

सत्य समझने में देर भले ही लगे... समझते-समझते जरा देर लगे। अपूर्व बात है, अनन्त काल में समझा नहीं। अनन्त बार मुनि हुआ तो ग्यारह अंग का ज्ञान किया, परन्तु फिर भी समझा नहीं। आहा...हा...! जिसे जानना चाहिए, उसे जाना नहीं। आहा...हा...! **सत्य समझने में देर भले ही लगे परन्तु फल आनन्द और मुक्ति है।** आहा...हा...! अनन्त-अनन्त स्वभाव का सागर, अमाप-जिसके गुणों की कहाँ हद हुई, अनन्त की। वह हद (मर्यादा) नहीं। अर्थात् उसकी संख्या की जहाँ मर्यादा नहीं। आहा...हा...! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे समझने में भले थोड़ी देर लगे परन्तु समझ का फल तो अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है। आहा...हा...! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं यह।

वस्तु भगवान आत्मा, जिसका माप आ सके परन्तु अमाप शक्ति-गुण है। अमाप अर्थात् उसमें कोई हद नहीं की इतने-इतने अनन्त। आहा...हा...! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... को अनन्त गुणा कर डालो तो भी उन गुणों की मर्यादा हो आवे-ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप है; गहरे तल में पड़े हुए शक्तियों का सागर भगवान... आहा...हा...! उसे समझने में, समकित होने में देर भले लगे परन्तु उसका फल अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है। आहा...हा...! 'अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो' अनन्त समाधि, शान्ति। अनन्तानुबन्धी जाने से जो शान्ति आती है, वह तो अंश है। आहा...हा...! जो शान्ति का अंश अनन्त काल में नहीं किया था, ऐसा हुआ। भले देर लगी और उसमें जाने में-स्थिर होने में कुछ देरी लगे, परन्तु जिसमें स्थिर होने का फल... आहा...हा...! यह लोग नहीं कहते कि भाई! यह पढ़े, इसका परिणाम क्या आया? परिणाम अर्थात् फल। सात कक्षावाले के अभ्यास का फल क्या? इसी प्रकार इस स्वरूप को समझने में देरी लगे, परन्तु समझ होने पर उसके फल का अमापपना है, क्योंकि अमाप ऐसे गुण, जिनकी मर्यादा नहीं... आहा...हा...! उनका अन्तर में अभ्यास होने से पुरुषार्थ की उग्रता होने में देर लगे... आहा...हा...! परन्तु

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसका फल अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, शान्ति अर्थात् चारित्र की दशा, आनन्द वह सुख। अनन्त प्रभुता पर्याय में-प्रत्येक पर्याय की अनन्त ईश्वरता... आहा...हा...! उसका इतना फल (आता है)। इसलिए समझने में देर लगे, तथापि समझने में प्रयत्न करना - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसने व्रत और तप का अभ्यास करना - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! एक उपवास करते-करते छह-छह महीने के उपवास करने का अभ्यास करना, परन्तु वह कोई चीज़ नहीं, वह तो संसार है, राग की क्रिया है। आहा...हा...!

भगवान परिपूर्ण अमाप शक्ति का अमापपना अर्थात् अनन्त का, हों! परन्तु अमाप अर्थात् माप में न आ सके - ऐसा नहीं कुछ। ज्ञान की पर्याय में उसका प्रमाण / माप आ जाता है। अनन्त का अनन्तरूप से माप आ जाता है। यह क्या कहा? वस्तु के-प्रभु के एक-एक के गुण इतने हैं कि अमाप है। माप अर्थात् उनकी मर्यादा नहीं, हद नहीं। इसलिए अब संख्या हो रही (गयी) आहा...हा...! ऐसी कोई मर्यादा है ही नहीं। संख्या अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... और अब हो रही (-ऐसा नहीं)। आहा...हा...! ऐसे तत्त्व का अभ्यास करने में भले थोड़ी देर लगे, परन्तु उसका फल प्रभु! आहा...हा...! अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति (आता है)। इसलिए करने का तो यह है। बाकी सब व्यर्थ / संसार में भटकने का (कारण) है। आहा...हा...!

आत्मा में एकाग्र हो, वहाँ आनन्द झरता है। क्योंकि उसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अमाप आनन्द पड़ा है। आनन्द का गुण भी अमाप है। वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... उस आनन्द की शक्ति स्वयं अनन्त... अनन्त... अनन्त है। आहा...हा...! ऐसे स्वरूप का भान होने पर, स्थिरता होने में देर लगे परन्तु स्थिरता हुई... आहा...हा...! तो जीव में एकाग्र हो, वहाँ आनन्द ही झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में झरता है। जैसे पर्वत में से पानी झरे, खिरे, पर्वत में से धारा बहे; वैसे भगवान आनन्द का सागर प्रभु! आनन्द का पर्वत स्वयं ध्रुव, आहा...हा...! उसमें एकाग्र होने से पर्याय में आनन्द झरता है, अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में अनुभव में आता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।... आहा...हा...! भाषा संक्षिप्त है, भाव बहुत (गम्भीर)! १४४ (बोल पूरा हुआ)।

www.vitragvani.com

राग का जीवन हो, उसको आत्मा में जाना नहीं बनता; राग को मार दे तो अन्तर में जा सके ॥१४५॥

१४५, आहा...हा... ! **राग का जीवन हो, उसको आत्मा में जाना नहीं बनता;...** क्या कहते हैं ? जिसे राग का प्रेम और राग के प्रेम में जीना है... आहा...हा... ! जिसके जीवन में राग का प्रेम है, जिसका जीवन रागमय है। आहा...हा... ! **राग का जीवन हो...** जीवतर का अर्थ यह जीवन। राग, वह शाश्वत् चीज़ नहीं, तथापि वही मेरी चीज़ है—ऐसा जीवन जिसका हो। आहा...हा... ! फिर भले शुभराग हो या अशुभ हो, परन्तु उस राग का जीवन जिसे है। आहा...हा... !

उसको आत्मा में जाना नहीं बनता;... जिसे राग का जीवन है, उसे स्वभाव की मृत्यु है। आहा...हा... ! और जिसने राग की मृत्यु की है, उसे हाथ में स्वभाव का जीवन -जीवन हाथ में आया है। आहा...हा... ! क्या है यह ? किसी भी प्रकार से शुभ और अशुभभाव के असंख्य प्रकार हैं, उस राग के रंग में रँगा हुआ जिसका जीवन है, वह अन्तर में नहीं जा सकता। आहा...हा... ! भगवान अन्तर में वीतरागस्वरूप है। आत्मा अन्दर जिनस्वरूप है।

घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन,
मत-मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

अपने अभिप्राय के मत में पागल, पागल हो गये, राग के रसिक... आहा...हा... ! जिनका रागमय जीवन है। आहा...हा... ! और जो राग में रँग गये हैं—ऐसा जिनका जीवन है, वे अन्दर में नहीं जा सकते। क्योंकि अन्दर वस्तु है, वह वीतरागस्वरूप है, जिनस्वरूप है। जिन कहा न ? '**घट घट अंतर जिन बसे,**' जिन परमात्मस्वरूप ही घट में बसता है और '**घट घट अंतर जैन,**' जिसे राग का रंग और जीवन है, उसे अराग—ऐसा जो भगवान आत्मा हाथ नहीं आता। आहा...हा... ! चाहे तो दया, दान, व्रत, तप का राग हो और उस राग का जिसे जीवन जीना है कि हम व्रत पालते हैं और ब्रह्मचर्य पालते हैं, भक्ति करते

www.vitragvani.com

हैं, करोड़ों का दान करते हैं—ऐसा जो रागभाव; उस राग का जिसे रंग और जीवन जी रहा है, उसे (वह) रागरहित जीवन में नहीं जी सकता है। आहा...हा... ! पूरा पड़ा है या नहीं... जयसुखभाई ! पढ़ा है ? कितनी बार ? एक ही बार ? दो बार, ठीक ! आहा...हा... !

मुमुक्षु : पूरा रहस्य समझ में नहीं आता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची, बापू! बात तो ऐसी है। ऐसी चीज़ है। आहा...हा... ! भाषा तो सादी आयी है परन्तु अन्दर भाव बहुत गहरा है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : पूरा वचनामृत लिखकर महा-अमृत निकालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है। बहिन को तो अनुभव में से आयी हुई यह बात है। यह कोई रट रखा है और धारण कर रखा है, उसमें से बात आयी है (-ऐसी) बात नहीं है। आहा...हा... ! भाषा तो देखो ! जिसे राग का जीवन है। क्या कहते हैं यह ? जिसे राग के कण ऊपर भी जिसका जीवन अर्थात् टिक रहा है... आहा...हा... ! उसे भगवान वीतरागस्वरूप है, उसमें वह नहीं जा सके। उसका वीतरागी जीवन नहीं हो सके। समझ में आया ? वचनामृत पढ़ा न ? कितनी बार पढ़ा ? भोपाल ! हैं ? एक बार। हिन्दी तो अभी आया न ? पहले नहीं था ? नहीं हो। भेंट में आया होगा। अब तो बहुत छप गये हैं। आज हीराभाई लाये थे। दस हजार हिन्दी आये हैं, नये आये हैं, हों ! नये, ये पुराने हैं। आहा...हा... !

जिसे राग का रस है, राग का प्रेम है, जिसका रागमय जीवन है... आहा...हा... ! उसे आत्मा में जाना नहीं बनता। यह आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु अन्दर है, वह राग के जीवन जीनेवाले वीतरागस्वरूप आत्मा में नहीं जा सकते। आहा...हा... ! दूसरे प्रकार से कहें तो व्यवहाररत्नत्रय का भी जो राग है, भले उसे निश्चय नहीं, तथापि व्यवहार ऐसा कहा जाता है न ? बन्ध अधिकार में लिया है न ? अभव्य व्यवहार करता है, तथापि वस्तु नहीं। व्यवहार करता है। मिथ्यादृष्टि (को) है तो व्यवहाराभास, परन्तु उसे व्यवहार भी (कहते हैं)। आहा...हा... ! संक्षिप्त में इसे ख्याल देना है। आहा...हा... ! जिसे उस व्यवहाररत्नत्रय का राग है और उसका जीवन ही उस पर है, वह अन्तर में-स्वरूप में नहीं जा सकता। आहा...हा... ! पर्दे में पड़ा हुआ प्रभु अन्दर में, उस राग के पर्दे में पड़ा

www.vitragvani.com

है। उसे पर्दे में पड़ा हुआ भगवान हाथ नहीं आता। आहा...हा... ! भाषा तो बहुत संक्षिप्त है परन्तु भाव बहुत गम्भीर है।

अन्दर में कोई भी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के राग का जिसे जीवन ही है, वह है कि हम तो बस व्रत पालते हैं, भक्ति करते हैं और पूजा करते हैं... आहा...हा... ! ऐसे राग के जीवन को जीता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे अन्तर में रागरहित चीज़ में राग के जीवन वाले को जाना नहीं हो सकता। आहा...हा... ! वह एक बार राग को ज़हररूप से जानेगा, तब अमृतस्वरूप भगवान में जा सकेगा। आहा...हा... ! शरीर, वाणी, मन तो कहीं रहे गये—बाहर रह गये—परन्तु अन्दर में जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग (आवे)... आहा...हा... ! उस राग में जिसका जीवन है और उस राग से हम जीते हैं, वह हमारा कर्तव्य है और वह हमारा जीवन है... आहा...हा... ! ऐसे राग के जीवन से जिसका जीवन घड़ा गया है, वह भगवान वीतरागमूर्ति में नहीं जा सकता। आहा...हा... !

जिसने राग का जीवन तोड़ डाला (अर्थात्) यह मैं नहीं, यह नहीं। राग में टिकता हूँ और राग को लम्बाकर बहुत काल तक उसमें रहता हूँ, वह कोई चीज़ नहीं। आहा...हा... ! जिसे व्यवहाररत्नत्रय के राग का भी जीवत्व उड़ जाता है। हम ऐसे व्रत पालते हैं और दान करते हैं, मन्दिर बनवाते हैं और ऐसे गजरथ निकालते हैं... यह सब राग के रसिक। आहा...हा... ! राग के रंग में चढ़ गये का जीवन को, जीवस्वरूप भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु है, उसमें नहीं जा सकते। आहा...हा... ! उस राग को मार डालेंगे तो जी जायेंगे। आहा...हा... ! है ?

जाना नहीं बनता; राग को मार दे तो अन्तर में जा सके। आहा...हा... ! राग कोई चीज़ ही नहीं। मेरी चीज़ में वह वस्तु ही नहीं। राग को, उदयभाव को मार डाल। आहा...हा... ! जो शुभराग है, उसे भी मार डाल और जीवत्व जीने का जो चैतन्य है, वहाँ जा तो वह जा सकेगा। राग को मार डालेगा तो जीवत्व चैतन्य का है, वहाँ जा सकेगा। सेठ ! ऐसी बातें हैं। आहा...हा... ! अरे ! तीन लोक के नाथ ने कहा है, वह यह सब भाषा है। समझ में आया ? आहा...हा... !

राग को मार दे... आहा...हा... ! अर्थात् राग की तुच्छता गिनकर वहाँ से लक्ष्य

www.vitragvani.com

छोड़ दे। हम ऐसा करते हैं और हमने ऐसा किया है और हमने ऐसा किया है और... आहा...हा... ! ऐसे राग को भी तुच्छ गिनकर, महाप्रभु भगवान है वहाँ जा, तुझे आनन्द आयेगा। राग में रहा है, वह तो तुझे आकुलता है, प्रभु ! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह आकुलता है। उस आकुलता के रंगे हुए जीवनवाले को अनाकुल ऐसा भगवान आत्मा उसे हाथ नहीं आता। आहा...हा... ! एक बार राग को मार डाल। नहीं; तू वस्तु ही नहीं। मेरा जीवन चैतन्यमूर्ति भगवान अन्दर है, उस पर मैं जाऊँ, वह मेरा जीवन है। आहा...हा... ! व्यवहार का जीवन, वह मेरा जीवन नहीं। आहा...हा... ! अब अभी तो यह बड़ी बातें चलती हैं। यह व्रत कैसे पालते हैं ? और शरीर से ब्रह्मचर्य कैसा पालते हैं और मन्दिर कितने बनाये हैं ?....

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ कृष्ण-१२, सोमवार, दिनाङ्क ३१-०७-१९७८
वचनामृत-१४६-१४८ प्रवचन-५३

कोई द्रव्य अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते। आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है; उसमें क्षायोपशमिकादि भाव नहीं हैं। तू अपने स्वभाव को पहिचान। अनन्त गुणरत्नों की माला अन्तर में पड़ी है, उसे पहिचान। आत्मा का लक्षण—त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर॥१४६॥

१४६ बोल है, १४५ हुए। **कोई द्रव्य अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते।** क्या कहते हैं? जो द्रव्य का शाश्वत् स्वरूप है, उसे द्रव्य कभी नहीं छोड़ते। चाहे तो आत्मा का हो या परमाणु का हो। उसका जो त्रिकाली स्वभाव, पूरी वस्तु जो है, वह उसके स्वरूप को कभी वह तत्त्व छोड़ता नहीं। आहा...हा...!

आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है;... उसका तो त्रिकाली परम शुद्धस्वरूप है उसका। वह यहाँ लेना है। कोई भी पदार्थ, अपना शाश्वत् स्वरूप है, उसे नहीं छोड़ता। अब इसमें आत्मा जो है, वह तो शुद्ध अनन्त आनन्द का धाम भगवान है। अभी तक सिद्ध हुए, जो काल की आदि नहीं, ऐसे सिद्ध की आदि नहीं; इतने अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुने एक आत्मा में त्रिकाली गुण हैं। उसका वह त्रिकाली स्वरूप है।

इसलिए प्रथम आया था न? 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' अनन्त-अनन्त सिद्ध! जिनकी आदि नहीं, वह संख्या कितनी! आहा...हा...! भूतकाल के समय से उन सिद्धों की संख्या असंख्यवें भाग। क्या कहा? क्या कहा? भूतकाल जो है, अनादि से वर्तमान तक है; उस काल के जो समय हैं, उनके असंख्यातवें भाग सिद्ध हैं। अथवा सिद्ध की संख्या जो

www.vitragvani.com

अनन्त है, उसकी अपेक्षा गतकाल से अभी तक के समय असंख्यगुने हैं। ऐसी भाषा सादी तो है, परन्तु पकड़ना (चाहिए)। चिमनभाई! क्या कहा? आहा...हा...! यह तो अनन्त सिद्ध; जिन्हें (समयसार की) प्रथम गाथा में पर्याय में स्थापित कर, फिर समयसार शुरु किया। आहा...हा...! यह प्रभु ने तो स्थापित किया, परन्तु तू स्थापित करे, तब प्रभु ने - भगवान ने स्थापित किया—ऐसे कहने में आये। आहा...हा...! अनन्त-अनन्त सिद्ध! भाई! क्या हैं? बापू! आहा...हा...! जिसकी संख्या की आदि नहीं, इतने काल के अनादि-अनादि, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आहा...हा...!

—ऐसे अनन्त सिद्धों की संख्या से भी एक द्रव्य में अनन्त गुण का स्वरूप है। आहा...हा...! समझ में आया? पहले आकाश से लेते। यह तो फिर दूसरी (बात), यह तो अब सिद्ध से लिया। आहा...हा...! अभी तक सिद्ध परमात्मा—णमो सिद्धाणं (हुए); उनकी संख्या जो अनन्त है; उससे अनन्तगुने आत्मा का-द्रव्य का स्वरूप जो गुणी है, वह त्रिकाली गुण अनन्त गुणस्वरूप है। आहा...हा...! अरे...! इसने कहाँ कभी देखा कौन क्या है? बाहर की सिरपच्ची कर-करके अनन्त काल से मर गया।

यहाँ कहते हैं कि **कोई द्रव्य अपने स्वरूप को....** शाश्वत् त्रिकाली स्वरूप है, उसे नहीं छोड़ता। उसमें **आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है;...** यहाँ त्रिकाली लेना है, हों! आहा...हा...! वस्तु जो त्रिकाल, त्रिकाल वस्तु भगवान आत्मा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! सिद्ध से अनन्तगुने गुण, ऐसा उसका स्वरूप तो अनादि का है, अनादि का है। आहा...हा...!

आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है; उसमें क्षायोपशमिकादि भाव नहीं हैं। यह वस्तु है, उसकी यहाँ अभी बात है। आहा...हा...! परम तत्त्व जो शुद्ध वस्तु परमपारिणामिक स्वभावभाव, ज्ञायकभाव, निज परमात्मद्रव्य जो वस्तु है; निज / अपना परमात्मद्रव्य जो वस्तु है, वह तो शुद्ध है, त्रिकाल एकरूप शुद्ध है। उसके अन्दर में क्षायोपशमिक आदि भाव नहीं है। आहा...हा...! उस स्वरूप को कहना है। क्षायिकभाव, क्षयोपशमभाव, उपशमभाव, उदयभाव। आहा...हा...! चार भाव हैं, वे पर्याय के हैं। आहा...हा...! जिसका शुद्ध त्रिकाली स्वरूप भगवान आत्मा, कोई भी अपने त्रिकाली स्वरूप को नहीं छोड़ता।

www.vitragvani.com

(वे भाई) नहीं आये? ठीक, सुजानमलजी आये हैं? ठीक। समझ में आया? आहा...हा...!

पहले तो यह सिद्धान्त किया कि कोई द्रव्य, अपना शाश्वत् स्वरूप है, उसे नहीं छोड़ता—एक बात। **आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है;....** आहा...हा...! परम पवित्र स्वरूप से अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप तो त्रिकाली है। आहा...हा...! उसमें तो क्षयोपशम, क्षायिक, उपशम, उदयभाव भी नहीं है। आहा...हा...! त्रिकाली स्वरूप जो सम्यग्दर्शन का विषय है... आहा...हा...! जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, (उसमें ये चार भाव नहीं है)। आहा...हा...!

यह आया न, ३२० गाथा में। नहीं? सकल निरावरण.... आहा...हा...! अखण्ड एक, अखण्ड एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमान। पर्याय में पूरा तत्त्व प्रत्यक्ष भासता है। यह परमपारिणामिक-स्वभावभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, यह प्रत्यक्ष प्रतिभासमान अविनश्वर हैं। जिसमें पलटना भी नहीं—ऐसी अविनाशी वस्तु जो है। आहा...हा...! वह शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण शुद्ध सहज स्वभाव, ऐसा परमभाव, वह जिसका लक्षण—ऐसा जो निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आहा...हा...! उसमें क्षायोपशमिक आदि भाव भी मैं नहीं। ऐसी बातें, बापू! बहुत कठिन। धर्म बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! ये लोग भले बाहर से कल्पना करे... आहा...हा...! बाहर का जानपना और बाहर की क्रियायें और ये तो सब व्यर्थ है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्धतत्त्व अर्थात् अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप जो त्रिकाली, वह आत्मा का वास्तविक त्रिकाली स्वरूप द्रव्यस्वरूप है, उसमें तो ज्ञान का क्षयोपशमभाव, चार ज्ञान प्रगटे हों पर्याय में, परन्तु वे कोई वस्तु में नहीं। केवलज्ञान / क्षायिकभाव प्रगट हुआ हो, वह भी कहीं वस्तु में नहीं। हसमुखभाई! यह कभी सुना नहीं ऐसी बातें हैं यह। टाईल्स का व्यापार और धन्धा कर-करके... आहा...हा...!

जिसे केवलज्ञान और अनन्त आनन्द ऐसे चतुष्टय केवली को प्रगट हैं, वह पर्याय और क्षायिक समकित है, लो! वह भी पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। आहा...हा...! वह तो त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप, परम स्वभावभावस्वरूप है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय यह है और वह त्रिकाली स्वरूपी वस्तु है। समझ में आया? आहा...हा...! क्षायोपशमिक आदि... आहा...हा...! रागादि जो भाव हैं, मिथ्यात्वादि भाव हैं, वे तो स्वरूप में हैं ही नहीं। मान्यता

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भले करे कि मैं राग हूँ, अल्पज्ञ हूँ माने परन्तु वह मान्यता कहीं वस्तु में नहीं है। आहा...हा...! तथा उपशमसमकित हो, उपशमचारित्र हो, पर्याय में शान्ति उपशमरूप (प्रगट हो) परन्तु वह कहीं द्रव्य में नहीं है। आहा...हा...! त्रिकाली जिसका एकरूप स्वरूप है, उसमें यह क्षायिक का भाव, क्षयोपशम का भाव, उदय का भाव, उपशम का भाव उसमें नहीं है। आहा...हा...! वह तो पर्याय है।

वस्तु भगवान आत्मा परम परमात्म निजस्वरूप, जो सम्यग्दर्शन का विषय है.... आहा...हा...! वैसे तत्त्व के—द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। उस द्रव्य में क्षयोपशम आदि भाव नहीं है। आहा...हा...! जिसके ध्येय से क्षायिकसमकित होता है, जिसके ध्येय से क्षयोपशम, उपशमसमकित होता है, परन्तु वह वस्तु उसमें नहीं है। आहा...हा...! वह तो पर्याय में है। ऐसी बातें। यह तो त्रिकाली वस्तु है, वह ऐसी की ऐसी रहती है, कभी बदलती नहीं और एकरूप रहती है तथा अपने वास्तविक पूर्ण स्वरूपरूपभाव, उसे वह तत्त्व छोड़ता नहीं। आहा...हा...!

क्षायोपशमिकादि... अर्थात् चार (भाव)। उदयभाव, गति—नरकगति, मनुष्यगति आदि, स्वर्ग गति आदि। रागादि—जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे—ऐसा राग, वह उदय भाव, वह कहीं स्वरूप में नहीं है।

मुमुक्षु : चारों भावकर्म सापेक्ष हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों भावकर्म (सापेक्ष) हैं। वे द्रव्य में नहीं। विकारी भाव हो या निर्विकारी पर्याय हो, क्षायोपशमिक हो या क्षायिक हो।

वह वस्तु जो एकरूप त्रिकाल एकरूप वस्तु है। आहा...हा...! निजपरमात्मद्रव्य कहा न पहले? अपना मूलस्वरूप परमात्मद्रव्य जो वस्तु है, वह कभी अपने स्वरूप को छोड़ती नहीं। अर्थात् पर्याय में आती नहीं और पर में जाती नहीं। आहा...हा...! और जो वस्तु त्रिकालस्वरूप है, उसमें हीनता आती नहीं, अधिकता होती नहीं, विपरीत होता नहीं। आहा...हा...! यह तो वस्तु का स्वभाव त्रिकाल आनन्द दल प्रभु! आहा...हा...! ज्ञायकभाव का भाव भरपूर एकरूप है, उसमें क्षायोपशमिक आदि भाव नहीं है। आहा...हा...!

धर्म की जो दशा—समकित, ज्ञान, चारित्र, वीतरागता प्रगट होती है, आहा...हा...!

www.vitragvani.com

वे सब पर्यायें, त्रिकाली वस्तु में नहीं है। आहा...हा... ! तो यह शरीर, कर्म और राग-फाग और यह धूल की बाहर की (चमक), यह सब तो इसकी पर्याय में भी नहीं है। क्या कहा ? यह शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, धन्धे की क्रियायें, वे तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं। जयसुखभाई ! आहा...हा... ! परन्तु उसकी पर्याय में जो विकृत और अविकृत अवस्थायें हैं, अविकृत अपूर्ण और पूर्ण अवस्थायें हैं, वे भी त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप जो ध्रुवस्वरूप, एकरूप वस्तु है, उसमें वे नहीं हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

तू अपने स्वभाव को पहिचान। आहा...हा... ! यह जो त्रिकाली स्वरूप है, उसे पहिचान। पहिचाने, वह तो पर्याय है परन्तु पहिचानने की पर्याय पहिचानती है इसे (त्रिकाली को)। आहा...हा... ! **तू अपने स्वभाव को पहिचान**। यह स्वभाव त्रिकाली की बात है, हों ! पर्याय स्वभाव तो अन्दर है ही नहीं। आहा...हा... ! **अनन्त गुणरत्नों की माला अन्तर में पड़ी है, उसे पहिचान**। आहा...हा... ! जो वस्तु है नित्यानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द परमात्मद्रव्य अपना है, जिसमें पर्यायें नहीं परन्तु अनन्त गुण की रत्नमालायें हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा... ! जिसमें क्षायोपशमिक आदि पर्यायें नहीं— ऐसे अपने स्वभाव को पहिचान।

अनन्त गुणरत्नों की माला... आहा...हा... ! अनन्त गुण के हार अन्दर पड़े हैं। आहा...हा... ! जिसमें पर्याय नहीं परन्तु गुणों का हार, संख्या इतनी अनन्त है कि जिसका पार नहीं, जिसका अन्त नहीं। कितने गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उसका अन्त नहीं। ऐसे अनन्त गुणों की / रत्नों की माला... आहा...हा... ! अन्दर पड़ी है। भगवान आत्मा के ध्रुवस्वभाव में अनन्त गुण की रत्नमाला अन्दर पड़ी है। आहा...हा... ! पर्याय नहीं—ऐसा कहा, परन्तु है क्या तब ? अनन्त गुणरत्नस्वरूप मालायें अन्दर ध्रुव पड़ी हैं। आहा...हा... ! उसे पहिचान। आहा...हा... ! अनन्त.. अनन्त.. रत्न, चैतन्यरत्न ध्रुव, जिसके स्वभाव में अनन्त शुद्धस्वभाव गुण अनन्त पड़े हैं... आहा...हा... ! उसे पहिचान। संयोग को पहिचान और राग को पहिचान, निमित्त को पहिचान और पर्याय को पहिचान —ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहा...हा... ! है या नहीं इसमें ? **अन्तर में पड़ी है, उसे पहिचान**। है उसे पहिचान।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : पहिचाने तो सही, परन्तु गुरु बतलावे तब हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो गुरु स्वयं हो, तब पर गुरु कहलाये। ऐसी बातें हैं बापू! आहा...हा...! यह चीज़ वह क्या है? आहा...! एक-एक आत्मा त्रिकाल अनन्त गुण की राशि का गंज प्रभु! उसे किसी क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव की शक्ति का अमापपना और एक-एक शक्ति में भी अनन्त सामर्थ्य, उसका भी अमापपना! चिद्विलास में आता है कि गुण है, वह अनन्त पर्यायवाला है और अनन्त शक्तिवाला है —ऐसे दो बोल आते हैं। अर्थात् क्या? कि अनन्त गुण हैं, उसमें एक-एक गुण की अनन्त पर्याय है और एक-एक गुण की अनन्त शक्ति अस्तित्व में है। एक-एक गुण में, हों! चिद्विलास में यह शब्द आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक शक्ति की अनन्त शक्ति। एक-एक गुण अनन्त पर्यायवाला है। त्रिकाल पर्याय। गुण में पर्याय नहीं परन्तु उसके गुण की अनन्त पर्यायें और एक-एक गुण में अनन्त शक्ति। अनन्त गुणों की अनन्त शक्ति—ऐसा नहीं। एक-एक गुण की अनन्त शक्ति। ऐसी दूसरे गुण की, तीसरे गुण की, अनन्त गुण की अनन्त शक्ति। आहा...हा...! अरे रे! वह भगवान कितना बड़ा है अन्दर!! समझ में आया? आहा...हा...!

अनन्त गुणरत्नों की माला... माला में तो अभी मोती एक के बाद एक क्षेत्र में होते हैं और इसमें अनन्त रत्नों की माला एक के बाद एक क्षेत्र में नहीं है, एक के बाद एक भाव से अन्दर है। वहीं के वहीं अनन्त एक समय में अनन्त, एक समय में अनन्त (गुण हैं)। समझ में आया? आहा...हा...! **उसे पहिचान। अनन्त गुणरत्नों की माला अन्तर में पड़ी है, उसे पहिचान।** जिसमें अनन्त गुण की रत्नमाला (पड़ी है)—ऐसा तत्त्व, उसे पहिचान। आहा...हा...! 'उसे' शब्द है न? अनन्त गुण को पहिचान—ऐसा नहीं। अनन्त गुण की रत्नमाला अन्दर में पड़ी है उसे, 'उसे' अर्थात् द्रव्य। आहा...हा...! पुरुभाई तो चार बार पढ़ गये हैं, पता है। ये चार बार पढ़ गये थे, हों! पढ़ने का रस था। अन्त में ये कहते हैं कि लगभग विचार तो था, अन्त में बैठे थे थोड़े, फिर अकस्मात हो गया एकदम। यह तो देह की स्थिति जो है उसमें (कोई क्या करे) ? परमाणु है, वह उसका त्रिकाली स्वरूप

www.vitragvani.com

है, वह भी नहीं छोड़ता। वह का वह परमाणु का त्रिकाली स्वरूप है, वह पर्याय में नहीं आता तो पर में आवे, यह तो बात ही कहाँ है ? आहा...हा... !

भगवान आत्मा एक समय में वर्तमान शाश्वत् अनन्त गुण का स्वरूप एक, जिसमें अनन्त गुण की रत्नमाला एकसाथ ऐसे पड़ी है। माला में तो एक के बाद एक मोती होता है, यहाँ तो ऐसे एकसाथ ऐसे पड़ा है सब। आहा...हा... ! समझ में आया ? उसे पहिचान। अर्थात् ? अनन्त गुण जिसमें पड़े हैं, उसे पहिचान। अनन्त गुण को नहीं। आहा...हा... ! द्रव्य को (पहिचान)। यहाँ शाश्वत् स्वरूप की बात लेनी है न ? पढ़ गये या नहीं कितनी बार। चिमनभाई ? एक ही बार पढ़ा है। लोहे का धन्धा बहुत... आहा...हा... !

उसे पहिचान। आत्मा का लक्षण—त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर... उसका जो लक्षण त्रिकाली है, उसे पहिचानकर। आहा...हा... ! समझ में आया ? आत्मा का स्वरूप-लक्षण, आत्मा का लक्षण, त्रिकाली स्वरूप पहिचानकर, **त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर।** आहा...हा... ! उसका लक्षण-त्रिकाली स्वरूप जो है, उसे पहिचानकर उसकी प्रतीति कर। आहा...हा... ! गजब ! थोड़े शब्दों में बहुत आया है !!

१४६ वाँ, आत्मा का लक्षण क्या ? त्रिकाली स्वरूप है, वह उसका सच्चा लक्षण है। त्रिकाली रहना वह उसका स्वरूप है, लक्षण है। ज्ञान लक्षण है, वह भले फिर, यहाँ तो आत्मा का लक्षण त्रिकाली स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर। आहा...हा... ! क्या कहते हैं यह ? आत्मा का लक्षण अर्थात् त्रिकाली स्वरूप, वह उसका लक्षण है। आहा...हा... ! उसे पहिचानकर प्रतीति कर। पहिचानकर प्रतीति कर-ज्ञान करके प्रतीति कर... देवीलालजी ! है न ? बापू ! इसमें है, देखो ! पहिचानकर प्रतीति-दो बोल लिये, तीन लिये, तीन। कि उसका त्रिकाली स्वरूप जो है, वह उसका सच्चा लक्षण है। आहा...हा... !

ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... एकरूप त्रिकाली जिसका लक्षण है... आहा...हा... ! उसे पहिचानकर (प्रतीति कर)। पहिचानना, वह ज्ञान की पर्याय है। पहिचानकर प्रतीति कर, यह श्रद्धा की पर्याय है। वस्तु यह है, यह जाने बिना प्रतीति किसकी ? आहा...हा... ! समझ में आया ? हीराभाई ! आहा...हा... !

आत्मा का लक्षण अर्थात् त्रिकालीस्वरूप... आहा...हा... ! ज्ञायकपना,

www.vitragvani.com

परमपारिणामिकस्वभावभावपना, परमस्वभावभाव, सहज त्रिकाली स्वभावभावपना, आहा...हा... ! वस्तु का त्रिकाली सहजस्वभावपना, उसका यह लक्षण, उसे पहिचानकर। आहा...हा... ! अर्थात् त्रिकाली की ओर (ढलकर), त्रिकाली का ज्ञान करके। आहा...हा... ! ज्ञान में ज्ञात हुआ; उस ज्ञान की पर्याय में त्रिकाली स्वरूप आया नहीं। आया है उस सम्बन्धी जितना है, उतना उसमें ज्ञान आया है। क्या कहा ? त्रिकाली भगवान आत्मा... ! बापू ! यह वस्तुस्वरूप ऐसा कोई है। आहा...हा... ! लोगों ने बाहर में कर-करके बिगाड़ दिया है। पूरा भगवान अन्दर बड़ा बिराजमान है। आहा...हा... ! उसका तो पता नहीं पड़ता और श्रद्धा... श्रद्धा... श्रद्धा... (करो)। परन्तु किसकी श्रद्धा ? बापू ! आहा...हा... !

इस आत्मा का लक्षण... आहा...हा... ! त्रिकालीस्वरूप पहिचानकर। त्रिकाली स्वरूप वह वस्तु है। कायम टिकती चीज़ जो है, जिसमें अनन्त गुण के रत्न पड़े हैं, उसे पहिचानकर प्रतीति कर, उसे पहिचानकर श्रद्धा कर। आहा...हा... ! ऐसे श्रद्धा-श्रद्धा करे, हमें श्रद्धा है (ऐसा कहे) परन्तु किसकी श्रद्धा है तुझे ? जो ज्ञान की पर्याय में, जो त्रिकाली स्वरूप है जैसा बड़ा और महन्त है, वह ज्ञान की पर्याय में ज्ञात न हो, तब तक उसकी प्रतीति कहाँ से आयी ? आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं, भाई ! अरे ! एक बार मध्यस्थता से सुने तो सही, प्रभु ! तू सुन ! आहा...हा... !

अनन्त सिद्ध हैं, वह पर्याय है। इस त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में वह पर्याय नहीं। आहा...हा... ! शाश्वत् त्रिकाली एकरूप रहनेवाली चीज़ जो वस्तु है... आहा...हा... ! पर्यायरहित और अनन्त गुण से भरपूर, अनन्त गुण के आभरण से भरपूर बड़ी डिब्बी है। डिब्बी कहते हैं ? डिब्बा। आहा...हा... ! उस चीज़ को पहिचानकर, प्रतीति कर, तब तुझे कल्याण होगा, तब तुझे धर्म होगा; इसके बिना धर्म नहीं (होगा)। आहा...हा... ! १४६ (हुआ)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह किसे विश्वास ? किसका ? मोक्षमार्ग में नहीं कहा ? कि किसी के वचन से माना हो तो दूसरे वचन कहेंगे, वह मान्यता छूट जायेगी। उसने वास्तविक स्वरूप को पहिचानकर, जानकर नहीं माना, वह मान्यता सच्ची है ही नहीं।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! भगवान ने कहा, इसलिए सत्य। सच्चा भगवान ने कहा, वह क्या कहा? और क्या है वह? ऐसा है क्या? उसके ज्ञान बिना तुझे प्रतीति कहाँ से होगी? आहा...हा...! समझ में आया? और भगवान ने कहा, वह तेरे लक्ष्य में—ज्ञान की पर्याय में आया परन्तु वह तो परलक्ष्य से आया। वह परलक्ष्य से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वह तो उसकी निर्मलपर्याय जो त्रिकाली निर्मलानन्द प्रभु की जाति की पर्याय जो निर्मल प्रगट हुई, उससे पहिचानकर प्रतीति हो ऐसा है। आहा...हा...! कहो, जयसुखभाई! ऐसी बातें हैं। आहा...हा...!

अरे! प्रभु एक बिराजता है अन्दर। आहा...हा...! परमात्मस्वरूप एकरूप (बिराजता है), जिसमें पर्याय का अभाव है। उसे पर्याय में पहिचानकर... आहा...हा...! और उसे श्रद्धा-प्रतीति कर। यह पहिचानने की पर्याय और प्रतीति की पर्याय भी द्रव्य में नहीं है। आहा...हा...! तथा पहिचानने की पर्याय और प्रतीति में वह पूरा महाप्रभु अन्दर आया नहीं। उस सम्बन्धी का ज्ञान और प्रतीति आयी है। आहा...हा...! उस ज्ञान की पर्याय की महत्ता कितनी! आहा...हा...! उस श्रद्धा की पर्याय की महत्ता कितनी!! कि जिसे त्रिकाली ऐसी चीज़ है, उसने अपना स्वरूप कभी छोड़ा नहीं अर्थात् उस पर्याय में भी वह त्रिकाली स्वरूप आया नहीं। ऐसी चीज़ को ज्ञान में ले, उस ज्ञान की पर्याय की ताकत कितनी!! आहा...हा...! इतने तत्त्व को जाने, उसे स्पर्श किये बिना! आहा...हा...! ऐसे (द्रव्य को) पहिचानकर, फिर श्रद्धा-प्रतीति कर। वह पूरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिसका स्वरूप कभी छूटा नहीं—ऐसे तत्त्व की प्रतीति हुई, उस प्रतीति में ताकत कितनी!! आहा...हा...! तथापि वह प्रतीति और ज्ञान की पर्याय उस त्रिकाली स्वरूप में नहीं। आहा...हा...! तथापि उस पर्याय को ज्ञान और श्रद्धा हुई, उस पर्याय में त्रिकाली स्वरूप आया नहीं। त्रिकाली स्वरूप का ज्ञान और श्रद्धा आयी है। उस ज्ञान में त्रिकाली यह है—ऐसा जानना आया, त्रिकाली ऐसा है—ऐसा प्रतीति में आया परन्तु प्रतीति की पर्याय में त्रिकाली स्वरूप अन्दर आता नहीं। आहा...हा...! जैसे पर्याय, द्रव्य में आती नहीं है; वैसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पर्याय हुई, उसमें वह त्रिकाली तत्त्व कहीं नहीं है। आहा...हा...!

ऐसा मार्ग वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहा...हा...! वह भी दिगम्बर सन्तों

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ने गजब काम किया है !! आहा...हा... ! जिनके एक-एक शब्द में, एक-एक श्लोक में गम्भीरता... गम्भीरता... गहनता (का पार नहीं होता) । भाई ! ऊपर-ऊपर से देखे, ऐसी चीज़ नहीं है । आहा...हा... ! यह पढ़ गये और यह किया (ऐसा नहीं) भाई !

यह पहिचान है, वह धारणा की पर्याय नहीं । धारणा की पर्याय में ऐसा आत्मा है, इतने गुण हैं—ऐसी पर्याय की धारणा में आवे परन्तु वह पर्याय कहीं इसकी पहिचान की हुई है, वह पर्याय नहीं । आहा...हा... ! क्या कहा यह ? पर्याय में धारणा हो गयी, पर्याय ने धारा कि यह द्रव्य इतना है और ये गुण इतने हैं और यह पर्याय उसे जाने तो वह सम्यग्ज्ञान कहलाये—ऐसी पर्याय ने धारणा की, परन्तु वह धारणा की, वह कोई चीज़ नहीं है । अन्दर में गया नहीं, अन्दर झुका नहीं, तब तक इसका ज्ञान सम्यक् है नहीं । आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : धारणा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं, परन्तु परोक्ष ज्ञान है वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परोक्ष ही है और वह परोक्ष भी प्रमाण नहीं । ठीक न ? भाई ! प्रमाण ज्ञान है अनुमान, वह भी प्रमाण है परन्तु वह प्रमाण है, वह सत्य है और यह धारणा है, यह प्रमाण वह वास्तविक प्रमाण ही नहीं है । आहा...हा... !

वास्तविक तत्त्व जो पूर्ण स्वरूप जो (स्वरूप है)... आहा...हा... ! अकेला आनन्द और ज्ञानादि गुणों का-रत्न का पिण्ड प्रभु, ध्रुव ज्ञायकभाव, परमात्मभाव, द्रव्यभाव, स्वभावभाव, उसकी पहिचान तो उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान हो, (वह वास्तविक पहिचान है) । अन्य जो ज्ञान (किया वह) तो परलक्ष्यी धारणा करके हुआ, वह तो ग्यारह अंग और ऐसे तो अनन्त बार किये । ग्यारह अंग में यह नहीं आती है ? आत्मा इतना है और बड़ा है और.... समझ में आया ?

ग्यारह अंग अर्थात् एक पद में इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक । ऐसा एक आचारांग पद, अठारह हजार पद, उसे कण्ठस्थ हों । दुगने सुयगडांक है, उसे कण्ठस्थ हो, बापू ! वह कोई चीज़ नहीं, भाई ! आहा...हा... ! उसने इसे अभिमान हो जाये, वह तो मिथ्यात्व है । ऐसी बात है ।

जो त्रिकाली स्वरूप, जो एकरूप त्रिकाल है, उसे पहिचान । पर्याय उसके सन्मुख

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

हुई और आश्रय लिया। आश्रय का अर्थ इतना नहीं कि वह पर्याय द्रव्य में मिले; इसलिए द्रव्य ने आश्रय दिया। आश्रय का अर्थ इतना कि वह पर्याय ऐसे झुकी। जो ऐसे बाहर में झुकी हुई थी, वह अन्दर झुकी, बस! आहा...हा...! उसने द्रव्य का आश्रय लिया—ऐसा कहा जाता है, तथापि वह पर्याय द्रव्य में नहीं और वह पर्याय हुई, उसमें द्रव्य नहीं। हुलाशचन्दजी! ऐसा है। आहा...हा...! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? भाई! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। आहा...हा...! तेरी महिमा पर्याय में नहीं आती। पर्याय जानती है महिमा को। आहा...हा...!

मुमुक्षु : द्रव्य-पर्याय के दो टुकड़े कर दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो वस्तु है न! पर्याय अंश है और यह त्रिकाली एकरूप स्वरूप है। आहा...हा...! अब १४७। १४६ (बोल पूरा हुआ।)

आत्मा के ज्ञान में सब ज्ञान समा जाता है। एक को जानने से सब ज्ञात होता है। मूल को जाने बिना सब निष्फल है॥१४७॥

आत्मा के ज्ञान में सब ज्ञान समा जाता है। क्या कहा अब? आहा...हा...! जिसने, यह त्रिकाली स्वरूप जो भगवान अपना स्वभाव / स्वरूप कभी छोड़ता नहीं— ऐसे आत्मा का ज्ञान, उसमें सब आ गया। एक को भलीभाँति जाना, उसने सब जाना और एक को जाने बिना अनेक को जाने और ग्यारह अंग के ज्ञान का बड़ा ढ़ेर करे... आहा...हा...! वह ज्ञान नहीं।

आत्मा के ज्ञान में... आत्मा जो वस्तु है, उसके ज्ञान में। (वह) पर्याय है, ज्ञान में वह पर्याय है। परन्तु आत्मा के ज्ञान में। उस पर्याय ने आत्मा का ज्ञान किया, पर्याय ने आत्मा का ज्ञान किया। आहा...हा...! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें। यह तो व्रत करो और अपवास करो और पुण्य करो, ऐसी सीधी सट्ट भटकने की बातें (थी)। आहा...हा...! बापू! मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! आहा...हा...! जन्म-मरण से छूटने

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

की प्रतीति कोई अलग प्रकार है और जन्म-मरण से छूटने का सम्यग्ज्ञान कोई अलौकिक बात है ! आहा...हा... !

जिसका-आत्मा का जिसे ज्ञान हुआ। आहा...हा... ! छह द्रव्य का और पर का ज्ञान हुआ, वह यहाँ नहीं। भगवान पंच परमेष्ठी को पहिचाना, वह यहाँ नहीं, वह तो परवस्तु है। अरिहन्त का आता है न (प्रवचनसार) ८० गाथा में ? कि **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** परन्तु वह तो निमित्त से कथन है। उसका ज्ञान होकर, फिर अन्तर में जब स्वद्रव्य में ढलता है, तब उसे सम्यग्ज्ञान होता है। आहा...हा... ! इन अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने; इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान हुआ-ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! इसने जब अपनी पर्याय को गुण में मिलाया, गुण और द्रव्य में मिलाकर; द्रव्य जो वस्तु त्रिकाल है, उसका ज्ञान हुआ, तब इसे सम्यग्ज्ञान (हुआ)। आत्मा को जाना, उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहा...हा... ! अरे रे ! जगत् कहीं का कहीं भ्रमित कहीं खड़ा है। कोई कहीं, कोई कहीं, कोई कहीं; धर्म के नाम पर भी कहीं का कहीं भटकता है। आहा...हा... !

आत्मा के ज्ञान में सब ज्ञान समा जाता है। उसमें सब ज्ञान आ जाता है। आहा...हा... ! 'एगं जाणहि सव्वं जाणहि' जिसने एक को—भगवान (आत्मा को) जाना उसने सब जाना। आहा...हा... ! **एक को जानने से सब ज्ञात होता है।** त्रिकाली भगवान एक स्वरूप बिराजमान है। उसको ज्ञान में जानने से सब ज्ञात होता है। **मूल को जाने बिना....** मूल जो त्रिकाली वस्तु है, वह मूल है। उसे जाने बिना **सब निष्फल है।** आहा...हा... ! शास्त्र का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान, छह द्रव्य का ज्ञान (सब निष्फल है)। आहा...हा... ! आहा...हा... !

(बहिनश्री के वचनामृत) कन्नड़ में प्रकाशित होती है, हों ! गुजराती और हिन्दी में प्रकाशित हो गयी है, कन्नड़ में प्रकाशित होती है। मराठी में तैयार होती है और इसके बाद तमिल... क्या कहलाता है ? तमिल में होगी ऐसा लगता है धीरे-धीरे। नयी प्रतियाँ आयी हैं, उसमें लिखा है। दस हजार प्रकाशित की हैं न नयी ? कल हीरालाल लाये थे न ? उसमें लिखा है कि कन्नड़ में प्रकाशित होती है, ऐसा सामने आगे लिखा है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ नहीं आया, नहीं ? यह नहीं आया न ? यह तो पुराना है, यह तो पुराना है। कल आया। भाई लाये थे। कन्नड़ में प्रकाशित होती है, मराठी होती है, तमिल में होगी। इसकी जरूरत थी। कुदरत के नियम में यह नियम आया अभी बराबर। आहा...हा... !

मुमुक्षु : ..... तो भी इसकी महिमा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... बापू! यह क्या ? यह वस्तु क्या है ! करोड़ क्या चाहे जो इसकी संख्या का क्या है ? आहा...हा... ! एक ही त्रिलोक का नाथ जहाँ ख्याल में आया, उसमें सब आ गया। आहा...हा... !

मूल को जाने बिना सब निष्फल है। त्रिकाली ज्ञायकभाव, जिसमें पर्याय का अभाव और अनन्त गुण का सद्भाव है... आहा...हा... ! उसे जाने बिना सब निष्फल है। सफल है भटकने के लिये, मोक्ष के लिये निष्फल है। आहा...हा... !

चैतन्यलोक में अन्दर जा। अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त गुण चैतन्यलोक में हैं; उसमें निर्विकल्प होकर जा, उसकी शोभा निहार॥१४८॥

१४८, **चैतन्यलोक में अन्दर जा।** प्रभु! सुन, कहते हैं। आहा...हा... ! १४८, १४८ प्रकृति है न ? उन्हें छोड़कर अन्दर जा। इतनी योग्यता भी है न ? प्रकृति भले वहाँ रही, परन्तु पर्याय में इतनी जो जड़ है, उसमें वह प्रकृति है, वह तो उसके कारण वहाँ है परन्तु यहाँ पर्याय में ऐसी योग्यता, १४८ प्रकृति की योग्यता वह है न इसकी ? भाव, है इसकी पर्याय में है। वह प्रकृति तो जड़ में, अजीव में है, वह तो निमित्त में है परन्तु यहाँ नैमित्तिक पर्याय है, उसमें १४८ प्रकृति की योग्यता का भाव है या नहीं ? आहा...हा... ! कहो, गुणवन्तभाई ! यह तो गुण की व्याख्या आती है, बापू! कि गुण-अनन्त गुण की रत्नमाला पड़ी है अन्दर। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

प्रभु ! तू **चैतन्यलोक में अन्दर जा** । आहा...हा... ! बाहर के लक्ष्य में भटकता है, भाई ! जहाँ तू नहीं, वहाँ भटकता है, वह रहने दे । जहाँ तू है, वहाँ जा । आहा...हा... ! जहाँ स्वयं नहीं, वहाँ के उसके लक्ष्य में तेरा जुड़ान हो गया । आहा...हा... ! वहाँ तू डोलायमान हो गया है, प्रभु ! वह तो संसार है, परिभ्रमण है, दुःख है । आहा...हा... ! **चैतन्यलोक में अन्दर जा** । 'चैतन्य लोकयन्ते इति लोकः' आहा...हा... ! जो ज्ञात होता है, वह लोक । यह चैतन्यलोक ज्ञात होता है पर्याय में, उस चैतन्यलोक में जा । आहा...हा... ! अर्थात् उसके सन्मुख हो । जहाँ भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजता है, कि जिसमें क्षायिक पर्याय का भी अभाव है । आहा...हा... ! ऐसा चैतन्य लोक है न प्रभु ! अन्दर जा । आहा...हा... !

अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त गुण चैतन्यलोक में हैं;... आहा...हा... ! अन्दर में जा । वह कैसा चैतन्यलोक है ? (जिसकी) शोभा अलौकिक है । आहा...हा... ! ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त रत्न हैं, वह उसकी शोभा अन्दर है । वस्तु में अनन्त गुण हैं-रत्न हैं, उसकी शोभा है । आहा...हा... ! उस शोभा को निहारने जा । आहा...हा... ! बाहर की कोई शोभा-शृंगार करके देखने नहीं जाते ? कि यह गजब शृंगार किया, हों ! इसने गजब (किया है) ! परन्तु बापू ! वह तो पर है । उसे जानने में तुझे क्या लाभ हुआ ? जहाँ चैतन्यलोक बिराजता है-भगवान अन्दर पूर्णानन्द (बिराजता है)... आहा...हा... ! वहाँ जा, अर्थात् उसका ज्ञान कर । आहा...हा... ! पहले में पहले करनेयोग्य यह है ।

अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त गुण चैतन्यलोक में हैं;... आहा...हा... ! जिसकी अनन्त संख्या का अन्त नहीं । आहा...हा... ! तथापि क्षेत्र तो इतना ही है, वहाँ क्षेत्र से अन्त आ गया है । वह तो क्षेत्र से अन्त आया, परन्तु उसके भाव की संख्या से अन्त है नहीं । आहा...हा... ! गहराई में उसके तल में, तल में, ध्रुव में इतने अनन्त (गुण) पड़े हैं कि उसका अन्तिम यह—अनन्त का अन्तिम भाग यह गुण—ऐसा उसमें है ही नहीं । अन्त आवे, ऐसा उसमें है नहीं - ऐसा कहते हैं । आहा...हा... ! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण को करते हुए कि अब यह अनन्त-अनन्त हुए और अब यह अन्तिम आया... आहा...हा... ! ऐसा जिसमें अन्तिम है नहीं । आहा...हा... ! यह क्या चीज़ है !!

www.vitragvani.com

अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त... आहा... ! भाई ! कोई चीज़ ही कोई ऐसी है, यह सर्वज्ञ ने ही देखकर कही है, बाकी दूसरों का भाव नहीं। आहा...हा... ! जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, उसके मत में एक भी बात सत्य नहीं होती। आहा...हा... ! क्योंकि यह सर्वज्ञस्वभाव ही इसका शाश्वत् है। ज्ञायकभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, त्रिकाली, हों ! सर्वज्ञस्वभाव त्रिकाली वस्तु है, उसमें अल्पज्ञ का तो अभाव है। ऐसे चैतन्यलोक में अनन्त गुण भरे हैं। हैं। आहा...हा... !

चैतन्यलोक में अन्दर जा। अलौकिक शोभा से... अलौकिक शोभा से; लौकिक शोभारहित **अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त गुण चैतन्यलोक में हैं;...** उस चैतन्यलोक में जा, अन्दर जा। आहा...हा... ! भाषा तो बहुत संक्षिप्त परन्तु भाव तो बहुत गहरे हैं।

उसमें निर्विकल्प होकर जा,... आहा...हा... ! विकल्प से अन्दर नहीं जाया जा सकता। अनन्त-अनन्त गुणों की शोभा से भरपूर भगवान, यह विकल्प जो राग का अंश साथ में है-शास्त्र सम्बन्धी का ज्ञान जो है, वह लेकर अन्दर नहीं जाया जाता। आहा...हा... ! अनन्त अलौकिक शोभा से भरपूर अनन्त गुण चैतन्यलोक में है। उसमें है, उसमें निर्विकल्प होकर जा। विकल्प का अंश भी लक्ष्य में होगा, तब तक अन्दर नहीं जाया जा सकता। पर्याय का लक्ष्य रहेगा, तब तक भी अन्दर नहीं जाया जा सकता। आहा...हा... ! ऐसी बात !

उसमें... उसमें अर्थात् ? **चैतन्यलोक में अन्दर जा।** जिसमें अलौकिक शोभा से अनन्त गुण भरपूर भरे हैं, उसमें। आहा...हा... ! **निर्विकल्प होकर जा,...** तब तुझे शोभा दिखायी देगी। आहा...हा... ! यह अन्तर में जाने से दृष्टि है, वह निर्विकल्प हो, वह अन्तर की शोभा देखेगी। आहा...हा... ! विकल्पवाला ज्ञान ग्यारह अंग आदि का या राग की मन्दता का चारित्र-व्रत-तप के भाव, उस द्वारा अन्दर नहीं जाया जाता। वह तो विकल्प / राग है। आहा...हा... ! **निर्विकल्प होकर जा, उसकी शोभा निहार।** उसकी शोभा निहार।

विशेष कहेंगे....... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अषाढ़ कृष्ण-१३, मंगलवार, दिनाङ्क ०१-०८-१९७८
वचनामृत-१४९-१५१ प्रवचन-५४

रागी हूँ या नहीं — उन सब विकल्पों के उस पार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ। नयों से अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है। द्रव्य का अवलम्बन कर तो चैतन्य प्रगट होगा ॥१४९ ॥

१४९ बोल है। एकदम तत्त्व की बात है। **रागी हूँ या नहीं...** शरीर हूँ, वाणी हूँ और मन हूँ, यह तो नहीं। इसकी पर्याय में ये नहीं। परवस्तु है जो जड़ और चैतन्य, वह तो इस आत्मा की पर्याय में भी नहीं। अब इसकी पर्याय में राग है, वह भी रागी हूँ या रागी नहीं, वह भी एक विकल्प है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है। **रागी हूँ या नहीं...** रागी हूँ, वह पर्याय में; रागी नहीं, वह द्रव्य में, ये दोनों प्रकार के विकल्प वृत्ति है। आहा...हा...! यहाँ तक आया तो भी क्या? जो जन्म-मरणरहित होने का मार्ग है, वह तो विकल्प से रहित द्रव्य के स्वभाव की सन्मुखता की दशा (हो), वह जन्म-मरणरहित होने का उपाय है। उसमें रागी हूँ या नहीं, यह भी दो नय हैं। पर्याय में राग है, यह व्यवहार और वस्तु में राग नहीं, यह निश्चय परन्तु दो के विकल्प की वृत्ति में रुकना, उसमें स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

उन सब विकल्पों के उस पार... राग की वृत्तियाँ, जो विकल्प, इस चैतन्य में पर्याय में वृत्ति का उत्थान हो, उससे पार वस्तु अन्दर है। आहा...हा...! उसके **पार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ**। यह तो समझाते हैं। मैं शुद्ध तत्त्व हूँ—ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं है। आहा...हा...! जो ज्ञान की वर्तमान दशा, ज्ञायक के स्वभाव की गहनता में जहाँ जाती है, वहाँ उसे विकल्प नहीं रहता। अपरिमित गहन जो आनन्दादि, ज्ञानादि स्वभाव है, उसकी गुण की

www.vitragvani.com

जो वर्तमान पर्याय है, वह पर्याय जहाँ अन्तर्मुख होती है। वस्तु अलौकिक है बापू! आहा...हा...! उस पर्याय को वर्तमान में परसन्मुख है, उसे अन्तर में झुकाना, वह पहला सम्यग्दर्शन पाने की कला और विधि है। आहा...हा...! इसलिए कहते हैं, उस विकल्प से पार, उस पार अर्थात् अन्दर।

मैं शुद्ध तत्त्व हूँ। नयों से अतिक्रान्त.... निश्चय और व्यवहारनय के विकल्प से अतिक्रान्त है। अभी यह अपेक्षा लेनी है न ? नहीं तो 'निश्चयनय आश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की' वहाँ विकल्प नहीं। वहाँ तो त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है, उससे मुक्ति है-ऐसा निश्चयनय को विकल्परहित वहाँ कहा है परन्तु यहाँ तो विकल्पवाला जो नय है, उससे पार अन्दर (शुद्ध तत्त्व है)। ओहो...हो...! यहाँ तक जाना अब। आहा...हा...! यह कहते हैं कि लाख तेरे व्रत, तप, भक्ति, और पूजा लाख कर न, करोड़ कर न, अनन्त कर न, वे सब राग हैं। वह तो स्थूल राग है परन्तु वस्तु है, वह रागवाली है और रागवाली नहीं-ऐसा जो विकल्प है, वह भी सूक्ष्म राग है। आहा...हा...! उससे भी अन्तर में नहीं जाया जाता क्योंकि उसकी जाति की दशा बिना अन्तर में नहीं जाया जाता। आहा...हा...!

यह शुद्ध चैतन्यतत्त्व है, यह शुद्ध निर्मलपर्याय से अन्दर में जाया जाता है, उसे पकड़ा जा सकता है; बाकी विकल्प से भी पकड़ा जा सके—ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहा...हा...! ऐसा पहले इसकी श्रद्धा में पक्का निर्णय तो करे कि इस आत्मा में जाने के लिये कोई विकल्प काम नहीं करता। आहा...हा...! बाह्य के व्रत, तप, और त्याग तो अनन्त बार किये, वह कोई वस्तु नहीं; वह तो राग की क्रिया है। आहा...हा...! उससे तो प्राप्त नहीं होता परन्तु उसकी जाति को मैं शुद्ध हूँ, रागरहित हूँ—ऐसा जो विकल्प है, उससे भी वह प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है। बाकी तो चौरासी के अवतार (कर-करके) भटक मरता है। आहा...हा...! अनादि काल से कोई कहीं शरण नहीं है। बाहर में स्त्री-पुत्र और धन्धा और कुटुम्ब में, मकड़ी जैसे लार निकालकर फँस जाती है, वैसे फँस गया है। अरे रे! उसे तो उभरने का अवसर कहाँ ? प्रभु!

यहाँ तो आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान करने में भी जब निश्चय से वह शुद्ध है, अबद्ध है, रागरहित है—ऐसी जो राग की वृत्ति उठती है, उस राग से भी प्राप्त हो सके-ऐसा नहीं

www.vitragvani.com

है। ऐसी वस्तु कठिन लगती है, बापू! परन्तु क्या हो? अरे! अनन्त काल में देखो न, जन्म-मरण किये। आहा...हा...!

अभी ही कल समाचार थे। 'मनहर का त्रंबक' भूरा का चौथा नम्बर का। छह लड़के थे, दो तो मर गये, माँ-बाप बैठे हैं। यह अभी चौथा मर गया। त्रंबक। कैसा शरीर ऐसा लट्ठ जैसा था। सूरत में नहीं अपने मनहर, उसका भानेज। उसके पास बहुत पैसा है, मनहर के पास अस्सी लाख, करोड़ कहते हैं। अस्सी लाख तो है, करोड़ कहते हैं। भानेज करोड़ कहता था, उसका मामा खड़ा था। मैं दुकान में चरण करने गया। मेरे मामा को करोड़ (रुपये) हैं। मामा खड़ा था, बोला नहीं कुछ। उसका भानेज। छह भानेज है। अपने कामदार यहाँ 'अमीचन्द कामदार' का भाई, मामा भूरो, उसके लड़के, दो पहले मर गये, युवा, यह चौथे नम्बर का अभी मर गया। लट्ठ जैसा। अभी बेचारा आया था। अहमदाबाद, मुम्बई, मुम्बई दर्शन करने (आया था) परन्तु ऐसा रोग अन्दर हुआ कि शरीर घुल गया, बस! ऐई! बड़े पाड़े जैसा शरीर। कल क्या होगा? बापू! ये जड़ की दशा उसके क्रम में होनेवाली, उसे रोके कौन? टाले कौन? आहा...हा...!

यहाँ तो विकल्प आता है, कहते हैं कि त्रिकाली शुद्ध को लक्ष्य में लेने विकल्प उठा कि यह वस्तु शुद्ध चैतन्य अनन्त... अनन्त... गहन स्वभाव का महासागर है, स्वयंभू प्रभु है। उसमें वह 'है'—ऐसी विकल्प की वृत्ति उठे, उससे वस्तु पार है। आहा...हा...! जिसे विकल्प का, राग का भी सम्बन्ध नहीं तो फिर यह स्त्री, पुत्र और परिवार तथा धन्धे का सम्बन्ध कहाँ से आ गया? आहा...हा...! कहाँ धन्धा और कहाँ...? जयसुखभाई! यह टाईल्स बड़ी, थाणा न? थाणा। आहा...हा...!

मुमुक्षु : उपाय क्या? धन्धा छोड़ देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धन्धा कौन कर सकता है? विकल्प करता है। आहा...हा...! और वह विकल्प पाप है, आत्मा को नुकसान करनेवाला, हैरान करनेवाला विकल्प है। आहा...हा...!

यहाँ तो यह विकल्प तो कहीं रह गया। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का विकल्प भी बन्ध का कारण दु:खरूप है। आहा...हा...! वह तो कहीं रह गया। यहाँ तो

www.vitragvani.com

वस्तु है, उसके सन्मुख होने में 'वह ऐसी है' ऐसा जो विकल्प उठा है... आहा...हा...! आँगन में खड़ा रहकर, यह ऐसी चीज़ है, ऐसी चीज़ है, रागरहित है, वीतरागस्वरूप है (—ऐसे विकल्प की बात करते हैं)। आहा...हा...! मार्ग बापू! कोई ऐसा है। आहा...हा...!

उसे यह पद्धति है, इस प्रकार जानना न आवे वह तो अन्दर में जायेगा किस प्रकार? उसकी विधि ही यह है कि मैं अरागी / रागरहित हूँ, वीतरागस्वरूप हूँ—ऐसा जो विकल्प उठे, उससे भी पार वस्तु है। आहा...हा...! वह **नयों से अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है**। निश्चयनय की वृत्ति उठी की मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, एक हूँ, पूर्ण हूँ, पवित्र हूँ—ऐसा जो विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति पर्याय में उठे, उससे पार वस्तु है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : अभी साधन क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। साधन क्या करना? इसे यह करना। अन्दर में पहले ऐसी श्रद्धा करना कि राग से पार है, उसे अनुभव करे तो समकित हो—ऐसी श्रद्धा पहले करना और विकल्प से उसका निर्णय करने पर इसके ख्याल में ऐसा रहना चाहिए कि यह तो अभी विकल्प से निर्णय है। आहा...हा...! निर्विकल्प दृष्टि से जब तक निर्णय न हो, तब तक सच्चा (सत्य) इसे हाथ नहीं आया। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है भाई! क्या हो?

लोग बाहर के उत्साह में (रुक गये)। एक तो धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र, कुटुम्ब एकत्रित होकर बैठा हो, उसमें पाँच-पचास, करोड़ रुपये दो-पाँच दस करोड़ हों... आहा...हा...! और आमदनी की बातें होती हों। आहा...हा...! यह लड़का इतना कमाया और यह लड़का इतना कमाया और इस जगह ऐसे कमाया... अरे..रे! क्या है? प्रभु! उसके साथ तुझे क्या सम्बन्ध है? वह तो सब पाप के, अधर्म के पोटले हैं। आहा...हा...! उसके परिणाम में तो दुर्गति होनी है।

मोक्षपाहुड़ में सोलहवीं गाथा में तो ऐसा कहा '**परदव्वादो दुग्गई**' परमात्मा ऐसा कहते हैं कि हम भी तुझसे भिन्न परद्रव्य हैं। हमें भी तू याद करेगा तो तुझे विकल्प और दुर्गति होगी। आहा...हा...! दुर्गति अर्थात्? चैतन्य की गति नहीं होगी और चार गति में भले स्वर्ग मिले परन्तु वह दुर्गति है। आहा...हा...! '**सद्दव्वादो हु सुग्गई, परदव्वादो**

www.vitragvani.com

दुग्गई' यह शब्द है। मोक्षपाहुड़ की सोलहवीं गाथा। स्वद्रव्य से सुगति (है)। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का एकरूप, उसका आश्रय लेकर जो पर्याय हो, वह सुगति है। वह चैतन्य की गति और चैतन्य के परिणाम हैं और परद्रव्य को लक्ष्य में लेकर, स्वद्रव्य से हटकर... आहा...हा...! धर्म के नाम से भी भगवान का स्मरण करते हुए... आहा...हा...! पंच परमेष्ठी को भी याद करते हुए यह जो विकल्प उठे, वह चैतन्य की गति नहीं। आहा...हा...! भाई! सम्यग्दर्शन कोई ऐसी चीज़ है कि उसे तो... आहा...हा...! लाखों, करोड़ों में कोई पा सकता है परन्तु सन्मुख हो सकता है। समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो यह कहा, **नयों से अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है**। द्रव्य का अवलम्बन कर... आहा...हा...! पूर्णस्वरूप वस्तु है, उसका अवलम्बन कर; विकल्प का नहीं। बातों तो एकदम सादी भाषा में आवे, परन्तु बापू! भाव तो है वह है। अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है वहाँ। आहा...हा...! पहले में पहले करनेयोग्य हो तो यह है, बाकी सब बातें हैं और इसके बिना व्रत, तप, भक्ति, और त्याग करके बैठे, वह सब मिथ्यात्व का पोषण है। आहा...हा...! मिथ्या अर्थात् झूठे भाव का पोषण है। आहा...हा...!

प्रभु आत्मा अन्दर, सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव की आज्ञा है, हुकम है कि प्रभु! तू तेरी चीज़ का अवलम्बन ले न! हमारा अवलम्बन लेने से भी तुझे प्रभु! राग होगा। तेरी प्रभुता में खोट आयेगी। आहा...हा...! वस्तु का अवलम्बन ले, और चैतन्य प्रभु है न! प्रभु! हम तो पर्याय में प्रभु हुए परन्तु द्रव्य से तो प्रभु हम भी हैं और तू भी है। आहा...हा...! जिसमें से पर्याय आयी है, वह प्रभु में से आयी है। प्रभु में से प्रभु की / केवली की पर्याय आयी है। आहा...हा...! वह कोई पूर्व पर्याय से नहीं आयी, राग से नहीं आयी। आहा...हा...! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द—ऐसा जो परमात्मा जिनेश्वरदेव को वर्तमान दशा में, पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई, वह पूर्णता प्रभु की कहाँ से आयी? वह पूर्ण प्रभु अन्दर भगवान है, उसमें से आयी है। अरे! कैसे बैठे? आहा...हा...!

एक लड़का नौ महीने का और दस महीने का रूपवान हो और ऐसे चुम्बन करे, वहाँ उसे मानो कि आहा..! क्या है यह! आहा...हा...! उसमें भी साठ वर्ष में लड़का हो,

www.vitragvani.com

और एक ही हो, परिवार में दूसरे लड़कों को लड़का न हो और इसे हो तो, आहा...हा... ! लड़के को चुम्बन करे, वह चुम्बन मुँह को नहीं छूता, हों ! उसके गाल को यह होंठ नहीं छूता। यह मानता है कि (मैंने चुम्बन किया) । आहा...हा... !

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं प्रभु ! तू अन्तर में महाप्रभु है, उस द्रव्य का अवलम्बन ले। आहा...हा... ! समझ में आया ? वस्तु है, वस्तु अन्दर प्रभु है, सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप तू है। आहा...हा... ! उसका अवलम्बन ले। **तो चैतन्य प्रगट होगा।** आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई ! क्या हो ? अन्दर भगवानस्वरूप बिराजमान है प्रभु ! द्रव्य स्वयं भगवानस्वरूप ही है। आहा...हा... ! अरे ! कैसे जँचे ! एक, दो बीड़ी ठीक से पीवे, वहाँ दिमाग तर हो गया। आहा...हा... ! सबेरे डेढ़-पाव सेर चाय पीवे, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहा...हा... ! दिमाग ठीक काम करेगा। अरे ! प्रभु ! क्या है ? भाई ! कहाँ तू गया ? कहाँ फँसा ? आहा...हा... !

यहाँ तो शुद्ध चैतन्य की ओर लक्ष्यवाला जो विकल्प होता है... आहा...हा... ! ऐसे विकल्प से भी प्रभु आत्मा हाथ नहीं आता, तुझे समकित नहीं होगा प्रभु ! आहा...हा... ! भगवान ! तू तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान है। उस भगवान का अवलम्बन अन्तर में ले तो तुझे समकित होगा। धर्म की पहली शुरुआत वहाँ से होगी; बाकी सब बातें हैं। इसने उपवास किये और व्रत पाले, भक्ति की और अमुक किया, वे सब राग की क्रियायें, बन्ध की क्रियायें हैं। आहा...हा... ! कठिन काम है, भाई ! यह गुलाँट खाना अनन्त पुरुषार्थ है, भाई ! आहा...हा... !

पर्याय परतरफ है, उसे अन्तर में झुकाना, वह क्या बात होगी ! वह शब्दों में भले आवे परन्तु भाव कोई अलौकिक है ! जो अन्दर द्रव्य पड़ा है, वस्तु चैतन्यद्रव्य आत्मपदार्थ है, उसका अवलम्बन ले, पर्याय को उसका अवलम्बन ले, पर्याय को उसका अवलम्बन दे। आहा...हा.. ! भगवान की मूर्ति और भगवान का अवलम्बन लेने जायेगा, वहाँ भी तुझे राग होगा। आहा...हा... ! वह आवे परन्तु वह राग होगा। आहा... ! अरे ! ऐसी बात कहाँ है ?

प्रभु ! तेरी महिमा इतनी है कि मैं शुद्ध हूँ—ऐसी वृत्ति उठे, वह कलंक है। आहा...हा... ! वह बन्धपरिणाम है और तुझे समकित जो अबन्धपरिणाम है, उसे प्रगट

www.vitragvani.com

करनाा हो तो विकल्प से पार जो परिस्थिति, आहा...हा... ! उसका अवलम्बन ले। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! क्या हो ? यह कोई वाद-विवाद से पार पड़े ऐसा नहीं है। लोग अभी, व्यवहार करो, यह करो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो... करते-करते तुम्हें धर्म हो जायेगा (ऐसा मानते हैं)। अरे प्रभु ! क्या कहता है तू ? भाई ! आहा...हा... ! यहाँ तो शुद्ध के अवलम्बनवाले विकल्प जो हैं, उन्हें भी छोड़ने की बात है। आहा...हा... !

द्रव्य का अवलम्बन कर... प्रभु अन्दर पूर्णानन्द प्रभु है। हिन्दी में 'है', इसमें (गुजराती में) 'छे'। उसका अवलम्बन ले। **तो चैतन्य प्रगट होगा।** तो पर्याय में तुझे चैतन्य का भान होगा कि आहा...हा... ! यह तो महा भगवान है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में जाये, वह अवलम्बन। भाषा तो चाहे जिस प्रकार से आये। इस राग का अवलम्बन नहीं, अन्तर का अवलम्बन, अर्थात् उस ओर से छूटकर अन्तर में जाना, इसका नाम द्रव्य का अवलम्बन है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : परन्तु उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यही उपाय है। यह उपाय है। अवलम्बन लेना, यह उपाय है। दूसरा फिर (कैसा) उपाय ? दूसरा फिर उपाय कैसा ? छोटाभाई ! भगवान ! मार्ग तो ऐसा है, हों ! आहा...हा... ! दुनिया के मरण देखते हैं न ! छोटी-छोटी उम्र के ऐसे चले जाते हैं। आहा... ! कहाँ जाये बेचारे ? धर्म किया न हो। अरे रे ! पुण्य का भी ठिकाना न हो, ऐसे मरकर बहुत तो पशु में अवतरित होंगे, बापू ! ढोर का अवतार होगा। ऐसे वीतरागमार्ग में प्रभु ने यह कहा है। आहा...हा... !

क्योंकि स्वरूप है प्रभु का-आत्मा का, वह आनन्दसागर है, प्रभु ! तुझे उसका माहात्म्य नहीं आया और राग का माहात्म्य आया। अशुभराग यह धन्धा-पानी... आहा...हा... ! बापू ! यह राग आड़ी चीज़ है, इसके फल में वक्रता होकर वह आड़ा तिर्यंच होगा। यह पशु है न ऐसा आड़ा ? यह मनुष्य खड़ा है, तिर्यंच ऐसा आड़ा है। गाय, भैंस, ऐसे तिरछे / टेढ़े हैं। आहा...हा... ! अरे बापू ! मार्ग ऐसा है, जरा सूक्ष्म है, भाई ! इसे भव का डर चाहिए, भाई ! आहा.. ! भव-भय का डर। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

योगीन्द्र मुनिराज ने कहा न ? 'भव भय से डरि चित्त' भव दुःख से डरि चित्त-ऐसा नहीं। नरक में दुःख है और स्वर्ग में सुख है, यह नहीं। भव स्वयं पूरा दुःखरूप है। आहा...हा... ! कौन सा भव होगा ? कहाँ होगा ? कहाँ जायेगा ? ऐसे भव का जिसे भय और डर लगा हो, वह आत्मा में अन्दर जाना चाहता है। आहा...हा... ! जिसे बाहर का उत्साह वर्तता हो, वह अन्दर में कैसे जा सकेगा ? आहा...हा... ! यह तो अभी पहली सम्यग्दर्शन होने की विधि है। चारित्र तो कहीं रहा, बापू ! वह तो किसे कहना ? वह तो अभी... आहा...हा... ! चारित्र तो वह वस्तु देखी त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु, निराकुल स्वभाव के सागर में फिर रमणता-अन्दर उस आनन्द में स्थिरता, स्थिरता, विशेष आनन्द की दशा प्रगट करना, उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई व्रत पालना और नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं। आहा...हा... ! १४९ (बोल पूरा) हुआ।

शुद्ध तत्त्व की दृष्टि प्रगट करके उस नौका में बैठ गया, वह तर गया ॥१५०॥

१५०, **शुद्ध तत्त्व की दृष्टि प्रगट करके....** पूर्ण शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव वस्तु की जिसने अन्तर्मुख होकर दृष्टि प्रगट करके, **उस नौका में बैठ गया,... उस नौका में बैठ गया, वह तर गया....** आहा...हा... ! वह अब भव के अभाव की ओर (गया)। ऐसी बातें, परन्तु सूक्ष्म। बहुत फेरफार है। इसलिए फिर सोनगढ़वाले तो निश्चयाभासी हैं— (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे ! प्रभु ! तू कहे बापू ! मोहनलालजी ! इनने सुना है न सब, कहो, भाई ! सब पता है, बापू ! तू क्या कहता है ? प्रभु ! तुझे खबर नहीं है, भाई ! आहा...हा... ! यह सत्याभासी अर्थात् निश्चयाभासी। सत्य वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे ! प्रभु ! सुन न भाई ! ऐसा कहते हैं, व्यवहार से होता है, यह बात तो करते नहीं। अरे ! व्यवहार है, वह तो राग है; उससे तीन काल में आत्मा प्राप्त नहीं होता, समकित नहीं होता, तेरे व्यवहार लाख कर न। आहा...हा... !

छहढाला में नहीं आया ?

www.vitragvani.com

मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥

छहढाला में आता है परन्तु कभी अर्थ कहाँ समझना है इसे। ऐसा का ऐसा अपनी मानी हुई बातें रटते रहना है। हो गया! घण्टा, दो घण्टा सुने, फिर इस पाप के धन्धे में जुड़ जाये। आहा...हा...!

शुद्ध तत्त्व की दृष्टि प्रगट करके.... भगवान पूर्णानन्द प्रभु! राग के विकल्प से पार / भिन्न चीज़ है। उसकी दृष्टि प्रगट करके, **उस नौका में बैठ गया,....** अब नौका पार करती है। आहा...हा...! **वह तर गया।** सम्यग्दर्शन हुआ, वह तर गया। आहा...हा...! भले वह गृहस्थाश्रम में हो परन्तु जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, अनन्त काल में हुआ नहीं। आहा...हा...!

मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥

छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार' मुनिपना लिया, नग्नपना (लिया) हजारों रानियाँ छोड़ी, पंच महाव्रत लिये, आहा...हा...! एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं परन्तु अन्दर में महाव्रत के परिणाम मेरे हैं और मुझे लाभ करेंगे, यह मिथ्यात्व की दृष्टि नहीं छोड़ी। आहा...हा...! उसे आत्मा का स्वाद नहीं आया, उसे सुख नहीं आया। वे पंच महाव्रत के परिणाम दुःखरूप—आस्रव दुःखरूप है। यह अब क्या करना? किसे कहना? आहा...हा...! जो अन्दर पंच महाव्रत के, बारह व्रत के विकल्प हैं, वे दुःखरूप हैं, उन्हें साधन मानता है। क्या करना? प्रभु! भाई! तुझे कहाँ जाना है? आहा...हा...! उस साधन से तो राग है और राग के साधन से तो बन्ध है और बन्ध से तो संसार है। आहा...हा...! और जिसने द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन लेकर दर्शन प्रगट नहीं किया, वह देह के छूटने के काल में, प्रभु! उसे शरण कहाँ है? वह रग खिंचेगी। आहा...हा...! पीड़ा का शूल-शूल चढ़ेगा, रजकण-रजकण पलट जायेंगे। उस समय यह जो शरण है, उसकी दृष्टि नहीं होगी तो वह जायेगा कहाँ? आहा...हा...! वह दुःख में दब जायेगा, भाई! वहाँ कोई शरण नहीं है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

शुद्ध तत्त्व की दृष्टि प्रगट करके.... आहा...हा... ! **उस नौका में बैठ गया,...** नाव, तरने की नाव, उसमें बैठ गया। बस ! अब पार हो जायेगा। आहा...हा... ! रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है न ? वह सम्यग्दृष्टि है, गृहस्थाश्रम में हो तो भी वह मोक्षमार्ग में है और मुनि हुआ है, पंच महाव्रत पाले, हजारों रानी छोड़कर नग्न है परन्तु वे पंच महाव्रत के परिणाम मुझे लाभदायक हैं और वह मेरा कर्तव्य है—ऐसी मिथ्यादृष्टि है, वह बन्ध मार्ग में-संसारमार्ग में है। आहा...हा... ! पण्डितजी ! है न ? पता है न ? रत्नकरण्ड श्रावकाचार की गाथा है 'गृहस्थो मोक्ख मग्गो' गृहस्थ भी, जिसे अन्तर्दृष्टि हुई है, सम्यग्दर्शन (हुआ है), वह मोक्षमार्ग में है और जो अनगार हुआ है, मुनि हुआ है, साधु हुआ है परन्तु राग की क्रिया से मुझे लाभ होगा, यह पंच महाव्रत पालता हूँ, इनसे मुझे धर्म होगा—(ऐसा मानता है), वह मिथ्यादृष्टि संसारमार्ग में है। आहा...हा.. ! ऐसी बातें हैं। १५० (बोल पूरा हुआ।)

एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतर जा। कहीं रुकना मत। अन्तर से खटका न जाय, तब तक वीतरागदशा प्रगट नहीं होती। बाहुबलीजी जैसों को भी एक विकल्प में रुके रहने से वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई! आँख में किरकिरी नहीं समाती, वैसे ही आत्मस्वभाव में एक अणुमात्र भी विभाव नहीं पुसाता। जब तक संज्वलनकषाय का अबुद्धिपूर्वक का अतिसूक्ष्म अंश भी विद्यमान हो तब तक पूर्णज्ञान-केवलज्ञान प्रगट नहीं होता ॥१५१ ॥

१५१, **एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतर जा।** यह क्या कहना चाहते हैं ? कि ऐसा पहले करना और पहले ऐसा करना और फिर ऐसा करना, यह सब छोड़ दे। पहले राग की मन्दता करूँ और पहले यह करूँ (यह नहीं)। आहा...हा... ! यहाँ तो पहले विकल्प से निर्णय करूँ और फिर अन्दर जाऊँ यह भी रहने दे, कहते हैं। आया ? चेतनजी !

जैनमित्र में पढ़ा ? वचनामृत के गुणगान आये हैं। स्वतन्त्र व्यक्ति है न, मध्यस्थ है,

www.vitragvani.com

ऐसा कि इन बहिन के वचनामृत पठन करनेयोग्य है, अभ्यास के प्रेम में रस आवे ऐसा है। बहुत अच्छा लिखा है। अरे! आहा...हा... ! सादी भाषा गुजराती, अपने तो इसका हिन्दी भी हो गया है। इस गुजराती का हिन्दी हो गया है। दस हजार तो अभी हिन्दी में प्रकाशित हुई है, वह पहले प्रकाशित हो गये हैं। पौने सात हजार ग्राहकों को भेंट दिये हैं और वे प्रकाशित हुए हैं दस हजार। दस हजार दूसरे प्रकाशित हुए (कुल) बीस हजार हिन्दी में (प्रकाशित हुए हैं)। बहुतों को भेंट (दिये हैं)। जो आत्मधर्म ले, उसके पास पहुँच गये हैं। जरा देरी से पहुँचे हैं। आहा...हा... ! पढ़े न तो इसे ख्याल आवे कि ऐसी चीज़ कहते हैं! एक बार तो वेदान्ती पढ़े तो भी उसे ऐसा हो जाये ऐसा है कि बात तो बराबर है। एक वेदान्तवाला ले गया है, पढ़कर प्रसन्न-प्रसन्न (हो गया)। बापू! यह तो परमसत्य सादी भाषा में है। गुजराती बोलचाल की भाषा में है यह तो। आहा...हा... !

एकदम पुरुषार्थ करके.... अर्थात्? पहले यह अशुभ टालूँ और फिर कुछ शुभ करूँ और फिर कुछ इस शुद्ध चैतन्य के विकल्प करूँ और फिर विकल्प छोड़कर बाद में करूँगा... ऐसा रहने दे। **एकदम पुरुषार्थ करके....** यह गुजराती भाषा है, तुम्हारे क्या होगा? एकदम का अर्थ क्या होगा? तुरन्त, तुरन्त। तुरन्त ही यह कर, जल्दी यह कर, हिन्दी में। आहा...हा... ! यह सादी गुजराती में एकदम यह कर। एकदम... राग से रहित प्रभु है वहाँ जा। एकदम अर्थात् उसके लिये कोई वायदा न कर और पहले विकल्प से निर्णय करूँगा, पश्चात् यह करूँगा - ऐसा नहीं चलता। आहा...हा... ! आहा...हा... ! ये सब पैसेवाले करोड़पति और अरबोंपति सब बाहर से ऐसे चमक दिखते हैं। आहा...हा... ! उद्योगपति! इसने उद्योग नया किया और ऐसा किया... क्या किया? धूल की। आहा...हा... ! राग किया। पर का उद्योग कौन करे? इन साहूजी के लिये ऐसा लिखते हैं, उद्योगपति! चालीस करोड़ रुपये... परन्तु किया क्या उनने? वह तो राग किया था। आहा...हा... !

मुमुक्षु : नरम व्यक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नरम व्यक्ति। यहाँ सुनने में प्रेम। दो महीने पहले मर गये। पहले यहाँ आ गये थे, व्याख्यान सुन गये परन्तु यह बात अन्तर में बैठना कठिन। बाहर के व्यवहार के आचरणवाले मिलें, उसमें उन्हें रस लग जाये। यह नग्न है, साधु है, बाह्य का

www.vitragvani.com

त्यागी है, पंच महाव्रत पालता है। आहा...हा... ! इस व्यक्ति का रस लग जाता है। जगत् को इस मिथ्यात्व का रस छूटना बहुत कठिन काम है।

एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतर जा। जैसे कुएँ में... हमारी भाषा है-खड़ा कोशियो पड़े। खड़ा कोश होता है न? जैसे कुएँ में पड़े। ऐसा नजर से देखा है। हमारे उमराला में बड़ी नदी और कुआँ (था) छोटे लड़के, हम देखने जाते, जवान मनुष्य बीस-बीस वर्ष के, ऐसे खड़े पड़ें पानी में, कुएँ में कोश पड़े न कोश? कोश समझे क्या कहते हैं? लोहे की कोश।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ......और जाकर ठेठ से रेत लावे। झट बाहर निकल नहीं सके। अभी भी ऐसे हाथ करके ऐसा कहे कि पाताल में से लाया हूँ, कुएँ में नीचे ठेठ तल में रेत होती है न? हमारे कुआँ है, उमराला में नदी का कुआँ है, एक उतारा है उसके नीचे, गढ़ के नीचे गहरा कुआँ है। अन्दर... नाग हो, वह हो परन्तु अन्दर मध्य में न हो, पड़े और अन्दर जाकर एकदम बाहर अभी मुँह न निकल सके परन्तु रेत (दिखावे) ऐसा कि मैं नीचे से ले आया हूँ। इसी प्रकार आत्मा के तल में जाकर। आहा...हा... ! अर्थात् ध्रुव जिसका तल है। वर्तमान पर्याय है, वह ऊपर है और उसका तल गहरा... गहरा... गहरा... गहरा... ध्रुव है। आहा...हा... ! वहाँ उतर जा, गहराई में उतर जा।

एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतर जा। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, ध्रुवभाव जो आनन्द का नाथ प्रभु है, वहाँ गहराई में उतर जा, ध्रुव में जा। ध्रुव जो गहराई में पड़ा है, वहाँ जा। पर्याय तो ऊपर -ऊपर है, अवस्था जो पर्याय है, वह तो ऊपर-ऊपर तैरती है, द्रव्य में प्रविष्ट नहीं। आहा...हा... ! परन्तु पर्याय का लक्ष्य अन्दर गहराई में ले जा। आहा...हा... ! पर्याय, द्रव्य में जाती नहीं परन्तु पर्याय उसकी ओर झुके; इसलिए गहराई में पर्याय गयी और पर्याय ने पलटा लिया —ऐसा कहने में आता है। आहा...हा... ! ऐसी बात बहुत (कठिन) बापू! सत्य श्रवण मिलना, बापू! वह भाग्य के बिना नहीं मिलता, ऐसी बात है भाई! आहा...हा... ! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा बिराजते हैं, सीमन्धर प्रभु जिनेश्वर बिराजते हैं। सीमन्धर

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रभु ! महा विदेह में। आहा...हा... ! उसमें से आयी हुई वाणी, यह उसमें से आये हुए (ये वचन हैं)। बहिन वहाँ से आयी हैं। यह उनकी वाणी अन्दर की है। आहा..हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

कहीं रुकना मत। आहा...हा... ! इतने ज्ञान को तो प्राप्त करूँ, इतने तो शास्त्र को पढ़ जाऊँ, पढ़ जाऊँ-ऐसे कहीं रुकना मत। प्रभु ! आहा...हा... ! यह पढ़ने से पार नहीं आता, प्रभु ! आहा...हा... ! **अन्तर से खटका न जाय....** कुछ भी अन्दर विकल्प की खटक रहा करे (कि) अभी नहीं, बाद में और इसके पहले यह करूँ और फिर यह करूँ... अरे ! जबतक यह खटका रहा करे, तब तक अन्दर नहीं जा सकेगा। आहा...हा... ! खाने-पीने के साधन कुछ ठीक रहें, लड़के मार्ग में लग जायें, फिर निवृत्ति लेकर करूँगा। वहाँ मर जायेगा बीच में। तब कहाँ करेगा ? आहा...हा... !

लड़कों को रास्ते पर चढ़ा दूँ (कामकाज से लगा दूँ), मेरा जो धन्धे का अनुभव है तथा उसे धन्धे में लगने से उसमें जो आमदनी हुई है, उसकी यह विधि क्या है, वह सब अनुभव लड़कों को अनुभव देकर मार्ग पर लगा दूँ। आहा...हा... ! अरे ! मर जायेगा भाई ! इसमें रुकना नहीं। इसमें तो नहीं परन्तु यह शास्त्र पढ़ने में रुकना नहीं अब। तुझे चीज़ ख्याल में आ गयी, कोई दूसरी अन्दर है तो अब वहाँ जाने में कहीं रुकना नहीं, भाई ! आहा...हा... ! हम इतना तो उपदेश दुनिया को दें और फिर मैं अन्दर में जाऊँगा... रहने दे, यह हाथ नहीं आयेगा। आहा...हा... ! ऐसा है यहाँ। आहा...हा... ! थोड़े से लोग धर्म समझें, सुनें और इतना समय थोड़ा निकालें, और फिर अन्दर में जाने की निवृत्ति लूँगा, भाई ! रहने दे। यह हाथ नहीं आयेगा। इसके लिये रुक मत। आहा...हा... !

प्रभु ! सिर पर मौत गाज रही है अन्दर, किस समय में देह छूटेगी, एकदम छूट जायेगी। बातें करते-करते देह छूट जायेगी, भाई ! तुझे पता नहीं। आयुष्य की स्थिति पूर्ण (होगी) बापू ! इतना रोग आवे, फिर देह छूटे—ऐसा कोई नियम नहीं है। आहा...हा... ! देह छूटने के नगाड़े (बज रहे हैं) (देह) छूटने का काल तो इस भव में आयेगा ही। कहीं दूसरा भव करेगा ? आहा...हा... ! उससे पहले कर ले, प्रभु ! आहा...हा... ! अभी जवानी है, इसलिए अभी तो यह कमा लें।

www.vitragvani.com

एक बार वीरजीभाई ने कहा था, वहाँ कॉंप में थे न? (संवत्) १९९० के साल। सम्प्रदाय में थे, वढ़वाण, तीन-तीन हजार लोग व्याख्यान में, सम्प्रदाय में हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न! लोग समाते नहीं, दरिया-परिया, सामने, सामने, हों! उपाश्रय में तो लोग समाते नहीं। भोजनशाला, वह बड़ी जगह है, ओसरी (पाट) लानी पड़े। ओसरी में ऐसे पाट नहीं रखी जा सके, इतने लोग! १९९० की साल, तीन-तीन हजार लोग। आहा...हा...! वीरजीभाई आये। कैसे भाई! कैसे आये? कि यह जरा ऐसा अमुक, उस समय ऐसा बोला गया कि अपने थोड़ा सा कमा लें फिर करेंगे, यह क्या होगा? क्या कहा यह तुमने? और पढ़ा हुआ अवश्य, इस काठियावाड़ में दिगम्बर का वाचन पहले उन्हें-वीरजी वकील को, परन्तु यह बोले, मैंने कहा-क्या कहते हो तुम यह? अभी थोड़ा कमा लें, क्या कहते हो? अभी कमा लें, फिर करेंगे यह क्या है? फिर तो निवृत्ति ले ली थी परन्तु उस समय ऐसा बोल गये। क्योंकि वहाँ वढ़वाण कॉंप में कुछ वकालात का काम होगा तो आये और सुना कि महाराज वढ़वाण में हैं। वहाँ तो दो मिनिट है। व्याख्यान में सभा, बड़ी सभी, प्रतिष्ठा तो बड़ी थी न हमारी तो! तीन-तीन हजार लोग १९९० की साल। कितने वर्ष हुए? ४४।

वहाँ भोपाल में तो चालीस हजार थे न? भोपाल में व्याख्यान दिये थे, पंच कल्याणक में गये थे, वहाँ चालीस हजार लोग, आठ दिन थे और इसके अतिरिक्त जयपुर में तो जब रथ निकला तो कितनों को गिनती नहीं मिलती! लाखों लोग ऐसे ऊपर खड़े देखते। भगवान को बिराजमान किया, वहाँ रथ में मैं बैठा था। लोग देखने निकले कि यह क्या है? इक्कीस तो हाथी सामने! इक्कीस हाथी! और हजार-हजार, दो-दो हजार के अन्तराल में एक-एक इस ओर बैंडबाजा। यह तो कोई बड़ा राजा आया है क्या? गाँव में साधु थे, वे देखने निकले, परन्तु यह तो बाहर की बातें हैं बापू! इसमें कोई आत्मा नहीं है। आहा...हा...! यह तो एक शुभविकल्प हो और वह क्रिया होने के काल में ऐसी हो। उसके साथ आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। उससे आत्मा को कोई लाभ होगा (—ऐसा नहीं है)। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **कहीं रुकना मत। अन्तर से खटका न जाय....** कुछ भी अन्दर विकल्प रहा करे, यह करूँ और यह करूँ और इतना करने के पश्चात् यह करूँ ऐसा यदि

www.vitragvani.com

वायदा किया तो अन्दर नहीं जा सकेगा। आहा...हा...! भगवान का तल तुझे हाथ नहीं आयेगा। **अन्तर से खटका न जाय तब तक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती।** अब यहाँ से दृष्टान्त दिया। **बाहुबलीजी...** मुनि थे। आहा...हा...! उन **जैसों को भी एक विकल्प में रुके रहने से....** आहा...हा...! यह जमीन भरत की है, इतना एक संज्वलन का विकल्प रहा। मुनि हैं, तीन कषाय का अभाव है। मुनि हैं परन्तु यह जरा एक विकल्प, खटक रह गयी, खटक (तो) केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। आहा...हा...! हजारों रानियाँ छोड़कर, वह राज छोड़कर, तीन कषाय का नाश करके, आनन्दस्वरूप भगवान, जिसका भावलिंगी मोहरछाप अन्दर प्रचुर स्वसंवेदन को प्रगट किया था परन्तु यह संज्वलन का एक विकल्प जरा चौथी कषाय का रह गया। आहा...हा...! उन्हें बारह-बारह महीने तक शरीर में बेलें लिपट गयीं। आहा...हा...! कुछ हो, बेल उन्हें लिपट कर बड़ी हो। यहाँ अपने नहीं (आती)। तार के खम्भे होते हैं न, उन खम्भे के ऊपर ऐसे कथिर के (तार) बाँधे होते हैं न? तो बेल वहाँ चढ़ जाती है। यहाँ बाहर रास्ते में है। बेल वहाँ चढ़ जाती है, खम्भे को सहारा होता है न? वहाँ चढ़ जाती है ऊपर। (बाहुबलीजी) खड़े थे, वहाँ बेल चढ़ गयी, बारह महीने तक। आहा...हा...! मुनि, हों! भावलिंगी सन्त! आहा...हा...! उन्हें भी संज्वलन का एक विकल्प ऐसा रुक गया कि भरत की जमीन में (खड़ा हूँ)। आहा...हा...!

एक विकल्प में रुके रहने से वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई! उन्हें वीतरागता नहीं आयी। आहा...हा...! जिन्हें सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, चारित्र भी अपूर्ण है। पूर्ण वीतरागचारित्र नहीं। आहा...हा...! वे भी खटक में रुक जाने से,... आहा...हा...! वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई। **आँख में किरकिरी नहीं समाती, वैसे ही...** आँख में एक रजकण आवे वहाँ ऐसे खटक... खटक... खटक... खटक... खटक... रहा करती है, पानी बहता है, खटक... खटक रहा करती है। इसी प्रकार ज्ञान के आनन्द में एक भी राग के कण का रजकण यदि रह गया, आहा...हा...! केवल (ज्ञान) नहीं होगा, वीतरागता नहीं होगी। आहा...हा...! यहाँ राग की एकता में यदि छोटे विकल्प में रुक गया तो समकित नहीं होगा और वहाँ अस्थिरता के राग में रुक गया तो वीतरागता नहीं होगी। आहा...हा...!

आँख में किरकिरी नहीं समाती, वैसे ही आत्मस्वभाव में एक अणुमात्र भी

www.vitragvani.com

विभाव नहीं पुसाता। आहा...हा... ! वीतरागस्वरूप प्रभु है न ! 'घट घट अन्तर जिन बसै घट घट अन्तर जैन' आहा...हा... ! ऐसा परमात्मस्वरूप वीतरागरूप से बिराजमान भगवान आत्मा में एक कण भी राग का यदि रहा तो उसकी वीतरागदशा नहीं होगी। पहले नीचे भी राग के कण में रुका तो समकित नहीं होगा और फिर समकित तथा चारित्र होने के बाद भी जरा संज्वलन के अंश की खटक रह गयी तो वीतराग नहीं होगा। आहा...हा... !

जब तक संज्वलनकषाय का अबुद्धिपूर्वक का.... देखा ? आहा..हा... ! अबुद्धिपूर्वक भी जहाँ अभी राग है, छठवें में तो बुद्धिपूर्वक है अभी, परन्तु यहाँ तो अबुद्धिपूर्वक भी जब तक है। आहा...हा... ! श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि वे खड़े थे न ध्यान में ? तब उनकी बहिन थी न, ब्राह्मी और सुन्दरी; वे उनके समीप गयीं – ऐसा कहती हैं आहा...हा... ! 'वीरा मोरा गजथकी उतरो' गज अर्थात् हाथी। 'ए गज चढ़े केवल न होय रे, वीरा मोरा राग न.... ' रागरूपी हाथी के... आहा...हा... ! उससे हट जाओ, उतर जाओ।

यहाँ अपने में तो आता है, भरत जहाँ गये और ऐसे पैर लगते हैं और ऐसे प्रभु (सामने देखते हैं)... ओहो...हो... ! इस भरत को तो कुछ नहीं। आहा...हा... ! भरत की जमीन के लिये कुछ नहीं और भरत को मैंने ऐसे चक्र मारा था, इसने बाण मारा था, बाहुबलीजी को ? तो वे वापस झुक गये हैं अभी। एकदम... जो राग की जरा खटक थी, वह हट गयी और हटकर उतर गये अन्दर। केवल (ज्ञान प्राप्त हुए) ! जलहल ज्योति चैतन्य भगवान अरिहन्त पद एक क्षण में प्राप्त हुआ। आहा...हा... !

संज्वलनकषाय का अबुद्धिपूर्वक.... अर्थात् सातवें में अबुद्धिपूर्वक है न ! वह **भी विद्यमान हो...** छठवें में तो बुद्धिपूर्वक है अभी और अबुद्धिपूर्वक है, वह नहीं जानता। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि अबुद्धिपूर्वक उपयोग में जरा सा रह गया। आहा...हा... ! **तब तक पूर्णज्ञान-केवलज्ञान प्रगट नहीं होता**। आहा...हा... ! एक अबुद्धिपूर्वक भी राग का अंश अव्यक्तरूप से जो रहा हो, तो भी वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता तो फिर नीचे राग के कण के प्रेम और रुचि में पड़ा हो, उसे सम्यग्दर्शन हो—यह तीन काल में नहीं होता।

विशेष कहेंगे...... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अषाढ़ कृष्ण - १४, बुधवार, दिनाङ्क ०२-०८-१९७८
वचनामृत- १५२-१५५ प्रवचन-५५

आत्मा को पहिचानकर स्वरूपरमणता की प्राप्ति करना ही प्रायश्चित्त है॥ १५२॥

१५२ बोल है। १५१ हो गया न? आज हिन्दी में लेते हैं। **आत्मा को पहिचानकर स्वरूपरमणता की प्राप्ति करना ही प्रायश्चित है।** आहा...हा...! प्रत्याख्यान कहो, प्रतिक्रमण कहो, आलोचना कहो, प्रायश्चित कहो; वह सब भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण स्वरूप का ज्ञान करके, पहिचान करके, उसमें रमणता करना उसका नाम प्रायश्चित है। बाहर से कोई प्रायश्चित लेते हैं कि मैंने पाप किया। वह तो शुभभाव है, वह तो राग है। आहा...हा...! वीतरागस्वरूप जो आत्मा (है), उसका ज्ञान में ख्याल करके, ज्ञान में उस वस्तु की पहिचान करके। है? **आत्मा की पहिचानकर...** जाने बिना रमणता किसमें? और रमणता के बिना प्रत्याख्यान, चारित्र, प्रायश्चित कहाँ से आया? आहा...हा...!

आत्मा को पहिचानकर... प्रथम में प्रथम यह वस्तु है। पहले ऐसा करना, वैसा करना (-ऐसा नहीं है)। बहुत तो ऐसा आये कि नव तत्त्व क्या है, उसका विकल्प से विचार करना। किन्तु वह कोई मूल वस्तु नहीं। ज्ञानानन्द प्रभु, ऐसी वस्तु का, अनन्त चैतन्य रत्नाकर का भण्डार, उसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर, वर्तमान ज्ञान की दशा में उसे ज्ञेय बनाकर, उसे पहिचानकर। ऐसी बात है। बाद में उसमें रमणता-लीनता करनी। आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसमें लीनता / रमणता करनी, उसे प्रायश्चित कहो, धर्म कहो, संयम कहो, चारित्र कहो - वह सब यही है। आहा...हा...! 'प्रायश्चित' शब्द है न?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : बाहर की शुद्धि किये बिना अन्दर में कैसे जावे ?

समाधान : बाहर की शुद्धि है ही नहीं। अन्तर की शुद्धि (है, वही) शुद्धि है। राग की मन्दता लाख, करोड़ करे, अनन्त बार की। वह कोई शुद्धि नहीं, वह तो अशुद्धि है। आहा...हा... ! कल आया था न ? **एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतर जा।** आया था ? १५१। यह तो माल, तात्त्विक माल की बात है। आहा...हा... !

वस्तु है न ? वस्तु। है तो उसमें उसकी कोई शक्तियाँ है या नहीं ? तो भगवान आत्मा है तो उसकी शक्ति अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता उसकी शक्ति ये है। ऐसी चीज को ज्ञान में ज्ञेय बनाकर... आहा...हा... ! प्रथम में प्रथम यह कर्तव्य है। यह बात है, भैया ! प्रथम में प्रथम अपनी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में सारे आत्मा को ज्ञेय बनाकर, पहिचानकर। ज्ञेय बनाकर (कहो या) पहिचानकर (कहो, सब एकार्थ है) आहा...हा... ! बात तो अपूर्व है, भाई ! मूल बात है।

प्रायश्चित के अधिकार में आया है न ? प्रायश्चित। प्राय अर्थात् प्रकृष्ट। प्रायः शब्द आया है न ? प्रकृष्ट से-अतिशयता से जो गूढ़ ज्ञान में चित्त है। आहा...हा... ! भगवान ज्ञानस्वरूप है, चित् स्वरूप है, बोध स्वरूप है, तीनों एक ही है। चित् अर्थात् मन नहीं। चिद्घन, चित्स्वरूप ज्ञान का पुंज प्रभु, बोधस्वरूप, ज्ञानस्वरूप-तीनों एक अर्थ में है। वह प्राय है। प्राय-प्रकृष्टरूप से वह चीज। उत्कृष्टपने, प्रकृष्टपने, विशेषपने जो खास ज्ञान, बोध और चित्स्वरूप जो त्रिकाल है, उसे प्राय-उत्कृष्टपने चित् अर्थात् ज्ञान, उसमें लक्ष्य करके, उसकी पहिचान करके। आहा...हा... ! नव तत्त्व की पहिचान करके—ऐसा भी यहाँ नहीं कहा। समझ में आया ? अपने को पहिचान करके। यहाँ तो यह बात पहली है, भैया ! आहा...हा... !

अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड परमात्मस्वरूप, अपना परमात्मा -स्वरूप अन्दर है। आहा...हा... ! उसे ज्ञान में प्रकृष्टपने, खासपने उसका बोध करना, उसकी पहिचान करना। आहा...हा... ! यह बात कोई साधारण नहीं। अनन्त काल में पंच महाव्रत लिये, क्रियाकांड किये, व्रत लिये, भक्ति (की), अनन्त बार करोड़ों, अरबों खर्च

www.vitragvani.com

करके परमात्मा के मन्दिर बनाये। वह चीज क्या है ? वह तो एक शुभभाव / पुण्य है; वह कोई धर्म नहीं। आहा...हा... !

धर्म - आत्मा का स्वभाव - ज्ञान, बोध, चित्, आनन्द, शान्ति, वीतरागता—ऐसा जो आत्मा का धर्म। आत्मा धर्मी (है) और उसका वह धर्म है। उसका भेद भी नहीं करके वर्तमान ज्ञान की पर्याय में उसकी पहिचान करना। आहा...हा... ! शब्द तो सरल है परन्तु मार्ग तो (गम्भीर है)। आहा...हा... ! पहले और कुछ करना और बाद में यह होगा—ऐसी यह चीज है नहीं। कोई ऐसा कहे कि पहले कषाय मन्द करे, भक्ति करे, पूजा करे, व्रत करे तप करे तो बाद में यह होगा। ऐसी यह चीज है नहीं। आहा...हा... !

मुमुक्षु : दान, शील, तप करे....

उत्तर : दान, शील, तप। दान (अर्थात्) अपने स्वरूप का दान। अपना आनन्द स्वरूप है, उसे अपनी पर्याय में कर्ता होकर सम्प्रदान-अपने में रखना, अतीन्द्रिय आनन्द को प्रगट करके अपने में रखना, वह दान है। दो, पाँच करोड़ खर्च करे तो दान हुआ और धर्म हुआ, (—ऐसा) किंचित् नहीं।

मुमुक्षु : रुपये की कीमत है।

उत्तर : रुपये की कीमत कहाँ है ? वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। रुपये अर्थात् ? पैसा अर्थात् ? नोट। नोट अर्थात् जड़। वह तो अजीव (है)। जगत में अज्ञानियों को कीमती है। धर्मी को उसकी किंचित् भी कीमत नहीं। आहा...हा... ! पैसा पाप में, दुःख में निमित्त है। आहा...हा... ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई !

मुमुक्षु : लोक में तो पुण्य की कीमत है।

उत्तर : लोक में तो पागल (लोग है)। पागल तो कीमत करेगा ही । पाँच, पचीस करोड़ रुपये हो, करोड़-दो करोड़, दो-चार करोड़ की आमदनी हो (तो लोग कहे कि), बड़ा उद्यमी है। धूल में नहीं है, महापापी है।

मुमुक्षु : धर्म धुरंधर का खिताब दे।

उत्तर : सब पागल इकट्ठे होकर धर्म धुरंधर की पदवी दे। जयसुखभाई ! जगत् से

www.vitragvani.com

अलग जात है, बापू! आहा...हा...! हजारों रानियाँ छोड़ी, पंच महाव्रत पाले वह भी राग है। वह कोई धर्म नहीं, वह कोई धर्म का कारण नहीं। आहा...हा...! धर्म अर्थात् वर्तमान वीतरागदशा। उसका कारण त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप (है)— उसका कारण परमात्मा है। बात बहुत कठिन है, बापू! जगत को धर्म कैसे होता है?—उसका ज्ञान भी नहीं है। कैसे होता है,—वह तो बाद में। आहा...!

यहाँ कहते हैं कि प्रायश्चित है? **आत्मा को पहिचानकर....** छह द्रव्य को पहिचानकर, भगवान को पहिचानकर, तीर्थंकर को जानकर, शास्त्रज्ञान को जानकर— ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! आत्मा जो वस्तु है, पूर्णानन्द अतीन्द्रिय ज्ञान का महा गम्भीर सागर, अन्तर में ज्ञान की पर्याय जाये तो वहाँ ज्ञायकस्वभाव की कहीं हद नहीं (—ऐसा अनुभव होता है)। आहा...हा...! वह वर्तमान ज्ञान की पर्याय जब ज्ञायक में प्रसरती है... आहा...हा...! तो वह पर्याय जिसमें जाती है, उसका कोई प्रमाण-पता नहीं ऐसी शक्ति का भण्डार आत्मा है। आहा...हा...!

(आत्मा को) **पहिचानकर स्वरूपरमणता....** उसका ज्ञान कर, बाद में उसमें रमणता करना। चारित्र अर्थात् चरना। चरना अर्थात् रमना, रमना अर्थात् जमना। आनन्दस्वरूप का ज्ञान करके उसमें आनन्द का भोजन करना। आहा...हा...! ऐसी बात है, भाई! जगत से अलग है। आनन्द की रमणता अर्थात् आनन्द का भोजन-वेदन। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का... आहा...हा...! प्रचुर स्वसंवेदन होना, वह आत्मा में रमणता है और वह चारित्र है, वह प्रायश्चित है। आहा...हा...! १५२ (बोल पूरा हुआ)।

राजा के दरबार में जाना हो तो आसपास घूमता रहता है और फिर एक बार अन्दर घुस जाता है; उसी प्रकार स्वरूप के लिये देव-शास्त्र-गुरु की समीपता रखकर अन्दर जाना सीखे तो एक बार निज घर देख ले॥१५३॥

१५३। **राजा के दरबार में जाना हो....** बड़ा राजा हो और जाना हो तो **आसपास**

www.vitragvani.com

घूमता रहता है.... पहले तो महल के पास आता है, **और फिर एक बार अन्दर घुस जाता है;....** दरबार का मकान है, उसके पास पहले आना, फिर उसमें घुस जाना। **और फिर एक बार अन्दर घुस जाता है; उसी प्रकार स्वरूप के लिये....** भगवान आत्मा, उसका स्वरूप, उसका स्व-रूप, अपना स्वभाव, अपना स्व-रूप त्रिकाली आनन्द और वीतराग अपना स्व-रूप है। आहा...हा...! उसके लिये **देव-शास्त्र-गुरु की समीपता....** देव, गुरु और शास्त्र की समीपता अर्थात् नजदीकपना। वे क्या कहते हैं? उसने यह कहा... वह सबेरे आ गया, जिनवचन में यह कहा। आहा...हा...! वीतरागता प्रगट करो। 'श्रीमद्' वाले ऐसा कहते हैं न? कि गुरु की आज्ञा। लेकिन गुरु की आज्ञा क्या है? वीतरागता प्रगट करो—ऐसा गुरु की आज्ञा है। भगवान की आज्ञा, शास्त्र की आज्ञा, दिव्यध्वनि की आज्ञा और गुरु की आज्ञा। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

अन्तर स्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पाताल कुँआ है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय ज्ञान का गहरा धीर ध्रुव कुँआ अन्दर है। आहा...हा...! उसमें भगवान, देव, गुरु, शास्त्र निमित्तरूप से समीप हो, फिर निमित्त जैसा कहते हैं कि तुम अन्दर में जाओ। हमारे समीप रहने के बजाय तू तेरे समीप जा। आहा...हा...! देव और गुरु, जिनराज और सच्चे निर्ग्रन्थ सन्त, और सर्वज्ञ ने कहे हुए सिद्धान्त, ये सिद्धान्त तो ऐसा कहते हैं कि हमारे समीप तुम आये तो हम तुम को यह कहते हैं कि तुम तुम्हारे समीप जाओ। ऐसा मार्ग है।... आहा...हा...!

'आनन्दघनजी' ऐसा कहते हैं, 'वीरपणुं ते....' वीरपना। वीर्य का पिण्ड और आनन्द का कन्द भगवान आत्मा, आत्मा के स्थान में यह सब है। परन्तु प्रभु! मैंने आप की आज्ञा से जाना। लेकिन मैं मेरे स्वरूप में जाऊँ, तब मेरा कर्तव्य है। 'वीरपणुं ते...' आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। अन्तर का ज्ञान और अन्तर का ध्यान, उसका उत्साह, वीर्य का अन्दर में स्फुरित होना। वीर अर्थात् विशेषरूप से वीर। वीर्य। र अर्थात् इर्य। रहना। अपने पुरुषार्थ से अन्तर्मुख प्रेरणा करना, वह वीर्य है। आहा...हा...! ऐसा सुने, इसलिए लोगों को ऐसा लगे कि सोनगढ़वाले निश्चय निश्चय की बातें करते हैं। लेकिन बापू! निश्चय अर्थात् सत्य ही यह है। निश्चय अर्थात् परम सत्य। फिर अनुभव के बाद में

www.vitragvani.com

स्वरूप में पूर्ण अनुभव हो, तब बीच में व्यवहार आता है। व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि का भाव (आता है) परन्तु वह भाव बन्ध का कारण है।

जितना अपने स्वभाव का अवलम्बन लेकर रहा, इतना मोक्ष का मार्ग है और जितना उस सम्बन्ध को छोड़कर, परद्रव्य चाहे तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ हो, समवसरण में अनन्त बार गया, आहा...हा...हा... ! महाविदेह में अनन्त बार जन्म हुआ, महाविदेह में भगवान का विरह तो कभी होता नहीं, महाविदेह में तो तीर्थंकर सदा होते ही हैं। वर्तमान में प्रभु विराजते हैं। अनन्त काल में महाविदेह में तीर्थंकर और केवली का विरह नहीं है। आहा...हा... ! वहाँ भी अनन्त बार जन्म लिया है और उनके समवसरण में भी अनन्त बार गया है और हीरा की थाली, मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष फूल (लेकर) जय भगवान ! —ऐसी आरती भी अनन्त बार की है परन्तु वह तो शुभभाव है, धर्म नहीं। अपने स्वद्रव्य के अवलम्बन के अलावा जितना (परद्रव्य का) अवलम्बन लेने जायेगा, राग ही होगा। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! वीतरागमार्ग... आहा...हा... !

जिनस्वरूपी वीतराग प्रभु, स्वरूप ही जिन वीतराग स्वरूप है। आहा ! उसे देव-गुरु के समीप सुनकर अन्दर में घुस जाना। आहा...हा... ! है ? **देव-शास्त्र-गुरु की समीपता रखकर अन्दर जाना सीखे....** पूर्ण आनन्दस्वरूप में प्रवेश करना सीखे। प्रवेश का अर्थ उसका जानना करे। **तो एक बार निज घर देख ले।** एक बार निज घर देख ले। आहा...हा... ! वह आता है ना ? भजन में आता है। 'अब हम कबहू न निज घर न आये, अब हम कबहू न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' मैंने पुण्य किया, मैंने पाप किया, मैं सेठ हूँ, मैं रंक हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं पशु हूँ, मैं देव हूँ, मैं शास्त्र पढ़कर पण्डित हुआ। ऐसा भी अनन्त बार किया है। परन्तु निजघर में अन्दर क्या चीज है वहाँ आया नहीं। आहा...हा... !

एक बार निज घर देख ले। अतीन्द्रिय वीतरागमूर्ति प्रभु के सन्मुख एक समय भी हो... आहा...हा... ! उसका आश्रय एक समय भी लिया तो अन्दर में गया। अन्दर में गया, उसका अर्थ-जो अन्दर चीज है, उसका ज्ञान हुआ। समझ में आया ? जो ज्ञान की पर्याय में पर का जो ज्ञानादि है, वह तो परतन्त्र / पराधीन दशा है। आहा...हा... ! उस ज्ञान

www.vitragvani.com

की पर्याय में देव-गुरु-शास्त्र की समीप में रहा तो उन्होंने यह कहा—तेरा गुरु तू है, तेरा देव तू है। आहा...हा... ! तेरा गुरु तू है। तू समझने के लायक हो तो समझाते हैं। हम क्या समझाये ? तुम अपने आत्मा को समझाओ। अरे... ! आत्मा मैं आनन्द स्वरूप हूँ, वहाँ जा। ऐसा समझाते हैं, वे गुरु है। उसकी अपनी दशा ही गुरु है। आहा...हा... ! और उस दशा का गुरु द्रव्य है। अरे... ! ऐसी बातें। बाहर में हो...हा... (करने में) जिन्दगी चली गयी, भाई ! **एक बार निज घर देख ले**। १५३ (बोल पूरा) हुआ।

जिसे जिसकी रुचि हो उसे वही सुहाता है, दूसरा बाधारूप लगता है। जिसे यह समझने की रुचि हो उसे दूसरा नहीं सुहाता। 'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे वादे नहीं होते। अन्तर में प्रयास बना ही रहता है और ऐसा लगता है कि मुझे अब ही करना है॥१५४॥

१५४। **जिसे जिसकी रुचि हो, उसे वही सुहाता है,....** जिसको जिसकी रुचि है, उसे वह ठीक लगता है, सुहाता है। आहा...हा... ! जिसको जिसकी जरूरत लगती है, वह उसे ठीक लगता है, सुहाता है। आहा...हा... ! भगवान आत्मा की रुचि हो तो उसे आत्मा सुहाता है। आहा...हा... ! **जिसे जिसकी रुचि हो....** जिसे जिसकी रुचि हो, उसे वही सुखरूप दिखता है।

दूसरा बाधारूप लगता है। आ...हा...हा... ! बीच में रागादि आता है, वह भी दुःखरूप लगता है। आहा...हा... ! अपने आनन्दस्वरूप की रुचि में, भगवान परमात्मस्वरूप की रुचि में वह सुखरूप लगता है और उससे विरुद्ध चाहे तो परमेश्वर तीर्थंकर की भक्ति, स्मरण या उनके शास्त्र का बोध, या शास्त्र सुनना, ये सब विकल्प दुःखरूप हैं। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! आहा...हा... ! अरे... ! लोगों ने धर्म का मार्ग.... (गुंचवाई गयो) दिया। किसी ने कहीं धर्म मनाया। व्रत ले लो, आजीवन ब्रह्मचर्य ले लो और कपड़े छोड़कर नग्न हो जाओ। नग्न तो अनन्त बार हुआ, सुन न ! आत्मा अन्दर नग्न-विकल्प से रहित है, जिसमें रागभाव के कपड़े ही नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी चीज को पहले

www.vitragvani.com

अनुभव करके पहिचान कर। उस निज घर में जाना। उसमें दूसरी चीज उसे दुःखरूप लगती है। आहा...हा...!

धर्मी जीव को अपना आत्मा सुहाता है। उन्हें रागादि भाव आते हैं, वे सुहाते नहीं। दुःखरूप लगता है, बोझरूप लगता है। आहा...हा...! देव-गुरु और शास्त्र, इन तीनों की भक्ति भी शुभराग का बोझा है। ऐसा कहे, इसलिए लोग माने नहीं। फिर बोले, सोनगढ़ का निश्चयाभास है। व्यवहार से होता है—ऐसा तो कहते नहीं। व्यवहार होता है, किन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, वह बात नहीं है। वैसे ही निमित्त होता है किन्तु निमित्त में पर से कुछ होता है, ऐसा नहीं। देव-गुरु के कारण से अपने में धर्म हो जाये—ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : उनकी समीपता में जाना ठीक है?

समाधान : समीपता का अर्थ, वे क्या कहते हैं, उसे सुने। समीपता तब कहते हैं कि वे क्या कहते हैं, वह समझे तो। 'वढ़वाण' में एक 'केशवलाल' नाम के व्यापारी हैं। 'केशुभाई' यहाँ का वांचन है। पत्नी मर गई है, लड़के हैं पुरानी के, और नयी शादी की है। किसी ने उनको पूछा, आप कहते हो निमित्त से कुछ होता नहीं, निमित्त से होता नहीं—ऐसा मानते हो तो सोनगढ़ क्यों जाते हो? तो उन्होंने कहा, निमित्त से कुछ होता नहीं यह दृढ़ करने के लिए हम जाते हैं। अभी 'वढ़वाण' में है। (लोग) प्रश्न तो करे। निमित्त से कुछ होता नहीं, तो सोनगढ़ जाना, वह तो निमित्त है, तो क्यों जाते हो? सुन, सुन! निमित्त से कुछ होता नहीं—ऐसा दृढ़ करने के लिये हम जाते हैं।

मुमुक्षु : निमित्त से दृढ़ता हुई?

समाधान : निमित्त से दृढ़ता नहीं हुई। सुनते समय अपने में अपने से दृढ़ता होती है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है, भाई! आहा...हा...!

गुरु की आज्ञा बिना धर्म होता नहीं - ऐसा भी है। किन्तु उसका अर्थ क्या? वे करते हैं क्या? गुरु आज्ञा क्या करते हैं? तेरा आश्रय ले—ऐसा गुरु कहते हैं। आहा...हा...! हमारा आश्रय छोड़ - ऐसा कहते हैं।

'आत्मावलोकन' में आता है। एक श्लोक है। 'आत्मावलोकन' शास्त्र है न?

www.vitragvani.com

उसमें एक श्लोक है। मुनि क्या कहते हैं? सच्चे सन्त क्या कहते हैं? कि वीतराग... वीतराग... वीतराग... मुहू... मुहू.... बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव धर्म है— ऐसा कहते हैं। मुनि उसे कहे कि जिन्होंने वीतरागभाव प्रगट किया और वीतरागता प्रगट करो, यह धर्म है — ऐसा 'मुहू' श्लोक है। मुहू का अर्थ बारम्बार। वीतराग... आ...हा...हा...! प्रभु! तुम वीतराग तो हो। प्रभु! तुम जिनस्वरूप तो हो; और उसका आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट करो, यह मुनि का उपदेश है। अभी वर्तमान में तो गलत उपदेश चला है। व्रत करो, तप करो, त्याग करो, कपड़े छोड़ो, यह तो विपरीत उपदेश है। दुनिया पागल (है)। पागल प्रशंसा करे उसमें क्या है? समझ में आया? जयसुखभाई! क्या कहते हैं? सर्टीफिकेट दे कि ये धर्मी हैं। लेकिन दुनिया को भान नहीं, वह सर्टीफिकेट दे, उसकी कीमत कितनी? आहा...हा...! 'लहि भव्यता मोटु मान' भगवान ऐसा कहे कि यह भव्य अर्थात् लायक अर्थात् आत्मार्थी है। इसके सिवा उसे किसका मान चाहिए? राग से जब भिन्न होकर अपना पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव की ओर का ध्येय बनाकर, ध्रुव को ध्येय बनाकर जो पर्याय प्रगट होती है, वह वीतराग है। वह सम्यग्दर्शन, वीतराग है; सम्यग्ज्ञान, वीतराग है; स्वरूपाचरण, वीतराग है। आहा...हा...!

तीन लोक के नाथ और उनके सन्त निर्ग्रन्थ गुरु का तो यह उपदेश है। तुम हमारी ओर राग करो और तेरा क्रमशः कल्याण होगा, पहले अशुभ टालो फिर शुभ होगा, उसके बाद शुभ को टालकर शुद्ध होगा—ऐसा उपदेश भगवान का नहीं है। आहा...हा...! एक ही समय में भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु... आहा...हा...! उसकी जिसे रुचि जगती है—रुचता है, उसे दूसरा (सब) बाधारूप लगता है। आहा...हा...! व्यवहार आता है। समकिती ज्ञानी को भी व्यवहार आता है, परन्तु दुःखरूप लगता है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

जिसे यह समझने की रुचि हो, उसे दूसरा नहीं सुहाता। जिसे आत्मा आनन्द-स्वरूप को समझने की रुचि हो, **उसे दूसरा नहीं सुहाता।** उसे दूसरी चीज अच्छी नहीं लगती। आहा...हा...! समझ में आया? आत्मा... आत्मा... आत्मा... अरे...! प्रभु! परन्तु तुम ही हो; और तेरी अपेक्षा से कोई चीज है ही नहीं। आहा...हा...! तुम एक ही चीज

www.vitragvani.com

जगत में हो। तेरी चीज है तो उसकी अपेक्षा से दूसरी चीज है ही नहीं। दूसरी चीज उसकी अपेक्षा से है, तेरी अपेक्षा से तो वह है ही नहीं। आहा...हा..!

अपना स्वभाव और शुद्ध चैतन्य की अस्ति में दूसरी चीज, देव-गुरु-शास्त्र की भी नास्ति है। अपना द्रव्य जो है, उसे दृष्टि में लिया, उसे तो सब द्रव्य, देव-गुरु और शास्त्र भी अद्रव्य दिखते हैं। अपना द्रव्य नहीं है, वह परद्रव्य है। आहा...हा...! गजब है! अपना द्रव्य वस्तु है, (वह) स्वद्रव्य (है)। और अपनी अपेक्षा से देव-गुरु और शास्त्र का आत्मा भी अद्रव्य (है)। यह द्रव्य नहीं, इसलिए अद्रव्य। अपने स्वक्षेत्र में जो है, वह अपना स्वक्षेत्र और इसके अलावा परक्षेत्र है, वह अक्षेत्र है। आहा...हा...! उसकी अपेक्षा से क्षेत्र है परन्तु अपने क्षेत्र की अपेक्षा से वह अक्षेत्र है। आहा...हा...! अपने त्रिकाल और वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से स्वकाल अपने से है और पर है, यहाँ अपना स्वकाल से है, तो अपनी अपेक्षा से पर का अकाल है। पर की पर्याय है, पर की अपेक्षा से है। इस पर्याय की अपेक्षा से अपर्याय है, अकाल है। आहा...हा...! वह तो ठीक, परन्तु त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से एक समय की पर्याय भी परद्रव्य है। समझ में आया? वह आया है न? २५२ कलश, २५२ कलश में है।

अपनी त्रिकाली वस्तु जो भगवान पूर्ण आनन्दरूप, नित्यानन्द एक ध्रुव प्रवाह (है), वह अपने भाव से स्वकाल है, स्वकाल है और उसकी एक समय की पर्याय, उसकी-स्वकाल की अपेक्षा से वह परकाल है। पर की पर्याय, देव-गुरु-शास्त्र, केवलज्ञान की पर्याय भी अपनी अपेक्षा से अकाल है और अपर्याय है। ऐसा सुनना! वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया?

एक बार तो ऐसा भी कहा था कि अपनी एक समय की पर्याय है न? वह पर्याय द्रव्य को जानती है, अपने को जानती है और छह द्रव्य को जानती है। तो एक समय की पर्याय की अस्ति है। आहा...हा...! एक ही जगत में अपनी पर्याय की अस्ति है, बस! आहा...हा...! उसकी अपेक्षा से दूसरों की नास्ति है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? बहुत वर्ष पहले 'बिरजाभाई' के साथ बात हुई थी। 'नारणभाई' ने जब संवत १९८७ की साल में दीक्षा ली, १९८७, उस समय (कहा था)। देखो! भाई! मार्ग तो यह है।

www.vitragvani.com

अपनी पर्याय है, वह पर्याय, द्रव्य को जानती है, द्रव्य में जाती नहीं। वह पर्याय छह द्रव्य को जानती है, छह द्रव्य में जाती नहीं और छह द्रव्य की उस पर्याय में नास्ति है और द्रव्य की भी पर्याय में नास्ति है। कठिन बात है, भाई! यह तो ..... है। आहा...हा...! उस समय की पर्याय को त्रिकाल की अपेक्षा से परद्रव्य कहा और अपनी अपेक्षा से स्व अस्ति है और पर वस्तु उस अपेक्षा से नहीं है। आहा...हा...!

जिसे यह समझने की रुचि हो, उसे दूसरा नहीं सुहाता। कल करूँगा, कल करूँगा पीछे बात—थोड़ा व्यापार-धन्धा कर लूँ। क्योंकि अभी धन्धा अधूरा है, पूरा हुआ नहीं, फिर कल निर्णय करूँगा। अपनी निज चीज को बाद में करूँगा। कल करूँगा, कल करूँगा, उसकी कल कभी आती नहीं और अपना (हित) कभी करेगा नहीं। समझ में आया? 'प्रवचनसार' में तो ऐसा कहा है, हम कहते हैं कि अभी इसी समय कर ले। वादा छोड़ दे। आहा...हा...!

अपने स्वरूप की अन्तर प्रतीति इसी समय कर ले। आहा...हा...! और 'समयसार' की पाँचवीं गाथा में तो ऐसा कहा कि हम जो कहते हैं, (उसका) अन्तर में अनुभव करके प्रमाण करना। ऐसा ठीक है, आप की बात अच्छी है, ऐसा विकल्प से (हाँ मत) कहना। आहा...हा...! ये तो दिगम्बर सन्तों की वाणी है। नागा बादशाह है। 'नागा ते बादशाहथी आघा'। उन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं। सत्य यह है। तुझे रुचे तो रुचे, नहीं तो तुम तुम्हारे घर में रहो।

मुमुक्षु : इस पंचम काल में जल्दी हो जाये?

समाधान : एक क्षण में हो जाये, एक समय में (हो जाये)। पंचम काल अर्थात् क्या? काल उसमें है ही कहाँ? काल के पार यह भगवान विराज रहा है। पंचम काल, काल परद्रव्य है तो परद्रव्य से भिन्न भगवान है। वह तो कहा न? पंचम काल की अपने में तो नास्ति है। आहा...हा...! बापू! यह तो महा पुरुषार्थ का काम है। आहा...हा...! पाँचवीं गाथा में तो ऐसा कहा,.... 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' पंचम काल में हुए या चतुर्थ काल में हुए? भगवान के निर्वाण बाद ५०० वर्ष के बाद हुए। वे कहते हैं कि हम कहते हैं तो तुम प्रमाण करो। अनुभव करके प्रमाण कर। हाँ कर। बात ठीक है, ऐसे नहीं। पंचम काल

www.vitragvani.com

के प्राणी को कहते हैं और पंचम काल के प्राणी कहते हैं। यहाँ कायर का काम नहीं है, भाई! 'वीरनो मार्ग छे शूरानो' उनका मार्ग तो वीर का-शूर का है, कायर का काम नहीं है। अभी नहीं हो पायेगा, अभी नहीं हो सकेगा (ऐसा जो कहता है उसे) अभी नहीं हो पायेगा—ऐसा ही रहेगा।

हम बारोट का दृष्टान्त देते हैं ना? बनिये का भोजन (था)। दो-पाँच हजार आदमियों का भोजन था तो बारोट आये। बारोट समझते हैं? क्या कहते हैं? वैयावच्य। कुटुम्ब का बारोट होता है न? प्रशंसा करनेवाला। बारोट आये, वे कहने लगे, तुम्हारा भोजन है तो हम को भी भोजन कराइये। (तो बनिये ने कहा), आज बनिये जीमेंगे, कल बारोट जीमेंगे। दूसरे दिन फिर से आये। तो कहा, देखो! क्या लिखा है? आज बनिये जीमेंगे, कल बारोट जीमेंगे। कल कभी आवे नहीं और बारोट कभी खाये नहीं। क्या लिखा है? देखो! क्या लिखा है? आज बनिये का भोजन है, कल बारोट का है। कल हम फिर से आयेंगे। फिर से कहा, ये क्या (लिखा) है? आज बनिये का है, कल बारोट का है।

ऐसे जो (ऐसा कहता है कि) अभी नहीं, अभी नहीं। उसका अभी नहीं-ऐसा ही रहेगा। हसमुखभाई! ऐसी बाते हैं। 'श्रीमद्' कहते हैं न? 'वचनामृत वीतराग के परम शांतरस मूण, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल, रे गुणवंता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचमकाल में....' आ...हा...हा...! आनन्द का नाथ प्रभु भरा है, उसके सामने देखे उसे काल क्या (चीज है)? कठिन बात है, भाई! अभी तो तुम भिन्न-भिन्न (सब) आये हो। हमारे मोहनलालजी आये, बाबूलालजी आये; छोटालालजी कहाँ गये? (श्रोता : बुखार आया है।) अभी तो आये थे अन्दर। अन्दर आये थे। आज तो सुनकर खुश हो गये। अन्दर रुपया देने आये थे। दोनों बाबूलालजी और......

एक समय में शरीर फिर जाये। ऐसे एक समय में आत्मा गुलांट मार दे। मेरी चीज मेरे पास है, मेरी चीज मैं हूँ। शुद्ध आनन्दघन मैं हूँ। आहा...हा...! मुझमें राग, दया, दान का राग भी नहीं, मुझमें भगवान और शास्त्र की भक्ति का भाव भी मुझमें नहीं। आहा...हा...! शरीर को मत देख, राग को मत देख, एक समय की पर्याय को मत देख। आहा...हा...! पूर्णानंद का भरपूर भाव जिसमें भरा है। भर... भर। हमारे में भर कहते हैं न? बैलगाड़ी

www.vitragvani.com

भरते हैं न ? बैलगाड़ी में भार (माल) भरते हैं न ? २५-२५ मण भरते हैं, उसे भर भरा, ऐसा कहते हैं। वैसे आत्मा में अनन्त गुण का भर भरा है। अरे...रे... !

दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहा...हा... ! कहीं नहीं है। वह तो जोर करती हुई वाणी, अन्दर से फट... फट निकलती है। अरे... ! भगवान ! तुम पूर्णानन्द बिराजते हो और तुम दूर रहो ? आ...हा... ! एक समय की पर्याय के समीप ध्रुव पड़ा है न ! आहा...हा... ! असंख्य प्रदेश की भूमि जो है, एक समय की भूमि का अंश है, उसी असंख्य प्रदेश में ध्रुव इस ओर है। आहा...हा... ! निश्चय से पर्याय का क्षेत्र भी भिन्न है, पर्याय का काल भी भिन्न है, पर्याय का भाव भिन्न है परन्तु वह पर्याय जानती है पूर्ण को। आहा...हा... ! उस पर्याय में वादा नहीं कि अभी नहीं जान सकता हूँ, ऐसा नहीं है। आज ही जान। 'प्रवचनसार' की आखिर की गाथाओं में टीका में लिया है कि आज कहते हैं, वह आज ही जान। एक बार हाँ तो बोल, हाँ तो कहे। आहा...हा... !

मुमुक्षु : हाँ बोलने में जोखिम कितना ?

समाधान : जोखिम, शर्त इतनी कि बिल्कुल अन्दर जाना। इतनी शर्त है। हाँ कहने से हालत हो जाये। हालत अर्थात् दशा हो जाये। अन्तर स्वरूप की दशा हो जाये अर्थात् हाँ बोलने से हालत हो जाये, ऐसी हाँ है। मार्ग ऐसा है, भाई ! आहा...हा... ! ऐसा कहाँ से निकाला ? कोई ऐसा कहता था कि ऐसा नया मार्ग निकाला। भाई ! नया नहीं है, भाई ! तुझे मालूम नहीं। नया नहीं है, बापू ! अनादि का यही मार्ग है, बापू ! अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त सन्तों, निर्ग्रन्थ भावलिंगी मुनियों और बारह अंग की पुकार यह है, देव-गुरु और शास्त्र का अनादि का यही स्वरूप है। भाई ! तुझे नया लगता है। आहा...हा... !

बिल्ली का बच्चा होता है न ? बिल्ली एक ठिकाने सात दिन रखे। सात दिन दूसरे ठिकाने ले जाये। क्योंकि बच्चे लोग परेशान करते हैं। जैसे सात दिन, सात दिन करके सात बार फिराती है। तब तक तो आँख बन्द होती है। आँख खोले तो ऐसे जगत को देखे। ओ...हो... ! जगत अभी हुआ ? अरे... ! जगत तो पहले से ही है। तू नहीं जानता था, तब भी था। ऐसे भगवान तो त्रिकाल वैसा का वैसा है। तुझे जानने में आया तो है ? इतना नहीं, वह तो त्रिकाल है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

कल करूँगा, कल करूँगा – ऐसे वादे नहीं होते। वादे अर्थात् वादा। **अन्तर में प्रयास बना ही रहता है....** आहा...हा..! उसे अन्दर उसकी लगनी लगे। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ऐसी लगनी लगे। ऐसा **प्रयास बना ही रहता है और ऐसा लगता है कि मुझे अब ही करना है**। आहा...हा...! १५४ (बोल पूरा हुआ)।

जिसने भेदज्ञान की विशेषता की है, उसे चाहे जैसे परीषह में आत्मा ही विशेष लगता है ॥१५५॥

१५५। **जिसने भेदज्ञान की विशेषता की है....** क्या कहते हैं? जिसने राग से विभक्त और स्वरूप की एकता जिसने किया है। आहा...हा...! एकत्व-विभक्त। **'एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण'** (समयसार) पाँचवीं गाथा में है। जिसे राग से भिन्न (भासित हुआ), उसकी स्वद्रव्य में दृष्टि हुई ही है। यहाँ से भिन्न हुआ तो स्वद्रव्य में दृष्टि हुई। **जिसने भेदज्ञान की विशेषता की है, उसे चाहे जैसे परीषह में.....** आहा...हा...! उसे चाहे जितनी प्रतिकूलता हो, परीषह, इतना प्रतिकूल परीषह हो कि शरीर को राख कर दे—ऐसा परीषह आता है। **उसे चाहे जैसे परीषह में....** आहा...हा...! बैठा हो और मकान जले। अभी तो यह जलता है, देखो ना! बिजली... 'घाटकोपर' व्याख्यान रहता था, वहाँ १५ मिनिट में समाप्त हो गया। दो बजे से शुरु हुआ तो ढाई बजे खत्म हो गया। यदि अढाई बजे से शुरु होती तो सब आ जाते। बड़ा पण्डाल था। 'घाटकोपर'। हमने देखा था। ओ...हो...! बिजल लगी। ऊपर नीचे पूरा पण्डाल पन्द्रह मिनिट में भस्म हो गया। आहा...हा...! कितनी मेहनत की थी। एक लाख चालीस हजार का पण्डाल था। एक लाख चालीस हजार का! बीमावाले ने लाख रुपया दिया। फिर दूसरा बनाया। वह तो नाशवान चीज है।

चाहे जैसे परीषह में आत्मा ही विशेष लगता है। ऐसा प्रतिकूल संयोग आवे कि शरीर में अग्नि की जाल लगे। वहाँ से खिसकने की जगह न हो। ऐसा कोई लोहे का

www.vitragvani.com

नल इतना चौड़ा हो, पच्चीस हाथ ऊँचा हो, किसी ने डाल दिया। आहा...हा...! ऐसा भले हो। समझ में आया? लोहे का नल होता है न? चौड़ा पाईप और पच्चीस हाथ लम्बा। सीधा कोई धर्मी जीव पर डाल दे। पैर हिले नहीं, हाथ हिले नहीं, आँख फिरे नहीं, सांस चले नहीं। ऐसा परीषह आया तो अन्दर डिगते नहीं। आहा...हा...! वहाँ आत्मा की ही विशेषता लगती है। आहा...हा...! क्या चीज है! यह तो साधारण बात कही।

सातवीं नरक में तो, ओहो...हो...हो...! सम्यग्दृष्टि होते हैं, भेदज्ञानी वहाँ भी है। आहा...हा...! और सोलह रोग जन्म से हैं। (फिर भी) अपने ध्येय से खिसकते नहीं। विशेष लगता है। **परीषह में आत्मा ही विशेष लगता है**। यह बात विशेष नहीं लगती। ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अषाढ़ कृष्ण ०)), गुरुवार, दिनाङ्क ०३-०८-१९७८
वचनामृत-१५६-१५९ प्रवचन-५६

करना तो एक ही है — पर से एकत्व तोड़ना। पर के साथ तन्मयता तोड़ना ही कार्य है। अनादि अभ्यास होने से जीव पर के साथ एकाकार हो जाता है। पूज्य गुरुदेव मार्ग तो बिल्कुल स्पष्ट बतला रहे हैं। अब जीव को स्वयं पुरुषार्थ करके, पर से भिन्न आत्मा अनन्त गुणों से परिपूर्ण है उसमें से गुण प्रगट करना है॥१५६॥

बहुत संक्षिप्त, धर्म करना हो, उसे पहले यह करना है। धर्म करना हो उसे। बाकी तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह तो अनन्त काल से करता है; यह कोई धर्म नहीं, यह तो सब शुभ की, राग की, पुण्य की क्रिया, बन्ध का कारण है।

१५६, **करना तो एक ही है — पर से एकत्व तोड़ना।** आहा...हा...! यह 'एकत्वनिश्चयगत' आता है न? अथवा (समयसार की) पाँचवीं गाथा में एकत्वविभक्त्वं (कहा है)। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि इस आत्मा की बात मैं कहूँगा। परन्तु क्या कहूँगा? कि इसका आनन्द आदि ज्ञानस्वभाव है, इससे भगवान आत्मा एकत्व है और पुण्य-पाप के विकल्प जो राग हैं, उनसे भिन्न है। नवतत्त्व है न? उनमें शरीर, वाणी, मन, वे तो अजीव जड़तत्त्व हैं। उनमें जो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, ये काम-धन्धा, ये भाव, पाप हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा आदि का भाव, वह शुभ / पुण्य है। (लोगों ने) बाहर में सब मनवा दिया है। यह व्रत करो, उपवास करो, और तप करो...

मुमुक्षु : दुकान पर बैठे, उसकी अपेक्षा तो ठीक है न?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : दुकान पर बैठे या (यह करे), सब एक ही प्रकार है - बन्ध (है)।

यहाँ तो कहते हैं, जिसे आत्मा का हित करना हो, कल्याण करना हो, (उसके लिये बात है)। बाकी इस संसार के धन्धे आदि तो सब पाप है। आहा...हा...! १५६, १५६ बोल। गुजराती में ४६ पृष्ठ है। गुजराती में ४६ है, १५६ बोल है। यह करना है, जिसे हित करना हो, उसे करनेयोग्य यह एक है। क्या ? कि इस धन्धे की क्रिया और शरीर की क्रिया, वह क्रिया तो जड़ की जड़ के कारण होती है; आत्मा उसे नहीं करता। अरे! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें! परन्तु अन्दर में जो कोई हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग-वासना, ये धन्धे के भाव (होते हैं) वे सब पाप हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, यात्रा, यह सब भाव भी पुण्यरूपी राग है। आहा...हा...! इसकी बात है।

मुमुक्षु : धन्धा न करें तो खायें क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? यह तो विकल्प करता है। खाये कौन ? खाने की बात तो नहीं आती अपने ? दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। सुना नहीं ? उदाणी! सुना है ? अपने काठियावाड़ में कहावत है कि दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है, अर्थात् जो रजकण यहाँ आनेवाले हैं वे आयेंगे। कठिन बातें बहुत। धर्म ऐसी चीज़ है।

मुमुक्षु : मेहनत किये बिना चले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मेहनत। मेहनत करे, (वह) पाप का भार है। यह रोटी का टुकड़ा है, वह अन्दर टुकड़ा करना और ऐसे लाना, वह क्रिया आत्मा की नहीं, जड़ की है, बापू! इसे पता (नहीं)। अनन्त काल में तत्त्व क्या चीज़ है, (इसकी) खबर नहीं। आहा! यह शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी है, जड़ धूल है। इसकी जो अवस्था-हालत होती है, वह भी जड़ के कारण (होती है); कोई आत्मा के कारण नहीं। यह ऐसे होता है, वह आत्मा के कारण नहीं। वह तो इसकी स्वयं की / जड़ की दशा है। उससे तो भगवान चैतन्य ज्योति भिन्न है परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प / राग जो होता है, उस तत्त्व से तो चैतन्यतत्त्व अन्दर अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आवे, अज्ञानी के शास्त्र में सब आवे।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कुछ।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो सब ऐसा भी नहीं कहते? दाँत यहाँ (पेट में) नहीं। इसलिए चबा-चबाकर खाना—ऐसा कहते हैं न लोग? सब सुना है न? कौन चबाये? सुन तो सही! दाँत हैं, वे तो जड़, मिट्टी, धूल है, उसका जो ऐसे-ऐसे होता है, वह जड़ की क्रिया है। उससे रोटी के टुकड़े भी नहीं होते। आहा...हा...! और दाँत का हिलना ऐसे-ऐसे हो, वह आत्मा से नहीं होता, वह तो जड़ की क्रिया है। अरे! ऐसी बातें हैं। खाने की पर्याय जैसे (है, उस सम्बन्धी) राग (जीव में एक अपेक्षा से) होता है, यह खाने की क्रिया होती है, वह जड़ की है। रोटी के परमाणु की अवस्था (ऐसे होती है) वह तो परमाणु की अवस्था जड़ की-अजीव की है। खाने का भाव हो, वह पाप है। आहा...हा...! ऐसा है।

करना तो एक ही है.... जिसे आत्मकल्याण करना हो, जन्म-मरण के चौरासी के अवतार के फेरे मिटाना हो, (उसे यह एक ही करनेयोग्य है) नहीं तो मरकर मनुष्य अनन्त बार हुआ, मरकर ढोर हुआ, पशु हुआ, कौआ हुआ, कुत्ता हुआ — ऐसे अनन्त भव किये हैं इसमें क्या? मनुष्य मरकर वापस ढोर होगा। आहा...हा...! पशु होगा।

मुमुक्षु : डराते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : डराते नहीं, इसकी दशा ही ऐसी है। आहा..हा...! राग और द्वेष, पुण्य और पाप—ऐसे कषायभाव। कुछ कषाय-पुण्य आदि हो तो होगा तो ढोर, परन्तु वह युगलिया का (भोगभूमि का) ढोर होगा कर्मभूमि का (नहीं), भोगभूमि का होगा। सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म ऐसी चीज़ है कि जगत को सुनने को नहीं मिलती।

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं '**एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो**' मैं आत्मा अन्तर आनन्द

www.vitragvani.com

का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान जिसका स्वरूप है, उससे वह एकत्व अर्थात् अभिन्न है और जो कोई पुण्य और पाप के विकल्प / वृत्तियाँ / राग उत्पन्न हो... आहा...हा... ! उससे वह भिन्न है। इसे हित करना हो तो यह **करना तो एक ही है — पर से एकत्व तोड़ना**। है ? पढ़ा है या नहीं ? उदाणी ! यह पढ़ा है या नहीं ?

मुमुक्षु : पूरा नहीं पढ़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, अभी पूरा नहीं (पढ़ा) ? इतने महीने हुए तो भी।

मुमुक्षु : मुम्बई में रहना.....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुम्बई में क्या है ? मुम्बई मोहनगरी मार डाले। मोटे भुंगले (कारखाना इत्यादि) आहा...हा... ! उसमें पाँच-पच्चीस लाख रुपये हों और दो-पाँच करोड़ हों... हो गया, मैं चौड़ा और गली सँकड़ी ! हो गया, मर गया। आहा...हा... ! यहाँ तो दूसरी बात है, प्रभु ! यह चीज़ तो कहीं तेरी है नहीं और तेरी नहीं परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हों वे भी तेरे नहीं, तुझमें नहीं; उनमें तू नहीं। आहा...हा... ! भाई ! मार्ग सूक्ष्म, बापू ! इसने जन्म-मरण करके भाई ! कचूमर निकल गया है। आहा...हा... ! पशु का, चींटी का, कौवे का, कुत्ते का, नरक का... आहा...हा... !

भगवान त्रिलोकनाथ तो ऐसा कहते हैं कि नरक का एक क्षण का दुःख, प्रभु ! क्या कहें तुझे ? कहते हैं। वह करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहा जा सकता, प्रभु ! ऐसे क्षण के नरक के दुःख तूने अनन्त बार भोगे हैं। भाई ! तू अनन्त काल में कहाँ था ? तू है तो आत्मा। वह कहीं अनादि से कोई नया हुआ है, ऐसा नहीं। है वह तो, तो है वह कहाँ रहा ? आहा...हा... ! नरकगति और एकेन्द्रिय काई अथवा प्याज और लहसुन में रहा। आहा...हा... ! भाई ! तुझे खबर नहीं है, तू कौन है ? कहाँ है ? किस प्रकार भटका है ?

यहाँ यह कहते हैं, प्रभु ! एक बार सुन तो सही, भाई ! आहा ! यह चैतन्यमूर्ति अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् है, ज्ञानानन्दस्वरूप है। इसे राग से-विकल्प से भिन्न करना और स्वभाव की एकत्वता करना। आहा...हा... ! जन्म-मरण को मिटाना हो तो यह उपाय है, बाकी सब व्यर्थ है। समझ में आया ? आहा...हा... ! है ? पाँचवीं गाथा है।

www.vitragvani.com

करना तो एक ही है — पर से एकत्व तोड़ना। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, वे तो पर हैं, वे कोई तेरे नहीं और तेरे कारण यहाँ आये नहीं। आहा...हा... ! परन्तु अन्दर में राग होता है-दया, दान, व्रत, भक्ति का, धन्धा आदि का, कमाने का, भोग का भाव (होता है), वह तो पाप है, महादुर्गति का कारण है। परन्तु अन्दर में दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, यात्रा का शुभभाव हो, यहाँ वह भी दुर्गति है। वह तेरी जाति नहीं है और तुझे लाभदायक नहीं है। प्रभु! तुझे नुकसान करनेवाला है। आहा...हा... ! ऐसी बात कहीं इसे सुनने को नहीं मिलती बेचारे को। बाहर में जरा कुछ पाँच-पच्चीस लाख पैसा हुआ और पाँच-पच्चीस हजार महीने आमदनी होती हो तो हो गया मानो कि... आहा...हा... ! मर गया, मार डाला तूने आत्मा को। आहा...हा... ! भाई! तुझे पता नहीं है।

करना (तो एक ही है)—पर से एकत्व तोड़ना। यह तो महासिद्धान्त है। उदाणी! ये तुम्हारे डॉक्टर के इंजेक्शन अलग, यह अलग इंजेक्शन अलग प्रकार है। आहा...हा... ! मोटाणी! आहा.. ! चैतन्यसूर्य, चैतन्यचन्द्र अन्दर बिराजमान है। शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शान्तस्वभाव वीतराग अकषायस्वरूप बिराजमान आत्मा है। यदि (तुझे) धर्म (करना) हो तो तू पुण्य और पाप के राग से इसे (आत्मा को) अन्दर भिन्न कर। (स्वयं को) उस राग से लक्ष्य छोड़कर अन्दर के लक्ष्य में जा, जहाँ भगवान चैतन्यस्वरूप बिराजमान है। आहा...हा... !

पर के साथ तन्मयता तोड़ना ही कार्य है। ये पुण्य और पाप के विकल्प, वृत्तियों जो उत्पन्न होती हैं, उनमें तन्मय है। मानो 'यह मैं हूँ' यह तन्मयता। उसमयता, उस रूपता ऐसा जो माना है, उसे तोड़ना पड़ेगा, प्रभु! आहा...हा... ! काम कठिन है। तन्मयता, तत्मयता, उसरूपता। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम और हिंसा, झूठ, चोरी, भोग-वासना, धन्धे के परिणाम (होते हैं), उन परिणाम के साथ प्रभु, तन्मय तूने माना है। आहा...हा... ! वह तन्मय है नहीं। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बात। धर्म को लोगों ने कुछ का कुछ कर दिया है। दया पालना, व्रत पालना, उपवास कर डालना, वह धर्म। धूल में भी नहीं है। मर जा न कहीं (परन्तु वहाँ धर्म नहीं होगा)। वह तो रागरूपी क्लेश है। भाई! तुझे पता नहीं है।

www.vitragvani.com

यहाँ तो पर के साथ तन्मय है, उसे तोड़ना, वह कार्य है। **अनादि अभ्यास होने से जीव, पर के साथ एकाकार हो जाता है।** अनादि का है, इसे पता नहीं। आत्मा तो है... है... है... है... है... है... है... ऐसे अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... है, है और है और अनादि काल से राग के विकल्प के साथ एकाकार मान रहा है। आहा...हा...! यह शरीर की जो क्रिया होती है, वह तो स्वतन्त्र जड़ के कारण (होती है)। उसमें तो आत्मा का कोई अधिकार नहीं। आहा...हा...! परन्तु उसकी पर्याय में / दशा में / वर्तमान हालत में जो अंश में पुण्य और पाप की वृत्तियाँ खड़ी होती हैं, वे भी तन्मयरूप से तूने मानी हैं; है नहीं। आहा...हा...! उनमें तू नहीं, उनमें तू नहीं, वे तुझमें नहीं। अरे.. ऐसा अब। ऐसा धर्म, भाई! आहा...हा...! **पर के साथ एकाकार हो जाता है।** लो!

(पूज्य गुरुदेव) मार्ग तो बिल्कुल स्पष्ट बतला रहे हैं। यहाँ तो बता रहे हैं। मार्ग तो स्पष्ट बताया। बापू! यहाँ तो ४३ वर्ष तो यहाँ हुए। यह जंगल था पूरा, गाय-भैंस बैठती थी। अभी तो करोड़ों रुपये लग गये हैं। यह एक ही (परमागम मन्दिर) छब्बीस लाख का बना है, यह एक ही मकान (मन्दिर) छब्बीस लाख का। यह तो इसके कारण हुआ, कोई लावे और करे, इस बात में कोई दम नहीं है। रामजीभाई ध्यान रखे, प्रमुख हैं न ये, इसलिए हुआ? भाव (हुआ) विकल्प हुआ था। यह व्याख्यान पूरा हो, इसलिए बाहर निकलकर पूछते थे। हुआ है? कैसे हुआ? यह पूछते थे। प्रमुख थे न! प्रमुख हैं न?

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मैंने तो पूछते थे-ऐसा कहा न? पूछते थे - ऐसा कहा न? जाते, यहाँ आते नहीं थे ये। निकले तो पूछते थे, क्या किया? कैसे किया? और यह हमारे... क्या कहलाते हैं, वजुभाई, ये भी इसमें ध्यान रखते थे परन्तु ध्यान रखे, इसलिए हुआ है? भाई! बहुत कठिन काम, भाई! ये परमाणु तो जड़ है न? इनकी जो अवस्था होने का काल है, उस काल में हुई है। भाई! तुझसे नहीं। तू इसका कर्ता नहीं, भाई!

मुमुक्षु : .... हुआ है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल हुआ नहीं। रामजीभाई (से नहीं) इंजीनियर से हुआ नहीं, और रामजीभाई से हुआ नहीं। ए... छोटाभाई! ऐसा काम है बापू! आहा! 'करे कर्म

www.vitragvani.com

सो ही करतारा' नरसिंह मेहता जूनागढ़ हो गये हैं। यह तो सुना है न नरसिंह मेहता? वे कहते हैं 'हूं करूं हूं करूं ए ज अज्ञान छे, शकटनूं भार जैम स्वान ताणे' गाड़ी होती है न? गाड़ी, दो सौ मण (भार भरा हो) और दो बैल हाँकते हों। गाड़ी के नीचे के भाग में नीचे कुत्ता हो वह छुये (तो उसे ऐसा लगता है कि) मुझसे गाड़ी चलती है। इसी प्रकार यह धन्धा-पानी और यह क्रिया... वह कुत्ता जैसा जीव अन्दर नीचे छूता है न उसे, इसलिए मानो यह मुझसे होता है (-ऐसा मानता है)।

'हूं करूं हूं करूं ए ज अज्ञान छे, शकटनूं भार जैम स्वान ताणे' गाड़ी का भार कुत्ता खींचे, ऐसे सब कुत्ते हैं। (कुत्ते का सिर गाड़ी को छुये और मानता है कि गाड़ी मुझसे चलती है।) आहा...हा...! धन्धे पर पैढ़ी पर बैठा हो, ऐसा करो और ऐसा करो... पाँच-पच्चीस नौकर हों, दो-पाँच हजार की दिन की आमदनी हो। गये न अभी, हसमुखभाई! आयेंगे बाद में। यह करोड़पति बैठे। बड़ा कारखाना चलता है। इससे चलता होगा? लोग ऐसा कहते हैं कि यह अभी रतिभाई कर्ता-हर्ता है, बड़े भाई गुजर गये, पिताजी गुजर गये। लड़के ध्यान रखते हैं। पतंग उड़े परन्तु डोर हाथ में रखते हैं। इसी प्रकार ये सब काम होते हैं परन्तु हाथ में रखते हैं कि कैसे हो? सब बात खोटी है। आहा...हा...! ऐसा है, बापू! भाई! क्या हो?

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का हुकम यह है। आहा...हा...! प्रभु! तेरा उद्धार करना हो, यह जन्म-मरण के चौरासी के अवतार कर-करके बापू! दुःखी-दुःखी है। ये पच्चीस-पचास करोड़, ये सब चालीस करोड़वाले सेठ गुजर गये न अभी। 'साहू शान्तिप्रसाद' चालीस करोड़। दुःखी थे बेचारे। इसके सिवाय अपने दशाश्रीमाली। भाई ने नहीं सुना होगा। डेढ़ वर्ष पहले गुजर गये। गोवा में शान्तिलाल खुशाल थे, गोवा में, दो अरब चालीस करोड़। कितने? दो सौ चालीस करोड़। दशाश्रीमाली बनिया। 'पाणासणां' के थे, उनकी बहिन की लड़कियाँ अपने यहाँ ब्रह्मचारी है। चौसठ ब्रह्मचारी लड़कियाँ हैं न? दो अरब चालीस करोड़! ६१ वर्ष की उम्र। उसकी बहू को हेमरेज हो गया। गोवा में चालीस लाख का बंगला है। दस-दस लाख के दो दूसरे बंगले हैं और एक-एक लाख की एक-एक जहाज छोटी, ऐसी तीन सौ तो जहाज है। है, अभी है। वे अभी डेढ़ वर्ष

www.vitragvani.com

पहले गुजर गये। आहा...हा... ! उसकी बहू को हेमरेज था तो मुम्बई आया था, उसमें दो -चार दिन व्यतीत हुए होंगे। वह तो एकदम असाध्य थी। (रात्रि में) उठा (और कहता है) मुझे दुःखता है, बुलाओ डाक्टर को। डॉक्टर को बुलाने जाते हैं, वहाँ तो ये भाईसाहब परगति में चले गये। आहा...हा... ! बड़ा गृहस्थ, इसलिए मुर्दे को वहाँ ले गये। फिर शृंगार किया होगा परन्तु उसमें धूल में (क्या है) ? वह मर गया, उसे अब क्या है ? आहा...हा... ! परन्तु क्या चीज़, वह चीज़ तेरी कहाँ है ? वह तो जगत् की धूल है। पैसा तो जगत की धूल है, तू जीव चैतन्यमूर्ति है। आहा...हा... !

यह तो एक अर्थ किया था, हिम्मतभाई ! तुम थे न ? उस चेतन का। भाई ! एक मुख डालकर कि बोलो... बोलो। मैंने कहा, बोलो लो चैतन्य बोलो। चेतन उसमें एक 'त' डबल करना। चेतन-तो चेत+तन=ज्ञान जिसका तन है। जाननस्वरूप ही ज्ञायक जिसका तन है, शरीर है। एई.. ! यह वह... डालकर बनाते हैं न ? चेतन। चैतन्य। चेत-ज्ञान जिसका तन-शरीर है। राग भी नहीं और पुण्य भी नहीं और शरीर भी नहीं। आहा...हा... ! ऐसा, बापू ! अरे ! कठिन काम बहुत आहा...हा... !

अरे ! दुनिया को संसार के पाप और धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। बाईस घण्टे-तेईस घण्टे (पाप)। एकाध घण्टे सुनने जाये, वहाँ ऐसे कुगुरु मिलें कि इसे लूट लें, इसका घण्टा (लूट लें)। श्रीमद् कहते हैं। उसे कहे कि व्रत कर और अपवास कर और भगवान की भक्ति कर ! लूट लिया इसका एक घण्टा ! आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं प्रभु !

यहाँ कहते हैं **स्पष्ट बतला रहे हैं। अब जीव को स्वयं पुरुषार्थ करके,...** यहाँ तो स्पष्ट बात ढ़िढोरा पीटकर कहते हैं कि देह की क्रिया, पर की क्रिया, आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। आहा...हा... ! और उसमें जो पुण्य-पाप के भाव हों, वह राग और दुःखरूप है। उससे भिन्न करने पर तुझे सुख होगा, बाकी सुखी नहीं होगा और दुःख में चिल्ला पड़ेगा, मर जायेगा। आहा...हा... ! समझ में आया ? अरबोंपति और करोड़ोंपति सुखी है। धूल भी नहीं, सुन न ! दुःख के पर्वत में सिर फोड़ा है। आत्मा सच्चिदानन्दप्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर, उसे तो देखा नहीं, माना नहीं और यह सब मेरा-मेरा (करके) मर गया। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यहाँ कहते हैं, **अब जीव को स्वयं पुरुषार्थ करके, पर से भिन्न आत्मा अनन्त गुणों से परिपूर्ण है....** आहा...हा... ! ऐसी बात ! इसकी जो यह वर्तमान, वर्तमान दशा है न ? चलती दशा, वर्तमान पलटती अवस्था है, इसके समीप में पूरा ध्रुव तत्त्व है। यह चैतन्य। ऐसा ध्रुव तत्त्व... आहा...हा... ! उसे **पुरुषार्थ करके, पर से भिन्न आत्मा अनन्त गुणों से परिपूर्ण है...** भगवान। आहा...हा... ! अरे रे ! कैसे जँचे ? तत्त्व है न ? वस्तु है न ? अस्तित्व धारक पदार्थ है न आत्मा ? तो इसमें अनन्त गुण हैं।

एक-एक आत्मा पर से, पर आत्मा से भिन्न, अनन्त आत्मा से भिन्न, अनन्त रजकणों से भिन्न, ऐसे तो अनन्त धर्म इसमें — एक आत्मा में है। आहा...हा... ! इसके अतिरिक्त अनन्त सामान्य विशेष गुण भी अनन्त हैं। इसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं कि इतना बड़ा (क्षेत्र हो तो रह सके) आहा...हा... !

अनन्त गुणों से परिपूर्ण है... अनन्त शक्ति का सागर प्रभु है। आहा...हा... ! अरे ! परन्तु कभी वहाँ नजर नहीं की। जहाँ अन्दर चैतन्य निधान पड़ा है। राग से हटकर स्वरूप में कभी अन्दर गया नहीं। क्या यह रिद्धि और समृद्धि पड़ी है इसमें (इसने देखा नहीं)। आहा...हा... ! इस बाहर की धूल की समृद्धि और घर प्रयोग की चीज़ें जहाँ करे दो-पाँच लाख के (फर्नीचर करे), मखमल और अमुक और अमुक और फर्नीचर (करे)... भटकने का है, भटकने का रास्ता। आहा...हा... ! **उसमें से गुण प्रगट करना है।** गुण अर्थात् पर्याय। आहा...हा... ! जैसे स्फटिकमणि निर्मल है; वैसे भगवान का स्वरूप तो निर्मल शुद्ध है परन्तु उसकी दशा में राग और द्वेष करके अनन्त काल से चार गति के अनन्त भव किये। आहा...हा... ! और अभी भी यदि भिन्न नहीं करे तो यह चार गति के भटकने के रास्ते में-पन्थ में है। यह कौवे और कुत्ते के-पशु के ढोर के अवतार। आहा...हा... !

पशु क्यों कहते हैं ? कि यह पशु है न तिर्यंच ? यह मनुष्य ऐसा है, खड़ा है न ऐसा ? और गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी ऐसा आड़ा है। गिलहरी, मोर, चूहा तिरछे हैं न ऐसे ? पशु आड़े हैं। वे आड़े क्यों हुए कि पूर्व में उन्होंने राग-द्वेष की वक्रता बहुत की थी। इस तिर्यंच में तिरछा शरीर मिला उन्हें। अन्दर में वक्रता की परन्तु शरीर भी उन्हें आड़ा मिला। अ र र ! ऐसी बातें हैं बापू !

www.vitragvani.com

गोम्मटसार में पाठ है। तिर्यंच, तिर्यंच कहते हैं न ? तिर्यंच। तिर्यंच अर्थात् तिरछा, तिरछा अर्थात् आड़ा। यह मनुष्य का शरीर ऐसा है। खड़ा। गाय, भैंस, गिलहरी, नेवला, चूहा का आड़ा शरीर है। ऐसे अवतार अनन्त किये। क्यों ? कि पूर्व में पुण्य और पाप के भाव (के साथ भिन्नता नहीं की)। बहुत तो तिर्यंच में जानेवाले को पाप के (भाव) हैं परन्तु किसी को पुण्य का भाव हो तो वह अकर्मभूमि का जुगलिया हाथी होता है। आहा...हा... ! परन्तु वह ढोर है। तीन पल्य की बड़ी आयु है। यह सूक्ष्म बात है। अभी सब निर्णय करने जाये तो देर लगे। लॉजिक से सब बात सिद्ध हो सकती है। समझ में आया ? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने तो न्याय से जो बात की है, वह युक्ति से सब सिद्ध हो सकती है। आहा...हा... !

कहते हैं, तू राग का विकल्प जो है, चाहे तो भगवान गुणी है और उसमें अनन्त आनन्द है—ऐसा जो विकल्प / राग उठे, उस राग से भी भिन्न भगवान है। अरे ! इतने अधिक जाना ! अभी तो शरीर से भिन्न मानना कठिन पड़ता है। आहा...हा... ! यह तो हड्डियाँ-मिट्टी है। इसमें क्या है ? आहा...हा... ! माता के गर्भ में एक खून का बिन्दु और एक वीर्य का बिन्दु, यह ऋतु आती है न ? तब फिर ऋतु रूकती है, इसका कारण यह। उसमें जीव आया; इसलिए मासिक महीने ऋतु बन्द हो जाती है, क्योंकि वह अब शरीर बँधने के रजकण चिपकते हैं। आहा...हा... ! आया दूसरे भव में से और यह बिन्दु और खून के (रजकण) उनमें आया। उसमें अब धीरे... धीरे... धीरे... अंग-उपांग होते हैं, अंग-उपांग होते हैं। सवा नौ महीने बाद बाहर आवे। अरे ! ऐसा तो अवतार प्रभु ! तूने अनन्त किये, भाई ! तू भूल गया। भगवान को भूला और अवतार किया, उसे भी भूला। भगवान अर्थात् आत्मा त्रिलोकीनाथ को भूला और अवतार अनन्त किये, उन्हें भी भूला। आहा...हा... ! **गुण प्रगट करना है।** (१५६ बोल पूरा हुआ)।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

महान पुरुष की आज्ञा मानना, उनसे डरना, यह तो तुझे अपने अवगुण से डरने के समान है; उसमें तेरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अवगुण दबते हैं। सिर पर महान पुरुष के बिना तेरा कषाय के राग में — उसके वेग में बह जाना संभव है और इसलिए तू अपने अवगुण स्वयं नहीं जान सकेगा। महान पुरुष की शरण लेने से तेरे दोषों का स्पष्टीकरण होगा तथा गुण प्रगट होंगे। गुरु की शरण लेने से गुणनिधि चैतन्यदेव की पहिचान होगी॥१५७॥

१५७, **महान पुरुष की आज्ञा मानना,...** सर्वज्ञ परमेश्वर और गुरु, सन्त आदि की आज्ञा मानना। क्या आज्ञा है उनकी? आहा...हा...! कि वीतरागता प्रगट कर। राग से भिन्न है, उसे देख। आहा...हा...! जो देखनेवाला है, उसे देख। देखनेवाला ऐसा देखता है यह... यह... यह... यह... उस देखनेवाले की दशा को (न देख); देखनेवाला है, उसे देख। अरे! यह मैं (ऐसा)। अब ऐसी बातें। बापू! मार्ग अलग, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ का यह फरमान है। समझ में आया? आहा...हा...!

उनसे डरना,... सन्तों, गुरुओं, और सर्वज्ञ से डरना। ऐसा नहीं मानना कि (यह) कुछ नहीं, मेरा चाहे जो हो (ऐसा) नहीं। **यह तो तुझे अपने अवगुण से डरने के समान है;...** सन्त, राग से भिन्न करने की जो आज्ञा करते हैं, उनकी आज्ञा में भय पाना नहीं। डर तो तुझे होता है। आहा...हा...! परन्तु एक न्याय से डरना अर्थात् यह कहते हैं उनसे मैं विरुद्ध करूँगा तो मुझे नुकसान होगा, ऐसे इसे डरना। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

उसमें शरीर बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र का युवा हो और रूपवान शरीर हो, कोमल शरीर हो, एक-एक अंगोपांग सब अच्छे हों। आहा...हा...! और उसमें पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो, उसमें स्त्री सुन्दर मिली हो, उसमें पुत्र छह-सात अच्छे हुए हों, एक-एक लड़का पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार का मासिक (वेतन अथवा आमदनी) लाता हो, देख लो यह तो तुम्हारे यह पागलपन! इसका पागल (पन) आहा...हा...! इसका सब परिवार अलग रूपवान है, इसका परिवार पूरा (रूपवान है), इसकी माँ भी

www.vitragvani.com

ऐसी थी, इसके लड़के ऐसे सब ऐसे रूपवान हैं। पूरा परिवार इसका आया था न एक बार, नहीं? बुढ़िया सबको लेकर आयी थी। पता है। माँ लेकर आयी थी, सब आये थे, पता है। पूरा परिवार रूपवान है, गोरा। डॉक्टर है-धर्मचन्द डॉक्टर खण्डवा के हैं। फिर जाये (काम-धन्धे) उपाधि करने। आहा...हा... !

प्रभु! तू कब कहाँ जायेगा? यह देह छूटा तो प्रभु! तू कहाँ जायेगा? तेरा कहीं नाश होनेवाला है? इसका (देह का) नाश है। तू तो है या नहीं? और लोग ऐसा कहते हैं न मरते? ए... जीव गया - ऐसा कहते हैं न? मर गया - ऐसा कहते हैं? पल्स हाथ में नहीं आती, जीव गया लगता है। पल्स, रग, नाड़ी, हाथ नहीं आती, जीव गया लगता है। जीव गया - ऐसा कहते हैं या मर गया - ऐसा कहते हैं? आहा...हा... ! यह तो त्रिकाली वस्तु है, सत् है, शाश्वत् है, वह कहाँ नाश पाये? वह एक भव में से दूसरे में जाये और दूसरे में से तीसरे में जाये और मरकर भटककर मर गया है अनन्त काल से। आहा...हा... !

आज का बड़ा चक्रवर्ती हो, वह क्षण में सातवें नरक का नारकी होता है। बापू! आहा...हा... ! यहाँ बड़ा करोड़पति, अरबोंपति बनिया हो और अकेले पाप और अकेले पाप के धन्धे में लवलीन हो, वह मरकर भाई! आहा.. ! बकरी के पेट में अवतार लेता है, भाई! ऐसे अवतार अनन्त किये हैं, बापू! तू भूल गया। आहा...हा... ! तू क्या वस्तु है? भाई! आहा...हा... ! इस घोड़ी के गर्भ से बच्चा होता है, आहा...हा... ! इस चिड़ी के गर्भ से बच्चा होता है। यह अद्धरमाला में रहे उसमें से पड़े तो नीचे पड़े। बच्चा छोटा ऐसा पड़कर मर जाये, फिर वहाँ से मरकर दूसरा अवतार ले। आहा...हा... ! यह सब वापस पशु में जाये। आहा...हा... !

क्योंकि इसने राग और भगवान आत्मा को कभी भिन्न नहीं जाना और भिन्न किये बिना इसका भटकना मिटे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तुम्हारे डॉक्टर में ऐसा होता है न? डॉक्टरपना न चलता हो तो पहले महीने-दो महीने बड़े अस्पताल में अवैतनिक करे। हेतु तो यह है कि फिर डॉक्टरपना अलग चले। हमने तो सब देखा है न तुम्हारे बड़े-बड़े महीने-दो महीने अवैतनिक (काम) करते हैं। राजकोट में करते थे। बड़ा अस्पताल है न? दो महीने करे तो क्या कहे? प्रसिद्ध हो, फिर दुकान चले। लोग उसे अवैतनिक कहें।

www.vitragvani.com

अवैतनिक नहीं। फिर दुकान चले और इज्जत बढ़े, इसलिए वहाँ नौकरी एक दो घण्टे मुफ्त में करता है। आहा...हा...! ऐसे के ऐसे खेल हैं, बापू!

आहा...हा...! गुरुओं ने, सन्तों ने कहा कि प्रभु! इसे तू जान, देख। आहा...हा...! इनकी आज्ञा की अवज्ञा न करना – ऐसा कहते हैं। ये तो पूरे दिन कहा ही करते हैं, क्योंकि इन्हें क्या धन्धा है? क्या है? मर जायेगा, सुन! आहा...हा...! पैसे की लड़ाई सुनी है कभी? कहते हैं, अपने है न? मलूकचन्दभाई! वहाँ नयी मुम्बई में, पूनमचन्द मलूकचन्द मुम्बई, पाँच-छह करोड़ रुपये। बड़े मकान बनाते हैं, बेचते हैं। उन्हें सख्त ब्लड़प्रेशर है, हों! उनके पिता मलूकचन्द थे। अहमदाबाद में एक बार बात हुई। उनके पिता के पास थोड़े पैसे, इतने अधिक नहीं देता था।

यह हिम्मतभाई, चन्दुभाई यह सब एक परिवार के सम्बन्धी हैं न? इसलिए वह ऐसा बोला, इन बापू ने पैसे का रस कब देखा है? क्योंकि इनके पास तीस-चालीस हजार थे। (भाई) ये सब इनके पुत्र मलूकचन्द और खेमचन्द और यह हिम्मतभाई और मनसुख सबको जानते हैं न? यहाँ तो पैंसठ वर्ष हुए। आहा...हा...! बापू को पैसे में रस देखा है कब? इन्हें पैसे कहाँ इतने थे? रामजीभाई के पास पैसे थे इतने? इसलिए ऐसा कि बापू को पैसे कहाँ थे कि उनका रस हो? यह तो हमने पैसे का रस चखा है। इसलिए। आहा...हा...! मार डाला इस भ्रम ने।

यहाँ कहते हैं **उसमें तेरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अवगुण दबते हैं**। सन्तों की आज्ञा से ही उनका विरोध न करना, उनसे डरना क्योंकि उनसे क्रोध, मान, माया, लोभ दबते हैं। आहा...हा...! **सिर पर महान पुरुष के बिना तेरा कषाय के राग में — उसके वेग में बह जाना संभव है** आहा...हा...! **और इसलिए तू अपने अवगुण स्वयं नहीं जान सकेगा। महान पुरुष की शरण लेने से तेरे दोषों का स्पष्टीकरण होगा** आहा...हा...! **तथा गुण प्रगट होंगे। गुरु की शरण लेने से गुणनिधि चैतन्यदेव की पहिचान होगी**। आहा...हा...! गुरु ऐसा कहे, उनकी शरण लेने से अर्थात् आज्ञानुसार करने से... आहा...हा...! गुणनिधि भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की खान प्रभु निधि आत्मा है। आहा...हा...! यह चैतन्य हीरा, हीरा है अन्दर,

www.vitragvani.com

वह प्रगट होगा, तुझे भान में आयेगा। आहा...हा...! यदि आज्ञा मानेगा और यदि काम लेगा तो तुझे प्रगट होगा। आहा...हा...! समझ में आया?

हे जीव! सुख अन्तर में है, बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है? जिस प्रकार मरीचिका में से कभी किसी को जल नहीं मिला है उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं॥१५८॥

१५८, **हे जीव! सुख अन्तर में है, बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है?** आहा...हा...! हे जीव! यह श्रीमद् का वचन है। श्रीमद् में आता है न? हिम्मतभाई! जीव सुख तुझमें है, पर में नहीं। हे जीव! आनन्द अन्दर तुझमें हैं। वह ये पुण्य और पाप के भाव हैं, वे विकृत हैं, दु:ख है; वह दु:ख है, सो विकृतदशा है और अन्दरस्वरूप है, वह त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द-सुख वहाँ है।

जैसे हिरण की नाभि में कस्तूरी की कीमत है-कस्तूरी है। हिरण की नाभि में कस्तूरी है परन्तु उस कस्तूरी की हिरण को कीमत नहीं। उसकी गन्ध आने पर मानो कि यहाँ से आयेगी (बाहर से सुगन्ध आती है, ऐसा भासित होता है) इसलिए ऐसे बाहर में व्यर्थ प्रयत्न करता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा के अन्दर में आनन्द है। जैसे हिरण की नाभि में कस्तूरी है; वैसे भगवान आत्मा में अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु-सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का निधान है, उसके आनन्द में जाता नहीं। आहा...हा...! बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है? स्त्री में सुख और पैसे में सुख और इज्जत में सुख और बाहर में प्रशंसा हुई और किसी ने बड़ा कहा... मर जायेगा अब, सुन न! आहा...हा...!

उसमें दस-दस हजार का मासिक वेतन मिले, पच्चीस हजार का वेतन और उसमें देख लो, आहा...हा...! चाँदी की कुर्सी पर बैठा बड़ा। आहा...हा...! भाई! बाहर में प्रयत्न करता है, वह दु:ख है। सुख तो यहाँ अन्दर है। प्रभु सुखमय है, सच्चिदानन्द है। सच्चिदानन्द

www.vitragvani.com

अर्थात्? सत् अर्थात् है, (वस्तु है) चिद अर्थात् ज्ञान; आनन्द अर्थात् सुख। यह ज्ञान और आनन्द का भण्डार भगवान अन्दर है, तुझे पता नहीं। आहा...हा...! ऐसा कौन (सुने)? निवृत्ति (नहीं) होती। पूरे दिन निवृत्ति नहीं होती। लड़के को बड़ा करना और उसे फिर ठिकाने लगाना, विवाह में स्वयं को बुद्धि आदि इज्जत हो, उसके प्रमाण में लड़की आवे तो ठीक और साधारण (घर) से आवे तो? लो, और लड़की को ठिकाने लगाना... परन्तु ठीक न हो तो डालना नहीं। ए! मर गये वहीं के वहीं। परन्तु तेरा तूने क्या किया? ऐसी कल्पनाओं में रुककर भव को भूल गया। आहा...हा...!

कहते हैं **हे जीव! सुख अन्तर में है,...** अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है। आहा...हा...! वह अतीन्द्रिय आनन्द की खान है, नाथ! तू ऐसा है। आहा...हा...! कैसे जँचे? ऐसे बाहर में पैसे देखे, इज्जत देखे, मखमल के गद्दे देखे, करोड़ों रुपये के मकान (हों), दो करोड़ का मकान हो, फर्नीचर पच्चीस-पचास लाख का (हो) और बीच में पलंग डालकर पड़ा हो। आहा..हा...! अर र! बापू! यहाँ सुख है तू कहाँ व्यर्थ प्रयत्न करता है? भाई! तुझे इस भ्रान्ति में क्या हो गया है यह? भगवान को तूने भ्रान्ति में डाला है। आहा...हा...!

बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है? ओहो...हो...! पैसे कमाने के लिये देश छोड़कर, कुटुम्ब छोड़कर, सगे-सम्बन्धियों को छोड़कर परदेश में अकेला रहे। आहा...हा...! वहाँ से कुछ मिलेगा और कहीं आजीविका का साधन ठीक हो तो अपन फिर करेंगे, यह फिर इसका होता नहीं और ऐसा का ऐसा जीवन चला जाता है। **जिस प्रकार मरीचिका में से कभी किसी को जल नहीं मिला है...** मरीचिका है न? यह मृग-जल। रेतीली जमीन हो, रेतीली जमीन और उसमें सूर्य की किरण आवे तो ऐसे पानी जैसा लगे। मरीचिका का पानी! वहाँ पानी-बानी नहीं है। यह मृग ऐसा देखकर पीने जाये परन्तु वहाँ जाये तो कुछ नहीं मिलता। अर र! इसी प्रकार यह जगत के प्राणी मरीचिका के सुख जैसे... (संयोगों में सुख मानते हैं)। आहा...हा...! शरीर अच्छा और स्त्री अच्छी, पुत्र अच्छा और मैसूर चार किलो घी का पिलाया हुआ और उसमें अरबी के पत्ते का... अरबी का पत्ता नहीं आता? अरबी-अरबी। बड़े पत्ते। चने का आटा डालकर पीसकर, टुकड़े करके घी में तले। मैसूर को खाये वहाँ, ओहो...हो...! बस!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! पाड़ा की तरह ! मूर्ख है कहते हैं। पागल हो गया है। क्या हुआ तुझे यह ? आनन्द तो यहाँ है न (तेरे अन्दर); तूने वहाँ माना। यह क्या है तुझे यह ? आहा...हा... ! है न ? आहा...हा... !

जिस प्रकार मरीचिका में से कभी किसी को जल नहीं मिला है; उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं। अरे ! शरीर, वाणी में तो नहीं परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप का भाव हो, उसमें भी सुख नहीं है, क्योंकि विकारी भाव है, वह तो दुःख है। आहा...हा... ! कठिन काम। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह राग है, वृत्ति का उत्थान है, दुःख है। भाई ! तुझे पता नहीं। आनन्द यहाँ है, वहाँ नहीं। आहा...हा... ! वह दुःख है, राग है, क्लेश है। प्रभु तो अन्दर आनन्दस्वरूप है। वहाँ (पर में) खोजने जायेगा तो कहीं आनन्द-सुख मिलेगा नहीं। आहा...हा... ! है ?

उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं। आहा...हा... ! पुण्य और पाप के भाव में सुख नहीं, वह दुःख है तो फिर शरीर और बाहर के साधन बँगला, और होली सब, कहाँ धूल में भी नहीं। आहा...हा... ! आहा...हा... ! भोग में और शरीर को भोगे, इसलिए उसे ठीक लगे – ऐसा नहीं है। शरीर तो मिट्टी धूल है। प्रभु तो अरूपी है, वह भोग के समय उस शरीर को छूता भी नहीं, मात्र ऐसा लक्ष्य करता है कि यह ठीक है — ऐसी राग की वृत्ति उठाता है, उसे भोगता है; शरीर को नहीं। आहा...हा... ! इसे भी पता नहीं कि मैं क्या भोगता हूँ और क्या नहीं भोगता ! आहा...हा... ! उस समय यह राग के दुःख को भोगता है। आहा...हा... !

इसी प्रकार मैसूर आया। उस मैसूर को जीभ भी छूती नहीं और आत्मा भी छूता नहीं। मात्र इसने मान रखा है कि मीठा है और ऐसा है। ऐसी कल्पना करके इसे राग होता है। राग वह दुःख है, उसे यह वेदता है। आहा...हा... ! अरे ! इतने अधिक जाना ! यह कहते हैं। बाहर में सुख है ही नहीं। इस पुण्य के भाव में भी सुख नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति, मकान, बड़े बँगलों में तो सुख नहीं, वे तो परचीज़ हैं, उनमें कहाँ सुख था ? वे तो परमाणु मिट्टी है। उसका टुकड़ा करो तो परमाणु भिन्न रहेगा। पॉइन्ट – परम-अणु, अन्तिम से अन्तिम छोटा भाग। यह कोई एक चीज़ नहीं। टुकड़ा करो और अन्तिम

www.vitragvani.com

अणु रहे, वह परमाणु है। यह मिट्टी तो अनन्त रजकण का पिण्ड है। प्रभु तो अन्दर भिन्न है। आहा...हा...! उसका जाननेवाला अलग है। जाती है वह (चीज़) अलग है – ऐसी बातें अब। बापू! मार्ग ऐसा है। मनुष्यपना मिला, उसमें यदि यह नहीं करे तो वापस कब मनुष्यपने का अवतार मिलेगा? बापू! आहा...हा...! पता नहीं होता। आहा...हा...! **बाहर सुख है ही नहीं**। आहा...हा...!

गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है। कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। गुरु की आज्ञा में वर्तने से कर्म सहज ही दब जाते हैं और गुण प्रगट होते हैं॥१५९॥

१५९, **गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे**। आहा...हा...! यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : गुरु की जवाबदारी आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी नहीं। गुरु यह कहेंगे कि तेरे गुण पर दृष्टि दे-ऐसा कहेंगे। जैसे कमल खिलता है परन्तु कमल में शक्ति है; इसलिए स्वयं के कारण खिलता है, सूरज तो उसे निमित्त है। सूरज से खिलता नहीं। सूरज से खिले तो लकड़ी खिलना चाहिए। यह स्वयं गुलाब का फूल स्वयं विकसित होता है, वह अपनी योग्यता से खिलता है। इसी प्रकार गुरु यहाँ गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। कला बतलायेंगे कि अन्दर ज्ञानानन्द प्रभु है, वहाँ दृष्टि कर तो तेरे गुण की दशा प्रगट होगी – ऐसा दिखलायेंगे परन्तु करेगा तो यह, करे तो होगा।

मार्ग दिखलानेवाला दिखलाये, परन्तु चलना किसे है? मार्ग काटना, उसे चलना है या गुरु को चलना है? दिखानेवाले को चलना है? अरे... अरे...! गजब बातें भाई! परन्तु क्या कहते हैं, उनका कहा तो किया नहीं बैठ। कहाँ से जायेगा?

यहाँ तो कहा न **गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे**। गुणों में से पर्याय प्रगट होने की कला बतलायेंगे। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, उसमें तू

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दृष्टि दे और राग से हट जा तो तेरे गुण की पर्याय प्रगट होगी और तेरे जन्म-मरण का अन्त आ जायेगा। आहा...हा...! ऐसा है।

यह सज्झाय में आता था। ***होंशीडा मत होंश न कीजे।*** सज्झायमाला में आता है न? सज्झायमाला आती है। मैंने तो छोटी उम्र से बहुत किया है। दुकान पर यह पढ़ी है, चार सज्झायमाला है। एक सज्झायमाला की पुस्तक में दो सौ-ढाई सौ सज्झाय है। एक-एक सज्झाय में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह श्लोक हैं, ऐसी चार सज्झायमाला है, दुकान पर पढ़ी है।

मुमुक्षु : वे पड़ी होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे पड़ी होगी। अभी तो कौन ले? पड़ी होगी। कौन सब (ध्यान रखे)? समाप्त हो गया। बहुत सब मर गये। गायन लिखा था, वह पुस्तक तालाब में डूब गयी। सत्रह साल की उम्र है। सत्रह साल की उम्र, ७१ के पहले की बात है (संवत्) ७१ के पहले की बात है। १७ वर्ष की उम्र थी, तब लिखा था। ***शिवरमणी रमनार तुं तुं ही देवनो देव*** - ऐसा लिखा था। दुकान में तो था। वे लोग विवाह में गये न, दो दुकानें थीं। मैं और मेरा एक नौकर - दो थे।

रामलीला देखने गये थे। रामलीला नहीं होती? राम, सीता और लक्ष्मण की होती है न? वह देखने गये और उसमें से अन्दर में (आया) प्रभु! तू कौन है? इस स्त्री का भोग करनेवाला तू नहीं; तू तो शिवरमणी रमनार है। उस दिन आया था। सत्रह वर्ष की उम्र, बहत्तर वर्ष पहले की बात है। और तू ही देव का देव है। तू देव का देव चैतन्यमूर्ति है। आहा...हा...! ऐसी बारह लाईनें थीं, मैंने लिखी थीं। वह कागज आता है न? वह आँकेला कागज नहीं (आता)? उसमें लिखी थी। दीक्षा ली, इसलिए कुछ साथ में नहीं लिया, फिर मेरे बड़े भाई को कहा भाई! मेरी पुस्तक पड़ी है। वहाँ हमारी दुकान के पास एक बड़ा तालाब है, पानी आया तो अन्दर घुस गया, डूब गयी।

यह तो एक कड़ी है। ऐसी-ऐसी बारह लाईनें हैं। कौन जाने अन्दर में से आयी थी उस समय। पूरी होती तो पता पड़ता क्या है उसमें। आहा..हा...! भाई! तू यह नहीं। आहा...हा...! इस स्त्री से विवाह करना, वह तू नहीं, बापू! तेरी स्त्री नहीं। ऐसा आया

www.vitragvani.com

अन्दर से। शिवरमणी, मोक्षलक्ष्मी, उसकी रमणी का तू रमनेवाला है, बापू! आहा...हा...! 'तू ही देवनो देव' इस पहले पद में दो बोल आये थे, वह पुस्तक दुकान में रह गयी।

यहाँ कहते हैं, आहा...हा...! **गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है।** वह आज्ञा तो यह है कि राग से भिन्न करके आत्मा में रहना। आहा...हा...! श्रीमद् में आता है न? ज्ञानी की आज्ञा प्रमाण रहना। तब लोग समझते हैं कि... परन्तु ज्ञानी की आज्ञा क्या है? ज्ञानी की आज्ञा यह है कि राग से भिन्न पड़कर आत्मा में जा। 'राग से खस, स्वरूप में बस, इतना संक्षिप्त टच, इतना तेरे लिए बस'। उदाणी!

एक क्षुल्लक थे। दिगम्बर में क्षुल्लक होते हैं न? क्षुल्लक। यहाँ लंगोटी पहनकर आते बेचारे। बुद्धि थोड़ी थी परन्तु यहाँ प्रेम बहुत। यह बात सुनने का (प्रेम) बहुत। फिर पुस्तकें मँगावे, सब करे। बहुत पूछे तो वे कहते। क्या कहलाता है? सागर, आदिसागर तो वे दूसरों को फिर इतना कहते। बुद्धि थोड़ी थी परन्तु यहाँ का रस। आहा...हा...! बात तो यह है। उसे इतना कहते - पर से खस-रागादि से हट जा। स्वरूप में बस, स्व में बस, पर से खस, टूँकू टच, तेरे लिए बस। आहा...हा...! यह उसकी फिर यह सब टीकायें हैं। स्वर्गस्थ हो गये बेचारे। प्रेम था। जहाँ जाते वहाँ आते। वहाँ क्या कहलाता है वह नेमचन्दभाई का? रखियाल। रखियाल आये थे। बुद्धि थोड़ी थी परन्तु उन्हें (प्रेम बहुत था)। ओहो...हो...! यह शुभ और अशुभभाव का राग, उससे भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु भिन्न है। उसकी श्रद्धा और ज्ञान बिना दुनिया में, धूल में कुछ नहीं, मर जायेगा। आहा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं, **गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है।** अर्थात् आज्ञा तो यह है कि वीतरागता प्रगट करना। वीतरागता क्यों? (क्योंकि) सम्पूर्ण जैनशासन सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए चार अनुयोगों का सार वीतरागता है। वीतरागता प्रगट कैसे होती है? आहा...हा...! कल बहुत कहा गया है। कल बहुत कहा गया है। चारों अनुयोग— द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, धर्मकथानुयोग और आत्मकथा बहुत हो परन्तु उसका तात्पर्य क्या? वीतरागता-अरागता। तो अरागता होती कैसे है? कि वीतरागस्वरूप

www.vitragvani.com

ही भगवान आत्मा अन्दर है। आहा...हा... ! उसका आश्रय ले तो वीतरागता होती है, तब तेरे जन्म-मरण मिटेंगे; नहीं तो जन्म-मरण की होली सुलग जायेगी - ऐसी की ऐसी। आहा...हा... !

उसमें (सज्झाय में) आता था। ***होंशीडा मत होंश न कीजे*** बड़ी सज्झाय थी। ए होंशीडा ! पर में उत्साह न कर, भाई ! पर में हर्ष और उत्साह न कर, भाई ! आहा...हा... ! उत्साह... उत्साह... उत्साह... ऐसा मानो, ओहो...हो... ! विवाह करना हो न, लड़के का विवाह करना हो और उसमें दो-पाँच लाख खर्च करना हो... आहा...हा... ! बड़ी-बड़ी बातें करे अन्दर से। ***होंशीडा मत होंश न कीजे*** बापू ! उस पर पदार्थ में उत्साह मत कर, हर्ष मत कर, भाई ! हर्ष करनेयोग्य चीज़ तो अन्दर भगवान आत्मा है। आहा...हा... ! गजब बातें, भाई !

राजकोट के हैं वे लुहाणा, नहीं ? पैसेवाले हैं।... क्या नाम ? आता है। बहुत प्रसन्न होता है, बहुत रस है। राजकोट का लुहाणा है। कपड़े का व्यापारी है। बड़ा गृहस्थ है, व्याख्यान में हमेशा आवे और बहुत रस। ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न, आहा...हा... ! ऐसा कहाँ है ? कहाँ है ? ऐसा कहे। एक तो करोड़पति अफ्रीका का लुहाणा है। वह तो आवे बेचारा, भाई को लेकर आवे, चतुर भाई का लड़का, भाई ! (उस भाई को) वह लेकर आवे। अफ्रीका का बड़ा लुहाणा है, बड़ा करोड़पति है। कुर्सी पर बैठे, बड़ी अवस्था हो गयी, सुने, परन्तु उसे पैसा इतना अधिक और अवस्था हो गयी तो अब यह बातें... वह जो बीच में आता है, उसे तो बहुत रस, भाई ! यह तो तेरे घर की बातें हैं, बापू ! यह तो आत्मा की बात है। यह कोई पक्ष की और बाड़ की बात नहीं है। आहा...हा... !

तू कौन है ? कहाँ है ? कितना है ? आहा...हा... ! श्रीमद् में तो सोलह वर्ष में कहा, श्रीमद् राजचन्द्र, सोलह वर्ष, पूर्व का जातिस्मरण सात वर्ष में हुआ, सोलह वर्ष में (कहते हैं) **मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?**

मैं कौन हूँ ? आत्मा। कहाँ से हुआ ? अनादि से हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है ? सोलह वर्ष की उम्र। तैंतीसवें वर्ष में तो स्वर्गस्थ हो गये। आत्मज्ञान हुआ था, एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। जवाहरात का बड़ा धन्धा मुम्बई में था।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या॥
इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥

सोलह वर्ष की देह। आत्मा तो अनादि का है, उसे कहाँ वर्ष थे। समझ में आया? आहा...हा...! मोक्षमाला है न? उसमें है। उनकी शक्ति बहुत थी। श्रीमद् आ गये अवतार में (वैष्णव सम्प्रदाय में जन्म हुआ) विष्णु में थे परन्तु फिर तो स्थानकवासी और फिर इस शैली का वाचन करके, फिर तो आत्मज्ञान हुआ, वस्तु का भान हुआ। देह छूटकर स्वर्ग में गये हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। मुम्बई में झबेरी थे। लाखों का जवाहरात का (धन्धा था) अन्दर में भिन्न... भिन्न... भिन्न। नारियल में गोला (सफेद गोला) जैसे भिन्न होता है न नारियल का! बजनेवाला। आहा...हा...! वे सोलह वर्ष में ऐसी पुकार करते हैं कि **इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर...** पाँच मिनिट अधिक हुए। पता है। **तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये।**

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, शुक्रवार, दिनाङ्क ०४-०८-१९७८
वचनामृत-१६०-१६१ प्रवचन-५७

जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानी से पृथक् ही रहता है उसी प्रकार तेरा द्रव्य कर्म के बीच रहते हुए भी कर्म से भिन्न ही है; वह अतीत काल में एकमेक नहीं था, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नहीं होगा। तेरे द्रव्य का एक भी गुण पर में मिल नहीं जाता। ऐसा तेरा द्रव्य अत्यन्त शुद्ध है उसे तू पहिचान। अपना अस्तित्व पहिचानने से पर से पृथक्त्व ज्ञात होता ही है ॥१६०॥

१६० बोल है न? बाकी है? १६०, **जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानी से पृथक् ही रहता है...** कमल, कीचड़ में होता है न? ऐसे दिखता है। वह कमल, कीचड़ से और पानी से भिन्न रहता है। **उसी प्रकार तेरा द्रव्य...** आत्मद्रव्य **कर्म के बीच रहते हुए भी....** कर्म-अनन्त रजकणों के मध्य में रहा होने पर भी, **कर्म से भिन्न ही है;...** आहा...हा...! कमल जैसे कीचड़ से भिन्न और पानी से भिन्न है; वैसे आत्मा, कर्म और कर्मजनित विकारभाव, दोनों से भिन्न है। आहा...हा...! वीतरागस्वरूप चैतन्यमूर्ति परम-आनन्द के भरपूर भाव से भरा हुआ भगवान, इन कर्म और कर्म के निमित्त से हुई उपाधि / विभाव —दोनों से भिन्न है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

वह अतीत काल में एकमेक नहीं था,... भूतकाल जो अनन्त गया, तो भी वह द्रव्यस्वरूप जो ज्ञानरस-आनन्दस्वरूप, जिनस्वरूप है, वह कभी कर्म और राग से एकमेक नहीं हुआ। आहा...हा...! यह वस्तु है — चैतन्य भगवान जिनस्वरूप है। यह राग

www.vitragvani.com

और कर्म के सम्बन्ध में एकमेक हुआ नहीं। इसने माना भले हो कि राग में मैं दब गया हूँ और राग मेरा स्वरूप है, परन्तु ऐसा है नहीं। आहा...हा...! यह राग और विकल्प और कर्म अर्थात् अजीव और पुण्य-पाप के परिणाम से भगवान आत्मा भिन्न ही पड़ा है। आहा...हा...! अभी (ऐसा है)।

यह कहते हैं, भूतकाल में भी ऐसा था। **अतीत काल में एकमेक नहीं था, वर्तमान में नहीं है...** आहा...हा...! अब यहाँ तो (अज्ञानियों ने) लगाई है कि कर्म के कारण यह होता है और कर्म के कारण यह होता है। वे कर्म जड़ हैं, उनके कारण विभाव नहीं होता। स्वयं निमित्त के आधीन होता है, इसलिए विभाव (होता है)। परन्तु यह विभाव और कर्म... कर्म, वह अजीव; विभाव, वह पुण्य-पाप तत्त्व; भगवान ज्ञायकतत्त्व इनसे अत्यन्त भिन्न है, वरना नौ तत्त्व भी सिद्ध नहीं होते। आहा...हा...! नवतत्त्व का अस्तित्व कब सिद्ध होगा? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात, प्रभु! इस प्रभुता के स्वभाव से भरा हुआ भगवान, राग के विकल्प और कर्म से एकमेक भूतकाल में हुआ नहीं, वर्तमान में भी हुआ नहीं; भिन्न ही है। आहा...हा...!

और **भविष्य में नहीं होगा**। आहा...हा...! अज्ञानी के भविष्य में उसका द्रव्य, राग और कर्म के मध्य रहा होने पर भी, वह द्रव्य-वस्तु है, वह भविष्य में राग और कर्मरूप नहीं होगा, भिन्न ही है। आहा...हा...! ऐसा है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे विभाव हैं; उनसे प्रभु अन्दर भिन्न है। आहा...हा...! विभाव से धर्म होगा (-ऐसा जो मानता है), उसने तो विभाव और स्वभाव दोनों को एक माना है। आहा..हा...! थोड़ी बात है, छोटी है परन्तु रहस्य इसका बड़ा है, प्रभु! आहा...हा...! इसे राग से भिन्न करना। क्योंकि राग से भिन्न है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये कल थोड़ी बात की थी कि यहाँ परलक्ष्य से अन्दर जो वृत्ति उठती है, जहाँ स्वलक्ष्य नहीं और परलक्ष्य से वृत्ति उठती है, वह राग है। बात सत्य है। राग क्या? और चैतन्य क्या? आहा...हा...! स्वरूप—जो चैतन्य तत्त्व—द्रव्य है, उसमें जो राग होता है, वह परलक्ष्य में जाता है; इसलिए होता है। सूक्ष्मरूप से उसका

www.vitragvani.com

विचार करते हुए इस ओर ढलता नहीं और ऐसे ढला है, ऐसे ढला नहीं, इसलिए ऐसे ढला है अर्थात् ऐसे वीतरागस्वरूप की ओर ढला नहीं, इसलिए निमित्त की ओर ढला है; इसलिए राग है-ऐसा लक्ष्य में आना चाहिए। सूक्ष्म बात है, भाई! अरे! इसे जो मूल करना है, वह यह है, भाई! बाकी तो सब बातें हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ज्ञान, राग एक सरीखे दिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक है ही राग। (एक) सरीखा दिखता है, वह तो माना है। ज्ञानस्वरूप, वह अन्तर्मुख है और राग है, वह बहिर्मुख के लक्ष्य से होता है। वह बहिर्लक्ष्यी राग कहा या बहिर्लक्ष्यी भाव कहो-एक ही है। यह तो पहिचानने को (ऐसा कहा) कि राग कहना किसे अन्दर? जितना यह परलक्ष्य में जाता है दया का, दान का, भक्ति का - वह सब राग है। कठिन काम बहुत, बापू!

मुमुक्षु : पर तरफ जाना, वह राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर जाना, वह राग है, क्योंकि स्वरूप तो वीतरागस्वरूप है और वह राग से तथा कर्म से तो भिन्न है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वीतरागस्वरूप तो सिद्ध हों, तब होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ही वीतरागस्वरूप है। सबेरे बहुत कहा था। पढ़ा? भाई! एक लेख है। जापान का कोई शोधक व्यक्ति है, ऐतिहासिक (शोधक) है, ६३ वर्ष की उम्र है, उसका लड़का १७ वर्ष की उम्र का है। उसने जैनधर्म के लिये बड़ा लेख लिखा है। उसका वह लेख जगनमोहनलालजी ने इसमें प्रकाशित किया है। बहुत सरस बात है।

जैनधर्म अर्थात् क्या? कि आत्मा में जो वीतरागस्वरूप है; वीतराग (शब्द) उसने नहीं रखा परन्तु वह वस्तु जो है, इससे उसका स्पष्टीकरण ऐसा करना पड़ा कि जिनस्वरूप है और उसकी अनुभूति, वह जैनपना और वह सम्यग्दर्शनपना है। उसने ऐसा लिखा है उसमें, हों! आहा...हा...! और बौद्ध में से जैन निकले - ऐसा कोई कहता हो तो वह वस्तु समझता नहीं। जैन अर्थात् सबेरे कहा था न? जिन अर्थात् द्रव्य और जैन अर्थात् द्रव्य के

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सन्मुख हुए परिणाम। आहा...हा... ! यह तुम्हारे डॉक्टर की पढ़ाई में नहीं आता, सम्प्रदाय में सुने तो भी यह नहीं आता।

मुमुक्षु : तो करना क्या अब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही करो। आहा...हा... ! अभी तो बात बहुत बदल गयी है। वह ऐतिहासिक जापानी व्यक्ति ऐसा कहता है। जैनधर्म अर्थात्... आहा...हा... ! आत्मा की अनुभूति, वह जैनधर्म है। आहा...हा... ! और उस बौद्ध तथा उपनिषद में भी ऐसी कोई बात है, परन्तु यह सब यहाँ की छाया वहाँ आयी है। वस्तु तो यहाँ की है। बात तो सच्ची है। आहा...हा.. !

यूरोप में यह धर्म था, बहुत देशों के नाम दिये। भगवान जब बिराजते थे तब... आहा...हा... ! इन्द्र जहाँ आते, वहाँ मनुष्यों का प्रचार तो बहुत था। आहा...हा... ! वह जैनधर्म अर्थात् मूल बात ऐसी है कि वस्तु जिनस्वरूप है, यह बात ही जँचती नहीं क्योंकि पुण्य और पाप के राग में अटक गया है, एकाकार हो गया है; इसलिए इसे कोई अन्दर भिन्न है-ऐसा इसे जँचता नहीं। अव्यक्तरूप से भी जँचना चाहिए, वह जँचता नहीं।

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य को मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता नहीं-ऐसा ही है। आहा...हा... ! भगवान जिनस्वरूप है, उसका इसे विश्वास नहीं। इसलिए इस राग और पुण्य की क्रिया में... आहा...हा... ! यह मुझे धर्म होता है-ऐसा मानता है। इसे, भगवान पूर्णानन्द का नाथ वीतरागस्वरूप बिराजमान है, उसकी इसे श्रद्धा नहीं, उसे इसने जाना नहीं, उसकी इसे ज्ञान में खबर नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बातें, बापू ! बहुत कठिन। आहा...हा... !

अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों की यह पुकार है। यह शरीर, वाणी, कर्म और परवस्तु, वह तो जगत के स्वतन्त्र तत्त्व हैं। उनकी पर्याय में आत्मा गया नहीं, उनके द्रव्य में तो जाए कहाँ से। आहा...हा... ! मात्र कर्म एक निमित्त है। उसके संयोग के सम्बन्ध में अनादि से दृष्टि गयी है, उससे इसे विकारभाव स्वयं से उत्पन्न हुआ है। उस विकारभाव से भी वस्तु तो निराली-भिन्न है। आहा...हा... ! इसे अभ्यास हो गया है, आदत हो गयी है कि राग, वह मैं और दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है, वह मानो मैं हूँ और मेरा कर्तव्य

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है—ऐसा अज्ञान में, मिथ्यात्व में अनादि से हो गया है, परन्तु वस्तु जो है चिद्घन, तत्त्व है न? द्रव्य है न? वस्तु है न? ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव अस्तिवाली चीज़ है न? वह तो जिनस्वरूप है। वह कर्म से भूतकाल में एक हुआ नहीं, वर्तमान में एक है नहीं, भविष्य में (एक) होगा नहीं। माने चाहे तो। इसकी मान्यता स्वतन्त्र है। अज्ञानी माने कि मैं कर्म में रुक गया हूँ, कर्म ने मुझे दबाया है, कर्म मुझे भटकाते हैं और कर्म के निमित्त से होनेवाला भाव, कर्म से होता है—ऐसा न मानकर, मुझसे होता है और मेरा धर्म / स्वभाव है (परन्तु यह वस्तु का स्वरूप नहीं है।) आहा...हा...! ऐसा काम है। ऐसा है प्रभु! मार्ग तो ऐसा है। आहा...हा...!

जैसे नारियल में काँचली से गोला भिन्न होता है... काँचली कहते हैं न? क्या कहलाता है? नरेटी। और छाल, उससे भिन्न गोला है; इसी प्रकार यह छाल-शरीर और कर्म अन्दर जो है—काँचली और काँचली की लाल छाल जो है, काँचली की ओर की लाल छाल, खोपरापाक करें, तब घिस डालते हैं न? आहा...हा...! तो उस लाल छाल, काँचली और छाल से अत्यन्त भिन्न चीज़ अन्दर है। श्रीफल, उसे श्रीफल कहते हैं। आहा...हा...! इसी प्रकार भगवान आत्मा, शरीर का छाल है, उससे तो भिन्न है; कर्म की काँचली है, उससे भिन्न है; कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से अपने में हुआ पर्याय में विभाव, उससे वस्तु भिन्न है। ऐसा है भगवान! दूसरे कुछ भी कहो परन्तु वस्तु तो यह है। इसे (प्राप्त करने का) दूसरा कोई साधन? वह साधन ही यह है। राग और पर से भिन्न हूँ—ऐसा जो अन्दर अनुभव करना, वह साधन है।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब निमित्त की बातें। यह कहेंगे अभी, गुरु की आज्ञा में रहना, परन्तु उनकी आज्ञा वीतरागभाव की है। आहा...हा...! मेरे सामने देखना – यह भी उनकी आज्ञा नहीं। आहा..हा...! यह तो (समयसार की) चौथी गाथा में आता है न? स्वयं को ज्ञान नहीं और जिसे ज्ञान है, उसकी सेवा की नहीं... सेवा अर्थात्? उन्होंने जो कहा है कि प्रभु! तू भिन्न है न नाथ! मेरे सन्मुख देखने से तेरी वस्तु तुझे नहीं मिलेगी। आहा...हा...! जहाँ, उसके सन्मुख देखने से उसे प्राप्त होगी। कठिन काम है, बापू! परन्तु

www.vitragvani.com

मार्ग तो यह है। आहा...हा...! अभी तो यह बाहर में पैसा, इज्जत-कीर्ति और धन्धा (में) रचापचा पड़ा है। अरे रे! माना है, हों! आहा...हा...!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया ने माना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया पागल है। भगवान जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, वे यह बहिन के वचन हैं। आहा...हा...! प्रभु! तू तो राग से और कर्म से भिन्न पड़ा है न! यदि भिन्न न हो तो भिन्न होगा कहाँ से? आहा...हा...! समझ में आया? अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प उत्पन्न होता है, भगवान! उससे भी तू भिन्न चीज़ है। आहा...हा...! यदि भिन्न न हो तो भिन्न पड़ेगा कहाँ से? आहा..हा...!

मुमुक्षु : इसका अर्थ ऐसा कि हमें किसी की दया नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है दया? पर की दया करे कौन? वह कर तो सकता नहीं परन्तु पर की दया का भाव है, वह जीव की हिंसा है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : दया तो... धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह दया। आत्मा में राग की उत्पत्ति न होने देना और आत्मा की वीतरागीदशा उत्पन्न होना, इसका नाम जीव की दया है। सूक्ष्म बात है, बापू! आहा...हा...! अनन्त काल से भटककर दु:खी है। आहा...हा...! नरक और निगोद... बापू! यह क्या है? भाई! इसने विचार कहाँ किया है? आहा...हा...! यह बाहर की चीज़ के उत्साह में घाता जाता है, इसका पता नहीं। आहा...हा...!

प्रभु! तुझे तेरा उत्साह नहीं आता? कि मैं एक आनन्दसागर प्रभु अन्दर हूँ। आहा...हा...! आहा...हा...! अतीन्द्रिय आननद से भरपूर भगवान आत्मा... आहा...हा...! अर्थात् जिनस्वरूप प्रभु, आत्मा जिनस्वरूप ही है। जिनस्वरूप न हो तो पर्याय में जिनस्वरूप आयेगा कहाँ से? आहा...हा...! समझ में आया? पर्याय में जो अरिहन्त सर्वज्ञ-वीतराग होते हैं, वह सर्वज्ञपर्याय और वीतरागपर्याय कहाँ से आयी? कहीं बाहर से आती है? आहा...हा...! भगवान! तू सर्वज्ञस्वभावी है, वीतराग स्वरूपी है... आहा...हा...! इससे तू अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। तेरा स्व-रूप यह है, तेरा स्व-रूप यह है; राग तेरा स्व-रूप

www.vitragvani.com

नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात जगत को सूक्ष्म पड़ती है। क्या हो ? अनादि से भटकता है, बापू ! आहा...हा... !

राग का-शुभ का कण है, उससे प्रभु जीवतत्त्व अत्यन्त भिन्न है, क्योंकि शुभराग का जो कण है, वह तो पुण्यतत्त्व है और भगवान तो ज्ञायकतत्त्व है। ये पुण्यतत्त्व और ज्ञायकतत्त्व दोनों तो भिन्न है। आहा..हा... ! भाई ! काम कठिन है परन्तु इसका फल वीतराग परमात्मदशा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

तेरे द्रव्य का एक भी गुण पर में मिल नहीं जाता। प्रभु ! तू वीतराग गुण से, ज्ञानगुण से, श्रद्धा गुण से, शान्ति गुण से, चारित्र-वीतराग इस गुण से भरपूर भगवान है। एक गुण कहीं पर में जाता नहीं। है ? पर में मिल जाता नहीं। गुण जो चेतन का चैतन्य, आत्मा का आत्मापना; वह कोई रागपने में जाए —ऐसा (होता नहीं)। आहा...हा... ! जिनस्वरूप का जिनपना, प्रत्येक गुण वीतरागपने है। आहा...हा... ! वह रागपने कभी होता नहीं। वीतरागी गुण है, वह राग में मिलता नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात है तो सूक्ष्म, परन्तु वस्तु तो यह है। अरे रे ! बाकी तो दु:खी होकर भले ऐसे मुख से लाल दिखे और ऐसे पैसेवाला, मकानवाला और स्त्री-पुत्रवाला... शरीर में एक 'वाला' निकलता है, तो दु:ख होता है। ये मेरे... मेरे... मेरे... यह 'वाला'— पैसेवाला, रागवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला कितने 'वाला' प्रभु ! तुझे है ? आहा...हा... ! कठिन बात है, उदाणी ! आहा...हा... ! नियमसार में ऐसा कहा है कि स्त्री, पुत्र, परिवार तो लुटेरों की टोली है, लुटेगी। तुझे मार डालेगी। हमसे किसलिए विवाह किया था ? हाथ किसलिए पकड़ा था ? हम तुम्हारे पुत्र हैं, हमें देना पड़ेगा। आहा...हा... !

एक लड़का पढ़ता था, पूना में। उसका बाप पैसेवाला। यह तो साठ वर्ष पहले की बात है। ७४ में तो वह लड़का बेचारा मर गया। ७४ के साल बैशाख में विवाह किया और आसोज महीने में मर गया। पैसा, दामनगर में दामोदर सेठ था। यह साठ वर्ष पहले की बात है। दस लाख रुपये, चालीस हजार की पैदाईश / आमदनी तो उस समय थी, चालीस हजार ! अब बीस-पच्चीस गुना हो गया ? एक गाँव घर में था 'रलियापाक' गाँव घर में। बनिया हमारी जाति का। घर में आहार बहुत, घोड़ा घर में, बन्दूकें घर में। आहा...हा.. !

www.vitragvani.com

बड़ा दरबार जैसा। वह लड़का पढ़ता था। लड़के को महीने में चाहिए पुस्तक का, शिक्षक को देने का... क्या कहलाता है महीने में देने का? फीस। वे सब देते, परन्तु ऊपर से कुछ नहीं देते थे। पच्चीस-पचास रुपये देते होंगे। इसके अतिरिक्त गुंजा (जेबखर्च) के। इसलिए उसने लिखा। गुंजा का समझ में आया? फीस के, पुस्तक के, भोजन के ये पैसे अलग, इतने तो देते। इसके अलावा थोड़े पाँच-पच्चीस देते होंगे।

उसने लिखा, बापूजी! महीने में दो सौ रुपये जेबखर्च के लिए चाहिए। जो खर्च भोजन का, फीस का है, तदुपरान्त दो सौ चाहिए। तुम्हें न पोसाये तो काका को (कहना)। तीन भाई थे, यह तो हमारे सब अनुभव में आया हुआ है। काका को न पोसाता हो तो तुम्हारे नाम में करो। क्यों? कि उस दिन तो नोट नहीं थे न, उस दिन तो रुपये थे, रोकड़ा... रोकड़ा। नोट लाख आवे, लाख रुपये आवे सौ हजार की।.... क्या कहलाता है? थैली। वे लोग गृहस्थ व्यक्ति थे। इसलिए पैसा आवे तो मजदूर लेकर अमुक जगह बाहर रखे। जहाँ डालना हो, वहाँ मजदूर नहीं ले जायें। वे लड़के और घर के व्यक्ति को उठाकर कौने में एक ओर के अलमारी डालना हो, वे उनके घर के व्यक्ति जायें। वह कहता लड़का बेचारा लिखता। आहा...हा...! ७४ के वैशाख में विवाह हुआ और ७४ के असोज महीने में मर गया। छह महीने का विवाहित। बड़ा गृहस्थ! चालीस हजार की आमदनी और दस लाख उस समय, दस लाख अर्थात् अभी के बीस गुने। बापूजी! दो सौ रुपये चाहिए। पैसा जब अन्दर रखने जाते हैं, तब हमारी कमर टूटती है—ऐसा लिखा था भाई ने, हों! आहा...हा...! लिखा था।

हमारे सम्प्रदाय का गण था वह। बोटाद सम्प्रदाय का, गाँव, दामनगर। वहाँ चातुर्मास किया है। वह पैसा आता है लाख, दो लाख जब, सौ-दो सौ जब... क्या कहलाता है? थैलियाँ। उस समय तो रोकड़ रुपये ही थे न! वे अन्दर डालने जाते हैं, तब हमारी कमर टूटती है, हों! हम साधारण घर में अवतरित नहीं हुए हैं, हम गृहस्थ के घर में अवतरित हुए हैं। इसलिए महीने में सब खर्च के उपरान्त जेबखर्च के दो सौ चाहिए। मोहनलालजी! भेजते थे, भेजते थे परन्तु लड़का विवाह करके छह महीने में (मर गया)। बड़ा शरीर था ऐसा। रायचन्द! नाम था, हमने तो सब जाना है, बड़े गृहस्थ। साठ वर्ष पहले दस लाख,

www.vitragvani.com

और चालीस हजार की आमदनी अर्थात्! अभी तो रुपया चार पैसे का, तीन पैसे का हो गया। आहा...हा...! जो चीज़ पहले पाई में मिलती थी, वह अभी चार पैसे में भी नहीं मिलती। आहा...हा...!

एक पाई में तो बापू! हमारे घर था न! हमारे घर के पास मुसलमान का घर (था)। (वहाँ) बाई थी। (उसे) हम मौसी कहते थे, हमारी माँ वहाँ की थी न, उसे मौसी कहते और उसके वर को मामा कहते। 'गीगा' मामा और मौसी। घर के साथ वह मकान अब इसमें ले लिया। वह मकान यहाँ का मकान है न? पैसा देकर जन्मस्थान में मिला लिया। उसमें वह बाई रहती थी। पाई-पाई का तोलकर (दे) हरिजन, भंगी लेने आवे, वह पाई में से साग ही दे और पाई में वापस थोड़ा गुड़ भी दे। उस समय तो बहुत सस्ता था न! उसमें भी फिर पाव पाई कमाये। वह मकान जब लिया, तब सत्ताईस रुपये की पाई निकली, एक पाई। एक पाई कहलाती है न? आहा...हा...!

वे उसे दो सौ बेचते थे। ऐसा उसने लिखा। आहा...हा...! बापू! काका को न पोसाता हो, शामिल हैं इसलिए; और मैं लड़का बड़ा हुआ और पढ़ता हूँ, भोजन और फीस के उपरान्त, पुस्तक के उपरान्त महीने में दो सौ रुपये खर्च करने के लिये चाहिए। रतिभाई! वह बेचारा! आहा...हा...! भाई! ऐ पलंग और वर्ष पहले तक उसके विवाह की तैयारियाँ। ढोलिया क्या कहा? पलंग, पलंग बनाया। यह सब... आहा...हा...! वह भाई बीमार पड़ा। छह महीने में देह छूट गयी। विवाह के छह महीने, हों! और उसकी माँ दीवान की लड़की थी। लीमडी दरबार, लीमडी के दीवान। और वे सब रोते-रोते आये। बाई क्या कहलाये? खवासडियूँ (रुदन करानेवाली महिलायें) राजा का खवासडियूँ होती है। बहुत रुलावे, कुटावे, बहुत कूटे रुलावे। (संवत्) १९७४ की बात है, यह तो १९७४ की बात है। कितने हुए? ६० वर्ष हुए। ६० वर्ष पहले की बात है। उस बाई के पीहरवाले आये। वह मर गया और गाँव में आये। वे रुलानेवाली पुकार करे, लकड़ी टूट कर पड़ी है या कोई व्यक्ति मर गया है? क्या है? हाथ क्यों नहीं उठता? और रोवे-रोवे, रुलावे रुलावे... वे तो कहाँ रोती थी। सेठ कहते थे कि हमें तो मर गया उस दिन नहीं हुआ था परन्तु आज वह ऐसा होने पर आँसू की धारा बहती जाती है। आहा...हा...! उसे भी एक क्षण में देह छूट गयी, बापू! आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यह पलंग और यह विवाहित उस बाई को छोड़कर चला गया। आहा....हा...! बापू! वह तो नाशवान चीज़ है, बापू! वह तेरी कहाँ आयी? आहा...हा...! उसे न पहचानो, दामोदर सेठ दामनगर के हैं न? हमारे सेठ थे। इतने में गृहस्थ ही वे एक थे। दस लाख! उस समय तो बनियों में (दूसरा कोई नहीं)। अब तो करोड़ों पैसे हो गये हैं। करोड़पति अभी बहुत हो गये हैं। आहा...हा...! उस समय दस लाख किसके पास थे? बापू! यह नाशवान (चीज़ है)। आहा...हा...! और वह मरते हुए ऐसा कहता... क्योंकि पाप बहुत किये और ऐसी दृष्टि बहुत विपरीत थी। स्थानकवासी की श्रद्धा और दृष्टि (परन्तु वह) मुझे कोई खींचता है, मरते हुए कहता, मुझे कोई खींचता है, ऐसे खींचता है। उघाड़ था, सेठ था। अब जाना है नीचे, इसलिए वह क्षयोपशम कम होने लगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है बापू! यह तो एक है उसकी बातें हैं। कोई व्यक्ति के लिये (बात नहीं)। यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहा...हा...! मुझे कोई खींचता है। बड़ा सेठ नाम का सेठ, गाँव का सेठ, अमरेली के बड़े जज, अधिकारी उसे मिलने के लिये उसके घर आते, ऐसी उसकी इज्जत बड़ी। दामोदर सेठ, वह भाई मरते, मुझे कोई खींचता है, मेरी दशा अन्दर घाती जाती है। आहा...हा...! क्योंकि दृष्टि विपरीत थी, पाप बहुत किये थे। आहा...हा...! इसीलिए जो ज्ञान का उघाड़ था... जाना कहाँ है? वहाँ अल्प ज्ञान में ऐसी दशा में जाना है भटकने। आहा...हा...!

भाई! यह व्यक्ति के लिए नहीं, यह तो एक वस्तु की स्थिति है। आहा...हा...! और स्वयं जीते हुए यों ही कहते, स्वयं को ऐसा अभिमान बहुत था न कि मुझे ऐसा लगता है कि मैं मरकर किसी झोंपड़ी में जाऊँगा, ऐसा कहते। झोपड़ी समझे? छोटी झोपड़ी जाऊँगा-ऐसा कहते। बहुत विराधक थे। आहा...हा...! किसका लड़का और किसकी लड़कियाँ? बापू! किसकी है यह? आहा...हा...! यहाँ तो रागरूप भी तू नहीं। आहा...हा...! तो कर्मरूप और पररूप तो कहाँ से हुआ? भाई! तुझे क्या हुआ? भ्रम। आहा...हा...! इस भ्रम ने तुझे-भगवान को चौरासी में भ्रमाया है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि **द्रव्य का एक भी गुण पर में मिल नहीं जाता। ऐसा तेरा द्रव्य अत्यन्त शुद्ध है....** अत्यन्त शुद्ध है। आहा...हा...! अकेला शुद्ध नहीं, अत्यन्त शुद्ध।

www.vitragvani.com

वीतरागस्वरूप पवित्रता का पिण्ड प्रभु! आहा...हा...! यह हीरा नहीं आता? आज भाई लाये थे। एक इतनी सी कणी, भाई! हीरा की कणी है। यह शिवलालभाई! लाये थे। बहिन को देनेवाले हैं न! अड़तालीस हीरा थे, एक हीरा ढाई सौ रुपया। इतनी कणी, राई जितनी थी। राई जितनी कणी। ढ़ाई सौ (रुपये की)। ऐसे अढ़तालीस, साढ़े बारह हजार रुपये के। ऐसे दिखे जरा से। अरे! यह तो परमाणु का पिण्ड अनन्त रजकण की उज्ज्वल पर्याय है। वह तो अन्दर जल चमकता है।

यह प्रभु तो चैतन्य चमत्कार अन्दर... आहा...हा...! जिसके चैतन्य के चमत्कार के प्रकाश समक्ष सूर्य और चन्द्र का प्रकाश भी जहाँ फीका हो जाता है। आहा...हा...! जिसके-चैतन्य के अन्तर के प्रकाश में से जब केवलज्ञान बाहर आवे, चार ज्ञान भी जहाँ फीका पड़ जाये। आहा...हा...! भाई! तू ऐसे ज्ञान का भरपूर भगवान है। तुझे उसका विश्वास, दृष्टि करना पड़ेगी। लक्ष्य में से सब छोड़कर, भिन्न तो पड़ा ही है। आहा...हा...! वह तो भिन्न ही है, वह कहाँ घुस गया है? परन्तु उस पर लक्ष्य है, उसे बदल डाल। प्रभु! तू भगवानस्वरूप बिराजमान है। प्रभु! तू राग के क्रियाकाण्ड के परिणाम से भी अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा...! ऐसा अन्तर में विश्वास और दृष्टि आये बिना इसे समकित नहीं होगा और समकित न हो, वहाँ धर्म-बर्म का अंश भी नहीं है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है। है? आहा...!

ऐसा तेरा द्रव्य अत्यन्त शुद्ध है, उसे तू पहिचान। उसे तू पहिचान। जो राग और कर्म का अस्तित्व है, उससे तेरा अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी भिन्न है। आहा...हा...! वह चमकता हीरा है, चैतन्य से चमकता। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! परन्तु कहीं निवृत्ति नहीं मिलती अन्दर। अन्दर भगवान बिराजता है। आहा...हा...! एक बड़ा व्यक्ति करोड़पति मिलने आया हो और उसके लड़के का लड़का छह महीने का हो, वह आया तो उसके खेल में लग गया और वह पाव घण्टे आया था, चला गया उठकर। यह तो इसके साथ खेलता है, मैं आया हूँ इस ओर देखता भी नहीं। इसी प्रकार भगवान अन्दर पूर्णानन्द के नाथ की महिमा को नहीं देखता और राग की पामरता को देखकर उसके खेल में चढ़ गया। आहा...हा...! सूक्ष्म बात तो है प्रभु! परन्तु मार्ग सूक्ष्म और उसका फल भी

www.vitragvani.com

महा... आहा...हा... ! ऊँचा है और विपरीत मार्ग का फल भी सब महा हल्का है। यह नरक और निगोद, भाई ! कोई तेरे सन्मुख देखनेवाला नहीं मिलेगा। आहा...हा... ! तेरे एक क्षण के दु:ख, बापू ! करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहे जायें—ऐसे दु:ख प्रभु ! तूने अनन्त बार सहन किये हैं। भूल गया, भूल गया अर्थात् ? भगवान को भूला अपने को और भव किये हुए को भूला। वर्तमान यह है। आहा...हा... ! उदाणी ! ऐसा वहाँ कहाँ है ? बड़े डॉक्टर होकर रहते हैं। मुम्बई में बड़े डॉक्टर कहलाते हैं। दाँत के बड़े में बड़े डॉक्टर। यहाँ के तो मुमुक्षु हैं। आहा...हा... ! इनकी बहिन है, वह तो बहुत रसवाली-शास्त्र का बहुत अभ्यास। इन भाई के घर में तो बहुत, क्या कहलाता है ? मुम्बई... भाई के घर से बहिन को सुनने का-पढ़ने का बहुत प्रेम है। आहा...हा... ! अरे बापू ! यह मनुष्यपना तो धूल, राख हो जायेगा और राख है वह राख होगी न ? भगवान हीरा अन्दर पड़ा है, वह कभी राख होगा ? वह राग में नहीं आता, वह तो कहाँ जाये ? आहा...हा... !

उसे पहिचान... उसे तू पहिचान। ऐसी जो चीज़ पूर्णानन्द, राग और कर्म से भिन्न है, **उसे तू पहिचान**। आहा...हा... ! वह राग से नहीं पहिचानी जाएगी। तू वीतरागी स्वरूप है तो वीतरागीपर्याय से उसे तू वीतरागपर्याय से पहिचान। आहा...हा... ! जिनवर का धर्म, इसके अतिरिक्त कहीं बाहर है नहीं और यह धर्म ऐसा अपूर्व है, भाई ! आहा...हा... ! पूर्व में अनन्त काल में कभी किया नहीं। इसलिए इसे महँगा लगता है। बाकी तो श्रीमद् कहते हैं-सत् है, सरल है, सर्वत्र है। आहा...हा... ! उसे बतानेवाले चाहिए इतना वहाँ (लिखा है) कि यह अन्दर तेरा पूर्ण स्वरूप है इतना। परन्तु वे बतावे, स्वयं बतावे, तब बतानेवाले निमित्त मिले - ऐसा कहने में आवे। आहा...हा... !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह तो कहा न सबेरे ? देशनालब्धि तो होती है परन्तु उस देशनालब्धि से पाता नहीं। आहा...हा... ! निमित्त होती है इतना। परन्तु देशनालब्धि से जो ज्ञान हुआ, उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहा...हा... ! वह तो वीतरागीपर्याय की अनुभूति से ही प्राप्त होता है। आहा...हा... ! यह वस्तु का स्वरूप है। जिनेश्वर ने कहा है, वह कुछ किया नहीं किसी का। जैसा स्वरूप है, वैसा उन्होंने बतलाया है। बापू ! तेरा यह

www.vitragvani.com

स्वरूप है, प्रभु! उसे तू पहिचान, उस पर दृष्टि कर, उसका अनुभव कर; उसके अनुभव के लिए पर की कोई अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो परिणाम हैं, वे द्रव्य के अवलम्बन से हुए, उन्हें पर की कोई अपेक्षा नहीं, परम निरपेक्ष हैं। आहा...हा...! प्रभु! तू जिनस्वरूप है, वह परमनिरपेक्ष तेरा तत्त्व अन्दर राग की अपेक्षारहित (तत्त्व है)। आहा...हा...!

अपना अस्तित्व पहिचानने से पर से पृथक्त्व ज्ञात होता ही है। यह क्या कहा? अपना अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी; राग और कर्म से भिन्न है—ऐसा जहाँ स्वयं अपने को देखा, ज्ञान की पर्याय द्वारा, वीतरागीदशा द्वारा उसे पहिचाना, तब वह पर से भिन्न पड़ गया। है न? **पर से पृथक्त्व ज्ञात होता ही है।** तब इसे (ज्ञात होता है कि) ओहो...हो...! यह तो पर से भिन्न है। भिन्न था, वह भिन्न दिखायी दिया। समझ में आया?

चैतन्य के बाग में... आहा...हा...! अनन्त चैतन्य के रत्न के वृक्ष के फलित फूल पड़े हैं अन्दर। आहा...हा...! उस बाग में गया और जहाँ जाना, तब इसे ऐसा हुआ कि ओहो...हो...! यह तो पर से तो पृथक्ता है। पर की कोई अपेक्षा इसे नहीं। आहा...हा...! जिससे भिन्न है, उसकी अपेक्षा से ज्ञात हो—ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

लॉजिक-न्याय से इसे पहले समझना पड़ेगा न! स्थिति, क्या स्थिति है? बापू! आहा...हा...! वस्तुस्थिति है। आहा...हा...! न्याय से—न्याय अर्थात् नि धातु है। नि अर्थात् ले जाना, जैसा स्वरूप है, उसमें नि—न्याय से देखकर ले जाना। यह सरकार के न्याय वे अलग, यह तो त्रिलोक के नाथ के न्याय। न्याय अर्थात् नि धातु, धातु अर्थात् नि का स्वरूप की जैसा स्वरूप है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय; बाकी सब अन्याय है। आहा...हा...! न्याय से, लॉजिक से तो बात जँचे (ऐसी है)। आहा...हा...! **अपना अस्तित्व पहिचानने से पर से पृथक्त्व ज्ञात होता ही है।** आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो – ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं, वह तो सत्य ही है; मैं नहीं समझ सकता, वह मेरी समझ का दोष है ॥१६१॥

१६१, **संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो ऐसा उपदेश गुरु देते हैं।** क्या कहते हैं? जो संसार से भयभीत है। अरे रे! यह भव के भव अनन्त-अनन्त किये। ऐसे भव का जिसे डर हुआ, भय हुआ। आहा...हा...! यह तो कुछ पैसा मिले और कुछ मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। यह तो भव के भय से जिसे डर है, अरे रे! कहाँ भटकेगा? कहाँ जायेगा? कौन है? कहाँ (जायेगा)? ऐसे भव के भय से जिसे अन्तर में डर है।

'भव भय से डरि चित्त।' आहा...हा...! ऐसे जीवों को, संसार से भयभीत—ऐसा कहा है। दुःख से भयभीत-ऐसा नहीं। नरक के दुःख – ऐसा नहीं। पूरा संसार दुःखमय है, उससे भयभीत है। स्वर्ग का भव भी राग से दुःखी है। आहा...हा...! उस संसार से भयभीत जीव – ऐसा कहा है। अकेले यह नरक और निगोद के दुःख – ऐसा नहीं। आहा..हा...!

जो भव, वस्तु में नहीं, और जो भव का भाव, वस्तु में नहीं—ऐसे भव का जिसे डर लगा अब। अरे रे! कहाँ जाऊँगा? इस देह की तो पाँच-पच्चीस-पचास वर्ष की अवधि और स्वयं तो अनादि-अनन्त नित्य वस्तु है। आहा...हा...! ये संयोग तो स्वप्न जैसे हैं। स्वप्न में ऐसी भूख थी, इसलिए खाया, कुछ खाया नहीं। जागे तो पेट खाली का खाली लगता है। इसी प्रकार यह बाहर का सपना है। इसमें माने हम सुखी हैं और हम पैसेवाले हैं। आहा...हा...! बापू! जाग तो तुझे लगेगा कि यह सब स्वप्न खोटा है। आहा...हा...! समझ में आया?

www.vitragvani.com

जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण.... इसे आत्मा का पोषण हो —ऐसा उपदेश गुरु का होता है। पुण्य करे और पुण्य से स्वर्ग में मिलेगा—ऐसा उपदेश उनका नहीं होता। गुरु और तीर्थंकर तथा शास्त्रों का उपदेश वह होता है, जिसमें आत्मार्थ पोषण, वीतरागता का पोषण (हो)। आहा...हा...! जिसमें वीतरागभाव की उत्पत्ति और वीतरागभाव की पुष्टि हो। आहा...हा...! यह तो उपदेश भी बदल गया है। यह तो व्रत करो और अपवास करो और तपस्या करो, दान करो, मन्दिर बनाओ, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा, यह साधन हैं, धीरे-धीरे (कल्याण होगा)। अरे...भाई! यह उपदेश गुरु का नहीं है। आहा...हा...! यह तो मिथ्यादृष्टि का उपदेश है।

आत्मार्थ का पोषण हो - ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। जिसमें आत्मा वीतरागी -स्वरूप है, उसका वीतरागीपना प्रगट हो, पोषण मिले-ऐसा उपदेश वे देते हैं। आहा...हा...! **गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है।** आशय समझने को प्रयत्न करता है कि यह क्या कहते हैं? ऐसे स्वयं जिनस्वरूप है। उसके सन्मुख जा, उसका आश्रय ले तो तुझे सम्यग्दर्शन-वीतरागीपर्याय प्रगट होगी और फिर भी स्व का आश्रय विशेष कर तो वीतराग की वृद्धि होगी। वीतरागीदृष्टि हुई तो वीतरागीपर्याय हुई, फिर भी टिकी रहेगी और वह वृद्धि को प्राप्त होगी। त्रिकाली भगवान का आश्रय लेने से वह वृद्धि को प्राप्त होगी-ऐसा गुरु का उपदेश होता है। आहा...हा...!

गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती.... आहा...हा...! उसे शंका नहीं होती, आशंका होती है परन्तु समझने के लिये (कि) यह क्या कहते हैं? मैं समझ सकता नहीं, ऐसी आशंका होती है। पूर्ण समझ गया हो, उसे आशंका नहीं होती और कुछ भी न समझा हो, उसे आशंका नहीं होती। आशंका होती है।

गुरु यह क्या कहते हैं! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है, मैं नहीं समझ सकता.... मुझे उनका आशय पकड़ में नहीं आता परन्तु उनका आशय है, वह तो सत्य ही है। आहा...हा...! कठिन बात है, बापू! आहा...हा...! सत्समागम किसे कहना, भाई! बाह्य का त्याग किया और नग्न साधु हो गया; इसलिए वह सत्समागम

www.vitragvani.com

है, बापू! यह नहीं। आहा...हा...! उसके उपदेश में तो यह होता है। प्रभु! मार्ग बहुत कठिन है, भाई! आहा...हा...!

नग्नपना (लिया हो), बहुत परीषह सहन करे, उपसर्ग सहन करे परन्तु दृष्टि तो मिथ्यात्व है क्योंकि यह क्रिया करो और यह करो और इसमें से अन्दर धर्म होगा, यह संयम है। व्रत पालना, तपस्यायें करना... व्रत पालना वह संवर है, तपस्या करना वह निर्जरा है। दोनों झूठ बात है। वस्तु ऐसी है, बापू! क्या हो? अरे! इसके आत्मा को भी नुकसान होगा। इसे दया चाहिए। यह कोई विरोध नहीं करना चाहिए, किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं करना चाहिए, वैर नहीं करना चाहिए, उस व्यक्ति के प्रति अरुचि नहीं आना चाहिए। आहा...हा...! वस्तुस्थिति कोई ऐसी है। आहा...हा...! कि उसे हाथ नहीं आयी, इसलिए ऐसा करता है बेचारा। क्या करे? अरे! उसका फल आयेगा, तब क्या होगा? बापू! तुझे देखनेवाला नहीं होगा वहाँ। देखनेवाला ऐसा माने कि आहा...हा...! कैसे व्रत पाले और कितने उपवास किये और रूखा आहार करते हैं और एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रखते... आहा...हा...! ऐसा देखकर उसे ऐसा माने कि यह तो धर्मी जीव है, उन्हें पता नहीं।

वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं, वह तो सत्य ही है,... परन्तु कौन? गुरु हों वे। आहा...हा...! जो अन्दर अपना गुरु हुआ है। स्वयं ही अपने को समझाकर चैतन्य का भान हुआ है, वह स्वयं अपना गुरु है और जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं, वे गुरु हैं। निश्चय, उस गुरु की आज्ञा वीतरागता का पोषण है। राग करो और राग से लाभ होगा, यह बात उसे नहीं होती। बात करे कि देख भाई! इस समय अन्दर अस्थिरता है, वस्तु का भान हुआ है, अन्तर अनुभव (हुआ है), तथापि अस्थिरता है तो बीच में राग की वृत्ति (आती है), व्रत का विकल्प आता है परन्तु है बन्ध का कारण, है वह दुःख का कारण। आहा...हा...! व्यवहार आवे। पूर्ण वीतराग न हो, वहाँ तक वीतरागी दृष्टिवन्त को भी, स्व के आश्रय के दृष्टिवन्त को भी वीतराग का जिसे आश्रय (हुआ है), वीतराग अर्थात् जिनस्वरूप... उसे भी राग / व्यवहार आता है परन्तु वह राग बन्ध का कारण है; ऐसा हेयरूप से जानता है। आहा...हा...!

यहाँ तो उस राग को उपादेयरूप से मानकर संयम है (-ऐसा मानते हैं) वह चारित्र

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है (-ऐसा कहते हैं) । अरे रे ! प्रभु ! भाई ! इसका फल तो जीव को (दु:ख है) । (आयेगा तब दु:ख भोगना पड़ेगा) दुनिया भले स्वीकारे, पागल दुनिया माने कि ओहो...हो... ! क्या इसने त्याग किया ! भाई ! इसका फल आयेगा तब... बापू ! आहा...हा... ! मिथ्यात्व का फल क्या होगा ? भाई ! तत्त्व का विराधक, राग का आराधक... आहा...हा... ! इसका फल तो निगोद (आयेगा) । एकाध भव बीच में कहीं जाये, कदाचित् स्वर्गादि में परन्तु अन्त में तो वह निगोद में जानेवाला है । आहा...हा... ! अरे रे ! किसी आत्मा को ऐसी दशा हो, यह धर्मी को कैसे रुचे ? इसलिए उसका द्वेष नहीं होता, भाई ! आहा...हा... !

श्रीमद् ऐसा कहते हैं न ! 'कोई क्रिया जड़ हो रहे' राग की क्रिया में माननेवाले क्रिया जड़ । 'शुष्कज्ञान में कोई' कोई बातें करनेवाले निकले परन्तु अन्दर राग से भिन्न वस्तु है, उसका भान नहीं करते, उसमें नहीं जाते । आहा...हा... !

कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्क ज्ञान में कोई,
माने मारग मोक्ष का करुणा ऊपजे जोई॥

(आत्मसिद्धि, काव्य ३)

तिरस्कार नहीं होता । आहा..हा... ! दया आती है, अरे ! प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! यह दुनिया माने, इसलिए तेरा कल्याण होगा (ऐसा नहीं) । दुनिया मान दे कि... आहा...हा... ! हजारों रानियाँ छोड़ी, लाखों-करोड़ों की आमदनी छोड़ी, और साधु हुए तो कुछ लाभ होगा या नहीं इन्हें ? अरे ! भाई ! यह वस्तु क्या ? कुछ नहीं । आहा...हा... ! जो मिथ्यात्व है, जो स्वरूप के सन्मुख नहीं है, उसे छोड़ने की बात है पहले । वह भी कब छूटे ? कि स्व का आश्रय लेकर अन्दर में देखे, तब पर से भिन्न इसे ज्ञात हो जाये । आहा...हा... ! समझ में आया ?

मैं नहीं समझ सकता वह मेरी समझ का दोष है । ऐसा माने । समझने की जिज्ञासावाला समझ सके नहीं परन्तु समझने का प्रयत्न करे कि ऐसा कठिन एकदम ! वह तो वीतरागपर्याय से ही वीतराग आत्मा ज्ञात होता है, राग से ज्ञात नहीं होता, यह क्या बात ? बापू ! यह धीरे-धीरे समझने की बात है ।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

श्रावण शुक्ल २, रविवार, दिनाङ्क ०६-०८-१९७८
वचनामृत-१६२-१६३ प्रवचन-५८

द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है। ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्याय में निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने—परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है॥१६२॥

१६२ बोल। १६१ हो गये हैं। **द्रव्य सदा निर्लेप है।** क्या कहते हैं? द्रव्य जो चैतन्य ज्ञायकभाव वस्तु, वह तो अन्दर निर्लेप वस्तु / चीज़ है। जिसे राग और कर्म का सम्बन्ध भी नहीं है। किसे? जो कोई ज्ञायक को जानने की दृष्टि करे उसे। निर्लेप है, परन्तु निर्लेप दृष्टि करे उसे न? आहा...हा...! सूक्ष्म बात, बापू! जिसे जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त होना हो तो उसे... यह पर का तो कुछ कर नहीं सकता, एक तिनके के दो टुकड़े भी आत्मा नहीं कर सकता। आहा...हा...! आँख की पलक भी आत्मा नहीं फिरा सकता (क्योंकि वह) परद्रव्य है। परद्रव्य की पर्याय बिना का वह द्रव्य नहीं होता; इसलिए वह पर की पर्याय करे तो यह तो कभी सम्भव है नहीं। अब रहे अन्दर पुण्य और पाप, उन्हें अज्ञानभाव से करे, क्योंकि ज्ञायकस्वरूप अन्दर, शुद्ध चैतन्य वस्तु, ज्ञायक का हीरा, अनन्त गुण के पासा के शोभित, आहा...हा...! ऐसा जो द्रव्य, वह तो त्रिकाल निर्लेप ही है।

जिसकी दृष्टि उस पर गयी; संयोग से लक्ष्य छोड़कर, राग के विकल्प से—पुण्य-

www.vitragvani.com

पाप की वृत्ति से लक्ष्य छोड़कर, एक समय की पर्याय का अस्तित्व है, मौजूदगी है परन्तु उसका भी लक्ष्य छोड़कर... आहा...हा... ! भगवान अन्दर निर्लेप द्रव्य है—ऐसी जिसे दृष्टि हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है, भाई !

द्रव्य सदा निर्लेप है। त्रिकाल निरावरण। दूसरी जगह आ गया है। 'सोने को जंग नहीं होती, अग्नि को दीमक नहीं होती' दीमक, कीड़ें, बारीक कीड़े। इसी प्रकार भगवान आत्मद्रव्य वस्तु है न ! सत् है न ! शाश्वत् है, उसे आवरण नहीं होता, उसे अशुद्धता नहीं होती, उसमें हीनता नहीं होती। आहा...हा... ! वह तो भगवान द्रव्यस्वभाव, परिपूर्ण शुद्धस्वभाव से भरपूर भगवान है। आहा...हा... ! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन, जो श्रद्धा की पर्याय, उसका वह विषय द्रव्यस्वभाव है। ज्ञान की पर्याय में भी वह द्रव्य ज्ञेय होता है। वह ज्ञेय है, वह निर्लेप ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता है। ज्ञान की पर्याय, वह निर्लेप है, उसे जाने, तथापि वह निर्लेप चीज़ ज्ञान पर्याय में आवे नहीं। धन्नालालजी ! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, भगवान ! आहा...हा... !

अभी तो लोग इतना विवाद करते हैं। व्रत में भी मिश्रपना है-ऐसा कहते हैं। व्रत है, वह तो विकल्प / आस्रव है; मिश्रपना कहा, वह ते साधक जीव को जो द्रव्य का निर्लेप स्वभाव है... आहा...हा... ! उसका जिसने आश्रय किया, महाप्रभु का जिसने आश्रय किया, उसकी पर्याय में जो निर्मलता हुई, और उसे बाकी रहा विकल्प, वह मिश्र। परन्तु विकल्प है, वह तो आस्रव है। आहा...हा... ! समझ में आया ? जितना (स्व का) आश्रय नहीं और जितना पर के लक्ष्य में जाता है, उतना उसे राग होता है।

पूर्ण निर्लेप द्रव्यस्वभाव का समकिती की पर्याय में जघन्य आश्रय लिया है तो निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट हुआ; विशेष आश्रय लिया तो चारित्र—स्वरूप की रमणता—प्रगट हुआ; पूर्ण आश्रय लिया तो केवलज्ञान प्रगट हुआ। साधक को निचलीदशा में पूर्ण आश्रय नहीं, परन्तु उसकी दृष्टि में तो... आहा...हा... ! वस्तु है न ! चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव; उसे लेप क्या ? आहा...हा... ! निर्लेप है।

स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। आहा...हा... ! यह क्या कहा ? वह तो सदा निर्मल है। वह तो द्रव्य (है ही)। कोई द्रव्य तो दूसरा भी द्रव्य ले ले; इसलिए साधारण बात करके

www.vitragvani.com

उसे ज्ञायक में डाला। वह स्वयं तो जाननेवाला है। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... जानने-देखनेवाला जिसका त्रिकाली स्वभाव है। ऐसा स्वयं जाननेवाला तो तैरता भिन्न है। आहा...हा... ! **तैरता है।** भिन्न ही है। आहा...हा... ! राग और पर्याय से भिन्न। **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** (समयसार) ३१ गाथा। उससे अधिक / भिन्न वह तैरता है। कहीं उसे राग के साथ मेल है नहीं। आहा...हा... ! वह चैतन्य हीरा अनन्त गुण के पासा से भरपूर प्रभु है।

यह तो भाई ! जिसे कल्याण की भावना हो, उसकी बातें हैं, बापू ! ऐसे का ऐसा भटकता है चौरासी के अवतार में। आहा...हा... ! करोड़पति हो और माने कि हम सुखी हैं। वह दु:खी है, भाई ! महा दु:खी है, बेचारा भिखारी है और मरकर, वापस माँस आदि न खाता हो तो ढोर में जानेवाला है। माँस आदि खानेवाले अरबोंपति जीव अभी हैं, वे मरकर नरक जानेवाले हैं, क्योंकि शुभ और अशुभभाव का फल चार गति है और शुद्धभाव... आहा...हा... ! जो जाननेवाला भिन्न है, वह तैरता और तैरता अर्थात् राग से भिन्न अन्दर तैरता है। उसका उपयोग करना, वह शुद्ध उपयोग है। आहा...हा... !

अभी तो ऐसा कहते हैं कि शुद्ध उपयोग अभी होता ही नहीं। अरे, प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! द्रव्य की दृष्टि और द्रव्य का ज्ञान ही नहीं। आहा...हा... ! 'पोते' अर्थात् स्वयं, 'पोते'—स्वयं जाननेवाला भिन्न ही। ज्ञायकभावरूप भिन्न ही तैरता है। दृष्टान्त देते हैं।

जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी... स्फटिक रत्न होता है। हमने तो इना बड़ा स्फटिक देखा है, जामनगर में। समयसार की १०० वीं गाथा चलती थी। (संवत्) ९० के साल की बात है। (संवत्) ९१ का मगशिर। यहाँ परिवर्तन करने आना था, उसके पहले वहाँ थे। वहाँ एक बड़ा डॉक्टर था, ढाई हजार का वेतनदार, उस दिन, हों ! अभी मुम्बई है। सब व्याख्यान में आवे। व्याख्यान में आवे सब आवे। 'मेहरबान' सेठ था, एक दीवान पारसी, वे भी व्याख्यान में आते थे। फिर १०० वीं गाथा चलती थी सूक्ष्म; तो फिर डॉक्टर कहता है—महाराज ! हमारे पास... वहाँ एक छह लाख का सोलेरियम है। सोलेरियम अर्थात् फोड़ा और ऐसा हो, उसे एक मशीन ऐसी है कि उसमें रखे, उसे सूरज की किरणें दे और अशाता हो तो मिट जाए। ऐसा छह लाख रुपये का एक सोलेरियम।

www.vitragvani.com

अभी तो उसकी कीमत बढ़ गयी। वह बताने आया। उसमें उसने स्फटिक बताया। इतना स्फटिक था, सफेद स्फटिक।

इसी प्रकार यह आत्मा... जैसे स्फटिकमणि में प्रतिबिम्ब दिखते हैं। यह स्वच्छ निर्मल का गंज प्रभु! स्फटिकमणि तो निर्मल... आहा...हा...! अत्यन्त निर्मलबिम्ब पूरा चैतन्य प्रकाश का बिम्ब अकेला; उसमें जो कोई दूसरा लाल आदि दिखायी दे, वे प्रतिबिम्ब दिखायी दे, तो **भी स्फटिक तो निर्मल है....** उस स्फटिक का तत्त्व जो द्रव्य है, वह कोई लाल और पीले फूल के संयोग से लालरूप नहीं हुआ। उसकी पर्याय में हुआ, द्रव्य ऐसा हुआ नहीं। आहा...हा...! यह क्या कहते हैं?

स्फटिक में प्रतिबिम्ब.... प्रतिबिम्ब अर्थात् जो सामने चीज़ हो, उसका यहाँ पड़े, उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं। **दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है।** आहा...हा...! **उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी....** यह तो ज्ञायकभाव का पिण्ड प्रभु! इसमें रागादि दिखने पर भी, यह राग से अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा...! है? **ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है।** वस्तु तो निर्लेप है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वस्तु अर्थात् ध्रुवस्वभाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्तिपना जो अस्ति / मौजूदगी कायमी चीज़। उसे फिर ध्रुवस्वभाव कहो, परन्तु ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा ज्ञायकभाव—ऐसा लेना है। क्योंकि ध्रुवस्वभाव तो परमाणु का भी है। आहा...हा...! ज्ञायकभाव से ध्रुव प्रभु, उसमें विभाव दिखने पर भी, प्रभु—जो भगवान वस्तु है, वह तो निर्लेप है। आहा...हा...! यह वाद-विवाद से पार पड़े—ऐसा नहीं, प्रभु! वस्तु ऐसी चीज़ है। आहा..हा...! झगड़ा बहुत खड़ा करते हैं, लोग बातें करते हैं (कि) सोनगढ़वाले ऐसे हैं। भाई! जैसा है वैसा है, बापू! इस ज्ञायकभाव को शुभ-अशुभभाव होने पर भी वस्तु तो निर्लेप है। आहा...हा...! है?

जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी... अर्थात् वह द्रव्य समुच्चय लिया था, इसलिए फिर जाननेवाला लेकर जीव लिया। जीव निर्लेप है। आहा...हा...! **ज्ञायकरूप परिणमित होने पर...** अर्थात्? ज्ञायक जो त्रिकाल वस्तु है, उसमें दृष्टि देने पर जो पर्याय में ज्ञायकपने का परिणमन होता है, पर्याय में परिणमन होता है। आहा...हा...! उस **पर्याय में निर्लेपता**

www.vitragvani.com

होती है। क्या कहा यह ? कि वस्तु है, वह ज्ञायकभाव—वह त्रिकाल शाश्वत् ध्रुव द्रव्य, उसमें विभाव दिखने पर भी वस्तु तो निर्लेप है-एक बात। और जब ज्ञायकभाव है— ऐसा जब श्रद्धा-ज्ञान में आया। स्वयं आया अर्थात् स्वयं लिया, तब उसका परिणमन भी ज्ञायकभावपने का ज्ञायकरूप होता है। आहा...हा... ! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! यह वचनामृत तो अभी सार आ गया है। सम्पूर्ण बारह अंग का अकेला मक्खन है। पढ़ा है या नहीं ? धन्नालालजी ! कितनी बार ? हमारे पुरुभाई थे, उन्होंने चार बार पढ़ा। पुरुभाई करोड़ोंपति, नहीं ? यहाँ बैठते थे। बहुत करोड़पति, बहुत पढ़ने का शौक। अभी मर गये, ७१ वर्ष की उम्र। उसमें क्या ? जो देह है, वह तो पर है, वह तो भिन्न ही पड़ी है। इस आत्मा के साथ उसे सम्बन्ध क्या है ? वह तो मिट्टी है; भगवान तो चैतन्यरत्न अन्दर भिन्न चीज़ है। अरे ! इन पुण्य-पाप के भावरूप भी आत्मा नहीं हुआ। आहा...हा... ! ज्ञायकस्वरूप है, बापू ! करना तो यह है, भाई ! दुनिया चाहे जो माने, चाहे जो कहे; बाकी सुखी होने का पन्थ तो यह है। आहा...हा... ! बाकी शुभ और अशुभभाव—ये सब संसार है। जगत् को यह कठिन पड़ता है। मुनि को पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं, (वह) संसार है; वह इसका परिणमन नहीं है।

ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि होने पर जो ज्ञायकपने का परिणमन होता है, वह वस्तु निर्लेप है तो पर्याय भी निर्लेप ही होती है। आहा...हा... ! क्या हो ? बाहर की सब चमक, मार डाला है जगत् को। देह सुन्दर और पैसा और ऐसा बड़ा बँगला हो... यह तो छब्बीस लाख का छोटा मकान है परन्तु करोड़ों-करोड़ों के मकान होते हैं न ! बापू ! वे सब तो धूल के ढेर हैं। आहा...हा... ! भाई ! तू प्रभु अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड अन्दर है, प्रभु है।

यह वस्तु जो है, वह प्रभु सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने दिव्यध्वनि में ऐसा फरमाया है कि प्रभु ! तू तो निर्लेप है न ! भगवानरूप से आचार्य बुलाते हैं। आहा...हा... ! ७२ गाथा, समयसार। भगवान आत्मा ! आहा...हा... ! जिसकी भग अर्थात् लक्ष्मी अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन और ज्ञायक आदि। ऐसी लक्ष्मी का भग अर्थात् वान, वह ऐसी लक्ष्मी का इसका स्वरूप है। आहा...हा... ! क्या हो ? अरे रे ! इसने कभी अनन्त काल में (देखा

www.vitragvani.com

नहीं)। दिगम्बर साधु हुआ परन्तु यह पंच महाव्रत की क्रिया और नग्नपना, बस! उसमें माना कि अपने संयम हो गया। आहा...हा...! वह तो मिथ्यात्व का पोषक है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञायकभाव जो द्रव्यस्वभाव है, उसकी जिसने प्रथम दृष्टि करके, उसका ज्ञान किया, उसका परिणमन भी, जैसे ज्ञायक निर्लेप है, वैसे उसकी पर्याय निर्लेप है। आहा...हा...! भाषा सादी है, प्रभु! परन्तु वस्तु बहुत महंगी, बापू! अरे! इसे कभी अभ्यास नहीं। मैं कौन हूँ, इसका अभ्यास ही नहीं। यह राग की क्रिया करना और दया, व्रत पालना... हो गया (धर्म) ! अरे! यह सब तो संसार है बापू! आहा...हा...!

भाई! तू तो निर्लेप द्रव्यस्वभाव है, आहा...हा...! शुद्ध की शोध करने पर वह तुझे हाथ आयेगा। आहा...हा...! वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, उस शोध में जायेगी तो अन्दर आत्मा शोधक हाथ आयेगा। आहा...हा...! और वह परिणति, जैसा इसका स्वरूप है, वैसी ही इसकी दशा (होगी)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीनों निर्लेप दशा है। आहा...हा...!

बनियों को वापस हाथ आया यह धन्धा, यह जैन। लिखा है बेचारे ने। लेख नहीं आया? तुमने पढ़ा है? कि अभी बनियों को व्यवसाय के पाप का पार नहीं और उन्हें यह जैनधर्म हाथ आया। जैनधर्म क्या है, उसका निर्णय करने का (समय नहीं)। व्यवसाय के कारण निवृत्त नहीं होता। धन्नालालजी! एक लेख आया है। तुम नहीं थे? कल-परसों। इस ओर का बड़ा कोई देश है, परदेश। एक ६३ वर्ष का व्यक्ति है (उसने) इतिहास की बहुत खोज की और उसका एक लड़का १७ वर्ष का है। लेख आया है, जगनमोहनलालजी ने डाला है। लेख ऐसा आया है, बहुत सरस! कि जैनधर्म अर्थात् क्या? जैनधर्म अर्थात् आत्मा की अनुभूति करना, वह; और अनुभूति वह सम्यग्दर्शन। ऐसा वे परदेश के व्यक्ति (लिखते हैं) इतिहास को खोजकर, जैनपना कब का है, क्या है, बौद्धपना कब का—ऐसा शोधते-शोधते यह लेख लिखा। अब यहाँ बनिये में जन्म हुआ, उसे अभी पता नहीं। आहा...हा...! ऐसा लिखता है वह। परसों पढ़ा था। धन्नालालजी! पत्र पढ़ लेना, पढ़ने जैसा है। परदेशी व्यक्ति। पिता, पुत्र १७ वर्ष का लड़का उसे भी रस। आहा...हा...! भाई!

www.vitragvani.com

जैनधर्म क्या चीज़ है ? कि यह आत्मा जो है, इसका अनुभव करना, वही सम्यग्दर्शन और वही ज्ञान, वही जैनधर्म। आहा...हा...! यह व्रत, तप, भक्ति, और पूजा का भाव, वह जैनधर्म नहीं, भाई! वह तो राग का धर्म है। आहा...हा...!

इसके ज्ञान में अभी निरधार तो करे कि वस्तु है, वह निर्लेप द्रव्य ज्ञायक है और उसका विषय करके जो दर्शन-ज्ञान हो, वह भी निर्लेप और निर्मल ही होते हैं, उसे मोक्षमार्ग और उसे जैनपना प्रगट हुआ—ऐसा कहा जाता है क्योंकि जिनपना, वह तो वस्तु का स्वरूप है। भाई! तुझे पता नहीं, प्रभु! तू जिन है। आहा...हा...! 'घट घट अन्तर जिन वसै' समयसार नाटक।

घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,
मत-मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

आहा...हा...! यह नग्न-दिगम्बर साधु हो तो भी अपने अभिप्राय से यह व्रत, तप, और यह भक्ति करते हैं, वह धर्म है (-ऐसा मानता है)। आहा...हा...! यह जिनस्वरूप प्रभु है। प्रत्येक भगवान देह देवालय में प्रभु बिराजता है, वह जिनस्वरूप है। यदि जिनस्वरूप न हो तो जिनस्वरूप सर्वज्ञरूप वीतराग प्रगट होता है, वह कहाँ से आयेगा ? कहीं बाहर से आवे ऐसा है ? आहा...हा...! गजब काम परन्तु, कठिन।

यह जिनस्वरूप कहो या निर्लेपस्वरूप कहो, वीतरागस्वरूप कहो या जिनस्वरूप कहो-द्रव्य। यह जैनधर्म कोई पक्ष नहीं कि हमारा यह जैनधर्म और तुम्हारा यह धर्म। जैनपना, वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा...हा...! आत्मा जिनस्वरूप है। आहा...हा...! उसे ज्ञायकभावरूप से कहा, उसे ध्रुव ज्ञायकरूप से कहा, उसे निर्लेप द्रव्यरूप से कहा। आहा...हा...! ऐसी जिसकी दृष्टि और ज्ञान का परिणमन हो... आहा...हा...! तब जिन (होता है)। 'घट घट अंतर जिन वसै' और 'घट-घट अंतर जैन'। उस जिन का अवलम्बन करके जो परिणति हो, वह जैन। देवीलालजी! ऐसी बात है, बापू! क्या हो ? प्रभु! तू तो बड़ा है परन्तु अरे! इसे समझाना पड़े। आहा...हा...!

कहते हैं **ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्याय में निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं,....** क्या कहते हैं ? स्वयं प्रभु तो ज्ञायक, जाननस्वभाव

www.vitragvani.com

परिपूर्ण भरा है। उसे जो रागादि होते हैं, वे तो ज्ञायकजीव के परज्ञेय हैं, परज्ञेय हैं; स्वज्ञेय तो ज्ञायक है। आहा...हा... ! मोहनलालजी ! ऐसा सुनने को मिले ऐसा नहीं वहाँ लाड़नूँ में। यह तो पहले दिन कहा था इसने। बापू ! वस्तु ऐसी है, भाई ! हों ! आहा...हा... ! अरे ! प्रभु का विरह पड़ा और यह बात रह गयी। अरे रे ! लोगों को एकान्त लगता है। प्रभु ! तुझे सम्यक् एकान्त का पता नहीं है। आहा...हा... !

एकान्त-एक धर्म का पिण्ड प्रभु, गुण का ज्ञायक, उसे एक निश्चय एकान्तनय से आश्रय करके परिणति प्रगट करना, वह सम्यक् एकान्त ही है और सम्यक् एकान्त हुआ, उसके पश्चात् रागादि को जाननेवाला हुआ, यह अनेकान्त हुआ। आहा...हा... ! यह यहाँ कहा। उसमें कहीं तुम्हारे दवाखाने में नहीं मिलता। बड़े डॉक्टर हो गये हैं, वहाँ बड़े हैं, मुम्बई में, बड़े हैं। अपने तो यहाँ... रूप से कहते हैं कि एक हजार रुपये ले। इसके अमुक के। मुम्बई में लोग ऐसी बातें करते थे। आहा...हा... ! प्रभु ! तू कहाँ मुम्बई है, तू कहाँ गाँव में है ? तू तो ज्ञायकपने में है। आहा...हा... ! उसे गाँव कैसा, देश कैसा, नाम कैसा, और शरीर कैसा ? आहा...हा... ! उसे पुण्य और पापभाव भी कैसा प्रभु में ? आहा...हा... !

ऐसा जो भगवान निर्लेप ज्ञायकस्वरूप, उसकी दृष्टि द्रव्य पर पड़ने से उसका द्रवना होता है अर्थात् परिणमना होता है-पर्याय में उसका परिणमन होता है, वह भी निर्लेप और निर्दोष तथा निर्मल ही होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है प्रभु ! परन्तु तेरी प्रभुता का पार नहीं, नाथ ! क्या कहें ?

दीपचन्दजी ने तो अनुभवप्रकाश में कहा है, प्रभु ! तेरी शुद्धता की तो बात क्या करना परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। उल्टा पड़ा, केवली के समीप गया था परन्तु अशुद्धता नहीं छोड़ी तूने। अनुभवप्रकाश में आता है, दीपचन्दजी (लिखते हैं)। **तेरी अशुद्धता भी बढ़ी** प्रभु ! तेरी अशुद्धता (भी बढ़ी)। तीन लोक के नाथ के पास गया। तूने समवसरण में व्याख्यान सुना। आहा...हा... ! महाविदेह में तो अनन्त बार जन्मा है, महाविदेह में तीर्थंकर का विरह कभी नहीं होता। प्रभु विराजते हैं, वहाँ तेरा जन्म अनन्त बार हुआ है न, प्रभु ! अनादि काल का है न ! वहाँ भगवान के समवसरण में भगवान की आरती उतारी,

www.vitragvani.com

कैसी ? मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल, आहा...हा... ! कल्पवृक्ष के फूल ! जय नाथ प्रभु ! परन्तु प्रभु ! यह तो शुभभाव-राग है। आहा...हा... ! यह राग है, वह संसार है। वह स्वरूप में-ज्ञायकभाव में नहीं। बहुत कठिन काम, बापू !

अभी जगत के प्राणी... आहा...हा... ! लोगों को क्रियाकाण्ड में लगा दिया और बनियों को फुर्सत नहीं मिलती; इसलिए वे प्रसन्न प्रसन्न हो गये, अपन कर सकते नहीं, ये करते हैं। व्रत पालते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हैं, कितने परीषह सहन करते हैं। अरे... अरे... ! प्रभु ! क्या करता है तू ? परीषह सहन तो तब कहलाये कि जब सम्यग्दर्शन हुआ हो, अनुभव हुआ हो। परीषह आवे, उसे जाननेवाला रहे, उसका नाम परीषह सहन किया कहलाता है। यह तो सम्यग्दर्शन के बिना क्रिया, वह परीषह सहन है ही कहाँ ? परीषह ही नहीं। आहा...हा... !

'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं,'.... आहा...हा... ! अपने १२ वीं गाथा में आ गया कि स्वरूप जो त्रिकाल भूतार्थ ज्ञायक है, उसका जिसने आश्रय लिया, उसे सम्यग्दर्शन हुआ, वह निश्चय का विषय। तब अब उस सम्यग्दृष्टि की पर्याय में कुछ अपूर्णता और अशुद्धता है या नहीं ? है तो उसे क्या कहना ? पहला तो निश्चय का विषय हुआ। आहा...हा... ! उसे वर्तमान नय का जाननेवाला व्यवहार, वह उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह गजब बात ! दिगम्बर सन्तों की बातें, अमृत के सागर उछले हैं ! आहा...हा... ! ऐसी बात कोई सम्प्रदाय में है नहीं। आहा...हा... ! क्या कहें ? किसे कहें ? आहा...हा... !

यह अमृतस्वरूप भगवान, इसका-ज्ञायक का भान हुआ तो कहते हैं कि जो कषायभाव आवे परन्तु वे परज्ञेयरूप से आवे, स्वज्ञेयरूप से तो ज्ञायकभाव है। आहा...हा... ! क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से वर्तमान ज्ञान की पर्याय जिसे जाने, वस्तु को ज्ञेय बनावे और वस्तु को ज्ञेय निर्लेप को बनाकर ज्ञान किया, वह पर्याय स्व-पर प्रकाशक हुई अर्थात् स्व को भी जाने और पर्याय में अशुद्धता रागादि आवे उसे भी जाने। आहा...हा... ! क्योंकि यह तो जाननहार स्वभाव है, यह जाने बिना करे क्या ? आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यह सिर घूम गया हो पूरी जिन्दगी में। धन्नालालजी! पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष पाप में पच-पचकर अकेला पाप का पोटला बाँधा हो। आहा..हा...! अब उसे ऐसा (समझना)। निर्लेप चीज़ है। आहा...हा...! पाप का पोटला बाँधा, यह तो पर्याय की बात है। द्रव्य में कुछ है नहीं। आहा...हा...! वस्तु है न? ज्ञायकभावरूप से मौजूदगी चीज़ है न? यह चीज़ है, वह तो निर्लेप है। आहा...हा...! तब उस निर्लेप का जहाँ ज्ञान हुआ, उसे भी अभी रागादि आवे, पूर्ण वीतराग नहीं; इसलिए व्रत आदि का, भक्ति आदि का विकल्प हो परन्तु वह उन्हें जानता है। यह मेरे हैं—ऐसा नहीं मानता और इनसे मुझे लाभ होगा—ऐसा वह नहीं मानता। आहा...हा...! इतनी सब जबावदारी! तुझे इतनी सब शर्तों में जाना, भाई! तुझे, आहा...हा...!

मुमुक्षु : यह विभाव है, वे स्वज्ञेय हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परज्ञेय है। ज्ञायकभाव, वह स्वज्ञेय है। यह कहा न, बापू! यह प्रभु! तेरी प्रभुता तो, कषाय आवे उसे जाननेवाला (रहे), वह तेरी प्रभुता है। कषाय को करना और कषाय मेरी, यह तेरी प्रभुता नहीं, यह तो पामरता है। आहा...हा...! अरे! इसने आत्मा का हित चाहा नहीं। पर की जंजाल में घुसकर मर गया। उसमें फिर स्त्री कुछ अच्छे घर की ठीक मिली हो, पाँच-पच्चीस लाख लेकर आयी हो... आहा...हा...! अरे! फिर हो गया, यह साला और ससुर और बहू, उनकी महिमा ही करे। हमारी बहू है—लड़के की बहू, करोड़पति की लड़की, दस-बीस लाख लेकर आयी है और उसके कोई है नहीं, देह छूट जाये तो फिर अन्त में यहीं आनेवाला है। क्या कहते हैं? प्रभु! तू क्या करता है? यह सबको सब छोटा-बड़ा सब एक ही है। छोटालालभाई! किसी को छोटा हो। आहा...हा...! किसी को बड़ा। आहा...हा...! जाति तो एक है आहा...हा...!

कहते हैं, ये कषायें तो परज्ञेय हैं। ज्ञेय हैं परन्तु परज्ञेयरूप से हैं, स्वज्ञेयरूप से तो ज्ञायकभाव है। आहा...हा...! अरे..रे! ऐसा सुनने को मिलता नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से? इसकी पर्याय है, इस अपेक्षा से। इसकी पर्याय है अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से पर्याय इसकी है - ऐसा कहा। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा

www.vitragvani.com

से, ज्ञायकभाव की अपेक्षा से वह... यह तो प्रवचनसार में कहा है, शुद्धनय से-निश्चयनय से पुण्य-पाप इसमें हैं। यह तो उस ज्ञेय की पर्याय की स्थिति सिद्ध की है परन्तु जब इसे त्रिकाली ज्ञान पर दृष्टि पड़ती है, तब तो ये राग और पुण्य-पाप, दया, दान के भाव परज्ञेयरूप से ज्ञान में ज्ञात होते हैं—ऐसा ज्ञान का स्वभाव है, क्योंकि स्व का ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान की पर्याय में स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य है; इसलिए स्व को जानते हुए, राग आया, उसे वह जानता है।

यह जाननहार प्रभु दूसरा क्या करे? आहा...हा...! यह तो उदय को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष को जाने, निर्जरा को जाने। (समयसार) ३२० गाथा में आता है। आहा...हा...! भाई! मूल चीज़ हाथ में आना, वह अलौकिक बातें हैं। लोग यह बाहर से मान बैठे। यह सामायिक की, और प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये और हो गया धर्म! परन्तु धूल भी नहीं वहाँ। ये श्वेताम्बर लोग फिर तीर्थयात्रा, पूजा और सिद्धचक्र की पूजा और ऐसी पूजायें (करते हैं), कर्मदहन की पूजा (करते हैं)। धूल भी नहीं वहाँ, सुन न! इन दिगम्बर में (कहे) वस्त्र बदल डालो, वस्त्र बदल डालो और यह नग्न हो...

यह तो मुनिपना ले, तब उसे वस्त्र छोड़ दे। प्रतिमा लेनी हो तो उसमें अमुक प्रकार के वस्त्र छोड़ना। अरे...! प्रभु क्या करता है तू यह? यह तो छूटा पड़ा है, उसे छोड़ना, यह तो तेरी दृष्टि मिथ्या है। क्योंकि वस्तु में-भगवान आत्मा में ऐसा एक त्रिकाली गुण है—त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति। आहा...हा...! यह रजकण जो शरीर के, कर्म के... स्त्री-कुटुम्ब तो कहीं रह गये, वे तो बेचारे कहीं उनका आत्मा भटकता आया और उसके रजकण उसके हैं, उसे कहाँ तुझसे सम्बन्ध है? आहा...हा...!

यहाँ तो यह कहते हैं कि राग का भाव आया... आहा...हा...! उसे भी परज्ञेयरूप से जाने। आहा...हा...! यह जानने को कहा है, वह भी एक अपेक्षा से। बाकी तो जानने की पर्याय ऐसी ही इसे प्रगट होती है कि जिस प्रकार का राग है, उसे जानता हुआ ज्ञान स्वयं से प्रगट होता है। ज्ञायकभाव है, उसमें से ज्ञान की पर्याय आती है और इससे स्व को और पर को जानने की पर्याय वहाँ होती है। आहा...हा...! कितनी बात याद रखना इसमें? देवीलालजी! बापू! प्रभु का मार्ग अर्थात् तू, तेरा मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! बाहर

www.vitragvani.com

मानकर बैठकर जिन्दगी गँवाता है। आहा...हा... ! प्रभु ! भविष्य में ये सब नरक और निगोद के भव हैं। तू ऐसा मत समझ (कि) दुनिया बहुत माने, इसलिए हो गया धर्मी। आहा...हा... ! दुनिया से तुझे रिपोर्ट लेना है ? सर्टीफिकेट... सर्टीफिकेट ! दुनिया तो पागल है। करोड़पति सेठिया सब पागल हैं। आहा...हा... !

कहा नहीं अभी ? 'घट घट अंतर जिन वसै' और 'घट घट अंतर जैन' उस जिन (स्वभाव) का आश्रय लेकर पर्याय प्रगट हुई, वह अन्तर में है; वह कोई विकल्प और बाहर में नहीं परन्तु 'मत मदिरा के पान सो' मत की मदिरा-शराब पी है मत की। आहा...हा... ! 'मतवाला समझे न'। परन्तु यह अभिप्राय मतवाले को-अज्ञानी को यह बात नहीं जँचती। आहा...हा... ! जो करना है, उसकी सूझ नहीं पड़ती; नहीं करने की क्रियाकाण्ड में इसकी सूझ पड़ गयी है। आहा...हा... !

परमार्थवचनिका में तो ऐसा कहा है, है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे। आगम का व्यवहार सरल है, इसलिए लोग उसमें लग पड़े हैं परन्तु अध्यात्म का व्यवहार क्या है ? - उसे वे नहीं जानते। व्यवहार, हों ! निश्चय तो (अभी दूर है) क्योंकि अध्यात्म का व्यवहार तो यह है कि ज्ञायकस्वभाव जो त्रिकाल है, उसके आश्रय से हुई यह निर्मल, निर्विकल्प वीतरागीदशा, वह अध्यात्म का व्यवहार है। बाकी यह रागादि की क्रिया—महाव्रत, यह तो सब मनुष्य का व्यवहार है, आत्मव्यवहार नहीं। प्रवचनसार में ९३-९४ गाथा, ज्ञेय अधिकार। आहा...हा... ! दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया ! परन्तु लोग उन्हें पहिचानने को निवृत्त नहीं और दिगम्बर हैं, इसलिए नग्न मुनि को मानना, प्रतिमा नग्न हो उसे मानना। वहाँ उसमें क्या ? धूल है। आहा...हा... ! परन्तु आत्मा विकल्परहित नग्न है... आहा...हा... ! उसे माने, तब तू दिगम्बर कहलाये; नहीं तो राग के, अम्बर के ओढ़ने ओढ़े हैं।

मैं तो ज्ञायक हूँ.... धर्मी जीव को तो मैं तो ज्ञायक हूँ, राग का व्यवहार - दया, दान, व्रत का आया, वह परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। मैं तो जाननेवाला हूँ। यह राग है, वह मैं नहीं। स्व को—पर को जाननेवाला, वह मैं हूँ। महाव्रत का राग आया, बारह व्रत के श्रावक के विकल्प आये, वे मेरे नहीं, वे मेरे स्वरूप के नहीं, मेरी जाति के नहीं।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! वह कुजात है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। कठिन पड़ता है, क्या हो? इसलिए सोनगढ़वाले निश्चय की बातें करते हैं, व्यवहार से होता है, यह नहीं कहते-ऐसा बेचारे कहते हैं। उसमें कोई दिक्कत नहीं, बापू! बापू! अजानपने ऐसा ही कहे। उसमें कुछ (नहीं)। यह अज्ञान का दोष है। आहा...हा...! टीका (आलोचना) करते हैं, करो, बापू! तू तेरी आलोचना करता है, भाई! आहा...हा...! पर की तो कौन आलोचना करे? पर का आत्मा इसने देखा है? देखे बिना उसकी आलोचना कौन करेगा? नहीं देखा, वह आलोचना किसकी करे? आहा...हा...!

क्या कहा? कि ज्ञायकभाव त्रिकाली है, उसे पहिचाने और उसकी परिणति में जो निर्मल हो, उसे पहिचाने और उसकी परिणति में जरा राग आवे, उसे परज्ञेयरूप से पहिचाने। आहा...हा...! इतनी शर्तें। अब इसमें निवृत्ति कहाँ? डॉक्टर! कान्तिभाई! तुम्हारा काका कहाँ निवृत्त है वहाँ? यह तो उसकी बात नहीं, हों! यह तो वहाँ बड़ा डॉक्टर है, परन्तु पूरी दुनिया उसी में पड़ी है न! बड़े का दृष्टान्त दिया जाता है। '......' जिस कुल में जन्मा और जिसका जिसे संग हुआ '....' यह मेरे-मेरे ऐसा करके मर गया। आहा...हा...! '....' एक दूसरे-एक दूसरे में मूर्च्छित हो गये। यह स्त्री मेरी और यह पति मेरा, यह लड़का मेरा, और पप्पा मेरे, पप्पा मेरे। आहा...हा...! ए!

यहाँ तो राग का शुभ दया, दान का विकल्प उठे, वह भी परज्ञेयरूप से आत्मा की भूमिका में जाननेवाला उसे जानने का काम करे; राग का काम करे नहीं और राग को अपना माने नहीं। आहा...हा...! अरे रे! यहाँ पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान योद्धा हो, एक क्षण में देह छूट जाये, बापू! भाई कहता था। है न मलकापुर में, स्वरूपचन्द है, स्वरूपचन्द। बहुत जवान व्यक्ति, बहुत होशियार। मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा कण्ठस्थ! बड़ा व्यापार दस-दस हजार कपड़े का धन्धा बड़ा, परन्तु यह मोक्षमार्गप्रकाशक (कण्ठस्थ)। कुँवारा था, तब प्रश्न करता था। अब तो व्यापार करता है, विवाह किया।

वह कहता था कि मैं और मेरा मित्र दोनों बैठे थे। पच्चीस वर्ष का होगा, अट्ठाईस वर्ष का युवा। बातें करते थे। कुछ नहीं होता नख में कोई रोग नहीं। बातें करते थे, वहाँ ऐसा हुआ, मैंने ऐसा देखा वहाँ मर गया। बापू! उसकी स्थिति पूरी होती है। यह तो पर है, वह कहाँ तेरा है? संयोग में आयी हुई, वि-संयोग में छूट जायेगी। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यहाँ तो रागभाव भी संयोगी है वहाँ फिर उस चीज़ की क्या बात करना। दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव वह संयोगीभाव है; स्वभावभाव नहीं। आहा...हा... ! अभी तो दया, दान, व्रत आदि शुभभाव का ठिकाना नहीं होता, उसे तो धर्म कहाँ है। आहा...हा... !

पहिचाने—परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है। प्रगट निर्लेपता होती है अर्थात् ? निर्मल तो वस्तु है। आहा...हा... ! उसका ज्ञान करे, उसे देखने का, उसे जानने का और उसे मानने का (कार्य करे) तो पर्याय में निर्लेपता प्रगट होती है। वह निर्लेपता कोई व्यवहार करने से होती है (-ऐसा नहीं है)। निश्चयमोक्षमार्ग यह कि जो ज्ञायकरूप वस्तु भगवान है, उसका आश्रय लेकर जो परिणति हुई, वह निश्चयमोक्षमार्ग, सत्य मार्ग। यह व्यवहार है तो व्यवहार से वह होता है—ऐसा नहीं, क्योंकि निर्लेप परिणति, निर्लेप द्रव्य के अवलम्बन से होती है। न्याय समझ में आता है ? आहा...हा... ! अरे रे ! प्रभु का विरह पड़ा, भगवान कहाँ रह गये। आहा...हा... ! भरत में भगवान नहीं, भरत में भगवान की उत्पत्ति हो - ऐसे केवली नहीं। आहा...हा... ! यहाँ तो प्रभु का यह वचन है। बहिन ने तो बात करते हुए कहा होगा, उसमें से लिखा गया। आहा...हा... ! आहा...हा... ! **परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।** आहा...हा... ! १६५ (पूरा हुआ)।

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप, अनन्त अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। ज्ञायक के साथ ज्ञान ही नहीं, दूसरे अनन्त आश्चर्यकारी गुण हैं जिनकी किसी अन्य पदार्थ के साथ तुलना नहीं हो सकती। निर्मल पर्यायरूप परिणमित होने पर, जिस प्रकार कमल सर्व पंखुरियों से खिल उठता है, उसी प्रकार आत्मा गुणरूपी अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है॥१६३॥

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप.... भगवान है वह चेतन, उसका चैतन्यस्वरूप-जानना-देखना-ज्ञायक उसका स्वरूप। स्व-रूप अर्थात् कायम का रूप। आहा...हा... ! आत्मा है चेतन, उसका चैतन्य, वह उसका स्वरूप। आहा...हा... ! जानना-देखना ज्ञायक उसका

www.vitragvani.com

स्वरूप (है)। उसका स्वरूप शरीर, वाणी और मन तो नहीं; परन्तु महाव्रत आदि के परिणाम भी उसका स्वरूप नहीं। अरे! यह कैसे जँचे? क्योंकि स्वयं कर सके नहीं और ऐसा कोई करते देखे कि ओहो...हो...! महाराज धन्य है! शुभभाव करते हों, स्त्री-पुत्र छोड़े हों, वस्त्र छोड़े, एक-दो-चार-पाँच-दश प्रतिमा धारण की, आहा...हा...! परन्तु यह प्रतिज्ञा नहीं की कि मैं ज्ञायकभाव त्रिकाल हूँ। इसकी प्रतिज्ञा ली? जयसुखभाई! ऐसी बातें, प्रभु! क्या हो?

अरे! यह पूरी दुनिया दु:खी है। इस दु:ख की... आहा...हा...! घानी में पिल रही है, प्रभु! तुझे पता नहीं। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ / सागर, इस राग और द्वेष में पिल रहा है। पुण्य और पाप के भाव में; जैसे घानी में तिल पिलते हैं, वैसे पिल रहा है। बापू! भले यह माने कि हम सुखी हैं। पागल हैं। सन्निपातवाला... सन्निपात आता है। वात-पित्त और कफ बढ़ जाए, वह सन्निपात कहलाता है। सन्निपात। तीन का मेल। वह दाँत निकाले। साथवाला कहे —अरे रे! यह अब थोड़े समय रहेगा। इस देह की स्थिति पूरी होने आयी।

हमने तो नजरों से (देखा है)। बहुत समय की बात है। एक जवान व्यक्ति विवाहित। उसे सन्निपात हुआ। लोग रोवे... रोवे... रोवे... सवेरा नहीं होगा अब इसे। वह दाँत निकाले। सुखी है? आहा...हा...! दु:ख की पराकाष्ठा बढ़ गयी है न तो पता नहीं पड़ता कि यह क्या है यह? यह सन्निपातवाले का हँसना, वह सुखी का हँसना नहीं है।

इसी प्रकार अज्ञानी आत्मा के भान के बिना बाहर के संयोग करोड़ों-अरबों रुपये और लड़के अच्छे (हों), उसमें प्रसन्नता मानता है। उसे मिथ्यात्व, अज्ञान और अव्रत का सन्निपात है। पहले की वात-पित्त और कफ का सन्निपात है। आहा...हा...! ऐसा है, बापू! लोगों का लगे तो सही, क्या हो? लोगों को ऐसा लगता है कि इसमें कुछ व्यवहार करना और उससे लाभ हो, यह बात तो करते नहीं। अमुक का व्यवहार आवे, वह कषाय है, वह अपनी नहीं—ऐसा यह जाने, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। करे, ऐसा नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन दिखे, उसे चारित्र तो बाहर दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र था कब? सम्यग्दर्शन दिखे, उसे चारित्र तो अन्तर

www.vitragvani.com

स्वरूप में रमणता (हो)। आनन्द के नाथ भगवान में चरना अर्थात् रमना अर्थात् जमना। इस अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करने का नाम चारित्र है। बापू! व्याख्या अलग है। आहा...हा...! हम दुनिया को जानते हैं न, बापू! यहाँ तो ८९ वर्ष हुए। ९० में एक वर्ष कम। दुकान से यह अभ्यास था। व्यापारियों और करोड़ोपति... पाँच वर्ष दुकान का धन्धा किया है। 'पालेज', पालेज, 'भरुच' और 'वड़ोदरा' के बीच है। दुकान है, अभी दुकान है, बड़ी दुकान है। वह दुकान वहाँ मेरे पिताजी की थी—दुकान थी, उसके साथ दुकान है, बड़ी दुकान है। पैंतीस-चालीस लाख रुपये, तीन-चार लाख की वार्षिक आमदनी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डाला। लड़के निवृत्त नहीं होते। हमारी बुआ के लड़के भागीदार थे। सब मर गये। तीन लड़के हैं। आहा...हा...! दुकान का यह धन्धा पाँच वर्ष चलाया था। सत्रह वर्ष की उम्र से बाईस वर्ष। उसमें भी बहुत देखा था, बहुत पढ़ा था। आहा...हा...! यह समयसार जहाँ हाथ आया न, ओहो...हो...! अरे! यह तो मोक्ष का मार्ग! यह तो सिद्ध होने का पन्थ!! मैंने तो ऐसा नहीं कहा था, परन्तु ऐसा कहा 'अशरीरी होना हो तो यह पुस्तक है।' शरीररहित होना हो तो यह वस्तु है। कितने वर्ष हुए? ५६ वर्ष हुए। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, **अनन्त अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है**। आहा...हा...! चैतन्यस्वरूप अनन्त गुण और अनुपम—जिसे कोई गुण की उपमा न दी जा सके। प्रभु! ऐसे गुण। आहा...हा...! चैतन्य चमकता हीरा भगवान है अन्दर। आहा...हा...! अरे..रे! इसे निज द्रव्य का पता नहीं पड़ता और स्वयं तो मानो बातें करने बैठे, इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो। पर की बातें। अरे! प्रभु! परन्तु तू कौन है, उसकी तो लगा। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **चैतन्यस्वरूप, अनन्त अनुपम गुणवाला...** अनन्त और अनुपम गुणवाला। किसी गुण को दूसरे की उपमा नहीं दी जा सके-ऐसे अनन्त गुण हैं। आहा...हा...! **चमत्कारिक पदार्थ है**। वह चमत्कार यह है। दुनिया में चमत्कार कि लड़का नहीं था और महाराज ने ऐसा किया, वहाँ मुझे लड़का हुआ और पैसे हुए... धूल भी नहीं है।

www.vitragvani.com

समझ में आया ? इस लकड़ी में कुछ है—ऐसा लोग कहते हैं। लकड़ी फिरे तो पैसेवाला (हो जाए)। यहाँ तो बहुत पैसेवाले आते हैं। एक कुटुम्बी पैसेवाला... पैसेवाले बहुत और ये व्यापारी आवें पैसेवाले बहुत। इसलिए कुछ इनके हाथ में कुछ है। धूल भी नहीं। यह तो लकड़ी है। यह तो हाथ में पसीना आता है, इसलिए पुस्तक को स्पर्शे नहीं, इसके लिए रखते हैं। आहा...हा...! लकड़ी में चमत्कार नहीं, धूल में भी नहीं, परन्तु ऐसी बात उड़ी है।

एक बार कहा था न ? 'अमरेली' में एक 'बाबरा' का था 'नरभेराम' वकील था बड़ा। मैं गया तो सब आये, सब करोड़पति व्याख्यान में आये। उसने कोर्ट में जज को कहा —मैं आज नहीं आ सकूँगा, वकील ने कहा। क्यों ? महाराज है, इसलिए मुझे आज व्याख्यान में जाना पड़ेगा। तब जज पूछता है—कौन से महाराज ? वे जिनकी लकड़ी फिरती है और पैसा (होता है) ? भाई ! धूल भी नहीं, बापू ! यहाँ तो चैतन्य-चमत्कार की बातें हैं। वह देख न ! **चमत्कारिक पदार्थ है**। आहा...हा...!

ज्ञायक के साथ ज्ञान ही नहीं, दूसरे अनन्त आश्चर्यकारी गुण हैं... ज्ञायक के साथ अकेला ज्ञान ही है, ऐसा नहीं—ऐसा कहना है। जाननेवाले को ज्ञान अकेला है-ऐसा नहीं। उसमें अनन्त गुण हैं।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण शुक्ल ५, बुधवार, दिनाङ्क ०९-०८-१९७८
वचनामृत-१६३-१६५ प्रवचन-५९

१६३, है, भूतकाल में है, वर्तमान में है और भविष्य में है। है न वस्तु? यह अनादि से आत्मा का जो स्वरूप है, उसे भूलकर बाहर में भटका-भटक किया है। यह शरीर मेरा, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा और मैंने धन्धा किया और पैसा पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे किये.... धूल में भटक मरा है। आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं), व्यवहार-जो राग आवे, वह भी स्वरूप में नहीं है। राग है। फिर दूसरे बोल में कहेंगे, व्यवहार है परन्तु वह कोई वस्तु के स्वरूप में-त्रिकाली में नहीं है। आहा...हा...! जो सम्यग्दर्शन प्रगट करने का ध्येय है, उस स्वरूप में तो (व्यवहार नहीं है)। वह तो अकेला चैतन्यस्वरूप है। फिर कहेंगे, चैतन्य के साथ अनन्त गुण हैं। आहा...हा...! वह चैतन्यस्वरूप अनन्त अनुपम गुणवाला है। आहा...हा...! यह चैतन्य स्वयं ही अनन्त और अनुपम है। आहा...हा...! जिसे कोई उपमा नहीं दी जा रुके-ऐसा यह चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। आहा...हा...! उसकी श्रद्धा और उसके अनुभव बिना सब व्यर्थ, चार गति में भटकने का है। आहा...हा...!

ज्ञायक के साथ... अब जो कहा कि चैतन्यस्वरूप है, वह अनन्त अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ ज्ञायक है, परन्तु उस **ज्ञायक के साथ ज्ञान ही नहीं, दूसरे अनन्त आश्चर्यकारी गुण हैं...** आहा...हा...! जिसमें ज्ञान तो है, वह तो स्वरूप उसका ज्ञायक त्रिकाल है, परन्तु उसके साथ आनन्द, शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण, जीवत्वशक्ति, चिति, दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य... आहा...हा...! ऐसे अनन्त गुण हैं। ऐसे अनन्त गुण-आश्चर्यकारी गुण है। आहा...हा...! क्योंकि एक-एक गुण प्रभु! जरा

www.vitragvani.com

सूक्ष्म बात है। यह प्रभुत्व जो गुण है अनन्त, उसमें एक-एक गुण की अनन्त पर्याय है और एक-एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूपरूप है। आहा...हा...! समझ में आया? इस चैतन्य परमात्मा दरबार में... आहा...हा...! असंख्य प्रदेश इसका देश है और अनन्त गुण इसकी प्रजा है। आहा...हा...! ऐसा परमात्मा का दरबार, उसमें एक-एक गुण आश्चर्यकारी है, कहते हैं। है?

आश्चर्यकारी गुण हैं, जिनकी किसी अन्य पदार्थ से साथ तुलना नहीं हो सकती। आहा...हा...! चैतन्य रत्न भगवान। अरे! इसने कभी देखा नहीं, सुना नहीं और यह भटकने के रास्ते कर-करके मर गया। बाहर का एक तो धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र और परिवार में पाप में उलझ गया। आहा...हा...! धर्म के नाम से आया तो दया, दान और व्रत, भक्ति, पूजा के भाव जो शुभराग, वह संसार है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात, भाई! उसमें उलझ गया, परन्तु जिसमें अनन्त गुण और आश्चर्यकारी जिसकी शक्ति है—ऐसे तत्त्व को जिसने लक्ष्य में नहीं लिया, आश्रय नहीं किया, अवलम्बन नहीं लिया; पर का अवलम्बन नहीं छोड़ा। आहा...हा...! निराधार... आत्मा जो आधारस्वरूप है, उसका आधार नहीं लिया और निराधार जिसमें राग, पर्याय आदि, उसका आश्रय लेकर ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा अनन्त बार, परन्तु वह तो राग है, वह संसार है। है परन्तु, हों! वह नहीं-ऐसा नहीं। व्यवहारनय का विषय है। धन्नालालजी! व्यवहारनय नहीं - ऐसा है; है, परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं तथा वह उपादेय नहीं, तथा वह हितकर नहीं, हेय है। आहा...हा...! अरे रे! कब इसे मिले? आहा...हा...!

कल का, भाई! सुना वह सिहोर का। रिक्षा, नया रिक्षा पन्द्रह-बीस हजार का लेकर 'खोडियार' का दर्शन करने जा रहा था। सात-आठ लोग थे। भाई 'जीतू' बस में बैठा था। उस बस ने उसे कुचल डाला। पूरा कुचलकर चूरा (हो गया)। आहा...हा...! चार आदमी, एक लड़की। जवान व्यक्ति। यह देह की स्थिति, बापू! आहा...हा..! ऐसे मरण तो तूने अनन्तबार किये, भाई! आहा...हा...!

अनन्त गुण का नाथ प्रभु अन्दर, जो जिनेश्वर सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने परमात्मा ने, उसका परमात्मस्वरूप है-ऐसा बतलाया है। आहा...हा...! और तुझे तेरे स्वरूप में जो गुण

www.vitragvani.com

है, वे आश्चर्यकारी हैं, प्रभु! तू दूसरे का आश्चर्य और कौतुहलता तथा विस्मय से तू देखता है, परन्तु तेरे गुण तो आश्चर्यकारी विस्मय है, उसे तू देखता नहीं, प्रभु! आहा...हा...! समझ में आया? अन्तर परमात्मा बिराजमान है न! प्रभु! आहा...हा...!

अनन्त गुण हैं, एक-एक गुण की अनन्त पर्यायें हैं, एक-एक पर्याय की अनन्त ताकत है। अनन्त गुणों को, द्रव्य को, दूसरे अनन्त द्रव्यों को जाने—ऐसी उसकी ताकत है। एक समय की पर्याय में इतनी ताकत!! आहा...हा...! छहों द्रव्यों को एक समय में जाने और अपनी पर्याय से द्रव्य, गुण अनन्त स्वयं को जाने। आहा...हा...! ऐसी तो एक गुण की एक पर्याय की ताकत! अरे भाई! तू प्रभु है, तुझे पता नहीं। आहा...हा...! तेरी सब शक्तियाँ प्रभुत्वता, ईश्वरता से भरपूर है और उनकी पर्याय भी प्रभुता की ईश्वरता से वीतरागता के आनन्द से भरपूर है, यदि दृष्टि करे तो। आहा...हा...! बाकी तो सब.... एक लेख में कल आया था, कितने पैसे तूने कमाये, कितनी स्त्रियाँ की और कितनी इज्जत मिली—ऐसा वहाँ कोई परलोक में पूछने का नहीं है। कितने को संग्रह किया और कितने पैसे इकट्ठे किये और कितनी डिग्रियाँ प्राप्त की.... एल.एल.बी., एम.ए. की और... आहा...हा...! यह कोई चीज़ नहीं। आहा...हा...!

सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव परमात्मा ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू आत्मा, प्रभु की शक्ति से भरपूर है न, नाथ! अरे! तुझे तेरा विश्वास नहीं और जो चीज़ तुझमें नहीं, उसका तुझे विश्वास! राग का विश्वास, शरीर का विश्वास, वाणी का विश्वास, दवा का विश्वास, बुखार आया हो चार डिग्री, पाँच डिग्री... क्या कहलाता है वह? कवीनाईन, कवीनाईन ले तो रोग मिट जायेगा, ऐसा तेरा विश्वास! आहा...हा...!

मुमुक्षु : बहुत बार देखा हो न...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बहुत बार उतरता नहीं, मर जाता है वहाँ कवीनाईन खाकर। आहा...हा...! कहा न, वे भाई कल महाजन आये नहीं थे? उनका बाईस वर्ष का लड़का। कल आये थे न? वीरचन्दभाई कहाँ गये? अपने शान्तिभाई पहले आते थे। शान्तिभाई बहुत होशियार थे। नया विवाह किया और फिर अफ्रीका में गया। उसके बड़े भाई थे। कल आये थे। एक व्याख्यान हुआ। आहा...हा...! उनका बाईस वर्ष का लड़का वहाँ ले गये।

www.vitragvani.com

डाक्टर कहे कि इसे खून का... क्या कहलाता है ? कैंसर है। यह कैंसर है ऐसा। यह कैंसर ऐसा है कि चौबीस घण्टे नहीं रह सकेगा। बाईस वर्ष का जवान। यह बापू! शरीर के रोग की दशा और जो अवस्था जिस काल में, जिस प्रकार से हो, उसमें कोई उसे रोके नहीं और कोई उसे टाल सकता नहीं। आहा...हा... !

यह खून निकाला और थोड़ा डाला और आठ दिन रहा, आठ दिन। कान में से खून, नाक में से खून, आँख में से खून, जीभ में से खून... आहा...हा... ! बापू! जहाँ है, उसमें से आयेगा। वहाँ क्या है ? वहाँ हड्डियाँ, खून और माँस ये तो भरे हैं। आहा...हा... ! उसमें से खून की धारायें चलती। यहाँ कहते हैं कि अनन्त गुण का सागर प्रभु तू है। यदि तेरी नजर में वह आवे तो अनन्त गुण की निर्मलधारा तेरी पर्याय में रहेगी। आहा... ! सम्यग्दर्शन में अनन्त गुणों की आनन्दधारा का तुझे वेदन होगा। आहा...हा... !

यह यहाँ कहते हैं **अनन्त आश्चर्यकारी गुण हैं, जिनकी किसी अन्य पदार्थ के साथ तुलना नहीं हो सकती। निर्मलपर्यायरूप परिणमित होने पर,....** आहा...हा... ! इसका अर्थ यह कि मलिनपर्याय से तो परिणमता है। समझ में आया ? राग-द्वेष, पुण्य -पाप के भावरूप तो होता है, अनन्त बार हुआ है और है; इसीलिए तो सब संसार है, भटकने का रास्ता है। आहा...हा... ! अब ऐसे मनुष्य बेचारे मरकर वापस (तिर्यंच में जाएँ)। कठिनता से मनुष्यपना मिला था। वे मरकर, वापस माँस आदि न खाते हों, परन्तु बहुत-से पशु में जानेवाले हैं, तिर्यंच-आड़े (होनेवाले हैं)। वक्रता की है। आहा...हा... ! मनुष्य का शरीर ऐसा है न खड़ा। गाय, भैंस, घोड़ा, गिलहरी का आड़ा शरीर है। प्रभु! ऐसा कहते हैं कि बहुत तो वक्रता राग और द्वेष की की है न, उनका आत्मा तो उल्टा / आड़ा हुआ, परन्तु शरीर जिसे मिलने पर शरीर आड़ा हो गया। आहा...हा... ! बापू! तुझे पता नहीं, प्रभु! तू क्या करता है ? और उसका क्या फल आयेगा ? भाई! आहा...हा... !

तू एक अनन्त गुण का सागर अन्दर है। तेरा एक-एक गुण आश्चर्यकारी, विस्मयकारी अद्भुत चमत्कारवाले गुण तेरे हैं, प्रभु! तूने सुना नहीं। आहा...हा... ! यह करना और यह करना, यह व्यवहार करना, दया पालन की और व्रत किये, और... बापू! यह तो राग की क्रिया है। इस स्वरूप में ऐसा कोई गुण नहीं। सवेरे कहा था, अनन्त गुण हैं। अनन्तानन्त

www.vitragvani.com

गुणों का पार नहीं होता, बापू! अन्तिम यह, ऐसी मर्यादा नहीं होती। आहा...हा...! उसकी वर्तमान पर्याय जहाँ ऐसे द्रव्य में जाए, वहाँ अनन्त गुण का पार नहीं होता, वहाँ वह पसर जाती है। आहा...हा...! यह कभी एक सेंकेण्ड भी, प्रभु! तूने किया नहीं। आहा...हा...! तेरी प्रभुता को तूने प्रभुतारूप से जानकर-पहिचानी नहीं और पामर को तूने प्रभुता का आदर करके स्वीकार किया। आहा...हा...! स्त्री मिली, पैसे मिले, इज्जत मिली, शरीर सुन्दर मिला और... आहा...हा...! मकान कोई पाँच-पच्चीस लाख का बड़ा हुआ—बँगला और क्या कहलाता है तुम्हारे वह? घर प्रयोग की चीज़े-फर्नीचर, पाँच-पच्चीस लाख का फर्नीचर ऐसे लगाया और बीच में खाट-पलंग और ऐसे सगे-सम्बन्धी देखने आवे मानो, ओहो...हो...! हमारे समधी या सगे या मामा बहुत सुखी हैं। अरे, बापू! ये दुःख के पर्वत में घुस गया है, इसे पता नहीं। आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे भूला है और बाह्य के राग और पुण्य तथा पुण्य के फल में इसे आश्चर्यकारी और विस्मयता लगी है। आहा...हा...! यह दुःखी है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरे गुण का आश्रय क्या कहें! आहा...हा...! विस्मयकारी तेरे गुण! एक-एक गुण और... आहा...हा...! एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय और एक-एक गुण की एक पर्याय अनन्त परद्रव्य को और अनन्त अपने गुण को जानने की ताकतवाली पर्याय! यह तू अनादि से मलिनपर्याय से परिणमता है। आहा...हा...! ऐसा जो गुणधारी भगवान गुणधर-जिसने गुण धारण कर रखे हैं। आहा...हा...! भाई! तूने वहाँ नजर नहीं की। तेरे निधान पड़े हैं अन्दर बड़े! उस निधान को तूने खोला नहीं। राग की एकता का ताला लगाकर निधान को बन्द कर दिया, प्रभु! तूने। आहा...हा...! राग के विकल्प के रस में, प्रभु! तू अन्दर में जा नहीं सकता। समझ में आया? आहा...हा...! आहा...हा...! यह करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ दान दे, वहाँ ऐसा हो जाता है कि हमने बहुत किया मैंने और उसमें से मुझे लाभ होगा। यह (भाव) मिथ्यात्व का पोषक है। आहा...हा...!

भाई! तुझे तेरे गुण की और पर्याय की विस्मयता की तुझे खबर नहीं। है? कोई तुलना हो सके ऐसी नहीं। **निर्मलपर्यायरूप परिणमित होने पर,...** परन्तु भगवान

www.vitragvani.com

आत्मा अनन्त गुण का निर्मल सागर, उसके सन्मुख की पर्याय होने पर (निर्मलपर्याय होती है)। जो विमुख की, राग की, विकार की पर्याय हो, वह तो मलिन है। भगवान आनन्द का सागर चैतन्यरत्न विस्मयकारी पदार्थ को देखने पर, उसका आदर करने पर जो निर्मल -पर्याय होती है। आहा...हा...! इसका अर्थ कि यह व्यवहार करते हुए निर्मल हो – ऐसा नहीं है। व्यवहार हो; विषय नहीं ? व्यवहारनय है तो उसका विषय नहीं ? विषय है परन्तु वह कोई आश्रयकारी या आदरणीय है (-ऐसा) नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : व्यवहार हेय है परन्तु छोड़ने लायक नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार हेय है तो हेय कहो या छोड़नेयोग्य कहो। आदरणीय नहीं। आहा...हा...! है अवश्य विषय। व्यवहार न हो तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय चौइन्द्रिय जीव ही नहीं पर्याय में। वरना वह जीव तो ज्ञानस्वरूप है। समझ में आया ? राग-द्वेष तथा मोह न हो तो संसार ही नहीं हो उसे। है, व्यवहार का विषय है। आहा...हा...! परन्तु उसे आदर करनेयोग्य नहीं, प्रभु! आदरणीय तो तेरे गुण जो अनन्तानन्त स्वरूप हैं, (वे आदरणीय हैं)। आहा...हा...! सूक्ष्म लगे, अनभ्यास में, अभ्यास नहीं होता। दुनिया के सर्राफ का धन्धा करता हो। पैसा... दो लाख दिये और दस लाख आये, बहुत आये न, आहा...हा...! वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। धूल भी नहीं वहाँ।

यहाँ कहते हैं कि तेरे गुण के साथ तुलना करने पर, पर्याय निर्मल परिणमित होने पर... तब पर्याय निर्मल होती है। निर्मलानन्द प्रभु के सन्मुख देखने पर, उसका आश्रय लेने पर, जिसमें निर्मलता भरी है, वह पर्यायरूप से निर्मल होता है। आहा...हा...!

जिस प्रकार कमल सर्व पंखुरियों से खिल उठता है,... पंखुड़ी, पंखुड़ी। **सर्व पंखुरियों से खिल उठता है,...** आहा...हा...! **उसी प्रकार आत्मा गुणरूपी अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है।** आहा...हा...! लाख का, पंखुड़ियों का कमल हो। हजार पंखुड़ियाँ तो यहाँ होती है, गये थे न हम वहाँ ? कौन सा गाँव ? तिखली। वहाँ हजार पंखुड़ियों का गुलाब होता है, वहाँ हम गये थे। सूखा हुआ नहीं पड़ा था! इसके अतिरिक्त कहते हैं एक लाख पंखुड़ियों का गुलाब होता है। आहा...हा...! यह अनन्त-अनन्त गुणों का सागर भगवान, इसे अन्तर्मुख में देखने पर, इसकी पर्याय में अनन्त गुण खिल निकलते

www.vitragvani.com

हैं। राग से खिल निकलते हैं, यह नहीं। राग से तो खिलना रुक जाता है। आहा..हा... ! सूक्ष्त बात है भाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू ! आहा...हा... !

अन्दर महा चैतन्य माणिक रत्न भगवान है। आहा...हा... ! अत्यन्त पवित्र निर्मल गुण से भरपूर वह भगवान है। आहा...हा... ! उसके सन्मुख देखने पर, उसका आश्रय लेने पर जितने गुण हैं, वे जैसे कमल की पंखुड़ी खिले, वैसे पर्याय में अनन्त गुण खिल निकलते हैं। आहा...हा... ! अब ऐसी क्रिया करना, कहते हैं। आहा...हा... ! भाई ! मार्ग तो यह है। बाकी तो पामररूप से... आहा...हा... ! साधु हो, नग्न हो, पंच महाव्रत पाले, वह सब संसार है। आहा...हा... ! प्रभु ! कठिन बात है। लोगों को इतना लगता है—ये सोनगढ़वाले व्यवहार को तो उड़ा देते हैं। उड़ाते नहीं, भाई ! है, ऐसा कहते हैं। नहीं-ऐसा किसने कहा ? परन्तु वस्तु के स्वरूप में नहीं; इसलिए उसका आश्रय और आदर करनेयोग्य नहीं है। आहा...हा... !

आठवीं गाथा में वहाँ तक आया, आत्मा। प्रभु ! तुम आत्मा किसे कहते हो ? वह (शिष्य) टकटकी लगाकर देख रहा है। तब उससे कहते हैं, प्रभु ! जो श्रद्धारूप, ज्ञानरूप, स्थिरतारूप से परिणमित होता है, प्राप्त होता है, वह आत्मा। इतना भी व्यवहार कहा। इतना व्यवहार स्थापनेयोग्य है अर्थात् व्यवहार है—ऐसा स्थापनायोग्य है, परन्तु व्यवहार को अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आहा...हा... ! इतना व्यवहार भी स्थापनायोग्य है, परन्तु अनुसरण करनेयोग्य नहीं। राग, व्यवहार, व्रत और तप की तो बात क्या करना ! परन्तु भगवान अभेद है, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, इतना भेद पाड़कर व्यवहार कहा; इसके अतिरिक्त समझाने में कोई उपाय नहीं है, तथापि उस भेद को कहनेवाले और सुननेवाले दोनों को आदरणीय / अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी बात है परन्तु अब क्या हो ? एक तो अभ्यास नहीं होता। एक तो बनिये व्यवसाय में फँस गये। पूरे दिन (पाप)। ए...सेठ ! यह भी सेठ है। आहा...हा... ! धन्धा-पैसा दिया और लिया और... दो हजार दिये और यह ब्याज यह आया और अमुक आया और.... अरे रे ! भाई ! तूने क्या किया यह ? यह तो सब भटकने का मार्ग है, भाई ! जो भाव स्वरूप में नहीं, उस भाव को करके तू उत्साह करता है, भाई ! तुझे किस फल में जाना है ? आहा...हा... ! देह तो छूटेगी, आत्मा कहीं नष्ट नहीं होगा। तो कहाँ जायेगा ? आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिसे राग और पुण्य और इस क्रिया से मुझे धर्म होगा—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव सेवन किया है, इस मिथ्यात्व में भविष्य में रहेगा और इस मिथ्यात्व में नरक तथा निगोद करने के भव का गर्भ पड़ा है अन्दर। आहा...हा...! तुझे सम्यग्दर्शन में त्रिकाली आत्मा के परमात्मस्वरूप का आदर करने पर, यही मैं हूँ - परमात्मस्वरूप ही मैं हूँ, अनन्त गुण का भेदरूप भी मैं नहीं, मैं तो अभेद हूँ। आहा...हा...! उसका स्वीकार सम्यग्दर्शन में होने पर अनन्त भव का छेद होकर अनन्त आनन्द तथा ज्ञान प्रगट हो, उसका कारण उसने खड़ा किया। समझ में आया? आहा...हा...! **उसी प्रकार आत्मा गुणरूपी अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है**। आहा...हा...! १६३ (बोल पूरा हुआ)।

चैतन्यद्रव्य पूर्ण निरोग है। पर्याय में रोग है। शुद्ध चैतन्य की भावना ऐसी उत्तम औषधि है, जिससे पर्यायरोग मिट जाये। शुद्ध चैतन्यभावना वह शुद्ध परिणमन है, शुभाशुभ परिणमन नहीं है। उससे अवश्य संसार-रोग मिटता है। वीतरागदेव तथा गुरु के वचनामृतों का हार्द समझकर शुद्ध चैतन्य-भावनारूप उपादान-औषध का सेवन किया जाय तो भवरोग मिटता है; इसलिए वीतराग के वचनामृतों को भवरोग के निमित्त-औषध कहे गये हैं ॥१६४॥

१६४ **चैतन्यद्रव्य पूर्ण निरोग है**। आहा...हा...! अर्थात्? वस्तु जो है, त्रिकाली ज्ञायकस्वभावभाव चैतन्य रसकन्द प्रभु, वह तो पवित्र है, वह तो निरोगता, निरोगता है। आहा...हा...! पर्याय में रोग है। वापस सिद्ध किया। पर्याय में रोग है। एक समय की जो पर्याय है, उसमें राग, दया, दान, विकल्प आदि मेरे - ऐसा मिथ्यात्व का रोग है। आहा...हा...! वस्तु में नहीं, पर्याय में है। अरे! ऐसी बात! स्याद्वाद अनेकान्तस्वरूप प्रभु है, वह तेरा। आहा...हा...! उसे अन्दर जो पुण्य और पाप के भाव खड़े होते हैं, वह निरोगी द्रव्य की पर्याय वह रोगी है। आहा...हा...! उसे क्षय रोग लागू पड़ा है। आत्मा के गुण की शान्ति को वह क्षय करता है। आहा...हा...! कर्म नाश नहीं करता, कर्म तो परद्रव्य है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मैं रागवाला और पुण्यवाला व्यवहार से है, परन्तु व्यवहार है—ऐसा मानता है कि ऐसा ही मैं पूरा हूँ। आहा...हा...! यह पर्याय में मिथ्यात्व का रोग है। आहा...हा...! मिथ्यात्व का सन्निपात है, सन्निपात। जैसे सन्निपात होता है न? वात, पित्त, और कफ बिगड़ जाये तो पागल, पागल हो जाता है। दु:ख की पराकाष्ठा हो जाती है, तब सन्निपात में दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे) इसी प्रकार इस मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग के आचरण में प्रसन्न होकर, उत्साहित होकर हर्ष करता है। जैसे वह सन्निपात का मनुष्य प्रसन्न होता है, वैसे इस मिथ्यात्व में प्रसन्न होता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : स्वयं मनुष्य है ऐसा माने, उसे आप मिथ्यात्व कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य हूँ, यह मानना मिथ्यात्व है; इसी प्रकार रागवाला हूँ, पूरा तत्त्व रागस्वरूप है, यह मान्यता भी मिथ्यात्व है। आहा...हा...! उसे स्त्रीवाला, पुत्रवाला और धन्धा बड़ा उद्योगपति ऐसा कहा जाता है। अभी करोड़पति, उद्योगपति (कहते हैं) किसका? पाप का? भाई! मार्ग निराला है, बापू! आहा...हा...!

पर्याय में रोग है। रोग न हो, तब तो इसे निरोगता का-आनन्द का अनुभव होना चाहिए। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द वस्तु है, वह दु:खरूप हो ही नहीं सकती। वस्तु है, वह दु:खरूप, अपूर्ण, अशुद्ध हो ही नहीं सकती। आहा...हा...! समझ में आया? बापू! कठिन बातें, भाई! अरे! दुनिया से अलग लगे परन्तु है बात तो ऐसी अलग। दुनिया के वर्तमान में मिलान खाना बहुत मुश्किल है।

यह यहाँ कहते हैं। आहा...हा...! **पर्याय में रोग है। शुद्ध चैतन्य की भावना ऐसी उत्तम औषधि है, जिससे पर्यायरोग मिट जाये।** क्या कहा? शुद्ध चैतन्य की भावना अर्थात् एकाग्रता। जो राग में एकाग्रता है... उस शुद्ध की चैतन्य में एकाग्रता, शुद्ध चैतन्यद्रव्य वस्तु अनन्त गुण का परमात्म दरबार भगवान... आहा...हा...! उसमें एकाग्र होने पर यह पर्याय रोग मिट जाता है। भावना, वह एकाग्रता की बात है। शुद्ध चैतन्य त्रिकाल है और भावना, वह वर्तमान पर्याय है। आहा...हा...! ऐसा कहाँ (सुनने को मिले) ? पर्याय का रोग, मिथ्यात्व का रोग, उसे चैतन्यस्वरूप की (ऐसी) एकाग्रता की भावना, उस रोग को मिटाने का परम उत्तम औषध है। आहा...हा...! परन्तु यह बाहर की मिठास इसे छूटनी चाहिए। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : सर्प काटा हो, उसे नीम मीठा ही लगता है न वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्प काटा हो, उसे नीम मीठा लगता है। सर्प, सर्प,... नीम मीठा लगता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व में, आहा...हा... ! शरीर की सुन्दरता और लावण्यता और पैसे का ढ़ेर और बड़ा मकान ऐसा पच्चीस-पच्चीस लाख का और हम मानो (बढ़ गये)। प्रसन्नता करता है। आहा...हा... ! यह मिथ्यात्व का ज़हर है।

मुमुक्षु : वे सब वस्तुयें आकर्षक हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आकर्षक भगवान है अन्दर, परन्तु आकर्षक मानता है पर को। आहा...हा... ! चैतन्य... आहा...हा... ! भगवान चैतन्य वह आकर्षित चीज़ है। क्या कहलाता है वह ताँबा का ? खींचे। लोह चुम्बक, लोह चुम्बक ! इसी प्रकार भगवान आनन्द चुम्बक प्रभु है। उसमें जहाँ गया, उसे आनन्द का नाथ जगकर आनन्द देता है।

सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली सीढ़ी-शुरुआत होने पर, वस्तु भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही है, ऐसी वस्तु में दृष्टि देने पर... आहा...हा... ! उसे अतीन्द्रिय आनन्द की प्रसन्नता आती है। यह बाहर की अनुकूलता की कुछ देखकर (इसे) प्रसन्नता होती है। आहा...हा... ! पत्नी को पति जरा जवान और रूपवान मिले तो प्रसन्न होती है। पति को पत्नी जरा रूपवान और वाचाल और पैसेवाली हो (तो प्रसन्न होता है)। अरे ! यह क्या ? प्रभु ! ए ई ! प्रभु ! तू कहाँ खिंच गया ? आहा...हा... !

अन्दर भगवान आत्मा पूर्ण निरोगस्वरूप... आहा...हा... ! उसकी भावना। श्रीमद् में आता है न यह वचन ! 'आतमभावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे' परन्तु उस भावना की व्याख्या सूक्ष्म कि भगवान की भक्ति करना और गुरु की सेवा करना, वह (भावना नहीं है)। आहा...हा... ! आत्मा जो आनन्द ज्ञान और अनन्त गुण का सागर है, उसकी भावना अर्थात् उस ओर की एकाग्रता, उस चैतन्य में राग का रोग मिथ्यात्व का है, उसे टालने का औषध है, यह उसकी दवा है। आहा...हा... !

शुद्ध चैतन्य की भावना ऐसी उत्तम औषधि है, जिससे पर्यायरोग मिट जाये। आहा...हा... ! परन्तु यह बात जहाँ मिलना कठिन पड़े। आहा...हा... !

मुमुक्षु : कान में पड़ना कठिन है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कान में पड़ना कठिन है। बात सत्य है। आहा..! ऐसा तत्त्व! जहाँ हो, वहाँ यह करो, व्रत करो, तप करो और भक्ति करो और नग्न हो और वस्त्र बदलो और प्रतिमा ले लो... बापू! ये सब संसार के भाव हैं, भाई! तुझे पता नहीं। आहा...हा...! तेरा नाथ अन्दर निरोग आनन्द का सागर पड़ा है, उसे ऐसे विकल्प से प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया?

अकार्यकारक नाम का गुण है न आत्मा में? भगवान आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का गुण है। अनन्त गुणों में उसका रूप है। आहा...हा...! जिससे उसका ज्ञानगुण भी अकार्यकारणरूप स्वभाव से है। उसे राग हो तो ज्ञान की पर्याय प्रगट हो—ऐसा नहीं है तथा वह ज्ञान की पर्याय राग को उत्पन्न करे-ऐसा नहीं है। ऐसा एक-एक पर्याय में अकार्यकारण नाम के गुण का रूप है। यह क्या है? देवीलालजी! बातें ऐसी हैं, बापू! इसने सुनी नहीं कभी। आहा...हा...!

एक ज्ञान की पर्याय में इतनी प्रभुता है कि जो राग का कार्य नहीं और वह पर्याय राग का कारण नहीं। आहा...हा...! गुण की बातें तो क्या करना! ऐसा जो उसका गुण, परिणमन, वह पर्याय का ऐसा स्वभाव कि व्यवहाररत्नत्रय कारण हो तो पर्याय प्रगटे, ऐसा (नहीं है)। इसकी पर्याय में अकार्यकारण नाम का परिणमन है। उसे राग के कारण यह पर्याय प्रगटे—ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं। आहा...हा...! बाह्य पदार्थ की अतिशयता, विस्मयता, आश्चर्यकारकता प्रभु! तुझे छोड़ना पड़ेगी क्योंकि प्रभु! स्वयं अन्दर आश्चर्यकारी, विस्मयकारी पदार्थ है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश। उसमें क्या करना हाथ नहीं आता? आहा...हा...!

यही कहते है न! **शुद्ध चैतन्य की भावना ऐसी उत्तम औषधि है, जिससे पर्यायरोग मिट जाये। शुद्ध चैतन्यभावना वह शुद्ध परिणमन है,...** अब भावना की व्याख्या की। **शुद्ध चैतन्यभावना....** भगवान पवित्र पिण्ड प्रभु! आहा...हा...! जिसमें -पर्याय में अपवित्रता है, वह वस्तु में नहीं। आहा...हा...! ऐसी शुद्ध चैतन्यभावना - ऐसे शुद्ध चैतन्य की एकाग्रता, आहा...हा...! सम्यग्दर्शन ज्ञान आदि की एकाग्रता। **वह शुद्ध परिणमन है,...** वह शुद्धदशा है। आहा...हा...! कठिन काम। आहा...! यह तो अपूर्व बात

www.vitragvani.com

है प्रभु! पूर्व में कभी की नहीं है। वास्तव में तो सुनी नहीं - ऐसा कहा है। चौथी गाथा में (कहा है)। श्रुतं, परिचितं अनुभूता-राग की बात तूने सुनी है, परिचय किया है और अनुभव किया है परन्तु राग से भिन्न भगवान अन्दर है, यह बात तूने सुनी नहीं। आहा...हा...!

शुद्ध चैतन्यभावना.... अर्थात् एकाग्रता। **वह शुद्ध परिणमन है, शुभाशुभ परिणमन नहीं है।** है? शुद्ध चैतन्य की भावना, वह शुद्ध परिणमन, पवित्र परिणमन, अनाकुल आनन्द आदि से परिणमन है। उसमें शुभाशुभभाव नहीं। आहा...हा...! अब इस दुनिया में यह देश छोड़कर परदेश में गया हो और उसने पाँच, पच्चीस लाख एकत्रित हुए हों तो 'मैं चौड़ा और गली सकरी' अपने बढ़ गये हैं। किसमें? भटकने में। नरक और निगोद में जाने में बढ़ गये हैं, बापू! आहा...हा...! तेरी चीज़ का तूने अनादर किया और जिस चीज़ में तू नहीं और जिस चीज़ में वे नहीं, उसकी तू विस्मयता करके रुक गया। यह भटकने का रास्ता है। आहा...हा...! है?

शुभाशुभ परिणमन नहीं है। उससे अवश्य संसार-रोग मिटता है। आहा...हा...! शुभराग, शुभभाव और अशुभभाव वह रोग है। है, व्यवहार है परन्तु वह तो रोग है। आहा...हा...! और शुद्धपरिणमन से अवश्य संसाररोग मिटता है। **वीतरागदेव तथा गुरु के वचनामृतों का हार्द समझकर....** क्योंकि वीतरागदेव और गुरु तो यह कहते हैं, उनकी आज्ञा यह कहती है कि वीतरागता प्रगट कर अर्थात् वीतरागस्वरूप भगवान है, उसका आश्रय ले। आहा...हा...!

१७२ गाथा में आया था न? पंचास्तिकाय। चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। वह वीतरागता कैसे प्रगट हो? वह स्व के आश्रय से प्रगट होती है। इसका अर्थ (यह है कि) चारों अनुयोगों में स्व का आश्रय लेने की बात की है। आहा...हा...! **वीतरागदेव तथा गुरु के वचनामृतों....** गुरु भी वे कहलाते हैं कि जिनके वचन में वीतरागता प्रगट करने की बात करे और वह वीतरागता, वीतरागस्वरूप भगवान है, उसके आश्रय से होती है। ऐसी आज्ञा, वह गुरु की आज्ञा कहलाती है। आहा...हा...! समझ में आया? मार्ग बहुत (सूक्ष्म), बापू! आहा...हा...!

देखो न! यह बरसात खींची है। घास सूखती है, फसल मुरझाती है। जीव अन्दर

www.vitragvani.com

ऐसे ताजा आये हैं। आहा...हा...! समय-समय अनन्त जीव मरते हैं और समय-समय अनन्त जीव जीते हैं, वे जन्मते हैं निगोद में। आहा...हा...! एक निगोद के अनन्तवें भाग के जीव बाहर आकर ऐसी हरितकाय दिखती है, हरितकाय के पूरे जंगल भरे हों। वह निगोद के अनन्तवें भाग का एक भाग जीव आवे, तब इतनी हरितकाय दिखायी दे, क्योंकि सब है असंख्य और वह तो अनन्तवें भाग का भाग आवे तो (इतनी दिखायी दे)। आहा...हा...! गजब बात है, बापू!

इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण का समुद्र! उसका जिसे अनुभव हुआ तो उसे आनन्द अंकुर उगा। आहा...हा...! समझ में आया? जैसे हरितकाय जमीन ऐसे खा जाती है, वैसे असंख्यप्रदेशी अनन्त-अनन्त गुण का सागर, उसका आश्रय लेने से पर्याय में अनन्त गुण खिलकर बाहर अंकुर फूट जाते हैं। असंख्य प्रदेश खिल उठते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? (कोई ऐसा कहता है) ब्रह्मचर्य पालना, वस्त्र छोड़ दो, यह करो तो समझ में तो आये। वह तो अज्ञान समझा है अनादि से। आहा..हा...!

मुमुक्षु : निवृत्ति में तत्त्वज्ञान का उद्यम विशेष होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निवृत्ति किसे कहना? राग से रहित स्वरूप है—ऐसी निवृत्ति में जाये तो (वह सच्ची निवृत्ति है)। बाहर से निवृत्ति ले तो उसे जरा विचार करने का अवसर रहे इतना, परन्तु विचार (करके) स्वयं अन्दर में जाये, राग से भिन्न पड़कर अन्दर में जाये वहाँ, वस्तु निवृत्तस्वरूप है, वस्तु निवृत्तस्वरूप है। आहा...हा...! राग की प्रवृत्तिस्वरूप वह वस्तु ही नहीं है। आहा...हा...! अभी एक दूसरा मर गया, नहीं? कहा नहीं? राजकोट में। लालभाई के रिश्तेदार कोई हैं, उसमें कोई मर गया न? स्कूटर। आहा...हा...! उड़कर एकदम... जाओ...! अरे रे! वहाँ ऐसा कहते हैं न कि जीव गया—ऐसा कहते हैं न या जीव मर गया - ऐसा कहते हैं? जीव गया। कहाँ गया? आहा...हा...! अनजाने द्रव्य, अनजाने क्षेत्र, अनजाने काल, (अनजाने) भाव में (गया) बापू! तुझे पता नहीं। आहा...हा...! यह सब भूलकर नयी चीज़ों में जायेगा। जब तक मिथ्यात्व के भाव हैं... आहा...हा...! ये अरबोंपति मरकर बकरी के गर्भ से बच्चा होगा। इसका पता नहीं पड़ता इन्हें, दुनिया को पता नहीं पड़ता। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यहाँ कहते हैं प्रभु ! तूने तेरी चीज़ को जब पहिचाना... आहा...हा... ! और उसका यदि परिणमन किया... आहा...हा... ! तो संसार रोग मिटे। वीतराग और गुरु की यह आज्ञा है, उनके **हार्द समझकर....** अर्थात् उनकी आज्ञा को समझकर। गुरु, शास्त्र और देव की आज्ञा यह है कि वीतरागता प्रगट कर। राग प्रगट है, उसके स्थान में वीतरागता प्रगट कर, यह आज्ञा है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त ज्ञानी, गुरु (ऐसा कहते हैं) और उसका अर्थ –यह वीतरागता प्रगट कर का अर्थ कि जहाँ वीतरागता पूर्ण भरी है, वहाँ आश्रय ले, ऐसा चारों अनुयोगों का, अनन्त तीर्थंकरों का और सच्चे गुरु–सन्तों का तथा सच्चे शास्त्रों का यह हार्द है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

शुद्ध चैतन्य-भावनारूप उपादान-औषध का सेवन किया जाय तो... शुद्ध चैतन्य-भावनारूप। क्योंकि वीतरागता प्रगट करने की आज्ञा है तो उस शुद्ध चैतन्य की भावना, वह वीतरागता है। आहा...हा... ! शुद्ध चैतन्य है, वह वीतरागस्वरूप है और उसकी भावना, वह वीतरागी पर्याय है। आहा...हा... ! **शुद्ध चैतन्य-भावनारूप...** शुद्ध चैतन्यद्रव्य की एकाग्रतारूप निर्मल उपादान औषध, निर्मल वीतरागी पर्याय के औषध का सेवन किया जावे **तो भवरोग मिटता है;...** आहा...हा... !

बनियों का आता है न एक ? उसका बाप मर गया, फिर श्राद्ध हुआ, श्राद्ध। बारह महीने में श्राद्ध करते हैं न ? उसमें उसकी गली में ही एक कुत्ती का बच्चा हुआ, गली, (में)। कुत्ती का बच्चा हुआ और यहाँ बारह महीने हुए और दूधपाक तथा पूड़ी बनायी। मरे हुए को सबको (बुलाया)। वह कुत्ती का बच्चा बारम्बार खाने आवे। भगावे तो भी जाये नहीं। वापस आवे। यह क्या ? है क्या यह ? उसमें एक ज्ञानी निकले, उनसे पूछा यह बच्चा क्या है ? (उन्होंने कहा) कि जिसका तूने श्राद्ध किया है, यह जीव तेरा बाप है। श्राद्ध समझते हो ? आहा...हा... ! ऐसे जन्म और अवतार। आहा...हा... ! एक पर्दा गिरा और दूसरे पर्दे में कहीं (चला जाये)।

इस भवरोग को मिटाने का उपाय-**शुद्ध चैतन्य-भावनारूप उपादान-औषध का सेवन किया जाय तो भवरोग मिटता है; इसलिए वीतराग के वचनामृतों को...** वीतराग के वचनामृत में वीतरागता का ही उपदेश है। समझ में आया ? 'वचनामृत वीतराग

www.vitragvani.com

के, परमशांत रस मूल'। श्रीमद् में आता है परन्तु इसका भाव जरा सूक्ष्म है। इस परमशान्त रस मूल का अर्थ-अकषायभाव, यह वीतराग के वचन का स्वरूप है। वीतराग वचनामृत 'परमशांत रस मूल' अविकारी निर्विकारी वीतरागी पर्याय जिसका मूल। 'औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल' आहा...हा... ! कठिन बातें बहुत !

इसलिए वीतराग के वचनामृतों को.... परन्तु वीतराग के वचनामृत में यह कहा है। वे भी वीतराग के व्यवहार के वचन हैं, परन्तु उनका फल संसार है। पंच महाव्रत और ज्ञानाचार के पाँच, दर्शनाचार के पाँच, चारित्रचार के आठ और.... ऐसा होता है निमित्तरूप से अन्दर। ऐसा बताया है परन्तु वह तो बन्ध का कारण है और वचनामृत का निश्चय तो भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप का आश्रय ले और वीतरागता प्रगट कर, यह वीतराग के वचन का फल है। आहा...हा... !

इसलिए वीतराग के वचनामृतों को भवरोग के निमित्त-औषध कहे गये हैं। वचनों को निमित्तरूप से (कहा है)। कहे हुए भाव हैं अन्दर, वे भाव परम औषध हैं। वीतरागता। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन है, वह भी वीतरागस्वरूप भगवान के आश्रय से हुआ होने से सम्यग्दर्शन वीतराग ही है। सम्यग्दर्शन-सराग समकित वह तो (व्यवहार से भेद कहा है)। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय है और वह वीतरागी पर्याय, त्रिकाली वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से होती है। व्यवहार के आश्रय से वीतरागी पर्याय नहीं होती। व्यवहार तो राग है। आहा...हा... ! यह लोगों को कठिन पड़ता है। सोनगढ़वाले व्यवहार से कुछ होता है, यह तो मानते नहीं। बापू ! सोनगढ़वाले रहने दे, वस्तु का स्वरूप यह है। आहा...हा... ! परन्तु इस सम्प्रदाय में यह बात है नहीं।

हमारे हीराजी महाराज थे न ! सम्प्रदाय के गुरु हीराजी महाराज, बहुत क्रिया, बहुत ऊँची और 'हीरा ऐठला हीर बाकी सूतरां फालका' ऐसा। चले तो ऐसे नीचे (देखकर चले) उपाश्रय में चले तो भी देखकर चले। आहार लेने जाये तो उनके लिये पानी की बूँद भी तैयार की हो (तो ले नहीं)। गाँव में जाये, पाँच घर बनियों के हों, जाये, वहाँ महाराज पधारे हैं, पानी गर्म करे, पूछे कहाँ है पानी ? महाराज ! यह तो हमारे लिये, नहाने के लिये किया तो इतना बढ़े नहीं, पानी नहीं ले। समझ में आया ? यह बहुत क्रिया थी। छाछ लेने

www.vitragvani.com

जाये, काठी लोगों में जाये। छाछ समझे ? मट्ठा। आहा... ! ऐसी क्रिया (पाले) परन्तु यह बात उन्हें कान में नहीं पड़ी। यह पर की दया का भाव, राग है और पर की दया जीव पाल नहीं सकता। जीव अपनी दया पाल सकता है। आहा...हा... ! अर्थात् कि... हीराजी महाराज को देखा है या नहीं ? 'चूड़ा' में तो बहुत आते थे। आहा...हा... ! बहुत वैरागी थे। वैराग्य, चले तो.... हजारों लोगों में व्याख्यान दें तो ऊँची नजर नहीं। महिलाओं में या देखने में (नजर नहीं)। परन्तु ये शब्द कान में नहीं पड़े। अरे रे !

यह पर की दया पाल नहीं सकता। परद्रव्य है, उसकी क्रिया क्या कर सके ? और दया का भाव आवे परन्तु वह तो राग है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में ऐसा कहा है कि वह तो जीव की हिंसा है-अपने जीव की हिंसा है। धन्नालालजी ! ऐसा कठिन पड़े, बापू ! क्या हो ? पर के अवलम्बनरहित मार्ग है, स्व के अवलम्बनवाला यह मार्ग है। आहा...हा... ! यह निमित्त-औषध वाणीरूप से कहा, हों ! आहा...हा... ! १६४ (बोल पूरा हुआ।)

जिसे चैतन्यदेव की महिमा नहीं है, उसे अन्तर में निवास करना दुर्लभ है ॥१६५ ॥

जिसे चैतन्यदेव की महिमा नहीं है, उसे अन्तर में निवास करना दुर्लभ है। क्या कहते हैं ? जिसे अन्दर भगवान अनन्त गुण का नाथ (बिराजमान है), उसकी जिसे महिमा पर्याय में नहीं, वह अन्दर में निवास नहीं कर सकेगा। यह राग और दया, दान, व्रत, और भक्ति की महिमा, (जिसे है)... आहा...हा... ! वह अन्दर में नहीं जा सकेगा। राग के रसिक, व्यवहार के प्रेमी, वीतरागस्वभाव में नहीं जा सकेंगे। आहा...हा... ! और जा नहीं सकेंगे; इसलिए रह नहीं सकेंगे।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता:** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

श्रावण शुक्ल ६, गुरुवार, दिनाङ्क १०-०८-१९७८
वचनामृत-१६६-१६७ प्रवचन-६०

> **हे शुद्धात्मा! तू मुक्तस्वरूप है। तुझे पहिचानने से पाँच प्रकार के परावर्तनों से छुटकारा होता है इसलिए तू सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है। तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से, तेरी शरण में आने से, जन्म-मरण मिटते हैं॥१६६॥**

बोल है न? **हे शुद्धात्मा!** आत्मा एक समय में अन्दर शुद्ध अनन्त गुणों का पिण्ड पवित्र है। उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था में शुभ-अशुभभाव और मिथ्यात्वभाव भले हो, परन्तु उसकी चीज़ में वे भाव नहीं हैं। आहा...हा...! भगवान आत्मा तो पूर्ण परमात्मस्वरूप ही है। यह बात कैसे बैठे? आहा...हा...! शुद्ध अनन्त... अनन्त... अनन्त गुणरत्नों की खान, ऐसा जो शुद्धात्मा, त्रिकाली वस्तु... त्रिकाल अर्थात् रहनेवाली त्रिकाल परन्तु वर्तमान ध्रुव, वह त्रिकाली वस्तु। आहा...हा...!

तू मुक्तस्वरूप है। यह बात जँचना (कठिन पड़ती है)। यदि इसे आत्मकल्याण करना हों... यह परिभ्रमण तो चौरासी के अवतार में कर रहा है। आहा...हा...! धन्धा, संसार, पूरे दिन पाप के परिणाम, अनादि से अधर्म तो कर रहा है, पर्याय में, हों! अवस्था में। आहा...हा...! ये दु:ख के परिणाम हैं। इन परिणाम में आत्मा नहीं और ये परिणाम, भगवान शुद्धस्वरूप में नहीं। पाप के (परिणाम) तो नहीं, परन्तु पुण्य के—दया, दान, व्रत,

www.vitragvani.com

भक्ति, पूजा आदि का भाव—ऐसा जो शुभभाव, (वह) भी दुःखरूप है, आकुलतारूप है; उसमें आत्मा नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : किसी पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय है पर्याय की। बहुत सूक्ष्म, बापू! अरे! दुनिया अपने एक वेग में जो चढ़ी है न! यह धन्धा-पानी, पैसा और दुकान... आहा...हा...! इसने अकेले अधर्म के कसाईखाने लगाये हैं और ऐसा मानता है कि हम सुखी हैं! स्वतन्त्र हैं! पागल अज्ञानी चाहे जैसा माने। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ज्ञानी उसे समझावे नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यही तो कहते हैं न, कि तू तो यह है न प्रभु! यह तूने क्या किया? (यह) क्या लगाई है? यह तो कहते हैं, हे शुद्ध प्रभु! अनन्त-अनन्त गुण की राशि का पुंज ध्रुव प्रभु! यह अत्यन्त शुद्धस्वरूप, पवित्र स्वरूप है। आहा...हा...!

तू मुक्तस्वरूप है। आहा...हा...! जापानवाले ने अभी निकाला है न? जैनों में जैन को प्रमादभाव में रहे हुओं को ठिकाना नहीं होता। यह तो जगनमोहनलालजी ने लिखा है। ऐई! धन्नालालजी! जगनमोहनलालजी ने यह लिखा है। अरेरे! अपने जैन प्रमादी, कि वस्तु क्या है, जैन परमेश्वर क्या कहते हैं और जैनधर्म क्या है?—इसकी शोध भी की नहीं। वे अज्ञानी जापान के लोग (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु : वहाँ साधन बहुत हैं, पैसे बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ पैसे की सहायता थी? विज्ञान के शोधने में पैसे की आवश्यकता कहाँ है? उसमें कुछ नाम दिया है। विज्ञान और धर्म की उत्पत्ति तथा धर्म का स्थान कब का है और कहाँ है, इसकी खोज में उसने खोजा; जापान में ६३ वर्ष का व्यक्ति है। उसका पुत्र १७ वर्ष का, दोनों को रस है। उसने ऐसा शोधकर कहा... आहा...हा...! कि जैनधर्म अर्थात् अनुभूति। भगवान आत्मा अनुभूति करे, उसका नाम जैनधर्म है। यह अनुभूति शब्द भी सुना नहीं हो। आहा...हा...! (संवत्) १९८० के वर्ष में हमारा चातुर्मास 'बोटाद' में था न? उसमें स्थानकवासी में थे न! शाम को सब बड़े प्रतिक्रमण करने आते।

www.vitragvani.com

उन्हें इतना कहा कि—आत्मा का अनुभव क्या? हमने अनुभव-अनुभव का सुना नहीं कुछ (—ऐसा उत्तर मिलता।)

काशी में वह नहीं? भाई! अमृतलाल गोपाणी। अमृतलाल का पिता, उसका पिता था 'सवोगोपाणी।' वहाँ तो हमने बहुत चातुर्मास किये न! उसमें अन्त में हमने कहा -आत्मा का अनुभव क्या? (तो कहा-) अनुभव-अनुभव अपने कुछ (नहीं)। हमारे गुरु ने कहा नहीं और अपने में वह है नहीं। ऐ शिवलालभाई! अरे रे! इसे कुछ पता नहीं होता। आहा...हा...! प्रतिक्रमण करे और यह किया... धूल भी नहीं प्रतिक्रमण। आहा...हा...! अरे! परन्तु वस्तुस्थिति क्या है, उसका यह शब्द है। विभाव है, वह अपने में नहीं है-ऐसा कहा था, लो! यह फिर 'मूलचन्दजी' को पूछा था। विभाव-विभाव, यह अपने में नहीं। ऐसे के ऐसे। यह हमारे गाँधी है न, इनके गुरु थे, ये सब। मूलचन्दजी। आहा...हा...!

यह वस्तु, बापू! अरे रे! चौरासी के अवतार में भटकता, भ्रमता मूढ़ जीव, पर्याय में, हों! आहा...हा...! यह उसकी चीज़ जो है। आहा...हा... प्रभु! तू मुक्तस्वरूप है न! जापानी ने ऐसा कहा, यह आत्मा निर्वाणस्वरूप है - ऐसा उसने कहा। वह परदेशी जापानी व्यक्ति (ऐसा कहे)। यहाँ बनियों को पता नहीं होता, पच्चीस पचास साठ-साठ वर्ष निकाले हों तो भी। आहा...हा...! वह कहता है आत्मा निर्वाणस्वरूप है। इसलिए उसकी भाषा यह थी परन्तु यह (कहना है)। आत्मा निर्वाणस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप है। आहा...हा...!

यह तो बहुत बार कहते हैं। कलश में आता है। कलश-टीका, नहीं? **मुक्तएवः** — पाठ। टीका आती है अमृतचन्द्राचार्य। अरे! प्रभु! मार्ग अलग है, भाई! जन्म-मरण को मिटाने का रास्ता कोई अलौकिक है! अरे रे! इसे सुनने को नहीं मिलता बेचारे को। ये सब करोड़पति और अरबोंपति, शास्त्र में तो ऐसा कहा है कि ये सब भिखारी, वरांका, रांका है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वरांका, पाठ कहा है न! पाठ में है। सब भिखारी हैं। रंक

www.vitragvani.com

-माँगता है। भिखारी! पैसा दो, स्त्री अच्छी लाओ, इज्जत माँगो, रोटियाँ ठीक मिलें। माँगनेवाला-बड़ा भिखारी है। कलश में पाठ है। वरांका। आहा...हा...! सन्तों को-मुनियों को कहाँ पड़ी है कि जगत् को ठीक लगेगा या नहीं लगेगा? दुनिया उसके पास रह गयी, उसके घर। आहा...हा...!

आत्मलक्ष्मी जो अन्दर मुक्तस्वरूप है, उसके अनन्त गुण का शुद्ध का सागर है। आहा...हा...! जिसके एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। उस अनन्त का पार नहीं, इतने अनन्त हैं। उन सब अनन्त गुण का एक-एक गुण में अनन्त का रूप है। आहा...हा...!

एक-एक गुण में—ज्ञान है, उसमें सत्ता, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व ऐसी शक्ति, एक-एक गुण में है। भिन्न शक्ति तो है। आहा...हा...! भाई! तुझे तेरे घर का पता नहीं। सब पर की लगाई है। यह स्त्री, पुत्र और धूल-धानी... आहा...हा...! जिससे कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक जगत् का तत्त्व वह तो द्रव्य, जगत् का आत्मा, वह तो पर जगत् का द्रव्य है। उसका शरीर जगत् की चीज़ पर है, तुझे और उसे क्या सम्बन्ध है? आहा...हा...! ऐई! और जो तेरे हैं, उनकी तुझे खबर नहीं होती और जो तेरे नहीं हैं, उन्हें निज मानकर मूढ़ जीव अनादि से भटक रहा है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, **हे शुद्धात्मा!** भगवत्स्वरूप तेरा है। अन्दर मुक्तस्वरूप है, मुक्तस्वरूप है। अबद्धस्वरूप कहो या मुक्तस्वरूप कहो। १४ वीं गाथा में आया है न? १५ वीं गाथा में। **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धं**—अबद्ध कहो, बद्धरहित कहो या मुक्त कहो। अबद्ध, यह नास्ति से शब्द है और मुक्तस्वरूप, यह अस्ति से है। यह अस्ति और नास्ति किसके घर में? यह दया पालो, और व्रत करो, अपवास करो, और मर गया अब कर-करके सुन न! आहा...हा...! तू कौन है, इसका तुझे पता नहीं; इस बिना सब क्रियाकाण्ड, संसार में भटकने का मार्ग है। आहा...हा...! **मुक्तस्वरूप है।**

जापान के व्यक्ति ने ऐसा है, यह समझ में आया? चौपानिया है इसमें? नहीं; कोई पढ़ने ले गया? नहीं होगा। कोई ले गया है। जैनपना, उसे जैन ऐसा कहते हैं। उसने खोजा, सब अन्य धर्मों का इतिहास, उत्पत्ति कहाँ और स्वरूप क्या? बहुत खोजा उसने। खोजकर यह निकाला कि जैनधर्म, वह अनुभूतिरूप धर्म है और जैनधर्म अर्थात्

www.vitragvani.com

आत्मा निर्वाणस्वरूप है – ऐसा मानता है। आहा...हा... ! अब यहाँ बनियों को तो पता नहीं पड़ता। चालीस-चालीस, पचास-पचास, साठ (वर्ष से) मुँडाकर पड़े हों (और माने कि) हम जैन हैं और हम स्थानकवासी हैं, मन्दिरमार्गी (हैं) थे कब ? आहा...हा... ! चिमनभाई ! आहा...हा... !

तू निर्वाणस्वरूप है, क्यों ? कि पर्याय में जो निर्वाण / मुक्तदशा होती है, वह निर्वाणपना आया कहाँ से ? वह निर्वाणस्वरूप है, उसमें से आया है। आहा...हा... ! भाई ! तुझे तेरी खबर नहीं। आहा...हा... ! लोक में नहीं कहा जाता ? 'घर का लड़का चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा' पड़ोसी को आटा और घर का लड़का चक्की चाटे-ऐसे घर में क्या चीज़ है, इसका भान नहीं होता और बाहर के अग्रेसर और बड़ा चतुर का बेटा बातें करे। ऐसे बैठा हो, ऐसे पैड़ी पर बैठा हो दुकान में। आहा...हा... ! देखो ! यह तो इसका पागलपन ! हमारे थे न ? भागीदार थे। दुकान पर बैठे तो मानो... आहा...हा... !

मुमुक्षु : पूरी जिन्दगी दुकान निभाई ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं निभाई। मैंने तो तब कहा था, (संवत्) १९६६ की साल में तो मैंने कहा—मैं भी दुकान में था न ! हमारे पिताजी की घर की दुकान थी। उनकी दुकान में हमारे बड़े भाई भागीदार थे। हमारी दुकान में उनके बड़े भाई थे। आहा...हा... ! दो दुकानें थीं। १९६६ की बात है। १९६६, कितने वर्ष हुए ? ६८। दुकान पर बैठे और ऐसे आमदनी हो, दो-दो लाख की दुकान की आमदनी, धूल भी नहीं। कहा, मरकर याद रखना... मुझसे बड़े थे चार वर्ष।

यह आया न ! क्या लिखा है इसमें ? ***जैनधर्म के अनुसार निर्वाण के लिये इतना जान लेना ही काफी है कि हम निर्वाण में हैं।*** जापानी ऐतिहासिक शोधक ने, जैनधर्म क्या कहता है, वह इसने खोजा और दिगम्बर के जगनमोहनलालजी एक हैं, उन्होंने बाहर प्रसिद्ध किया कि जैन की बात यह करता है और तुझे तेरा पता नहीं पड़ता। ऐई.. धर्मचन्दजी ! लिखा है इनने। स्वयं भाई ने फिर लिखा है, हम प्रमादी हैं। है ? समझ में आया ? ऐसा लिखा है। यह ढूँढा नहीं, खोजा नहीं ऐसा कहा। ***तब तो हम जैन प्रमादी है।*** जगनमोहनलालजी पण्डित हैं न ? कटनी, कटनी न ? आहा...हा... !

www.vitragvani.com

बहुत अभ्यासी हैं। अभी अध्यात्म की बड़ी पुस्तक प्रकाशित की है, वस्तुस्थिति से विपरीत है।

यह जो कहना चाहते हैं, इससे विपरीत इन्होंने अभी 'अध्यात्म अमृत कलश' बड़ी मेहनत करके (प्रकाशित किया है)। यह कहते हैं कि भाई! आत्मा है, वह निर्वाणस्वरूप है, वह यह। मुक्तस्वरूप है, वह निर्वाणस्वरूप है। यह तीसरी बात—१५ वीं गाथा समयसार... आत्मा अबद्धस्वरूप है, अर्थात् राग के सम्बन्धरहित चीज़ है। आहा...हा...! अर्थात् मुक्तस्वरूप है। उसे जो जाने और माने, उसने जैनशासन को देखा। १५ वीं गाथा। है? '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' दया-दान का विकल्प है, वह भी राग और बन्धन है। उससे प्रभु अन्दर भिन्न है, वह मुक्तस्वरूप है। उसे जो कोई '**अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं जो पस्सदि**' ऐसे स्वरूप को जो कोई देखता है, वह जैनशासन को देखता है। आहा...हा...! अब ऐसी बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। जैनपना क्या है? और बड़े जैन के सेठ और अग्रेसर / प्रमुख हैं हम सेठिया हैं... धूल के भी नहीं। हेठला के हो। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, वह बात जापान के पण्डित ने निकाली है, वह अपने दिगम्बर पण्डित ने बाहर प्रसिद्ध की है, वह यह। समझ में आया? आहा...हा...! बहुत सरस बात! यह भाई कोई कहता था, आत्मधर्म में (दो)। कौन कहता था? मैंने कहा, रामजीभाई को पूछो। मैंने ऐसा कहा। कोई-कोई कहता था, कोई कहता था इनमें से कोई?

श्रोता : हिम्मतभाई जोबालिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिम्मतभाई जोबालिया। क्यों बोलते नहीं तब तुम? ये कहते थे। हिम्मतभाई कहते थे। कहा था न तुमने? मैंने कहा रामजीभाई को पूछो, मेरा काम नहीं। आहा...हा...!

मुक्तस्वरूप है। पर्याय में अल्पता है इतना, वह तेरा स्वरूप नहीं। राग, दया दान के भाव वह भी तेरा स्वरूप नहीं। यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग-वासना, काम-क्रोध आदि के पाप, वह अधर्म-पाप, वह भी तेरे स्वरूप में नहीं। आहा...हा...! प्रभु! यदि तेरे स्वरूप में वे हों तो भिन्न नहीं पड़ सकते। आहा...हा...! बहुत कठिन काम है। वर्तमान में

www.vitragvani.com

तो सम्प्रदाय में तो धर्म के नाम से धतंग (ढोंग) चलाये हैं सब। आहा...हा... ! सामायिक करो और प्रौषध करो, प्रतिक्रमण (करो)। परन्तु किसकी सामायिक करो? वस्तु की खबर बिना जाना कहाँ? रहना कहाँ? आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। आहा...हा... ! देखो! इन बहिन के वचन हैं ये। ये अनन्त ज्ञानियों के वचन हैं। आहा...हा... ! आ गयी या नहीं पुस्तक तुम्हारे हिन्दी? पढ़ी है? पढ़ी है एक बार? हरिचन्दभाई को मिली? तुम्हारे भाई, सहारनपुर हरिचन्द। आहा...हा... ! तू जो वस्तु है, प्रभु आत्मा, वह तो शुद्ध आत्मा पवित्रता का पिण्ड और भगवत्स्वरूप है। आहा...हा... ! जिसमें शरीर, वाणी, मन, और कर्म तो नहीं परन्तु जिसमें पुण्य और पाप के भाव नहीं परन्तु जिसमें एक समय की पर्याय की भी नास्ति स्वभाव है। आहा...हा... ! अरे! ऐसा जो अस्ति तत्त्व सत्तास्वरूप अस्तित्वरूप रहा हुआ तत्त्व है, वह शुद्ध और मुक्तस्वरूप है। आहा...हा... !

तुझे पहिचान, आहा...हा... ! तू तुझे पहिचान। पर की सत् तूने लगायी है, इसका यह और इसका यह। बनिया चक्रवर्ती का ब्याज निकालने बैठे तो मानों बड़ा चतुर का बेटा! दस लाख रुपये दिये हैं न और आठ आने की तेरी... उस समय तो आठ आना था न? अब रुपया, डेढ़ रुपया हो गया। दरबारों को देते थे न! हमें सब पता है न! हमारे दरबारों में दो लाख देते थे। दामनगर सेठ थे, दामोदर। वाड़ा दरबार है न उन्हें? आठ आना। उस समय बहुत नहीं था। बैंक में भी तीन आना देते थे। ये सेठ राजा को दे धीरे से तो आठ आना ले। अभी टका, डेढ़ टका हो गया है। उसमें होशियार। दस लाख रुपये दिये हों, आठ आना रूप से तो एक दिन का दस लाख का ब्याज निकालकर दूसरे दिन ब्याजसहित का वापस ब्याज निकाले-चक्रवर्ती ब्याज। आहा...हा... ! परन्तु यह तेरे सिर पर देना (कर्ज) कितना चढ़ा - इसका तुझे कुछ पता है? आहा...हा... ! तूने रागवाला, पुण्यवाला और अल्पज्ञ जो माना, बड़ा कर्ज खड़ा किया तूने, भाई! आहा...हा... ! समझ में आया? वीतराग का मार्ग कोई अलग जाति है। अभी तो (बदल गया)। सब देखा है न यहाँ तो ८९ वर्ष हुए। ६५ वर्ष से तो दुकान छोड़कर सब देखा है जगत को। आहा...हा... ! अरे रे! दुनिया कहाँ खड़ी और प्रभु का मार्ग कहाँ! आहा...हा... !

www.vitragvani.com

हे शुद्धात्मा! प्रभु! **तू मुक्तस्वरूप है।** उसे तू पहिचान। आहा...हा...!

श्रोता : किस प्रकार पहिचाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अन्तर में पर्याय को ले जाये तो पहिचाने। पर्याय जो वर्तमान है, वह तो परसन्मुख के लक्ष्यवाली है। अबकी पर्याय को अन्तर में ले जा। यह तो सब सूक्ष्म बातें, बापू! उस द्रव्य में से पर्याय आवे और वही पर्याय उसके सन्मुख हुई है। आहा...हा...! तब उसे मुक्तस्वरूप भगवान की पहिचान होती है। आहा...हा...! वह भगवान के दरबार में जाये। आहा...हा...!

एक चक्रवर्ती के दीवानखाने में जाना हो तो कितनी तैयारी और सभ्यता चाहिए! कपड़े ऐसे (पहिने) आहा...हा...! यह तो तीन लोक का नाथ भगवान परमात्मस्वरूप, आहा...हा...! इसके समीप में, इसके पास जाना हो, आहा...हा...! तो सब पर की ओर के आश्रय के विकल्प, देव-गुरु और धर्म की श्रद्धा का राग भी छोड़ दे क्योंकि वह राग है। आहा...हा...! तेरा देव और तेरा गुरु तो अन्दर मुक्तस्वरूप बिराजमान है। आहा...हा...! तू स्वयं देव, तू स्वयं गुरु और तू स्वयं धर्मस्वरूप है। मुक्तस्वरूप अर्थात् धर्मस्वरूप ही है। आहा...हा...! आहा...हा...! तुझे पहिचान। **तुझे पहिचानने से....** शुद्ध आत्मा मुक्तस्वरूप है, अस्तिरूप है, अस्ति है, मौजूदगी चीज़ है। यह है, उसे तू पहिचान। आहा...हा...! **तुझे पहिचानने से पाँच प्रकार के परावर्तनों से छुटकारा होता है....** आहा...हा...! अनन्त द्रव्य जो संयोगी हैं, उनसे छूटेगा। क्षेत्र जो है यह लोकालोक इस लोक का जो, प्रत्येक में भटका है, वह इसका परावर्तनक्षेत्र में भटकना छूटेगा। काल में जो भटका है अनन्त काल से भटकता है, (उससे) छूटेगा। भव से छूटेगा; और पुण्य तथा पाप के भाव भी परावर्तन / विकार दु:ख है। उनसे छूटेगा। छोटाभाई! ऐसी बातें, बापू! बहुत कठिन। इसलिए बेचारे लोग सोनगढ़ को ऐसा कहते हैं। उन्हें पता नहीं। वे तो पागल-पागल चाहे जो कहे। आहा...हा...! 'जामे जितनी बुद्धि है, इतनो दियो बताय वांकौ बुरो न मानिये और कहाँ से लाये' सोनगढ़ अर्थात् निश्चय की बातें और निश्चयाभास की (बातें) ऐसा लोग बातें करते हैं प्रभु! करो, यह कोई हमें यहाँ कुछ है नहीं। आहा...हा...!

यह भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप एक समय में शुद्ध अर्थात् मुक्तस्वरूप है।

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! जापानवाले ने कहा कि निर्वाणस्वरूप है। ऐसा कि मुक्तस्वरूप की उसे इतनी सब लम्बी खबर न हो परन्तु निर्वाण होता है न जीव को; इसलिए निर्वाण होता है तो वह निर्वाणस्वरूप है, ऐसा।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्वाण कहते हैं न! मोक्ष अर्थात् निर्वाण परन्तु अब उसकी इतनी सब भाषा (नहीं आवे)। आहा...हा... ! शान्ति... शान्ति.... शान्ति... आनन्द, आनन्द पूर्ण प्रगट हो, इसका नाम मुक्ति। यह मुक्ति की पर्याय है। सिद्ध की भी यह पर्याय / अवस्था है। अब पर्याय को जहाँ समझे नहीं। अभी द्रव्य-गुण का नाम नहीं आवे इसे। वह सिद्ध जो परमात्मा है, वह भी एक पर्याय है, वह द्रव्य नहीं-वस्तु नहीं। आहा...हा... ! ऐसी जो सिद्ध की 'णमो सिद्धाणं' उनकी जो केवलज्ञान आदि अशरीरीपर्याय, वह सिद्धपद /मुक्तपर्याय है। वह आयी कहाँ से ?

यह अन्दर मुक्तस्वरूप है, उसका यह प्रवाह है। प्रवाह क्यों कहा ? द्रवता, द्रवता है - ऐसा कहना है। जो मुक्तस्वरूप है... जैसे पानी में से तरंग उठे-द्रवे, वैसे भगवान मुक्तस्वरूप है, उसका अन्तर्दृष्टि और आश्रय करने से मुक्त की पर्याय प्रवाहित होती है, बहती है, द्रवित होती है। आहा...हा... ! अरे! ऐसा उपदेश... लो! ...मिच्छामि दुक्कडम्, धूल भी नहीं। सब पाप है सुन न! वाणी और विकल्प सब वस्तु (पर है) और माने कि हमने कुछ धर्म किया, कायोत्सर्ग किया।... आहा...हा... ! यहाँ तो प्रभु! कहते हैं सुन, भाई! कि तू तुझे पहिचान कि जिसे पहिचानने से, वस्तु का माहात्म्य आने से पूर्ण पवित्र स्वरूप की विस्मयता अन्दर में लगने से तुझे अनुभव होगा, उसका ज्ञान होगा, उसका तुझे भरोसा आयेगा और जिससे इस पंच परावर्तन से तू छूट जायेगा।

परावर्तन अर्थात् ये संयोग, ये शरीर आदि के ऐसे परमाणु अनन्त बार आये हैं। यह कोई पहले नहीं कुछ। ये स्त्री-पुत्र के जीव और शरीर का सम्बन्ध जीव को अनन्त बार आया है। वैरीरूप से इस स्त्री का आत्मा तो अनन्त बार तुझे वैरीरूप से आया है और मित्ररूप से भी यह आत्मा तुझे अनन्त बार आया है। आहा...हा... ! और ये शरीर के परमाणु जो हैं, ये बिच्छु के डंकरूप थे, उसरूप भी अनन्त बार तुझे साथ में आये हैं और ये बिच्छु के डंक के परमाणु अभी इस शरीररूप हुए हैं। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

—ऐसे संयोगों से और यह पुण्य-पाप का भाव भी संयोगी चीज़ है। परावर्तन / परिभ्रमण का कारण है। आहा...हा...! उस निर्वाणस्वरूप, मुक्तस्वरूप (को) अन्तर्मुख होकर पहिचान (तो) पंच परावर्तन से तू छूट जायेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म पड़े ऐसा है, बापू! वह तो सुनने जाये, जरा सुनावे। श्रीमद् कहते हैं न? श्रीमद्! एक तो बाईस-तेईस घण्टे पाप में जाते हैं बेचारे के। पाँच-छह घण्टे व्यापार, छह-सात घण्टे सोना, दो-तीन घण्टे भोग और स्त्री-पुत्र को प्रसन्न करना। पाप में-अकेला अधर्म-पाप। उसमें एकाध घण्टा मिले और सुनने जाये वहाँ कुगुरु लूट लेता है इसका एक घण्टा। इसे ऐसा कहे कि व्रत करो, अपवास करो, तप करो, और जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। मार डाला इसे। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

यहाँ कहते हैं कि तू पाँच परावर्तन से छूटेगा। यदि तुझे तूने माहात्म्य से अन्दर पहचाना। आहा...हा...! यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर झूलता है, अन्दर डोलता है। आहा...हा...! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान तथा अतीन्द्रिय प्रभुता (भरी है)। पूर्ण परमात्मस्वरूप भगवान अन्दर विराजमान है। आहा...हा...! उस बड़े की शरण जा तो पंच परावर्तन छूट जायेगा – ऐसी बात है भाई!

मुमुक्षु : नया धर्म लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को लगे ऐसा है, बात सच्ची है। सुनने को कहीं नहीं मिलता; इसलिए फिर यह नया कहाँ से निकाला? – ऐसा लगता है। नया नहीं, बापू! अनादि का सनातन वीतराग का सत् तो यह है। आहा...हा...!

पाँच प्रकार के परावर्तन का। पाँच प्रकार, समझ में आया? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव – ये पाँच परावर्तन तुझे अनन्त बार हुए, बापू! यह कोई नयी चीज़ नहीं है। यह शरीर मिला और स्त्री मिली और पुत्र मिला और तेरी धूल मिली। यह पाँच पच्चीस-लाख की; ऐसा तो अनन्त बार तुझे मिल चुका है भटकने में। आहा...हा...! आहा...हा...!

यहाँ तो जिसे शुभभाव कहते हैं... अशुभ से तो ठीक परन्तु जिसे शुभ कहते हैं, वह भी इसके पास नहीं अभी; अकेला अशुभभाव है परन्तु किसी को शुभभाव हो और सच्चे

www.vitragvani.com

सत्समागम से घण्टे-दो घण्टे सुने, वह शुभभाव भी अनन्त बार तुझे हो गया। नौवें ग्रैवेयक की धूल में अनन्त बार गया। आहा...हा... ! 'द्रव्य संयम से ग्रैवक पायो फिर पीछे पटक्यो' —ऐसी शुभक्रिया कि अभी तो ऐसी शुभक्रिया है ही नहीं। ऐसा नग्न-दिगम्बर मुनि होकर हजारों रानियाँ छोड़ी, जंगल में महीने-महीने के उपवास और आहार में लेना एक रोटी या लूखा आहार, ऐसा अनन्त बार किया है परन्तु वह सब शुभभाव है। वह भटकने के पंथ का रास्ता है।

भगवान आत्मा शुभ और अशुभभाव से भी मुक्तस्वरूप है। उससे बँधा हुआ, वह स्वरूप ही नहीं। दूसरे प्रकार से कहें तो इस शुभभाव का सम्बन्ध इसे नहीं है। सम्बन्ध नहीं अर्थात् बन्ध नहीं। आहा...हा... ! ऐसा है। परमेश्वर जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ, इन्द्र और गणधरों के समक्ष अभी महाविदेहक्षेत्र में प्रभु ऐसा फरमाते हैं, वह यह वाणी है। समझ में आया ?

इसलिए तू सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है। क्या कहते हैं ? प्रभु ! तू मुक्तस्वरूप है। ऐसा इसे ज्ञान और प्रतीति हो तो यह पंच परावर्तन के परिभ्रमण से छूटे और तू स्वयं इसकी मुक्ति की दशा को देनेवाला है। है ? उसका (पंच परावर्तन का) व्यय हो और इसका (मुक्ति का) उत्पाद हो, इस उत्पाद का देनेवाला तू है। ध्रुव है, वह मुक्तस्वरूप है परन्तु उसके ज्ञान और आनन्द का जिसने आश्रय किया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अवलम्बन किया तो उससे मोक्षमार्ग हुआ और उस मुक्तस्वरूप को अवलम्बन किया, इसलिए उसकी पर्याय में पूर्ण मुक्तदशा प्रगट होगी। वह पूर्ण मुक्तदशा देनेवाला तू है। कर्म हटे और हो, यह बात है नहीं। आहा...हा... ! ऐसा है। ऐसा जैनधर्म कहाँ से निकाला ? बापू ! मार्ग... अरे रे !

इसलिए तू सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है। क्या कहा ? कि तुझे पहिचान हुई और तुझे भान हुआ कि मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ तो तू पाँच परावर्तन से छूट जायेगा, व्यय हो जायेगा और तेरी मुक्ति की उत्पत्ति का देनेवाला भी तू है। आहा...हा... ! सिद्धपद की पर्याय का देनेवाला तू है। आहा...हा... ! ऐसा करके (कहते हैं कि) बन्ध के कारण तो मिलता नहीं परन्तु मोक्ष के मार्ग से भी मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति की पर्याय का देनेवाला तू है।

www.vitragvani.com

देवीलालजी ! आहा...हा... ! इसका ज्ञान-श्रद्धा-चारित्र हुआ परन्तु उससे मुक्ति हो, वह तो व्यवहार है परन्तु वस्तु जो है, उससे ही मुक्ति होती है। आहा...हा... ! समझ में आये उतना समझना, प्रभु !

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर की यह वाणी है। आहा...हा... ! बहिन वहाँ से-महाविदेह में से आयी हैं और यह अनुभव से बात करती हैं। आहा...हा... ! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहा...हा... ! किसी ने ऐसा कहा कि वचनामृत का नाम ऐसा दो 'दिव्यदृष्टि प्रकाश'—ऐसा किसी का लेख आया है। यह तो वस्तु है, वह है। आहा...हा... !

इसलिए तू सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है। क्योंकि मुक्तस्वरूप प्रभु है, उसका जिसने ज्ञान-श्रद्धा और चारित्र से आश्रय लिया, उसकी मुक्ति की पर्याय का उत्पाद देनेवाला भगवान द्रव्य मुक्तस्वरूप है। आहा...हा... ! मुक्ति को ही देव-गुरु और शास्त्र की कृपा से मिल जाये, किसी के आशीर्वाद से मिल जाये - ऐसी मुक्ति नहीं है।

मुमुक्षु : स्वयं के आशीर्वाद तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा। तू मुक्तस्वरूप है, इसलिए मुक्ति की पर्याय तुझसे प्रगट होगी। आहा...हा... ! लॉजिक से-न्याय से इसे जानना पड़ेगा न ! भाई ! अरे रे ! आहा...हा... ! यह परसों, देखो न ! हुआ वह रिक्शा पन्द्रह हजार का।

मुमुक्षु : सम्पूर्ण मुक्ति अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्पूर्ण मुक्ति अर्थात् सिद्धपद। अपूर्ण मुक्तिदशा (अर्थात्) जो मुक्तस्वरूप तो है, उसमें से श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हो, वह अपूर्ण मुक्ति है। मोक्ष का मार्ग, वह अपूर्ण मुक्ति है। प्रवचनसार में तो अन्तिम पाँच गाथा में ऐसा कहा है, पाँच रत्न की गाथा है। जो अन्तर का आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसका ज्ञान-श्रद्धा और चारित्र में रमता है, वह है तो साधक में, परन्तु फिर भी हम उसे मोक्षतत्त्व कहते हैं। आहा...हा... ! यह तो भाई का प्रश्न (था)। प्रवचनसार अन्तिम पाँच गाथा— २७१, २७२, २७३, २७४, २७५ में प्रभु ने-कुन्दकुन्दाचार्य ने एक गाथा यह रखी है कि जिसने इस मुक्तस्वरूप भगवान की श्रद्धा -ज्ञान और रमणता में आया, वह मोक्षतत्त्व है। आहा...हा... ! मोक्ष का मार्ग है, वह मोक्षतत्त्व है - ऐसा कह दिया है। आहा...हा... ! यहाँ पूर्ण मोक्ष अर्थात्

www.vitragvani.com

पूर्ण पर्याय... आहा...हा... ! उसका देनेवाला नाथ तू है। क्योंकि पूर्ण भरा है, उसमें से उछलता है। समझ में आया ?

अरे रे ! यह बातें कहाँ सुनने मिले ? आहा...हा... ! देश छोड़कर परदेश में कमाने जाये। सगे-परिवार को छोड़कर भटकाऊ भटकने जाये। आहा...हा... ! परदेश छोड़कर इसे स्वदेश में आना हो तो कहे, यह अपने को कुछ समझ में नहीं आता। आहा...हा... ! यह राग-द्वेष आदि ही परदेश है। आहा...हा... ! यह आ गया है न ? बहिन में नहीं आ गया ? अरे ! राग के-दया, दान, व्रत, परिणाम में आना, अरे ! हम परदेश में आ चढ़े। यह हमारा मार्ग नहीं, यह हमारा नहीं। है ? ४०१ बोल।

यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहा...हा... ! है ? धन्नालालजी ! यह दया, दान, व्रत... संसार के अशुभ / पाप के परिणाम कमाना और भोग और पुत्र तथा परिवार को सम्हालना, यह तो अकेला महा पाप। बड़ा कसाईखाना है। आहा...हा... ! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, और व्रत के भक्ति के परिणाम हमें आये, यह हमारा देश नहीं, यह आत्मदेश नहीं। आहा...हा... ! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** आहा...हा... ! चिमनभाई ! पढ़ा है या नहीं पूरा ?

अरे ! **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता**। धर्मी जीव, राग में आये—देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, व्रत, तप, और विनय करना, वह हमें अच्छा नहीं लगता। आहा...हा... ! पाप के परिणाम की तो क्या बात करना प्रभु ! आहा...हा... ! वह तो अकेला अधर्म है। आहा...हा... ! परन्तु भगवान की भक्ति का शुभभाव आवे, तथापि वह हमारा देश नहीं, हम परदेश में आ पड़े हैं। धन्नालालजी ! है ? **हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है**। आहा...हा... ! हमारा पवित्र भगवान आत्मा, उसमें की कोई भी दशा शुभराग में नहीं है। आहा...हा... ! यहाँ तो अभी स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और कुछ ठीक मिला, पाँच-पच्चीस लाख मिले तो 'मैं चौड़ा और गली सकरी' हो जाता है इसे तो। आहा...हा... ! आया न अपने ? दूसरे से अधिक हो गये-पाप में। आहा...हा... !

जिसे भगवान आत्मा, मुक्तस्वरूप का ज्ञान और श्रद्धा और आनन्द हुआ, उसे यह शुभभाव आवे तो (ऐसा लगता है), यह हमारा देश नहीं। हम कहाँ आ चढ़े ? हमें यहाँ

www.vitragvani.com

अच्छा नहीं लगता। आहा...हा... ! है ? **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** आहा...हा... ! यह शुभभाव—दया, दान, भक्ति, व्रत, शास्त्र का श्रवण-मनन करना... आहा...हा... ! है ? **यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है....** आहा...हा... ! भगवान आत्मा का परिवार तो अन्दर में आनन्द-ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र आदि अनन्त परिवार बसता है। आहा...हा... ! परमात्मा राजा, इसका असंख्य प्रदेश-देश, उसमें अनन्त गुण का परिवार बसता है। आहा...हा... !

वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहा...हा... ! **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** यह हमारा मूल वतन है। आहा...हा... ! अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से मुक्तस्वरूप भगवान (बिराजता है), वह आत्मा का / धर्मी का वतन है। आहा...हा... ! हिन्दी में 'वतन' शब्द तो आता है। देश, वतन, स्थान। **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।'** अन्दर ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता हमारे पड़े हैं, वहाँ हमें तो जाना है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : गुरु बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु स्वयं हो, तब ज्ञात हो। तब दूसरे गुरु को गुरु कहा जाये। आहा...हा... ! आहा...हा... ! गुरु की आज्ञा वीतरागता प्रगट करने की है। यह तो कहा—तीर्थंकरों की, गुरु की और वीतराग के शास्त्र की / चारों ही अनुयोग की आज्ञा, वीतरागता प्रगट करना, वह आज्ञा है। वह वीतरागता कैसे प्रगट हो ? कि वीतरागस्वरूप, मुक्तस्वरूप भगवान है, उसके आश्रय से वीतरागता होती है। पर के आश्रय से तो चाहे तो त्रिलोकनाथ भगवान हो, उनकी भी भक्ति और आश्रय करने जायेगा तो राग होगा। आहा...हा... ! झेलना कठिन। आहा...हा... !

भाई ! ऐसा तेरा स्वदेश है। तेरे वतन में तो अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय स्वच्छता प्रत्यक्ष वेदन हो – ऐसा अनन्तपना अन्दर पड़ा है। आहा...हा... ! उसे तू पहिचानकर वहाँ जा। है यह ? आहा...हा... !

सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है। तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से,... आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भगवान नित्यध्रुव। जैसे ध्रुव तारा की दृष्टि से वाहन और जहाज चलते हैं; वैसे यह ध्रुव भगवान आत्मा नित्य प्रभु, इसकी दृष्टि की धारा से... आहा...हा...! **तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से,...** ध्रुव पर निरन्तर दृष्टि। आहा...हा...! **(दृष्टि) रखने से, तेरी शरण में आने से,...** आहा...हा...! **जन्म-मरण मिटते हैं।**

भाषा तो सादी है प्रभु! परन्तु इसे समझने के लिये तो बापू! समय देना पड़ेगा। आहा...हा...! एक एल.एल.बी. पढ़ने जाये वकील तो भी पाँच-दस वर्ष निकाले। अकेले पाप की पढ़ाई। डॉक्टर का पढ़ने जाये तो दस वर्ष निकाले, अकेले पाप की पढ़ाई है सब। आहा...हा...! अब इसके लिये थोड़ा समय तो लेना पड़ेगा न? भाई! आहा...हा...! हसमुख! नहीं आया न? नहीं आया। ...भाई अभी नहीं आया।

तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से,.... अर्थात् पूर्ण पवित्र भगवान ध्रुव की दृष्टि (रखने से)। चाहे जिस प्रसंग में खड़ा हो परन्तु दृष्टि के ध्येय में तो ध्रुव है। आहा...हा...! भले बाहर की नजर में जाये परन्तु इसकी मूल नजर तो ध्रुव पर है। इस धर्मी की दृष्टि वहाँ से हटती नहीं। आहा...हा...! **तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से, तेरी शरण में आने से, जन्म-मरण मिटते हैं।** १६६ (बोल पूरा हुआ) ओहो...हो...!

वाणी और विभावों से भिन्न, तथापि कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो सके, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व उसकी अगाधता, अपूर्वता, अचिंत्यता गुरु बतलाते हैं। शुभाशुभभावों से दूर चैतन्यतत्त्व अपने में निवास करता है -ऐसा भेदज्ञान गुरुवचनों द्वारा करके जो शुद्धदृष्टिवान हो, उसे यथार्थ दृष्टि होती है, लीनता के अंश बढ़ते हैं, मुनिदशा में अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्तिपर्याय प्राप्त होती है॥१६७॥

१६७, **वाणी और विभावों से भिन्न...** यह वाणी और पुण्य-पाप के भाव से भगवान अन्दर भिन्न तत्त्व है। जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो विकल्प-दया, दान के राग और वाणी से भिन्न चीज़ है। आहा...हा...! **तथापि कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो**

www.vitragvani.com

सके... किसी अपेक्षा से गुरु की वाणी निमित्तरूप है। इससे इसे उसका लक्ष्य करे और फिर अपना लक्ष्य करे तो वह जान सकता है। आहा...हा...! **ऐसा जो चैतन्यतत्त्व...** ऐसा भगवान आत्मा, जिसके तल में—तल में अनन्त आनन्द पड़ा है। जिसके तल में अनन्त ज्ञान, शान्ति, अनन्त गुण के रत्न पड़े हैं। आहा...हा...!

ऐसे **चैतन्यतत्त्व, उसकी अगाधता...** अगाधता, आहा..हा...! अपारता। छोर किसका? प्रभु! अनन्त गुणों का कोई छोर नहीं मिलता। आहा...हा...! ऐसा का ऐसा माने परन्तु एक लक्ष्य में जरा विचार करे तो पता पड़े। समझ में आया? कि वस्तु है भगवान आत्मा, उसमें जो अनादि अनन्त ध्रुव गुण है, उसकी संख्या का पार नहीं मिलता। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... को अनन्त गुणा कर डालो तो भी उसका अन्त नहीं आवे, इतनी आत्मा में गुण की शक्ति भरी है। आहा...हा...!

अब इसके पास हो दो-पाँच करोड़ या अरब रुपये या दो अरब या पाँच अरब रुपये। लो न! आहा...हा...! धूल हो तो इतनी। यह शान्तिलाल खुशाल अपने था न? गोवा का। दो अरब चालीस करोड़! मर गया एक क्षण में, चला गया, चला। ममता... ममता... ममता... आहा...हा...! इसी प्रकार इसकी संख्या, यह तो पार न मिलता, कहते हैं। ऐसा जो आत्मधर्म अर्थात् गुण अपार... अपार... अपार... अपार... यहाँ अनन्त का यह अन्त आ गया (-ऐसा नहीं)। अनन्त गुण ज्ञान-दर्शन आदि संख्या से, उसके अनन्त का यहाँ अन्त आया अर्थात् पूरा हुआ—ऐसा है ही नहीं कहीं। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह? अरे! तूने सत्य सुना नहीं, प्रभु! आहा...हा...!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव से कथित तत्त्व, प्रभु! तूने सुना नहीं। आहा...हा...! यह तत्त्व तो अगाध है। जिसकी शक्ति की संख्या का पार नहीं होता। क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश ही इतना शरीरप्रमाण (हो परन्तु) स्वयं भिन्न भगवान है। आहा...हा...! अरे! अनन्त निगोद की आत्मायें, एक ऐसे मुट्ठी में यहाँ रखो तो इसमें-क्षेत्र में आ गये अनन्त! इस लहसुन के, प्याज के जीव। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और अनन्त जीव हैं तो ऐसे क्षेत्र में ऐसा आ गया परन्तु इसके भाव में अन्त नहीं, प्रभु! यह क्या कहते हैं?

www.vitragvani.com

आहा... ! अगाध है, है ? **अगाधता, अपूर्वता,....** पूर्व में कभी जिसने जाना नहीं—ऐसी ये शक्तियाँ भरी हैं अन्दर। अचिन्त्यता... जिनका चिन्तन नहीं हो सके—ऐसी ये चीज़े अन्दर हैं। उन्हें **गुरु बतलाते हैं**। आहा...हा... ! देखा ? गुरु यह बताते हैं। गुरु के उपदेश में यह आता है - ऐसा कहते हैं। वीतरागता बतलाते हैं न ? वीतरागता बतावे, वहाँ वीतरागता को द्रव्य के आश्रय से (होती है) तो द्रव्य बताते हैं। आहा...हा... !

शुभाशुभभावों से दूर... पुण्य और पाप के भाव से दूर **चैतन्यतत्त्व अपने में निवास करता है...** आहा...हा... ! **ऐसा भेदज्ञान गुरुवचनों द्वारा करके जो शुद्धदृष्टिवान हो...** शुद्धदृष्टिवाला होता है स्वयं से, **उसे यथार्थ दृष्टि होती है, लीनता के अंश बढ़ते हैं,...** फिर स्वरूप में एकाग्र होने पर निर्मलता के अंश बढ़ते हैं। **मुनिदशा में अधिक...** मुनिपना तो अलौकिक दशा है! बापू! अभी तो मुनिपना हिन्दुस्तान में है ही नहीं। आहा...हा... ! **मुनिदशा में अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्तिपर्याय प्राप्त होती है।**

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)